अथर्ववेद संहिता
भाषा-भाष्य
भाग ४

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(चतुर्थ खण्ड)

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

संशोधनकर्त्ता

श्री विश्वनाथजी विद्यालंकार

भूतपूर्व प्रोफेसर, गुरुकुल कांगड़ी

प्रकाशक—

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर.

पंचमावृत्ति १५०० | सन् १९७७ संवत् २०३४ | मूल्य ३०) रुपये

मुद्रक—
श्री शिरीश चन्द्र शिवहरे, एम. ए.
मैनेजिंग डायरेक्टर
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

प्रथमावृत्ति संवत् १९८७ वि० (सन् १९३० ई०)
द्वितीयावृत्ति संवत् २००२ वि० (सन् १९४५ ई०)
तृतीयावृत्ति संवत् २००९ वि० (सन् १९५२ ई०)
चतुर्थावृत्ति संवत् २०१९ वि० (सन् १९६० ई०)
पंचमावृत्ति संवत् २०३४ वि० (सन् १९७७ ई०)

॥ ओ३म् ॥

चतुर्थखण्ड की भूमिका

इस खण्ड में १८, १९, २० काण्ड सम्मिलित हैं। इस खण्ड में कुछ विषय बड़े महत्त्व के हैं जिनको स्पष्ट करना आवश्यक है।

१८ वें काण्ड में बहुत से विषय विचारणीय हैं जैसे (१) यमयमी संवाद, (२) पितृगण, (३) पिण्डदान, (४) प्रेतदाह, (५) सतीदाह, (६) छाग वध, (७) कुछ और्ध्वदेहिक क्रियाएं।

(१) यमयमी संवाद

ऋग्वेद (१० । १० । १-१४) में १४ और अथर्ववेद (१८ । १ । १-१६) १६ ऋचाएं यमयमी संवाद के नाम से प्रसिद्ध हैं। आचार्य सायण के कथनानुसार यम यमी दोनों भाई बहिन हैं। इन १६ मन्त्रों में विवस्वान् के पुत्र पुत्री यम और यमी दोनों का संभोग के निमित्त संवाद वर्णित है।

वस्तुतः यह पुत्राभिलाषी स्त्री पुरुषों का ही परस्पर संवाद है। १ म मन्त्र में सखा को वरण करने की इच्छुक कुमारी वर वर्णिनी कन्या के विचारों को बड़ी उत्तम रीति से रक्खा गया है। वह एक सखा चाहती है। संसार-सागर में वह अकेली न रहकर सखा से ही पितृऋण के उतारने के निमित्त सन्तान लाभ की इच्छा करती है। २ य मन्त्र में उसकी बात का अनुमोदन है। तीसरे मन्त्र में विवाहित पति पत्नी पुत्र प्राप्त न होने पर कम से कम एक सन्तान के अति उत्सुक जान पड़ते हैं। चौथे मन्त्र में सन्तान से निराश दम्पति में पुरुष का वचन प्रतीत होता है। ५, ६, ७ मन्त्रों में सन्तान से निराश दम्पती के भावों को उत्तम रीति से

दर्शाया है । ८ वें में वरवर्णिनी कन्या के विवाह के पूर्व के विचारों का स्मरण है । ९ वें में निराश पति का स्त्री को नियोग द्वारा पुत्र लाभ करने की सम्मति है । १० वें में पत्नी की कुछ अनिच्छा है । ११ वें में पति की स्त्री को पुनः आज्ञा है । १२ वें में स्त्री की स्वाभाविक लज्जावश पुनः अनिच्छा है । १३, १४, में पुत्रोत्पादन में असमर्थ एवं महाभारत के राजा पाण्डु के समान रोगादि पीड़ित पति की पुनः आज्ञा है । ऐसा व्यक्ति अपनी स्त्री को भी भगिनी के समान जान अपने शरीर के दोषों से स्त्री के शरीर का नाश नहीं करना चाहिये, इस भाव से पत्नी को पृथक् रहने का आदेश करता है । १५ वें में पत्नी का कटाक्षपूर्वक पति के हृदय की बात जानने के लिये यत्नमात्र है । १६वें में और भी स्पष्ट रूप से पति ने पुत्र लाभ के लिये आवश्यक कर्त्तव्य का आदेश किया है ।

गृहस्थ आदि के सामान्य कर्त्तव्यों का वर्णन तो १४ वें काण्ड में कर दिया है । इस काण्ड में तो पुत्रार्थी स्त्री पुरुषों के लिए ही आपद-धर्म रूप नियोग का वर्णन किया है ।

ऐसा ही महर्षि दयानन्द ने भी स्वीकार किया है । साधारण रीति से नियोग के नाना लाभों का वर्णन महर्षि दयानन्द के बताये सत्यार्थ-प्रकाश (४र्थ समुल्लास) में कर दिया है । यहां इतना लिखना ही पर्याप्त है कि—(१) नियोग विधान से स्त्रियों के दायभाग के अधिकार की रक्षा होती है । पति की मृत्यु हो जाने पर उसकी जायदाद (चर और अचर) का अधिकार स्त्री को होता है । यदि वह दूसरे पुरुष से पुनः विवाह करे तो वह अपने पहले पति की जायदाद को दूसरे पति के अर्पण कर देगी । परन्तु उस स्त्री के देवर और जेठ आदि संबन्धी उसे ऐसा नहीं करने देंगे क्योंकि वह जायदाद उनके बाप-दादों की सम्मिलित है । विशेषतया भूमि, मकान और पशु-संपत्ति में ऐसा ही होता है । ऐसी दशा में या तो स्त्री विधवा ही रहे या जायदाद का हक छोड़े । यदि जाय-दाद को छोड़ती है तो अन्य पुरुष के साथ विवाह करने पर स्त्री को जो

हक अपने पूर्व पति के सर्वस्व पर प्राप्त है वह नष्ट होता है और वह हक जो देवर और जेठ आदि को प्राप्त नहीं था वह उनको मिलता है। यदि दायभाग नहीं छोड़ती तो जेठ और देवरादि में अन्य कुल का व्यक्ति उनके भाई के हक पर अधिकार जमाता है इससे शामिलात जायदाद में नया पति कलह का कारण होता है और स्त्री को फिर भी अपने पूर्व पति के जायदाद का हक नहीं रहता क्योंकि वह हक दूसरे पति ने छीन लिया। (२) दूसरे जो इस नये पति से सन्तान होगी उससे पूर्वपति का वंश नहीं चलता और परस्पर वंश चलाने की प्रतिज्ञा भी खण्डित होती है। ऐसी दशा में स्त्री को अपने मृत पति की जायदाद पर हक भी बना रहे, पुत्र लाभ भी हो और पूर्व पति का वंश भी चले इन सब सुविधाओं के लिये ऐसे विधान की आवश्यकता है जो स्त्री को पुत्र लाभ करने का अधिकार प्रदान करे और स्त्री को उसके दायभाग के अधिकार से भी च्युत न करे। इस विधान का नाम 'नियोग' है।

मनु आदि धर्मशास्त्रों ने इस नियोग को जहां तक हो सका उस कुल में सीमित किया है अर्थात् वह स्त्री देवर से या और किसी अपने पति के सपिण्ड से पुत्र लाभ करे। ऐसा करने से दायभाग और पुत्र आदि अन्य कुल में न जाकर पति का वंश चलता है। इतिहास में ऐसे दृष्टान्त बहुत हैं। जैसे पाण्डु के असमर्थ रहने पर कुन्ती और माद्री दोनों रानियों को नियोग द्वारा सन्तान लाभ हुआ और उनके पुत्रों को वंशागत राज्य भी प्राप्त हुआ। इसी प्रकार विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद दोनों के मरने पर उनका बन्धुओं में व्यासदेव द्वारा सन्तान लाभ होकर वंश चला और वह पौरव वंश भी कहाया। इस प्रकार के पुत्र 'क्षेत्रज' पुत्र कहाते हैं।

जहां जायदाद के अधिकारों के प्रश्न न हों और केवल स्त्रियों के पेट का ही प्रश्न है वहां श्रमी (शूद्र) लोगों में 'नियोग' का विशेष प्रयोजन नहीं है। ऐसी दशा में स्त्रियों का पुनः विवाह ही उत्तम है। यही महर्षि का सिद्धान्त है। यहां ऐसा नियम नहीं कि पति के मर जाने पर स्त्री

नियोग करे ही, प्रत्युत् यदि सन्तान न हो और सन्तान की इच्छा हो तो नियोग विधान ऐच्छिक है। इसी प्रकार पुनर्विवाह के लिये भी समझना चाहिये। इति दिक्।

(२) पितृगण

'पिता' बहुत प्रचलित शब्द है। पालन करने वाला 'पिता' कहाता है। विद्या सम्बन्ध से आचार्य भी 'पिता' कहाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'पिता' और 'पितरः' शब्दों का प्रयोग नीचे लिखे प्रकारों से आया है।

(१) यमो वैवस्वतो राजा इत्याह तस्य पितरो विशः। त इम आसत इति स्यस्थविरा उपसमेता भवन्ति। तानुपदिशति यजूँषि वेदः।

शत० १३।४।३।६॥

वैवस्वत राजा यम की प्रजाएं 'पितरः' हैं ये स्थविर, वृद्धजन हैं उनका वेद यजुर्वेद है।

(२) क्षत्रं वै यमो विशः पितरः। श० ७।१।१।४॥
क्षत्रिय 'यम' है और प्रजाएं ही 'पितरः' हैं।

(३) मर्त्याः पितरः। श० २।१।३।४॥ मरने हारे मनुष्य ही 'पितरः' हैं।

(४) गृहाणां हि पितरः ईशते। शं० २।६।१।४०॥ घरों के स्वामी 'पितरः' हैं।

(५) देवाः वा एते पितरः। गो० १।१।२४॥ देवगण, तेजस्वी व्यवहार कुशल, दानशील पुरुष 'पितरः' हैं।

(६) त्रयाः वै पितरः। सोमवन्तः, बर्हिषदः, अग्निष्वात्ताः।श० ५।५।५।२८। तीन प्रकार के पितर हैं सोमवान्, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त।

(७) यान् अग्निरेव दहन् स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वाताः। श० २।६।१।७॥ जिनको अग्नि ही जलाता हुआ स्वाद देता है वे पितर अग्निष्वात्त हैं।

(८) ये वै अयज्मेवानो गृहमेधिनः । ते पितरो अग्निष्वात्ताः । तै० १।६।७।६।। जो गृहस्थ यज्ञशील नहीं हैं वे 'अग्निष्वात्त' कहाते हैं ।

(९) अथ ये दत्तेन पक्वेन लोकं जयन्ति ते पितरो बर्हिषदः।श० २।६ १।७।। जो दान और पाक यज्ञ से लोक का जय करते हैं वे पितर 'बर्हिषद्' हैं ।

(१०) ये वै यज्वानः ते पितरो बर्हिषदः। तै० ब्रा०१ । ६ । ८ । ६ ।। जो यज्ञशील हैं वे 'बर्हिषद्' पितर हैं ।

(११) तद् ये सोमेनेजानाः ते पितरः सोमयन्तः। श० १ । ६ । १ । ७ ।। जो सोम से यज्ञ करते हैं वे 'सोमवान्' पितर हैं।

(१२) ओषधिलोको वै पितरः । श० १३ । ८ । १ । २ ।। ओषधियां पितर हैं ।

(१३) षड् वा ऋतवः पितरः । श० २ । ४ । ३ ।। छहों ऋतु पितर हैं ।

इस प्रकार 'पितरः' शब्द बड़ा व्यापक शब्द है । पालन करने वाले गुणों को देखकर ओषधि ऋतु आदि जड़ पदार्थों को भी 'पितरः', कहा गया है । इसी प्रकार प्राणो वै पिता। ए० २ । ३८ । एष वै पिता य एष तपति । श०१४।१।७।१५।। प्राण और सूर्य भी पिता हैं। परन्तु इन स्थलों पर भी कहीं मृत जीवों को पितर शब्द से नहीं कहा गया है।

अब वेद मन्त्रों में आये पितरों पर विचार करते हैं—वेद में जहां भी 'पितरौ' ऐसा द्विवचन प्रयोग होगा वहां वह माता पिता के लिए प्रयुक्त हुआ है इसमें सन्देह नहीं है। मन्त्र (१८ । १ । ४२) में सरस्वती के उपासक पितरों का वर्णन है। सरस्वती शब्द परमात्मा, वेदवाणी और स्त्री तीनों का वाचक है। इससे ईश्वरोपासक मुमुक्षु जन, वेदज्ञ विद्वान् और गृस्थजन 'पितर' कहाते हैं । मन्त्र (१८ । १ । ४४) में अवर, पर, मध्यम, ये तीन प्रकार के पितर बतलाये हैं । उनके सोम्य, अवृक, ऋतज्ञ, ये तीन विशेषण हैं । सोम्य का अर्थ सोम अर्थात् ऐश्वर्य,

ज्ञान और बल सम्पन्न हों। अवृक अर्थात् जो भेड़िये के समान कुटिल क्रूर चोर स्वभाव के न हों। ऋतज्ञ अर्थात् सत्य व्यवहार और वेद-व्यवस्था, विधि-विधान के जानकार हों।

सू० १ म के मन्त्र ४६ में पृथिवी लोक पर शासन करने वाले उन अधिकारियों को 'पितर' कहा गया है जो प्रजाओं पर शासन करते हैं। ४८ में अजेय इन्द्र का वर्णन है और ४९ में समस्त जनों के आश्रय रूप राजा वैवस्वत यम के आदर करने का आदेश है। इस स्थान पर स्पष्ट 'यम' स्वयं राजा है। वह विविध ऐश्वर्यों और बसनेहारी प्रजाओं का स्वामी होने से 'वैवस्वत' है और नियन्ता, शासक होने से 'यम' है। मन्त्र ५२ में गोड़ों को संकोच कर भोजन स्वीकार करने वाले जीवित पितरों का वर्णन है। समस्त सूक्त में जहां 'यम' शब्द से परमेश्वर का ग्रहण है वहां ही पक्षान्तर में राजा परक अर्थ भी आपसे आप निकलता है। 'यम' क्यों मृत्यु वाचक नहीं और 'पितरः' शब्द क्यों मृत पितरों का ग्रहण नहीं करता इसका हेतु क्रम से पूर्ण सूक्त का पठन करने से स्पष्ट पता लग जाता है।

(३) प्रेतदाह और और्ध्वदैहिक कर्म-पद्धति

मन्त्र-पाठ में शव को कन्धों पर न ले जाकर गाड़ी पर ले जाने लिखा है। गाड़ी पर ईसाइयों का शव को ले जाना आर्ष प्रयोग का अनुकरण है। इसका प्रचार होना उत्तम है। ले जाते समय गृह्यसूत्रों में यमगाथा के गान का विधान है।

(४) सतीदाह

सायण ने विनियोग लिखा है कि—प्रथम ऋचा से चिता में भार्या को मृतपुरुष के साथ लेटा दे। मन्त्रपाठ इस प्रकार है—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥१॥

"यह नारी पतिलोक का वरण करती हुई, पुराण धर्म का पालन करती हुई, तुझ मृतपुरुष के पास आती है, तू उसको यहां प्रजा और धन प्रदान करा।" इस वाक्य-रचना से स्त्री को जला देने का अर्थ कैसे निकाला जाता है यह आश्चर्यजनक है।

इसलिये विनियोग ऐसा प्रतीत होता है कि शोकातुर स्त्री उस समय चिता के पास आती है और शोक प्रकट करती या अन्तिम दर्शन करती है। उस समय वह पति के मर जाने पर पति के सर्वस्व की उत्तराधिकारिणी बनती है। पुराने आचार के अनुसार धर्माचरण पूर्वक रहती हुई मृत-पुरुष की प्रजा और ऐश्वर्य की स्वामिनी बनती है।

(५) कुन्तापसूक्त

२०वें काण्ड के १२७वें सूक्त से लेकर १३६वें सूक्त सामान्यतः 'कुन्तापसूक्त' कहाते हैं। कुन्तापसूक्तों का पाठ ऋग्वेद के परिशिष्ट में पढ़ा गया है।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार कुन्ताप सूक्तों में केवल ३० ऋचाओं का समावेश है। जिसमें ६ नाराशंसी, ३ रैभी, ४ पारीक्षित, ४ कारव्य, ५ दिशां क्लृप्ति, ६ जनकल्प और ५ इन्द्रगाथा हैं। ये ही 'कुन्ताप' सूक्त कहाते हैं। इसके अनन्तर ७० पद ऐतशप्रलाप कहे जाते हैं जिनको योग विभाग द्वारा ७६ पद बना कर (सू० १२९-३२) अथर्ववेदी पढ़ते हैं। इसके अनन्तर ६ प्रवल्हिकाएं [१३३], ६ आजिज्ञासेन्याएं [१३४], ३ प्रतिराधा, १ अतिवाद, २ देवनीथ नामक ऋचा हैं, बाद में ३ भूतेच्छद्, इसके अनन्तर १६ आहनस्या ऋचाएं हैं इन सबको अथर्ववेदी साहचर्य से कुन्तापसूक्तों के नाम से ही व्यवहृत कर लेते हैं।

(६) ऐतश-प्रलाप

इन कुन्ताप सूक्तों में ऐतशप्रलाप के विषय में ऐतरेय ब्राह्मणकार महीदास ने लिखा है कि—

ऐतशो ह मुनिरग्नेरायुर्ददर्श । यज्ञस्यायातयाममिति हैक आहुः सोऽब्रवीत् पुत्रान्, पुत्रकाः अग्नेरायुरदर्शं तदभिलपिष्यामि यत्किं च वदामि तन्मे मा परिगातेति स प्रत्यपद्यतैता अश्वा आप्लवन्ते प्रतीपं प्राति-सत्यवनमिति तस्याभ्यग्निरैतशायनः एत्याऽकालेऽभिहाय मुखमप्यगृह्णाद् अदृपन्नः पितेति । तं होवाचापेह्यलसोऽभूर्यो मे वाचमवधीः । शतायुं गाम-करिष्यं सहस्रायुं पुरुषम् । पापिष्ठां ते प्रजां करिष्यामि यो मे इत्थम-सवधीः इति । तस्मादाहुरभ्यग्नय ऐतशायना और्वाणां पापिष्ठाः ।

अर्थ—"ऐतेश मुनि ने अग्नि की आयु का साक्षात् किया । कोई इस मन्त्रकाण्ड को यज्ञ का 'अयातयाम' कहते हैं। ऐतशमुनि ने पुत्रों को कहा—हे पुत्रो ! मैंने अग्नि की आयु का साक्षात् दर्शन किया है वह मैं कहूँगा । मैं जो कुछ भी कहूँ उसको बुरा मत कहना । उसने कहना प्रारम्भ किया 'एता अश्वा आप्लवन्ते' इत्यादि (सू० १२९-१३२) एतश के अभ्यग्नि नामक पुत्र ने बीच ही में उठकर पिता का मुख पकड़ लिया । कहा कि हमारा पिता पागल हो गया है । इस पर पिता ने कहा—पुत्र ! तू दूर हो, तू मेरे वचन समझने में मन्द है ? इसी से मेरी वाणी को तूने बीच में ही नाश किया है । मैं 'गौ' को १०० बरस और मनुष्य को १००० वर्ष की आयु वाला कर सकता हूँ, परन्तु तूने मुझे बीच में इस प्रकार टोका है इसलिये तेरी सन्तान को बहुत पापयुक्त, पतित ठहराता हूँ । इसीसे और्व कुल में एतशायन सबसे अधिक पतित कहे जाते हैं ।

इस कथा की सत्यता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता । यह कहना कि ये वचन ऐतश मुनि के स्वयं गढ़े हुए हैं, ऐसा नहीं माना जा सकता । सायण ने अपने भाष्य में 'अलसो भूर्यो मे वाचमवधीः' इसका व्याख्यान करते हुए लिखा है—'अहमुन्मत्त इति तव बुद्धिर्नत्वहमुन्मत्तः किन्तु मन्त्रकाण्डमीदृशम् ।' हे पुत्र तू समझता है कि मैं उन्मत्त हो गया हूँ, परन्तु नहीं । मैं उन्मत्त नहीं । मन्त्रकाण्ड ही ऐसा है । इससे प्रतीत

होता है कि ऐतश मुनि तो द्रष्टामात्र हैं। मन्त्र तो पूर्व से ही विद्यमान थे। इस मन्त्रकाण्ड के पूर्व 'एता अश्वा-' ये पद होने से ही कदाचित् उस सूक्त के द्रष्टा ऋषि का नाम भी 'ऐतश' है।

(७) आहनस्या ऋचाएं

सूक्त १३६ की १६ ऋचाएं 'आहनस्या' कहाती हैं। इनके सम्बन्ध में ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है—आहनस्याद्वै रेतः सिच्यते। रेतसः प्रजाः प्रजायन्ते। (ऐत० ब्रा० १, ३० । १०) इस पर सायण का भाष्य है—"आहननं स्त्रीपुरुषयोः परस्परसंयोगाः। तद्वत् प्रजोत्पत्तिहेतुत्वात् ऋचोऽप्याहनस्याः। आहनस्यं मिथुनमित्युक्तं।"

अर्थात्—आहनस्य से वीर्य सेचन किया जाता है। वीर्य से प्रजाएं उत्पन्न होती हैं। स्त्री पुरुषों का परस्पर संयोग 'आहनन' कहाता है। उसी प्रकार प्रजोत्पत्ति के कारण होने से ये ऋचाएं 'आहनस्या' हैं।

इस आधार पर विचार करने से यह सूक्त प्रजोत्पत्ति के गूढ़ रहस्यों का भी वर्णन करता है। परन्तु हमने प्रस्तुत भाष्य में प्रजोत्पत्ति पक्ष पर विशेष प्रकाश नहीं डाला। हमने कई कारणों से राष्ट्र पक्ष में ही इसकी व्याख्या की है। जिस प्रकार गर्भ-विज्ञान, काम-विज्ञान और प्रजनन-विज्ञान के शास्त्रीय भाग को विशुद्ध दृष्टि वाले विशुद्ध रूप से देखते हैं और पतित प्रवृत्ति वाले उन ही ग्रन्थों से अपने दुर्भाव-तृष्णा की पूर्ति भी करते हैं उसी प्रकार इन सूक्तों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये।

(८) उपसंहार

अन्त में मैं विद्वान् महानुभावों से सप्रेम, सानुनय निवेदन करता हूँ कि मेरे इस श्रम में त्रुटियां होनी सम्भव हैं। सर्व पक्षों में प्रकाश करने वाली ईश्वरीय अगाध वेदवाणी के परम तत्व को सर्वाङ्ग रूप से प्रकट करने में मानव तुच्छ बुद्धि का क्या सामर्थ्य? तो भी निवेदन है कि विद्वान्जन विचार और भाषा सम्बन्धी और सिद्धान्त और प्रमाण

सम्बन्धी जिन त्रुटियों को भी दर्शावेंगे या वेदमन्त्रों पर जो भी स्वतन्त्र विचार प्रकट करेंगे उनके उस उपकार के लिए मैं कृतज्ञ होऊंगा।

गुण ग्रहण करने में हंस-स्वभाव को दर्शाने वाले महानुभाव गुण ग्रहण करने में तत्परता दिखावेंगे ही और जो इससे विपरीत केवल दोष-दर्शन कर व्यर्थ के निन्दा और कलह के प्रवाद बढ़ाने की चेष्टा करते हैं उनके प्रति निवेदन है कि—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तु ते किमपि, तान् प्रति नैष यत्नः ॥

अन्त में:—भट्ट कुमारिल के शब्दों में—

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि।
नहि सद्-वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥

विद्वानों का अनुचर—
जयदेव शर्मा
विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

———

अथर्ववेद-भाषाभाष्ये (चतुर्थखण्डस्य)

विषय-सूची

सूक्तसंख्या	विषय	पृष्ठाङ्क:

एकोनविंशं काण्डम्

सूक्तसंख्या	विषय	पृष्ठाङ्क

सूक्तसंख्या	विषय	पृष्ठाङ्क

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेद-संहिता

अथाष्टादशं काण्डम्

[१] सन्तान के निमित्त पति पत्नी का परस्पर विचार ।

अथर्वा ऋषिः । यमो मन्त्रोक्ता वा देवताः । ४१, ४३ सरस्वती । ४०, रुद्रः । ४०-४६, ५१, ५२ पितरः । ८, १५ आर्षीपंक्ती । १४, ४०, ५० भुरिजः । १८, २०, २१, २३ जगत्यः । ३७, ३८ परोष्णिहौ । ५६, ५७, ६१ अनुष्टुभः । ५९ पुरो बृहती शेषास्त्रिष्टुभः । एकषष्ट्यृचं सूक्तम् ॥

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥

भा०—मैं स्त्री (सख्या) सखिभाव से प्रेरित होकर (सखायं चित्) अपने सखा पति को (आ ववृत्याम् उ) स्वयं वरण कर चुकी हूँ, (पुरु) और महान् (अर्णवम् चित्) ब्रह्मचर्य सागर से (तिरः) पार (जगन्वान्) गया हुआ (वेधाः) बुद्धिमान् पुरुष, (अधि क्षमि) इस पृथ्वी में या अपनी भूमिरूप जाया में (प्र-तरम्) पुत्र को दुःखसागर से तरने का साधन (दीध्यानः) विचारता हुआ, (नपातम्) अपने पिता के (नपातम्) वंश को न गिरने देने हारी वंशकर्त्ता सन्तान का (आ दधीत) आधान करे ।

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

भा०—हे पत्नि ! (ते सखा) तेरा मित्र यह पति (एतत्) इस (सख्यम्) मित्रता के भाव को (न वष्टि) क्या नहीं चाहता ? (यत्) कि (सलक्ष्मा) समान लक्षणों से युक्त स्त्री (विषुरूपा) प्रजा आदि द्वारा बहुरूप (भवाति) हो जाय। क्योंकि (महः) बड़े (असुरस्य) बलवान् पुरुष के (वीराः) वीर्यवान् पुत्र ही (दिवः) द्यौलोक और (उर्विया) पृथ्वी के (धर्त्तारः) धारण करने वाले (परि ख्यन्) देखे जाते हैं।

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥३॥

भा०—हे पते ! (ते) वे (अमृतासः) मोक्ष में प्राप्त जीवन्मुक्त पुरुष (घ) भी (एतत्) यह (उशन्ति) कामना करते हैं कि (एकस्य मर्त्यस्य) प्रत्येक मनुष्य का (त्यजसं चित्) उत्तम पुत्र उत्पन्न हो। (ते मनः) तेरा मन (अस्मे मनसि) मेरे चित्त में ही (नि धायि) रक्खा है। (जन्युः) पुत्र जन्म में समर्थ वीर्यसेक्ता (पतिः) मेरा पति होने के कारण तू ही (तन्वम्) मेरे शरीर में (आ विविश्याः) प्रविष्ट हो।

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

भा०—यौवन काल में सन्तान न प्राप्त होने पर पति कहता है—कि (कत् ह) वह क्या शेष है (यत्) जो हमने (पुरा) पूर्व, यौवन काल में (न चकृम) नहीं किया अर्थात् सन्तान प्राप्ति के लिये सभी कुछ किया। (नूनम्) निश्चय से (ऋतम् वदन्तः) सत्य का भाषण करने वाले हम क्या (अनृतम् रपेम) असत्य बोलें ? जब (गन्धर्वः) गन्धर्व अर्थात् पुरुष भी (अप्सु) जलीय परमाणुओं का बना हो और (योषा च अप्या) स्त्री भी जलमयी हो, अर्थात् स्त्री और पुरुष अग्नि और जल के स्वभाव के न होकर दोनों जल स्वभाव के, एक ही प्रकृति के हों तो (सा) वही जलीय प्रकृति (नौ) हम दोनों की (नाभिः) उत्पत्ति कारण है। (तत्) वही

(नौ) हम दोनों में (परमं जामि) बड़ा दोष है जो सन्तान उत्पन्न होने में बाधक है।

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

भा०—पत्नी निराश होकर कहती है। (नु) क्या (जनिता) उत्पादक परमेश्वर (नौ) हम दोनों को (गर्भे) गर्भ में ही (दम्पती कः) एक दूसरे का पति-पत्नी बना देता है? वह परमात्मा (त्वष्टा) समस्त प्रकार के प्राणियों का रचियता, (सविता) सबका उत्पादक, (विश्वरूपः) अखिल विश्व अर्थात् प्राणियों को रचने वाला है। क्या (अस्य) उस परमात्मा की (व्रतानि) बनाई कर्म व्यवस्थाओं को (नकिः प्रमिनन्ति) कोई भी नहीं तोड़ सकते? क्या (नौ) हम दोनों (अस्य) इस रहस्य के विषय में (वेद) जान सकते हैं? या (पृथ्वी उत द्यौः) पृथ्वी और आकाश या माता पिता दोनों ही (अस्य) उसके विषय में (वेद) जानते हैं।

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥६॥

भा०—(अद्य) नित्य (ऋतस्य) गतिशील संसार और देह के (धुरि) धुरे में (कः) कौन, (शिमीवतः) क्रियाशक्ति से युक्त, (भामिनः) तेजस्वी (दर्हृणायून्) प्रतापी (गाः) इन्द्रियों, प्राणों और सूर्य आदि को घोड़ों या बैलों के समान (युङ्क्ते) नियुक्त करता है। ये इन्द्रिय आदि (आसन् इषून्) मुख में गति करने वाले, (हृत्सु असः) हृदयों में विद्यमान, (मयोभून्) और सुख के उत्पादक हैं। (यः) जो (एषाम्) इनके (भृत्याम्) भरण-पोषण की क्रिया को (ऋणधत्) बढ़ाता है। (सः जीवात्) वह दीर्घ काल तक जीता है।

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥७॥

भा०—(अस्य) इस संसार के (प्रथमस्य अह्नः) प्रथम दिन के विषय में (कः वेद) कौन जानता है, (ईम्) इस जगत को बनते हुए भी (कः ददर्श) किसने देखा, (इह) इस विषय में (कः प्र वोचत्) कौन कह सकता है ? (मित्रस्य) सबके स्नेही (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ परमात्मा का (धाम) धारण सामर्थ्य भी (बृहत्) बड़ा भारी है। (नृन्) सब मनुष्यों का (वीच्य) विवेक करके, हे (आहनः) हृदय पर चोट पहुँचाने या हृदय में प्रवेश करने हारी प्रियतमे ! तुम (कत् उ) क्या (ववः) कह सकती हो ?

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ८ ॥

भा०—पत्नी कहती है कि (समाने) पतिपत्नी भाव के योग्य (योनौ) स्थान में (सह-शेय्याय) एक साथ शयन करने के लिये (मा यम्यम्) मुझ यमी अर्थात् ब्रह्मचारिणी को (यमस्य) यम, ब्रह्मचारी की (कामः) कामना (आ अगन्) हुई है और यह अभिलाषा हुई है कि (पत्युः जाया इव) जिस प्रकार स्त्री अपने पति के लिये अपना शरीर अर्पण करती है उसी प्रकार मैं ब्रह्मचारिणी अपने (तन्वम्) शरीर को अभिलषित ब्रह्मचारी के हाथों (रिरिच्याम्) सौंप दूं। (रथ्या इव चक्रा) रथ में लगे दो चक्रों के समान हम दोनों एक गृहस्थ रथ में जुड़कर (व वृहेव चित्) उत्तम रीति से एक दूसरे का भार उठा लें।

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ९ ॥

भा०—(इह) इस संसार में (ये) जो (देवानाम्) विद्वान् राजाओं के (स्पशः) सिपाही (चरन्ति) विचरते हैं वे (न तिष्ठन्ति) न कभी विश्राम लेते हैं और (न निमिषन्ति) न कभी झपकते हैं, वे सदा सचेत रहते हैं, अतः उनके उत्तम राष्ट्र में और निरीक्षण में हे पुत्राभिलाषिणि ! हे

(आहनः) कटाक्ष से आघात करने वाली ! या हृदयंगमे ! प्रियतमे ! (मत्) पुत्रोत्पादन में असमर्थ मुझ पति से अतिरिक्त (अन्येन) अन्य के साथ (तूयं) शीघ्र (याहि) संग कर, (तेन) उसके साथ ही (रथ्या इव चक्रा) रथ से लगे दो चक्रों के समान (वि वृह) परस्पर गृहस्थ-भार को उठा।

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि १० (१

भा०—वह परमात्मा (रात्रीभिः) बहुत सी रातों और (अहभिः) बहुत से दिन गुजर जाने पर स्वयं ही (अस्मै) इस पुरुष को (दशस्येतु) पुत्र आदि दे दिया करता है। इसलिये सम्भव है कि (सूर्यस्य) सर्वप्रेरक उस परमेश्वर की (चक्षुः) दयामय दृष्टि, हम निरपत्य पती पत्नी पर (मुहुः) फिर भी (उत् मिमीयात्) पड़े और हम (दिवा) प्रकाशमान सूर्य और (पृथिव्या) पृथिवी के समान परस्पर (मिथुना) जोड़े बने हुए, (सबन्धू) समान रूप से बन्धू होते हुए, (यमीः) मैं पुनः संयमी अर्थात् व्रतनिष्ठा होकर, (यमस्य) व्रतनिष्ठ तुझ पति के साथ (अजामि) दोषरहितरूप से (विवृहात्) संग करूं। चिरकाल तक यदि अपत्य उत्पन्न न हो तो स्त्री का विचार होता है कि कुछ वर्षों में ईश्वर की कृपादृष्टि से पुनः पुत्रलाभ हो। वा संभव है सूर्य-पृथिवी के समान दोनों पति पत्नी परस्पर एकत्र रहकर भी ब्रह्मचारी और व्रती रह कर तप करें तो पुनः पुत्रोत्पन्न कर सकें।

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ ११ ॥

भा०—(ता) वे भविष्य के (युगानि) पति पत्नियों के जोड़े (घ) भी निश्चय से (आ गच्छान्) आने सम्भव हैं, (यत्र) जिनमें (जामयः) सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ, कन्यायें या पुत्रवधुएं (अजामि) दोष रहित सन्तान उत्पन्न (कृणवान्) करेंगी। इसलिये हे (सुभगे) उत्तम भाग्यशालिनी स्त्रि ! तू (वृषभाय) वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष के लिये (बाहुम्) अपनी

बाहु को (उप बर्बृहि) सिरहाने के समान लगा, उसको सुखी कर और (मत्) मुझ सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ पुरुष से (अन्यत्) भिन्न पुरुष को (पतिम्) अपना पति (इच्छस्व) चाह, ऐसी मेरी आज्ञा है।

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
काममूता बह्वे३तद् रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥ १२ ॥

भा०—इस प्रकार नियोग अर्थात् आज्ञा पूर्वक अपने से अन्य पति कर लेने की आज्ञा देते हुए पुत्र-उत्पादन में असमर्थ पति के प्रति स्त्री लज्जावश पुनः अपने पति को कहती है, हे प्रियतम ! (किम्) क्या (भ्राता असत्) आप भाई हैं (यत्) कि जिससे आप (अनाथम्) नाथ के समान नहीं (भवाति) आचरण करते और (किम् उ) क्या मैं भी (स्वसा) आपकी भगिनी हूँ कि परस्पर स्वयं पुत्र उत्पन्न करने में हमें (निर्ऋतिः) पाप (निगच्छात) लगे ? (काममूता) आपके प्रति अति अभिलाषा से आविष्ट होकर (एतत् बहु) यह बहुत कुछ (रपामि) कर रही हूँ । मेरी इच्छा यही है कि (तन्वा) अपने देह से (मे तन्वम्) इस मेरे शरीर को (सं पिपृग्धि) आप भली प्रकार आलिंगन करो।

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम्।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१३॥

भा०—हे (यमि) यमि ! अपनी अभिलाषा के पूर्ण न होने पर भी पति-गृह में संयम से रहने वाली हे स्त्रि ! (ते नाथम्) तेरे पुत्रलाभरूप प्रयोजन को (अहम्) मैं (न अस्मि) पूर्ण करने में समर्थ नहीं हूँ और इसी कारण (ते तनूम्) तेरे शरीर को मैं अपने (तन्वा) शरीर के साथ (न सं पपृच्याम्) सम्पर्क नहीं कराता हूँ । अतएव (मत् अन्येन) मेरे से भिन्न पुरुष के साथ अपने (प्रमुदः) प्रमोदों को (कल्पयस्व) प्राप्त कर । हे (सुभगे) सौभाग्यवति ! तेरे आक्षेप के अनुसार यह असमर्थ पति (ते भ्राता) तेरा भ्राता ही सही । वह (एतत्) शरीर-सम्पर्क आदि कार्य को (न वष्टि) नहीं चाहता ।

न वा उ ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥१४॥

भा०—जब असमर्थ पति अपनी स्त्री को अपनी बहिन के समान समझ लेता है तब वह उसी बुद्धि से कहता है—हे प्रियतमे ! (ते तनम्) तेरे शरीर को (तन्वा) अपने शरीर से (न वा उ सम् पपृच्याम्) अब नहीं सम्पर्क कराऊं, क्योंकि विद्वान् लोग इसको (पापम् आहुः) पाप कहते हैं कि (यः) जो वह (स्वसारम्) अपनी बहिन का (निगच्छात्) भोग करे । क्योंकि (यत्) यदि मैं (भ्राता) तेरा भाई सा होकर (स्वसुः) अपनी बहिन के (शयने) सेज पर (शयीय) सो जाऊं तो यह (मे) मेरे (हृदः) हृदय और (मनसः) चित्त के (असंयत्) संयम का भंग होगा ।

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ॥१५॥

भा०—हे (यम) नियमवान् पुरुष ! (बत) खेद है कि (बतः असि) तू निर्बल है । (ते मनः) तेरे मन और (हृदयं च) हृदय को (न अविदाम) हम नहीं समझ पाये । (कक्ष्या इव युक्तम्) बगल की रस्सी जिस प्रकार जुते हुए घोड़े के संग चिपटी रहती है उस प्रकार या (वृक्षम्) वृक्ष को (लिबुजा इव) लता जिस प्रकार आलिंगन करती है उस प्रकार तुझको करे (अन्या) कोई दूसरी स्त्री (परि स्वजाते) आलिंगन करती है ? जिससे तू मुझसे इस प्रकार अपना मन बटोरता है ।

अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् १६

भा०—हे (यमि) यमि ! दृढव्रतपत्नी ! (अन्यम् उ सु) तू अन्य पुरुष को ही भली प्रकार आलिंगन कर और (त्वाम्) तुझको (अन्यः उ) दूसरा पुरुष ही, (लिबुजा वृक्षम् इव) वृक्ष को लता के समान, (परि

स्वजातै) आलिंगन करे । (वा) अथवा (त्वम्) तू ही (तस्य मनः इच्छा) उसके चित्त की अभिलाषा कर और (सः वा तव) वह तेरे चित्त को चाहे । (अध) और (सुभद्राम्) खूब कल्याणकारी (संविदम्) परस्पर सहमति (कृणुष्व) करो ।

बहुत से विद्वान् यम-यमी को भाई बहिन मानकर उनका संवाद कराते हैं । महर्षि दयानन्द ने इसको पुत्रोत्पादन से असमर्थ पति और समर्थ पत्नी के बीच का संवाद स्वीकार किया है । यही अधिक युक्ति-युक्त प्रतीत होता है । उसी को यहां दर्शाया है ।

परमेश्वर और वेदवाणी ।

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥ १७ ॥

भा०—(त्रीणि) तीनों (छन्दांसि) छन्दों अर्थात् वेदों को, (पुरु-रूपम्) नाना प्रकार से विश्व में प्रकट होने वाले, (विश्वचक्षणम्) विश्व के द्रष्टा, (दर्शतम्) दर्शनीय परमेश्वर को लक्ष्य करके ही, (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष, (वि येतिरे) व्याख्या करते हैं । जिस प्रकार (आपः) जल, (वाताः) नाना वायुएं और (ओषधयः) ओषधियें (तानि) वे सब (एकस्मिन्) एक ही (भुवने) भूलोक पर (आर्पितानि) आश्रित हैं, उसी प्रकार उस परमेश्वर के स्वरूप वर्णन में ही ऋगवेद, सामगान और याजुषकर्म तीनों आश्रित हैं ।

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ ऋतून् ॥ १८ ॥

भा०—(वृषा) वर्षण करने में समर्थ (यह्वः) महान् (अदाभ्यः) और नित्य परमेश्वर, (अदितेः) अखण्ड (दिवः) द्यौलोक से, (वृष्णे) वर्षण करने में समर्थ सूर्य के (दोहसा) दोहन करने के सामर्थ्य से (दुदुहे) दोहन

करता है, रसवर्षण करता है। (सः) वह (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर (यथा) जिस प्रकार (विश्वम्) समस्त संसार को (धिया) बुद्धि से (वेद) ठीक २ जानता है, उसी प्रकार (सः) वह (यज्ञियः) महान् यज्ञकर्त्ता (यज्ञियान्) विश्वमय-यज्ञ के करने हारी (ऋतून्) ऋतुओं को (यजति) परस्पर संयुक्त करता है।

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥ १९ ॥

भा०—(अप्या च) कर्म और ज्ञान को देने में हितकारी (योषणा) तथा जलमयी स्त्री के समान सेवन करने योग्य वेद वाणी (नदस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की (नाद) महिमा के स्तवन में हमें लगाकर (नः) हमारे (मनः) मन की (परि पातु) सब प्रकार से रक्षा करे। (अदितिः) अखण्ड परमेश्वर की अखण्ड वेदवाणी हमारे मन को (इष्टस्य मध्ये) अभीष्ट कार्यों में (नि धातु) स्थापित करे। (नः) हममें से (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ और (ज्येष्ठः) बड़ा, जनीय महान् परमेश्वर ही सबका (भ्राता) भरण पोषण करने हारा है। सबसे प्रथम वही हमें (वि वोचति) नाना प्रकार से उपदेश करता है।

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् २० (२)

भा०—(सा उ) वह वेदवाणी ही (चित् नु) निश्चय से (भद्रा) सुखजनक, (क्षुमती) मन्त्रमय शब्द से युक्त, (यशस्वती) वीर्यवाली, (उषा) उषा के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारी (मनवे) मननशील पुरुष के लिए (स्वर्वती) अत्यन्त सुखकारिणी होकर (उवास) प्रकट होती है। (यत्) क्योंकि विद्वान् पुरुष (उशताम्) नाना प्रकार की कामना करने वालों में से (ईम्) इस वेदवाणी की ही (उशन्तम्)

कामना करने वाले (क्रतुम्) क्रियाशील, (अग्निम्) ज्ञानवान्, (होतारम्) दूसरे को भी ज्ञान प्रदान करने हारे विद्वान् को (विदथाय) वेदवाणी के ज्ञान के लिए (जीजनन्) उत्पन्न करते हैं।

अध॒ त्यं द्र॒प्सं वि॒भ्वं॑ विचक्ष॒णं विराभ॑रदिषि॒रः श्ये॒नो अ॑ध्व॒रे ।
यदी॒ विशो॑ वृ॒णते॑ द॒स्ममार्या॑ अ॒ग्निं होता॑र॒मध॒ धीर॑जायत ॥२१॥

भा०—(अध) और (त्यम्) उस (द्रप्सम्) रसरूप से आस्वादन करने योग्य, (विभ्वम्) सर्वव्यापक, (विचक्षणम्) विविध रूप से संसार के द्रष्टा उस परमेश्वर को (इषिरः) कामनावान्, (श्येनः) ज्ञानवान्, (विः) हंस रूप पारगामी आत्मा (आ भरत्) प्राप्त होता है और (यदी) जब (आर्याः) श्रेष्ठ या गतिशील (विशः) प्रजाएं या तत्व के भीतर प्रवेश करने वाले जन या प्राणगण (दस्मम्) उस दर्शनीय, (होतारम्) दानशील, (अग्निम्) अग्निस्वरूप, ज्ञानवान्, गुरु, स्वयंप्रकाश परमेश्वर या आत्मा को (वृणते) वरण करते हैं (अध) तब (धीः) ध्यानवृत्ति या ज्ञान, विवेक-बुद्धि (अजायत) उत्पन्न होती है।

सदा॑सि र॒ण्वो यव॑सेव॒ पुष्य॑ते॒ होत्रा॑भिरग्ने॒ मनु॑षः स्वध्व॒रः ।
विप्र॑स्य वा॒ यच्छ॑शमा॒न उ॒क्थ्यो॒३ वाजं॑ सस॒वाँ उ॑प॒यासि॒ भूरि॑भिः ॥ २२ ॥

भा०—(यवसा इव) जिस प्रकार घास भूसा आदि से पशु (पुष्यते) अपने पोषण करने वाले के लिये दर्शनीय होता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (सु अध्वरः) उत्तम यज्ञरूप तथा (मनुषः) मनस्वी तू (होत्राभिः) स्तुतियों के द्वारा (सदा) सर्वदा (रण्वः) आनन्द जनक (असि) बना रहता है (वा) और (यत्) जब तू (शशमानः) निरन्तर स्तुति किया जाता है (उक्थ्यः) और प्रवचन करने योग्य होता है तब तू (वाजं ससवान्) ज्ञान और बल प्रदान करता हुआ (भूरिभिः) अनेक प्रकारों से (उपयासि) प्राप्त होता है।

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत इष्यति।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥२३॥

भा०—(जारः) रात्रि का विनाश करने वाला आदित्य (आ) जिस प्रकार (भगम्) अपने सेवन करने योग्य प्रकाश को सर्वत्र फैलाता है उसी प्रकार हे मनुष्य ! तू भी अपने (भगम्) ऐश्वर्य को (पितरौ) अपने माता पिता के प्रति (उत् ईरय) प्रेरित कर, उनको प्रदान कर। जो पुरुष (इयक्षति) यज्ञ या पूजा करना चाहता है वह (हर्यतः) परम अभिलाषावान् होकर पूजनीय इष्टदेव को (हृतः)अपने हृदय से (इष्यति) चाहा करता है। उसी अवसर पर (वह्निः) ज्ञान का वहन करने वाला, अग्नि के समान ज्ञानी, परमेश्वर स्वयं (वि वक्ति) नाना प्रकार के उपदेश करता है और (मखः) वह पूजनीय (सु-अपस्यते) शुभ कर्म में प्रेरित करता है और वह (असुरः) प्राणों का प्रदाता (तविष्यते) बढ़ाता है। अपने ज्ञान संकल्प से समस्त संसार को प्रेरित करता है।

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ॥२४॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप तथा (सहसः सूनो) बल के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर ! (यः) जो (मर्त्तः) पुरुष (ते) तेरे (सुमतिम्) ज्ञान का (अख्यत) दूसरों को उपदेश करता है, (सः) वह (अति) बहुत अधिक (प्र शृण्वे) प्रख्यात हो जाता है। वह पुरुष (इषम्) अन्न को (दधानः) धारण करता और (अश्वैः वहमानः) घोड़ों की सवारी करता है। (सः) वह (द्युमान्) तेजस्वी और (अमवान्) बलवान् होकर (द्यून्) बहुत दिनों तक (भूषीति) बना रहता है

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥२५॥

भा०—हे (अग्ने)परमात्मन् ! तू (नः) हमारी प्रार्थना (श्रुधि) सुन।

(सधस्थे) योगियों द्वारा एकत्र होकर बैठने योग्य (सदने) स्वाश्रय में (द्रविनत्नुम्) प्रवहणशील, (रथम्=रसम्) रस रूप अमृत आत्मानन्द को (युक्ष्व) युक्त कर। (देवपुत्रे) देवों को पुत्र के समान पालने वाले (रोदसी) द्यौ और पृथिवी के समान विस्तृत हमारे प्राण और अपान को (वह) धारण कर और तू (देवानाम्) देवों से (माकिः अप भूः) कभी दूर न हो प्रत्युत (इह) उनके हृदयों में सदा (स्या) बना रह।

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान्! हे (यजत्र) यजनीय! (देवेषु) हे प्राणों में (यजत) उपासनीय! (यत्) जब (एषा) यह प्रत्यक्ष (देवी) ज्योतिष्मती (सम् इतिः) परस्पर एकत्र स्थिति अर्थात् एकाग्रता (भवाति) हो जाती है और (यत्) जब हे (स्वधावः) स्वतः अपनी धारणा शक्ति से सम्पन्न! तू हमारे लिये (रत्ना) नाना रमण योग्य पदार्थों का (विभजासि) नाना प्रकार से विभाग करता है, तब (अत्र) इस लोक में (वसुमन्तम्) अति ऐश्वर्ययुक्त (भागम्) सेवनीय अंश (नः) हमें (वीतात्) प्रदान कर।

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥२७॥
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥२८

भा०—व्याख्या देखो अथर्व० ७। ८२। ४, ५॥

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् २९

भा०—(द्यावा ह क्षामा) पिता माता (प्रथमे) सबसे प्रथम (सत्य-

वाचा) सत्यवाणी से युक्त (ऋतेन) तथा सत्य ज्ञानमय वेद से (अभिश्रावे) प्रकट (भवत) होते हैं। (यत्) जब (देवः) परमेश्वर (मर्त्तान्) मनुष्यों को (यजथाय) उपासना या अपने प्रति संगति लाभ करने के लिए (कृण्वन्) प्रेरित करता है तब वह (स्वम्) अपने आप को (असुम्) सबके प्रेरक प्राणरूप से (यन्) व्याप्त होकर (होता) सबको अपने भीतर ग्रहण करके (प्रत्यङ्) गुप्त रूप से (सीदत्) विराजता है।

दे॒वो दे॒वान् प॑रि॒भूर्ऋ॒तेन॒ वहा॑ नो ह॒व्यं प्र॑थ॒मश्चि॑कि॒त्वान्। धूमके॑तुः स॒मिधा॒ भाऋ॑जीको म॒न्द्रो होता॒ नित्यो॑ वा॒चा यजी॑-यान्॥ ३० ॥ ३ ॥

भा०—(देवः) परमेश्वर (देवान्) दिव्यगुणों वाले पदार्थों के (परिभूः) ऊपर अधिष्ठाता रूप से विराजमान है। हे परमेश्वर! आप (चिकित्वान्) सर्वज्ञ, (प्रथमः) सबसे पूर्व विद्यमान रह कर (नः) हमें (ऋतेन) सत्यज्ञान से अपने (हव्यम्) स्तुति करने योग्य स्वरूप को (वह) प्राप्त कराओ। आप (समिधा) अति अधिक दीप्ति से (धूमकेतुः) समस्त बन्धनों को तोड़नेवाले ज्ञान से सम्पन्न, (भा-ऋजीकः) कान्ति से कान्तिमान्, (मन्द्रः) आनन्दघन, (होता) तथा समस्त जगत् के दाता और ग्रहीता हो। (नित्यः) नित्य हो (वाचा) तथा वेदवाणी द्वारा (यजीयान्) उपासना करने योग्य हो।

अर्चा॑मि वां॒ वर्धा॑यापो॑ घृतस्नू॒ द्यावा॑भूमी शृणु॒तं रो॑दसी मे। अहा॒ यद् दे॒वा असु॑नीति॒माय॒न् मध्वा॑ नो॒ अत्र॑ पि॒तरा॑ शिशी-ताम्॥ ३१ ॥

भा०—हे (द्यावाभूमी) पिता और माता! हे (घृतस्नू) प्रकाश से आत्मा को स्नान कराने वाले, हे (रोदसी) प्राण और अपान के समान वर्तमान तुम दोनों (मे शृणुतम्) मेरी प्रार्थना श्रवण करो। मैं (अपः वर्धाय) ज्ञान और कर्म की वृद्धि के लिए (अर्चामि) आप दोनों की स्तुति

करता हूँ (अह) और (यत्) जब (देवाः) इन्द्रियगण (असुनीतिम्) प्राण की शक्ति को (आयन्) प्राप्त होते हैं तब (अत्र) इस लोक में पितरौ) आप दोनों पालक होकर (नः) हमें (मध्वा) मधुर रस से (शिशीतान्) आह्लादित करते हैं ।

स्वावृंग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यंः घृतं वाः ॥३२॥

भा०—(यदि) जब (देवस्य) प्रकाशमान (गोः) सूर्य से उत्पन्न हुई, (सु आवृक्) तथा उत्तम रीति से दुखों को दूर करने वाली (अमृतम्) अमृतमय प्राण शक्ति को, (अतः) इस लोक से (जातासः) उत्पन्न जीव, (उर्वी) इस पृथ्वी पर (धारयन्ते) धारण करते हैं और (यत्) जब (एनी) प्रकाशमयी द्यौ (दिव्यम्) दिव्य (घृतम्) तथा सरणशील (वाः) जल को (दुहे) दोहती है (ते) तब वे (विश्वे देवाः) समस्त देवगण (अनु यजुः) उसी की संगति लाभ करते और उसी के (अनु गुः) पीछे २ चलते हैं ।

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ३३

भा०—(राजा) राजा के समान सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर (नः) हमें (किंस्वित्) क्योंकर (जगृहे) पकड़ता है ? वह क्यों देह-बन्धनों में डालता है ? (अस्य) उसके बनाये (व्रतम्) किस व्रत अर्थात् नियम व्यवस्था का (कत्) कब (अति चकृम) हम अतिक्रमण करते हैं, इस बात को (कः वि वेद) भली भांति कौन जानता है ? (देवान्) विषयों में रमण करते हुए जीवों को (जुहुराणः) उनके अपराधों का दण्ड देता हुआ भी उनका (मित्रः चित् हि स्म) वह निश्चय से मित्र ही है । वह (श्लोकः) सबका स्तुति योग्य ईश्वर, (अपि यातम्) क्या यहां से देह छोड़कर परलोक में जानेवालों का (वाजः न अस्ति) एकमात्र बल और आश्रय नहीं है ?

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ३४ ॥

भा०—(अत्र) इस संसार में (अमृतस्य) अमृत परमात्मा का (नाम) नाम अर्थात् स्वरूप (दुर्मन्तु) समझ लेना बड़ा कठिन है । (यत्) क्योंकि (सलक्ष्मा) परमात्मा के समान लक्षणों वाली जीव जाति इस संसार में (विषुरूपा) नाना रूप की (भवाति) हो जाती है और फिर (यमस्य) सर्वनियन्ता परमेश्वर के स्वरूप को जो विद्वान् (सुमन्तु) सम्यक् प्रकार से जान लेता है, हे (ऋष्व) महान् दर्शनीय ! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक परमेश्वर ! (तम्) उस तत्वदर्शी की (अप्रयुच्छन्) बिना प्रमाद के तू (पाहि) रक्षा कर ।

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥३५॥

भा०—(यस्मिन्) जिस (विदथे) प्राप्त करने योग्य या ज्ञानस्वरूप परमेश्वर में (देवाः) ज्ञानी पुरुष (मादयन्ते) हर्ष और आनन्द प्राप्त करते हैं और नाना (विवस्वतः) प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त जिस परमेश्वर के (सदने) शरण में (धारयन्ते) अपने आप को स्थित करते हैं, उस (सूर्ये) सबके प्रेरक सूर्य के समान प्रकाशक परमेश्वर में ही (ज्योतिः अदधुः) परम प्रकाश को धारण करते हैं । उसी (मासि) सबके निर्माणकर्त्ता प्रभु में (अक्तून्) चन्द्र में रात्रियों के समान समस्त व्यक्त होने वाले पदार्थों को (अदधुः) आश्रित मानते हैं; (द्योतनिम् परि) उसी प्रकाशवान् के आश्रय पर (अजस्रा) निरन्तर गतिशील सूर्य और चन्द्र दोनों भी (चरतः) अपने-अपने मार्ग में गति कर रहे हैं ।

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥३६॥

भा०—(यस्मिन्) जिस (मन्मनि) मनन योग्य (अपीच्ये) सबके

लय होने के स्थान या परम दर्शनीय या परम गुप्त, गूढ़तम परमेश्वर में (देवाः) विद्वान् पुरुष (संचरन्ति) विचरते हैं (अस्य) उसके विषय में (वयम्) हम स्थूल बुद्धि के पुरुष (न विद्म) नहीं जानते। (अत्र) इस संसार में (आनागान्) अपराध रहित (नः) हम लोगों का (मित्रः) मित्र तथा (अदितिः) अविनश्वर (सविता) और सर्वप्रेरक (देवः) परमेश्वरदेव ही (वरुणाय) उसको वरण करने हारे भक्त या साधक के प्रति (वोचत्) ज्ञान का उपदेश करता है।

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।
स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे॥ ३७॥

भा०—हे (सखायः) मित्रगण! हम लोग (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् (वज्रिणे) तथा परम शक्तिमान् परमेश्वर की उपासना के लिये (ब्रह्म) वेद-ज्ञान की (आशिषामहे) कामना करते हैं और उसी (नृतमाय) सर्वोत्तम नायक, (धृष्णव) सबके धर्षण करने वाले, शक्तिमान् की (सु स्तुषे) मैं उत्तम रीति से स्तुति करता हूँ।

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि॥ ३८॥

भा०—हे परमेश्वर! तू (वृत्र-हत्येन) आवरणकारी, ज्ञान के विघ्नरूप 'वृत्र' के नाश करने में समर्थ (शवसा) बल से (श्रुतः असि) सर्वत्र प्रसिद्ध है। हे शूर! तू ही (मघोनः) धनाढ्यों को (मघैः) धनों से, (अति) अतिक्रमण करके, (दाशसि) समस्त जीवों को जीवन, अन्न और धन प्रदान करता है।

स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम्॥३९॥

भा०—हे परमात्मन्! (स्तेगौः न) गर्जन करता हुआ मेघ या सूर्य या वेग से जाने वाला हरिण जिस प्रकार (पृथिवीम्) विस्तृत (क्षाम्)

पृथिवी को पार करता हुआ चला जाता है, उसी प्रकार तू भी इस (पृथिवीम् क्षाम्) विशाल तथा जीवों के निवास योग्य संसार-पदवी को (अति एषि) लांघ कर बैठा है। (इह) इस (भूमौ) भूलोक में (नः) हमारे लिये (महि वाताः) बड़े २ प्रचण्ड वायु (वान्तु) चलें (नः) तो भी हमारा (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ और सब दुःखों का वारक (मित्रः) सर्व-स्नेही परमेश्वर, (युज्यमानः) समाधि द्वारा साक्षात् होकर, (वने अग्निः न) वन में दहकने वाले अग्नि के समान (शोकम्) अपने परम तेज को (वि असृष्ट) नाना प्रकार से प्रकट करे। स्तेगः = अंग्रेजी में Stag [स्टैग] इसी का अपभ्रंश है।

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहन्तुमुग्रम्।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम्॥ ४० ॥ (४)

भा०—हे पुरुष ! तू (श्रुतम्) श्रवण करने योग्य, (गर्त्तसदम्) हृदयरूप गुहा में विराजमान, (जनानां राजानम्) उत्पन्न होने वाले प्राणियों के राजा, (भीमम्) दण्डकर्त्ता, (उपहन्तुम्) सबको दुष्ट कर्मों का दण्ड देने वाले, (उग्रम्) अति बलवान् उस परमेश्वर की (स्तुहि) स्तुति इस प्रकार कर कि हे (रुद्र) सब पापियों को रुलाने हारे ! (स्तवानः) स्तुति योग्य तू (जरित्रे) स्तुति करने हारे ज्ञानी पुरुष को (मृड) सुखी कर। (ते) तेरी (सेन्यम्) सेनायें (अस्मत् अन्यम्) हमसे दूसरे अर्थात् शत्रु का (निवपन्तु) विनाश करें।

सरस्वती रूप से परमेश्वर की स्तुति

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्॥ ४१ ॥

भा०—(देवयन्तः) परमेश्वर की उपासना और कामना करते हुए विद्वान् पुरुष (सरस्वतीम्) सरस्वती रूप परमेश्वरी वाणी का (हवन्ते)

पाठ करते हैं और (अध्वरे) यज्ञ के (तायमाने) होते उसमें याज्ञिक भी उसी (सरस्वतीम्) वाणी और प्रभु के रसवान् स्वरूप को स्मरण करते हैं । (सुकृतः) उत्तम पुण्याचरण करने वाले पुरुष भी (सरस्वतीम्) सरस्वती ईश्वर की (हवन्ते) उपासना करते हैं । वह (सरस्वती) आनन्दमयी प्रभुशक्ति (दाशुषे) आत्मसमर्पण करने वाले को (वीर्यम्) वरण करने योग्य स्वरूप या परम ऐश्वर्य का (दात्) प्रदान करती है ।

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४२॥

भा०—(पितरः) पालक पिता, पितामह और देश के अधिकारी लोग (यज्ञम्) यज्ञ में (दक्षिणा) दक्षिण दिशा में (अभि नक्षमाणाः) विराजमान् होकर (सरस्वतीम्) वेदवाणी को या गृहस्थ स्त्री को (हवन्ते) स्वीकार करते हैं । हे पुरुषो ! आप लोग (अस्मिन् बर्हिषि) इस महान् यज्ञ में (आसद्य) बैठ कर (मादयध्वम्) हर्ष और आनन्द प्राप्त करो । हे सरस्वती ! तू (अस्मे) हमें (अनमीवाः इषः) रोग रहित अन्नों का (आ धेहि) प्रदान कर ।

योषा वै सरस्वती । वृषा पूषा । शं० २ । ५ । १ । ११ ॥ वाग्वै सरस्वती । ऐ० ३ । २ ॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४३ ॥

भा०—(सरस्वति) रस की भूरी नदियों के समान हे स्त्रि ! तू (उक्थैः) प्रवचन योग्य वेद मन्त्रों (स्वधाभिः) उत्तम अन्नों तथा (पितृभिः) गृह के पालक बुजुर्गों के साथ (मदन्ती) आनन्दित हुई (अत्र) इस गृह में (इडः) अन्न के (सहस्र-अर्धम्) सहस्र गुणा मूल्य के (भागं) अंश को और (रायः पोषम्) धन की वृद्धि को (यजमानाय) यजमान के निमित्त (धेहि) प्रदान कर ।

पितृगण का वर्णन

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४४॥

भा०—(उत् इरताम्) हमारे पिता आदि उन्नति की तरफ चलें, (परासः) प्रपितामह आदि भी (उत् ईरताम्) ऊंचे पद को प्राप्त करें, (मध्यमासः सोम्यासः पितरः) मध्यम अवस्था के पितामह आदि भी (उत् ईरताम्) उन्नति को प्राप्त करें। (ये) जो भी (ईयुः) प्राण धारण कर रहे हैं (ते) वे (अवृकाः) भेड़िये के समान क्रूर न होकर (ऋत-ज्ञाः) तथा सत्य वेद के जानने हारे होकर (पितरः) हमारे पालक रूप से (हवेषु) हमारे अह्वानों पर (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें। ये सब सौम्यस्वभाव वाले हों।

आहं पितृन्त्सुविदत्रां अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥४५॥

भा०—(अहम्) मैं (सु-विदत्रान्) उत्तम ज्ञानी वा (सुविदत्रान्) उत्तम-उत्तम शिक्षाओं के दाता (पितॄन्) गुरुओं को (आ अवित्सि) प्राप्त करूं। उसी प्रकार (नपातम्) प्रजा-तन्तु को न गिरने देने वाले पुत्र आदि को भी प्राप्त करूं और (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के (विक्रमणम्) नाना प्रकार के सृष्टि-कार्य को भली प्रकार जानूं और (ये) जो (बर्हि-सद) महान् ब्रह्म में निष्ठ होकर, (स्वधया) आत्मा की धारणा शक्ति से (सुतस्य) निष्पादित, (पित्वः) अन्न के समान श्रेष्ठ फल का (भजन्ते) भोग करते हैं, (ते) वे (इह) इस लोक में (आ-गमिष्ठाः) आवें। ये वै यज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरो बर्हिषदः। तै० ब्रा० १। ६।९।६॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥४६॥

भा०—(अद्य) इस काल में (ये पूर्वासः) जो पूर्व के और (ये अपरासः) जो पीछे के (ईयुः) इस लोक में आये हैं, उन सभी (पितृभ्यः) पालकों का (इदम् नमः) हम इस प्रकार आदर करें। उनका भी आदर करें (ये) जो (पार्थिवे रजसि) पृथिवी सम्बन्धी लोक में (आ नि-सत्ताः) अच्छी प्रकार प्रतिष्ठा पूर्वक विराजते हैं और (ये वा) जो (नूनम्) निश्चय से (सु-वृजनासु) उत्तम रीति से वर्गीकृत (दिक्षु) दोनों या देशवासी प्रजाओं में (आ नि-सत्ताः) अच्छी प्रकार राजा शासक आदि पदों पर अधिष्ठित हैं।

मात॑ली क॒व्यैर्य॒मो अङ्गि॑रोभि॒र्बृह॒स्पति॒र्ऋक्व॑भिर्वावृधा॒नः ।
यांश्च॑ दे॒वा वा॑वृ॒धुर्ये च॑ दे॒वास्ते नो॑ऽवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥ ४७ ॥

भा०—(मातली) ज्ञानों को प्राप्त करने वाला (कव्यैः) उत्तम कवियों द्वारा (यमः) व्यवस्थापक नेता (अंगिरोभिः) विद्वान् पदाधिकारियों द्वारा और (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक विद्वान् (ऋक्वभिः) पूजनीय वेदज्ञों द्वारा (ववृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता है। (यान् च) जिनको (देवाः) राजागण (ववृधुः) उन्नति का पद देते हैं और (ये च) जो (देवान्) राजा को बढ़ाते हैं, (ते) वे राष्ट्र और देश के पालक जन (हवेषु) युद्धों और यज्ञों में (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें।

स्वा॒दुष्कि॑ला॒यं मधु॑माँ उ॒तायं ती॒व्रः कि॑ला॒यं रस॑वाँ उ॒ताय॑म् ।
उ॒तो न्व॑१॒स्य प॑पि॒वांस॒मिन्द्रं॒ न कश्च॒न स॑हत आह॒वेषु॑ ॥४८॥

भा०—(अयम्) यह आनन्दरस (किल) निश्चय से (स्वादुः) स्वादु है, (उत अयम् मधुमान्) और मधुर भी है, (उत अयं तीव्रः) और यह अति तीक्ष्ण भी है (किल अयं रसवान्) अति आनन्दरस से पूर्ण है। (उतो नु) और क्या कहें? (अस्य) इसके (पपिवांसम्) पान करने हारे (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् आत्मा को (कश्चन) कोई भी (आहवेषु) युद्धों में (न सहते) पराजित नहीं कर सकता।

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ ४९ ॥

भा०—हे मनुष्यों ! (महीः प्रवतः) बड़े दूर २ के देशों में (परेयिवांसम्) पहुँचे हुये, (इति) और इसी प्रकार (बहुभ्यः) बहुतों को (पन्थाम्) मार्ग का (अनुपस्पशानम्) उपदेश करने हारे, (जनानाम्) सब जनों के (संगमनम्) एक मात्र उत्तम शरण (वैवस्वतम्) विशेष ऐश्वर्यवान्, (यमं राजानम्) सर्वनियामक, सबके राजा परमात्मा की (हविषा) भक्ति द्वारा (सपर्यत) उपासना करो ।

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥ ५० ॥ (५)

भा०—(यमः) सर्वनियन्ता परमेश्वर (नः) हमारे (गातुम्) गमन करने योग्य मार्ग को (प्रथमः) सबसे पहले (विवेद) खूब अच्छी प्रकार जानता है । (एषा) यह (गव्यूतिः) मार्ग (न अपभर्तवै उ) परे भी किया नहीं जा सकता । (यत्र) जहां (नः) हमारे (पूर्वे पितरः) पूर्व पिता पितामह आदि (परेताः) गये हैं, (एना) और इन २ (स्वाः) अपने (पथ्याः) हितकारी प्राप्तव्य मार्गों का या लोकों को प्राप्त होकर (जज्ञानाः) फिर २ उत्पन्न हुआ करते हैं, उनको भी वह सर्व-नियन्ता परमेश्वर भली प्रकार जानता है ।

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाधा नः शं योररपो दधात ॥ ५१ ॥

भा०—हे (बर्हिषदः) कुशा के आसनों या ब्रह्म या यज्ञ में उच्च आसनों पर बैठने वालो ! हे (पितरः) पालक पिता तुल्य पूज्य पुरुषो ! आप लोगों के लिये (इमा) ये नाना प्रकार के (हव्या) अन्नों को हम (चकृम) तैयार करते हैं । (जुषध्वम्) आप इनका प्रेम से उपभोग करें ।

(अध) और (ते) वे आप लोग (शंतमेन) अति कल्याण और सुखकारी (अवसा) रक्षा से (शं) रोगों की शान्ति और (योः) अभय (दधात) स्थापन करो।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ॥५२

भा०—हे पितृ लोगों! आप सब (जानु आ अन्य) गोड़ों को कुछ सिकोड़ कर (दक्षिणतः) हमारे दायें ओर (नि सद्य) बैठ कर (नः इदं हविः) हमारा यह अन्न (अभिगृणन्तु) स्वीकार करें और (वः) आप लोगों के प्रति हम लोग (यत्) जो (आगः) अपराध (पुरषता) मनुष्य होने के कारण (कराम) करें ऐसे (केन चित्) किसी भी अपराध के कारण (नः) हमें आप (मा हिंसिष्ट) पीड़ित न करें।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ ५३॥

भा०—(त्वष्टा) जगत् का स्रष्टा, (दुहित्रे) समस्त लोक जिससे दोहे जाते हैं ऐसे प्रकृति से (वहतुम्) ब्रह्माण्ड रूप भार को जिसको वह स्वयं उठाये है (कृणोति) बनाता है। (तेन) उसी कारण (इदम्) यह (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) लोक (सम् एति) बना हुआ है। (यमस्य) सर्वनियन्ता की (माता) जगत् निर्मात्री प्रकृति (परि-उह्यमाना) जो कि सब प्रकार से धारण की गई है (महः जाया) और बड़ा भारी उत्पादक शक्ति रूप है वह (विवस्वतः) विविध रूपों में बने लोकों के स्वामी उस प्रभु की शक्ति से ही (ननाश) विकार को प्राप्त होती है अर्थात् अप्रकट से प्रकट और सूक्ष्मरूप से स्थूल में आती है।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥५४

भा०—हे पुरुष! तू (पूर्याणैः) पुर को जाने वाले मार्गों के समान

पूर्ण ब्रह्म द्वारा जाने योग्य उन (पथिभिः) मार्गों से (प्र-इहि, प्र-इहि) नित्य आगे २ बढ़ (येन) जिनसे (ते) तेरे (पूर्वे पितरः) पूर्व के पुरुषा लोग (परेताः) चले गये हैं। तू इस मार्ग द्वारा, (राजानौ) प्रकाशमान तथा (स्व-धया मदन्तौ) अपनी धारणा शक्ति से आनन्द लाभ करते हुए परमात्मा के दोनों रूपों को अर्थात् (यमम्) सर्वनियामक यम-स्वरूप को और (वरुणम्) वरण करने योग्य सबसे श्रेष्ठ रूप को (पश्यति) देख सकता है। पुमांसो येन वर्त्मना यान्ति, पुंभिरुह्यमानो वा स 'पूयाणः' मार्गो रथो वा। सा०।

अपे॑त॒ वी॑त॒ वि च॑ सर्प॒ताता॒ोऽस्मा ए॒तं पि॒तरो॑ लो॒कम॑क्रन्।
अहो॑भिर॒द्भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं य॒मो द॑दात्यव॒सान॑मस्मै ॥ ५५ ॥

भा०—(अतः) इस लोक से हे जीव ! तुम (अप इत) दूर जाते हो, (वि इत) नाना दिशाओं में जाते हो, (वि सर्पत च) और विविध प्रकारों से जीवन-यात्रा करते हो। (पितरः) पूर्व पुरुषा लोगों ने (अस्मै) इस अपने उत्तराधिकारी के लिये (एतम् लोकम्) यह लोक भोगने के लिये (अक्रन्) बनाया है। (यमः) सर्वनियन्ता परमेश्वर (अहोभिः) दिनों, (अद्भिः) जलों और (अक्तुभिः) रात्रियों से (वि-अक्तम्) विशेष रूप से कान्तियुक्त (अवसानम्) इस भूलोक को (अस्मै) इन जीवों के निवास के लिए (ददाति) देता है।

उ॒शन्त॑स्त्वे॒धीम॑ह्यु॒शन्तः॒ समि॑धीमहि।
उ॒शन्नु॑श॒त आ व॑ह पि॒तॄन् ह॒विषे॒ अत्त॑वे ॥ ५६ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हम (त्वा) तेरी (उशन्तः) कामना करते हुए (इधीमहि) हृदय में तुझे चेताते हैं और (उशन्तः) तेरी कामना करते हुए (सम् इधीमहि) तुझे भली प्रकार प्रदीप्त करते हैं। हे (उशन्) कान्तिमय ! तू (उशतः) नाना कामना करते हुए (पितॄन्) पिता, पितामह आदि को (हविषे अत्तवे) यज्ञ शिष्ट के भोजन के लिये (आ वह) हमें प्राप्त करा।

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हम (द्युमन्तः) तेजस्वी होकर (त्वा इधिमहि) तुझे प्रज्वलित करें । हम (द्युमन्तः) तेजस्वी होकर (सम्-इधीमहि) भली प्रकार हृदय में तुझे प्रबोधित करें । तू (द्युमान्) तेजस्वी (पितॄन् द्युमतः) तेजस्वी पुरुषों को (हविषे अत्तवे)) यज्ञ शिष्ट के भोजन के लिये (आ वह) हमें प्राप्त करा ।

आङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५८ ॥

भा०—(नः) हमारे (पितरः) पालक पूज्य पुरुष, (आङ्गिरसः) जलते अंगारों के समान तेजस्वी, (नवग्वाः) सदा नवीन, हृदय ग्राहिणी स्तुतियों से पूर्ण वाणियों को बोलने हारे, (अथर्वाणः) अहिंसक, (भृगवः) पापों को भून डालने वाले और (सोम्यासः) सोम रस, ज्ञान और ब्रह्मानन्द का रस पान करने वाले, सौम्य स्वभाव वाले हों । (तेषाम्) उन (यज्ञियानाम्) यज्ञ करने वालों की (सुमतौ) शुभ मति में और उनकी (भद्रे) कल्याणकारी (सौमनसे) उत्तम सुप्रसन्न-चितत्ता में (वयम्) हम सदा (स्याम) रहें ।

आङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥ ५९ ॥

भा०—(यज्ञियैः) यज्ञ के उपासक, (अंगिरोभिः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों के साथ, हे (यम) नियन्ता राजन् ! (इह) इस लोक में (आ गहि) तू आ, प्रकट हो और (वैरूपैः) नाना रूपों से (इह) इस लोक में (मादयस्व) तू ही समस्त प्राणियों के सुख का कारण है । मैं उपासक (बर्हिषि) यज्ञ में (आ नि-सद्य) बैठकर उस (विवस्वन्तम्) नाना वसुओं अर्थात् लोकों और ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर को (हुवे) पुकारता हूँ, जो कि (ते) तेरा भी (पिता) पालक पिता है ।

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ६०

भा०—हे (यम) राजन् ! (अंगिरोभिः) आंगिरस वेद के ज्ञाता, (पितृभिः) राष्ट्र के पालक, पिता के समान पूजनीय पुरुषों के साथ (सं-विदानः) राष्ट्र-व्यवस्था की मन्त्रणा करता हुआ तू, (प्र-स्तरम्) उत्तम बिछे हुए आसन पर (आरोह) आरूढ़ हो। (कवि-शस्ताः) क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा उपदेश किये गये (मन्त्राः) नीति-उपदेश (त्वा) तुझको (आ वहन्तु) आगे के उचित मार्ग पर ले जायं। हे (राजन्) राजन् ! (एना) इन विद्वान् पुरुषों को (हविषः) उत्तम अन्न और आदर से प्रदत्त पुरस्कारों से (मादयस्व) प्रसन्न रख।

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन्।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥ (६)

भा०—(यथा पथा) जिस प्रकार के मार्ग से (भूर्जयः) इस भूलोक को या 'भूः' अर्थात् जन्म ग्रहण करने रूप भवबन्धन को विजय करने हारे (अङ्गिरसः) ज्ञानी, (द्याम्) प्रकाशस्वरूप मोक्ष में (प्र ययुः) प्रयाण करते हैं, उसी प्रकार के मार्ग से जो लोग (दिवः) प्रकाशमान दिव्य (पृष्ठानि) लोगों को (आरुहन्) जाते हैं (एते) वे (इतः) इस लोक से (उद् आरुहन्) ऊपर को जाते हैं। इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[तत्र एकं सूक्तं ऋचश्चैकषष्टिः]

[२] पुरुष को सदाचारमय जीवन का उपदेश

अथर्वा ऋषिः। यमो मन्त्रोक्ताश्च बहवो देवताः। ४, ३४ अग्निः, ५ जातवेदाः। २९ पितरः। १–३, ६, १४–१८, २० २२, २३, २५, ३०, ३६, ४६, ४८, ५०–५२, ५६ अनुष्टुभः। ४, ७, ९, १३ जगत्यः। ५, २६, ३९, ४७ भुरिजः। १९ त्रिपदार्षी गायत्री। २४ त्रिपदा समविषमार्षी गायत्री। ३७ विराड् जगती। ३८–४४ आर्षीगायत्र्यः (४०, ४२, ४४ भुरिजः) ४५ ककुम्मती अनुष्टुप्। शेषास्त्रिष्टुभः। षष्ट्यृचं सूक्तम् ॥

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १ ॥

भा०—(यमाय) नियम व्यवस्था के करने हारे राजा के निमित्त (सोमः) सोम रस (पवते) छाना जाता है। (यमाय हविः क्रियते) प्रजा के नियन्ता राजा के लिये अन्न उत्पन्न किया जाता है। (यज्ञः) राष्ट्र (अग्निदूतः) ज्ञानवान् पुरुषों को दूत बनाकर और (अरंकृतः) सुशोभित होकर (यमं ह गच्छति) नियामक राजा की शरण में आता है।

परमात्मा के पक्ष में—सर्वनियन्ता परमेश्वर की आज्ञा के निमित्त ही (सोमः पवते) प्रेरक सूर्य और वायु गति करता है। उस नियन्ता के लिये ही (हविः) यज्ञ-हवि तैयार की जाती है। अग्नि से प्रज्वलित यज्ञ भी परमेश्वर की पूजा के निमित्त ही रचा जाता है।

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ २ ॥

भा०—(यमाय) सर्वनियन्ता परमेश्वर और राजा के लिये (मधुमत् तमम्) अति मधुर वचन और पदार्थ का एक दूसरे के प्रति दान-प्रदान करो। (प्रतिष्ठत च) और एक दूसरे के देशों को प्रस्थान करो। (पूर्वजेभ्यः) पूर्व उत्पन्न (ऋषिभ्यः) ऋषियों और (पूर्वेभ्यः) अपने पूर्व-काल के (पथिकृद्भ्यः) मार्गविधाताओं को (इदम्) इस प्रकार से नित्य (नमः) आदर, मान, अन्न आदि दिया करो।

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुषो! (यमाय) सर्वनियन्ता (राज्ञे) राजा के समान सबके राजा परमेश्वर के लिये, (घृतवत्) घृत से युक्त (पयः) पुष्टिकारक दुग्ध और (हविः) अन्न आदि (जुहोतन) प्रदान करो। (सः) वह परमेश्वर (नः) हमें और हमारे (जीवेषु) जीवों में (दीर्घम् आयुः) दीर्घ जीवन

(आ यमेत) प्रदान करे और वह (जीवसे) जीवन के लिये हमें (प्र यमेत्) सब पदार्थ प्रदान करे ।

आचार्य और शिष्य का कर्त्तव्य

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेममेनं प्र हिणुतात् पितृँरुप ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) आचार्य ! (एनम्) इस शिष्य को (मा वि दहः) मत जला, दुःखित मत कर । (मा अभि शूशुचः) संतप्त मत कर । (अस्य त्वचम्) इसकी त्वचा को (मा चिक्षिपः) मत काट फाड़ और (शरीरम्) इसके शरीर को भी (मा चिक्षिपः) मत विनाश कर । हे (जातवेदः) जातप्रज्ञ ! विद्वन् ! (यदा) जब इसको (शृतम्) परिपक्व, पूर्ण ज्ञानवान्, तपस्वी, (करसि) कर दे (अथ) तब (ईम् एनम्) इस शिष्य को (पितॄन् उप) माता पिताओं व बड़े बन्धु व अधिकारी जनों के समीप (प्र हिणुतात्) भेज देना ।

यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥ ५ ॥

भा०—हे (जातवेदः) जातप्रज्ञ ! आचार्य ! (यदा) जब आप शिष्य को (शृतम्) ज्ञान और तप में परिपक्व (कृणवः) कर देते हो, (अथ) और (इमम् एतम्) इसको (पितृभ्यः परि दत्तात्) इसके माता पिता और वृद्धजनों को सौंप देते हो और (यदो) जब वह (एताम्) इस प्रकार के (अ-सु-नीतम्) असत् आचार में (गच्छाति) चला जाय (अथ) तभी वह (देवानां) विद्वान् शासकों के (वशनीः) वश में जाने योग्य (भवाति) हो जाय ।

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥ ६ ॥

भा०—(एकम् इत् बृहत्) एक ही महान् ब्रह्मतत्त्व (त्रि-कद्रुकेभिः

तीन 'कद्रुक', गुणों या व्यापक बलों से (षट् उर्वीः) छहों महान् दिशाओं में (पवते) व्याप्त हो रहा है। (त्रिष्टुब् गायत्री) वे त्रिष्टुप् और गायत्री (छन्दांसि) तथा अन्य सब छन्द (यमे) नियन्ता परमेश्वर में (आ अर्पिता) गतार्थ हैं। सबमें उसी की स्तुति है। षड्-उर्वीः—द्यौश्च पृथिवी च, अहश्च रात्रिश्च, आपश्चौषधयश्च एताः षड् उर्व्यः। सायणः।

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥७॥

भा०—हे पुरुष! (चक्षुषा) अपनी चक्षु द्वारा (सूर्यम्) सूर्य के प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त कर। (आत्मना) अपने शरीर से (वातम्) प्राण वायु को ग्रहण कर। (धर्मभिः) शरीर के धारक बलों द्वारा (दिवम्) आकाश और (पृथिवीं च) पृथिवी को भी (गच्छ) प्राप्त कर, अपने वश कर। (अपः वा गच्छ) तू जलों को भी प्राप्त कर और (यदि) जो कुछ (तत्र) उन (ओषधीषु) ओषधियों में भी (ते) तेरे लिये (हितम्) हितकर पदार्थ विद्यमान है तो उसको भी प्राप्त कर। फलतः तू (शरीरैः) अपने अनेक विध शरीरों से (प्रति तिष्ठ) लोकों में प्रतिष्ठित होकर रह।

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (जातवेदः) जातप्रज्ञ परमात्मन्, आचार्य! (अजः भागः) अजन्मा जीवात्मा ही शरीर में दुःख सुख का सेवन करता है। अतः तू उसे ही (तपसः) तप, ज्ञान, स्वाध्याय, प्रवचन और तपस्या द्वारा (तपस्व) सन्तप्त कर, उसको तपोमय आचरण करा। (तम्) उस आत्मा को ही (ते शोचिः) तेरी ज्ञानरूप ज्वाला (तपतु) तप्त करे, (तम्) उसको (ते अर्चिः) तेरी दीप्ति प्रकाशित करे। हे ईश्वर! (ते) तेरे (याः) जो (शिवाः) कल्याणकारी (तन्वः) रचित पदार्थ हैं (ताभिः) उनसे (एनम्) इस जीव को (सुकृताम्) पुण्यकर्त्ताओं के (लोकम् वह) लोक को प्राप्त करा।

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ९

भा०—हे (जातवेदः) सर्वज्ञ परमेश्वर! (ते) तेरी (याः) जो (शोचयः) ज्वालाएं और (रंहयः) वेगवती शक्तियां हैं और (याभिः) जिनसे (दिवम्) द्यौः और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को भी (आ पृणासि) सर्वत्र व्याप रहा है, (ताः) वे सब (अनुयन्तम्) उनके अनुकूल रहने वाले (अजम्) इस अजन्मा आत्मा को (सम् ऋण्वताम्) भली प्रकार सुख रूप से प्राप्त हों। (अथ) और (इतराभिः) उनसे दूसरी अर्थात् कष्टमय प्रतीत होने वाली, परन्तु (शिवतमाभिः) परिणाम में अति कल्याणकारिणी जो तेरी शक्तियां हैं उनसे उस आत्मा को बराबर (शृतं कृधि) परिपक्व, सहनशील, तपस्वी बना।

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान्।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥१०॥ (७)

भा०—हे ज्ञानवन् आचार्य! (यः) जो (स्वधावान्) आत्मा या शरीर को धारण-पोषण करने वाले वीर्य से युक्त होकर (ते) तेरे समीप (आहुतः) अपने को सर्वार्पण करके (चरति) ब्रह्मचर्यव्रत का आचरण करे, तू उसको, (पुनः) फिर (पितृभ्यः) उसके पिता, माता और वृद्धों की सेवा के लिये या पिता के योग्य गृहस्थ कार्यों वा राष्ट्रपालक शासक आदि पदों के लिये (अव सृज) तैयार कर और वह (शेषः) तेरी आज्ञा पाया हुआ शिष्य या पुत्र (आयुः) अपने जीवन में (उप वसानः) तेरी आज्ञा में ही रह कर (यातु) गृहों में जावे और वहां (तन्वा) शरीर से (सुवर्चाः) उत्तम तेजस्वी होकर (सं गच्छताम्) उत्तम संगति लाभ करे।

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥११॥

भा०—हे पुरुष! तू (सारमेयौ) गति उत्पन्न करने हारी चिति शक्ति से उत्पन्न, (शबलौ) बुरे-अच्छे दोनों का ग्रहण करने वाले, (चतुरक्षौ)

चार इन्द्रिय अर्थात आंख, नाक, कान, रसना वाले, (श्वानौ) गतिशील प्राण और उदान दोनों को (साधुना) उत्तम (पथा) मार्ग से (अति द्रव) चला। (अध) और (सु विदत्रान्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों के पास (अपि इहि) जा (ये) जो (यमेन) सर्वनियामक परमेश्वर के (सधमादम्) नित्य साथ रहने का आनन्द (मदन्ति) लाभ करते हैं। अथवा—हे पुरुष ! तू (सारमेयौ) उषा से उत्पन्न, (चतुरक्षौ) चारों ओर आंख रखने वाले, (श्वानौ) गतिशील (शबलौ) रात और दिन को (साधुना पथा अति द्रव) उत्तम मार्ग से व्यतीत कर।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥१२॥

भा०—हे (यम) सर्वनियन्तः ! (ते) तेरे (यौ) जो दो, (चतुरक्षौ) चारों तरफ आंख फेंकने वाले अर्थात् सावधान, (रक्षितारौ) रक्षा करने हारे, (पथि-सदी) मार्ग में विराजने वाले, (नृपक्षसौ) सब मनुष्यों को देखने वाले, (श्वानौ) सदा गतिशील रात्रि और दिन हैं, हे (राजन्) सर्वोपरि विराजमान ! (ताभ्यां) उन दोनों से (एनम्) इस पुरुष की (परि धेहि) सब तरफ से रक्षा कर और (अस्मै) इस पुरुष को (स्वस्ति) सुखपूर्वक और (अनमीवं च) नीरोग (धेहि) रख।

उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १३ ॥

भा०—(उरु-नसौ = उरुनासौ) महान् शब्द करने हारे, (असुतृपौ) सब प्राणियों को प्राणों से तृप्त करने वाले, (उदुम्बलौ = उरुबलौ) अति बलवान्, (यमस्य) नियन्ता परमेश्वर के (दूतौ) दो दूत रात और दिन, (जनान् अनुचरतः) प्राणियों के सदा साथ २ चला करते हैं, (तौ) वे दोनों (अस्मभ्यम्) हमें (सूर्याय) सबके प्रेरक परमात्मा के (दृशे) दर्शन के लिये (पुनः) बार २ (अद्य इह) इस लोक में (भद्रम्) कल्याणकारी, सुखप्रद (असुम्) जीवन (दाताम्) प्रदान करें।

सोम॒ एके॑भ्यः पवते घृ॒तमेक॒ उपा॑सते ।
येभ्यो॒ मधु॑ प्र॒धाव॑ति॒ तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥ १४ ॥

भा०—(एकेभ्यः) किन्ही विद्वानों के लिये (सोमः पवते) सोममय ब्रह्मरस बहता है। (एके घृतम् उपासते) और कोई विद्वान् तेजोमय ब्रह्म की उपासना करते हैं। (येभ्यः) जिनसे (मधु) मधु विद्या (प्रधावति) प्रवाहित होती है, हे पुरुष! तू (तान् चित्) उन पूज्य पुरुषों के पास (अपि गच्छतात्) सत्संग लाभ कर और ज्ञान प्राप्त कर।

ये चि॒त् पूर्व॑ ऋ॒तसा॑ता ऋ॒तजा॑ता ऋता॒वृधः॑ ।
ऋषी॒न् तप॑स्वतो यम तपो॒जाँ अपि॑ गच्छतात् ॥ १५ ॥

भा०—हे (यम) यम-नियम में निष्ठ ब्रह्मचारिन्! (ये) जो (पूर्व चित्) पूर्व के या परिपूर्ण, (ऋत-साताः) तप और स्वाध्याय में संलग्न, (ऋत-जाताः) सत्य ज्ञान में उत्पन्न, (ऋत-वृधः) ब्रह्मज्ञान को बढ़ाने, उपदेश करके उसकी वृद्धि करने वाले ऋषि लोग हैं, उन (तपस्वतः) तपश्चर्या से युक्त, तपस्वी, (ऋषीन्) तत्वदर्शी, (तपः जान्) तपोनिष्ठ महर्षियों को (अपि गच्छतात्) प्राप्त हो और तू उनसे ज्ञान प्राप्त कर।

तप॑सा॒ ये अ॑नाधृ॒ष्यास्तप॑सा॒ ये स्व॒र्य॒युः ।
तपो॒ ये च॑क्रि॒रे मह॒स्तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥ १६ ॥

भा०—हे पुरुष! (ये) जो (तपसा) तप से (अनाधृष्याः) अजेय तेजवाले हैं और (ये) जो (तपसा) तप के बल से (स्वः ययुः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हैं और (ये) जो (महः) महान् (तपः) तप (चक्रिरे) करते हैं, (तान् चिद् एव अपि) उन पूज्य पुरुषों के पास भी तू (गच्छतात्) जा, उनका सत्संग कर।

ये युध्य॑न्ते प्र॒धने॑षु शूरा॑सो॒ ये त॑नू॒त्यजः॑ ।
ये वा॑ स॒हस्र॑दक्षिणा॒स्तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥१७॥

भा०—और हे पुरुष! (ये) जो (शूरासः) शूरवीर पुरुष (प्रधनेषु)

युद्ध के अवसरों में (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं और (ये) जो (तनूत्यजः) अपने देहों को भी त्याग देने में समर्थ हैं, (ये च) और जो (सहस्र-दक्षिणाः) सहस्रों धन-सम्पत्ति दक्षिणा रूप में दान करने में समर्थ हैं, (तान् चित् एव अपि गच्छतात्) तू उनको भी प्राप्त कर। उनका भी सत्संग कर और उनसे सत्कर्म की शिक्षा ले।

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥

भा०—(सहस्र-नीथा) हज़ारों को उत्तम मार्ग पर चलाने वाले, (कवयः) दीर्घदर्शी विद्वान् लोग, जो (सूर्यम्) सर्वप्रकाशक ज्ञान-भण्डार वेद की (गोपायन्ति) रक्षा करते हैं, उसका अध्ययन करते हैं, हे (यम) यम-नियम में निष्ठ पुरुष! ऐसे (तपस्वतः) तपस्वी, (तपः जान्) तप में निष्ठ (ऋषीन् अपि गच्छतात्) ऋषियों को भी तू प्राप्त हो और उनसे ज्ञान लाभ कर।

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी।
यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥ १९ ॥

भा०—हे (पृथिवि) पृथिवी ! (अस्मै) इस पुरुष के लिये तू (स्योना) सुखकारिणी, (अनृक्षरा) कांटों से रहित, (निवेशनी) बसने योग्य (भव) हो और (सप्रथाः) इसे अति विस्तृत होकर (शर्म यच्छ) सुखमय शरण प्रदान कर।

असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥२०॥ (८)

भा०—हे पुरुष ! तू (पृथिव्याः) पृथिवी के (असंबाधे) पीड़ा और भय से रहित (उरौ लोके) बड़े विशाल लोक में (नि धीयस्व) निवास कर। तू (जीवन्) जीता रह कर अपने जीवन काल में (याः) जो भी (स्वधाः) अपने धारण, पालन, पोषण और रक्षा के उपाय (चकृषे) करे (ताः) वे सब (ते) तुझे (मधु-श्चुतः) आनन्द-रस बहाने वाला हो।

ह्वया॑मि ते॒ मन॑सा॒ मन॑ इ॒हेमान् गृ॒हाँ उप॑ जुजुषा॒ण एहि॑ ।
सं ग॑च्छस्व पि॒तृभि॒: सं य॒मेन॑ स्यो॒नास्त्वा॒ वाता॒ उप॑ वान्तु श॒ग्माः ॥२१

भा०—हे पुरुष ! (मनसा) मन से (ते मनः) तेरे चित्त को (ह्वयामि) मैं बुलाता हूँ । तू (इमान् गृहान्) इन गृह के सम्बन्धियों को (जुजुषाणः) निरन्तर प्रेम करता हुआ (उप एहि) प्राप्त हो और (पितृभिः) अपने बुजुर्ग, माता पिताओं से (सं गच्छस्व) जाकर सत्संग लाभ कर । (यमेन) सर्व-नियन्ता प्रभु से भी (संगच्छस्व) भेंट कर। (त्वा) तेरे लिये (स्योनाः) सुखकारी (शग्माः) शान्तिदायक (वाताः) वायु (उप वान्तु) बहा करे ।

उत् त्वा॑ वहन्तु म॒रुत॑ उदवा॒हा उ॑दप्रु॒तः ।
अ॒जेन॑ कृ॒ण्वन्त॑: शी॒तं व॒र्षेणो॑क्षन्तु बा॒लिति॑ ॥ २२ ॥

भा०—हे पुरुष ! (उद-वाहाः) जल उठाने वाले और (उद प्रुतः) जलों से पूर्ण (मरुतः) वायुएं तेरा उत्थान करें और (अजेन वर्षेण) निरन्तर गति करने वाले वर्षण द्वारा (शीतम्) सर्वत्र शीत (कृण्वन्तः) करती हुई मेघयुक्त वायुएं (बाल् इति उक्षन्तु) 'बाल्' इस प्रकार के शब्द के साथ भूमि पर खूब जल बरसावें ।

उद॒ह्वमायु॒रायु॑षे॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य जी॒वसे॑ ।
स्वान् ग॑च्छतु ते॒ मनो॒ अधा॑ पि॒तॄँरुप॑ द्रव ॥ २३ ॥

भा०—हे पुरुष ! (आयुषे) दीर्घजीवन, (क्रत्वे) उत्तम २ कर्म करने, (जीव से) आरोग्य युक्त जीने के लिये, (आयुः) दीर्घ आयु प्राप्त करने का (उद् अह्वम्) मैं उपदेश करता हूँ । (ते ममः) तेरा चित्त (स्वान्) अपने बन्धुजनों के प्रति (गच्छतु) जावे, (अध) और तू स्वयं भी (पितॄन्) माता पिता आदि वृद्ध, पूज्य पालक पुरुषों के पास जा और उनसे विद्या और अनुभव प्राप्त कर ।

मा ते॒ मनो॒ मासो॒र्माङ्गा॑नां॒ मा रस॑स्य ते ।
मा ते॑ हास्त त॒न्व१ः किं च॒नेह ॥ २४ ॥

भा०—हे पुरुष ! (ते मनः) तेरा मन (मा हस्त) तुझे न छोड़े। (असोः) प्राण का (किंचन मा) कुछ भी अंश तुझे न छोड़े। (ते अङ्गानां किञ्चन मा) तेरे अंगों का भी कुछ अंश तुझे न छोड़े। (इह ते तन्वः किञ्चन मा हास्त) यहां तेरे शरीर का कोई भाग भी तुझसे न छूटे। तू सर्वाङ्ग संपन्न, सबल होकर जीवन व्यतीत कर।

मा त्वा॑ वृ॒क्षः सं बा॑धिष्ट॒ मा दे॒वी पृ॑थि॒वी म॒ही।
लो॒कं पि॒तृषु॑ वि॒त्त्वैध॑स्व य॒मरा॑जसु ॥ २५ ॥

भा०—(वृक्षः) वृक्ष जाति (त्वा) तुझको (मा सं बाधिष्ट) पीड़ा न दे। (मही पृथिवी देवी) बड़ी पृथिवी देवी भी (मा) तुझे पीड़ा न पहुँचावे। तू (यमराजसु) नियन्ता परमेश्वर को ही एकमात्र अपना राजा मानने वाले (पितृषु) पितरों में (लोकं वित्त्वा) स्थान पाकर (एधस्व) वृद्धि को प्राप्त हो।

यत् ते॒ अङ्ग॒मति॑हितं परा॒चैर॑पा॒नः प्रा॒णो य उ॑ वा ते॒ परे॑तः।
तत् ते॑ सं॒गत्य॑ पि॒तरः॒ सनी॑डा घा॒साद् घा॒सं पुन॒रा वे॑शयन्तु ॥२६

भा०—हे पुरुष ! (ते) तेरा (यत्) जो (अङ्गम्) अंग (अति हितम्) कष्ट पा गया है; (वा) या (अपानः) अपान, (प्राणः) और प्राण (ये उ) और भी जो अंग (ते) तेरे (परा इतः) विकृत हो गये हैं (तत्) उस सबको (सनीडाः) एक ही आश्रयस्थान में रहने वाले (पितरः) वृद्ध लोग (संगत्य) मिलकर ठीक कर दें, (घासात्) और अपने भोग्य अन्न पदार्थों में से तेरे लिये पर्याप्त (घासम्) भोग्य अन्न पदार्थ (पुनः) पुनः २ (आ वेशयन्तु) प्रदान करें।

अपे॒मं जी॒वा अ॑रुधन् गृ॒हेभ्य॒स्तं निर्व॑हत॒ परि॒ ग्रामा॑दि॒तः।
मृ॒त्युर्य॒मस्या॑सीद् दू॒तः प्रचे॑ता॒ असू॑न् पि॒तृभ्यो॑ गम॒यां च॑कार॥ २७

भा०—(जीवाः) जीवित लोग (इमम्) प्राण-अपान से रहित मृत पुरुष का (गृहेभ्यः) घरों से निकल कर (अप अरुधन्) बाहर रक्खें

हे गृहस्थ जीवित पुरुषो ! (तम्) उस मृत शव को (इतः ग्रामात्) इस ग्राम से (परि निर्वहत) परे दूर ले जाओ। (मृत्युः) मृत्यु (यमस्य) सर्वनियन्ता परमेश्वर का (दूत आसीत्) दूत है। वह (प्रचेताः) उत्तम उपदेश देने और शिक्षा प्राप्त कराने का भी साधन है। वस्तुतः वही परमेश्वर (पितृभ्यः) बूढ़े माता पिताओं और बुजुर्गों के भी (असून्) प्राणों को (गमयांचकार) हरता रहा है।

ये दस्य॑वः पि॒तृषु॒ प्रवि॑ष्टा ज्ञा॒तिमु॑खा अहु॒ताद॒श्चर॑न्ति।
प॒रा॒पुरो॑ नि॒पुरो॒ ये भर॑न्त्य॒ग्निष्टान॒स्मात् प्र ध॑माति य॒ज्ञात् ॥२८॥

भा०—(ये) जो (दस्यवः) हानिकारक लोग, (ज्ञातिमुखाः) हमारे सम्बन्धी जनों को अपना अगुआ बनाकर या बन्धुओं का सा रूप धारण करके, (पितृषु) हमारे बुजुर्ग लोगों के बीच में (प्रविष्टाः) घुसकर, (अहुतादः) बिना दिये अन्न को ही (चरन्ति) आकर भोग करते या खा जाते हैं और (ये) जो (परापुरः) चाहे वे दूर के रहने वाले या (निपुरः) निकट के रहने वाले या वेघरबार के लुच्चे (भरन्ति) अपने को पालते पोसते हैं, या हमारा धन चुरा लेते हैं, (अग्निः) अग्नि के समान संतापक राजा (तान्) उन लोगों को (अस्मात् यज्ञात्) हमारे इस सत्संग या परस्पर संघ से बने राष्ट्र से (प्र धमाति) बाहर निकाल दे।

सं वि॑श॒न्त्वि॒ह पि॒तरः॒ स्वा नः॑ स्यो॒नं कृ॒ण्वन्तः॑ प्रति॒रन्त॒ आयुः॑।
तेभ्यः॑ शकेम ह॒विषा॒ नक्ष॑माणा॒ ज्योग् जीव॑न्तः श॒रदः॑ पुरू॒चीः ॥२९॥

भा०—(नः) हमारे (स्वाः पितरः) अपने सम्बन्ध के पालक पिता, पितामह, माता, मातामही आदि वृद्धजन (स्योनम्) हमारे लिए सुख के कार्य (कृण्वन्तः) करते हुए (आयुः) जीवन को (प्र तिरन्तः) बढ़ाते हुए, (इह) इस लोक में (सं विशन्तु) सुखपूर्वक रहें। हम (तेभ्यः) उनके लिये (हविषा) अन्न से (नक्षमाणाः) सेवा करते हुए (पुरूचीः) बहुत (शरदः) वर्षों तक (ज्योक्) खूब (जीवन्तः) जीते हुए (शकेम) शक्तिमान् बने रहें।

यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥ ३० ॥ (६)

भा०—हे पुरुष ! (ते) तुझे (याम्) जिस (धेनुम्) गौ और (यम् उ) जिस (क्षीरे ओदनम्) दूध में पके भात 'खीर' पक्वान को मैं (निपृणामि) प्रदान करता हूँ, उससे तू (जनस्य) उन जनों का (यः) जो कि (अत्र) इस लोक में (अजीवनः) आजीविका रहित (असत्) हों (भर्त्ता असः) पालन पोषण कर ।

अश्वावतीं प्र तर या सुशेवार्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ३१

भा०—हे पुरुष तू (अश्वावतीम्) कर्मेन्द्रियों से युक्त इस कर्ममयी जीवन-नदी को पार कर और (नवीयः) अति नवीन (प्रतरम्) उत्कृष्ट पथ में ले जाने वाले (ऋक्षाकम्) ज्ञानेन्द्रिय गण को भी (प्र तर) पार कर । हे पुरुष ! (त्वा) तुझे (यः) जो (जघान) मारे (सः) वह (वध्यः) वध करने और दण्ड करने योग्य हो । (सः) यह (अन्यत्) और अधिक (भाग-धेयम्) भोग को (मा विदत) न प्राप्त करे ।

यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान ॥३२॥

भा०—(यमः) सर्वनियन्ता परमेश्वर (परः) सबसे ऊंचा है और (विवस्वान्) नाना प्रकार के लोकों का स्वामी यह सूर्य उससे (अवरः) नीचे, उससे कम शक्ति वाला है । (मे) मेरा (अध्वरः) न नष्ट होना या जीवन बना रहना भी (यमे) उस सर्वनियन्ता परमेश्वर पर ही (अधि-निविष्टः) आश्रित है । (विवस्वान्) विविध लोकों का स्वामी सूर्य (भुवः) नाना लोकों को (अनु आततान्) उस ईश्वर की आज्ञा का वशवर्त्ती रह कर वश करता, उन पर जीव जगत् को फैलाता है ।

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ ३३॥

भा०—जगत् के विधायक पञ्चभूतों ने, (मर्त्येभ्यः) मरणधर्मा जीवों से, उस (अमृताम्) कभी न मरने वाली अमर चेतना शक्ति को (अप अगूहन्) छिपा लिया और उसके (सवर्णाम्) समान वर्ण, कान्ति और तेज से युक्त चेतनाशक्ति को उन्होंने (विवस्वते) विविध लोकों और जीवों के स्वामी सूर्य के लिए (अदधुः) प्रदान किया। (उत) और (यत्) जो (तत्) अमृत रूप बल है वही (अश्विनौ) इन व्यापक द्यौ और पृथिवी का (अभरत्) पालन पोषण करता है और (सरण्यूः) सर्वत्र व्यापक उसी चितिशक्ति ने उन पर मादा, स्त्री पुरुषों को भी (द्वौ मिथुनौ) जो कि मिलकर परस्पर एक हो जाते हैं और दम्पति भाव से रहते हैं (अजहात्) अपने भीतर से बाहर किया, उत्पन्न किया। व्यष्टिरूप से स्त्री-पुरुष ही समष्टि रूप से 'द्यौः-पृथिवी' हैं।

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ३४ ॥

भा०—(ये) जो (निखाताः) निकट ही दृढरूप से गड़े हुए अपना घर जमा कर बैठे हुए हैं और (ये परोप्ताः) जो दूर अपनी सन्तान उत्पन्न करते हैं और (ये दग्धाः) जो अपने पाप आदि मानसिक और कायिक, वाचिक मलों को भस्म कर चुके हैं, (ये च) और जो (उद् हिताः) उत्कृष्ट पदों पर पहुँचे हुए हैं, (तान् सर्वान्) उन सब (पितॄन्) पिता के समान पूजनीय पालकों को (हविषे अत्तवे) पवित्र अन्न भोजन करने के लिये हे (अग्ने) गृहस्थ पुरुष ! तू (आ वह) प्राप्त कर। उनको अपने घर ला और प्रेम से उनको भोजन करा।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ३५

भा०—(ये अग्निदग्धाः ये अनग्निदग्धाः) जो अग्नि के समान तीव्र ताप से स्वयं जाज्वल्यमान और जो अग्नि से भिन्न शीतल पदार्थों के समान तेजस्वी होकर, (दिवः मध्ये) आनन्दमय मोक्ष धाम में (स्वधया) अपने कर्मों से प्राप्त आत्मशक्ति से (मादयन्ते) आनन्द लाभ करते हैं, हे (जातवेदः) पूर्णप्रज्ञ, सर्वज्ञ, परमात्मन् ! (यदि) निश्चय से (तान्) उन सबको जब तू (वेत्थ) अपनाता है तो (ते) वे (स्वधया) निजी धारण शक्ति से (स्वधितिम्) स्वतः धारण करने वाली आत्मशक्ति स्वरूप (यज्ञम्) उपास्य प्रभु को (जुषन्ताम्) प्राप्त करते हैं।

शं त॑प॒ माति॑ तपो॒ अग्ने॒ मा त॒न्वं१॒॑ तपः॑ ।
वने॑षु॒ शुष्मो॑ अस्तु ते पृथि॒व्याम॑स्तु॒ यद्धरः॑ ॥ ३६ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! आचार्य ! तू (शं तप) कल्याण के लिये तपा, दण्ड दे। हमें (मा अति तपः) अधिक संतप्त मत कर। (तन्वं) हमारे शरीर को (मा तपः) पीड़ित मत कर। (ते) तेरा (शुष्मः) बल, (वनेषु) वनों में अग्नि के समान, शिष्यों में (अस्तु) प्रकट हो और (यत् हरः) जो तेरा पाप हरने वाला तेज है वह (पृथिव्याम्) समस्त पृथिवी पर (अस्तु) विद्यमान रहे।

द॒दा॑म्यस्मा अ॒व॒सान॑मे॒तद् य ए॒ष आग॒न् मम॒ चेद॒भू॑दि॒ह ।
य॒मश्चि॑कि॒त्वान् प्रत्ये॒तदा॑ह॒ ममै॒ष रा॒य उप॑ तिष्ठतामि॒ह ॥ ३७ ॥

भा०—मैं परमेश्वर और आचार्य (अस्मै) इस पुरुष को (एतत्) यह (अवसानम्) शरण (ददामि) प्रदान करता हूँ, (यः) जो (एषः) यह पुरुष (आगन्) यहां आता है (च) और (मम इत् अभूत्) मेरा ही भक्त होकर रहे। इस प्रकार (चिकित्वान्) सर्वज्ञ (यमः) सर्व-नियन्ता परमेश्वर या आचार्य मानो (एतत्) उसको इस प्रकार (प्रति आह) कह रहा है कि (एषः) यह पुरुष (मम) मेरे दिये (राये) धन-ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (इह) यहां (तिष्ठताम्) विराजे।

इमा मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३८ ॥

भा०—(शते शरत्सु) सौ वर्षों में हम (इमाम्) अपने जीवन की इस (मत्राम्) काल मात्रा को (मिमीमहे) ऐसी उत्तमता से मापें कि (यथा) जैसे (अपरं न मासातै) और किसी वस्तु को नहीं मापते और (पुरा नो) पहले भी किसी ने वैसा न मापा हो।

प्रेमां मात्रां०।०॥ ३९॥ अपेमां मात्रां०।०॥ ४०॥ (१०)
वीऽमां मात्रां० ।०॥ ४१ ॥ निरिमां मात्रां०।०॥ ४२॥
उदिमां मात्रां०।०॥ ४३॥ समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै। शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥

भा०—(शते शरत्सु) जीवन के सौ वर्षों में हम अपने जीवन की (इमां मात्राम्) इस कालमात्रा को ऐसे (प्र मिमीमहे) प्रकृष्टरूप से मापें, व्यतीत करें, (यथा अपरं न मासातै) जैसे और किसी वस्तु को नहीं नापते, (नो पुरा) और पहले भी किसी ने वैसी न मापा हो।

(अप इमां मात्राम्० इत्यादि) हम अपने जीवन की इस कालमात्रा को इतनी सुगमता से व्यतीत करें (इमां मात्रां वि मिमीमहे) जीवनमात्रा को ऐसे विशेष रूप से व्यतीत करें (इमां मत्रां निर् मिमीमहे) इस जीवनमात्रा को ऐसी पूर्णता या निर्दोषता से व्यतीत करें (इमा मात्रा उत् मिमीमहे) जीवन की कालमात्रा को ऐसी उत्तमता से व्यतीत करें (इमां मात्रां सम् मिमीमहे) जीवनमात्रा को ऐसी भली प्रकार से समाप्त करें कि जैसे कोई न व्यतीत कर सके और न किसी ने हमसे पहले की हो अर्थात् हम अपने जीवन को ऐसे प्रकृष्ट रूप से, सुगमता से, विशेष रूप से, निःशेष या निर्दोष रूप से, उन्नत रूप से और समान रूप से व्यतीत करें कि आदर्श हो, लोग कहें कि 'न भूतो न भविष्यति'।

अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम्।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४५ ॥

भा०—मैं (मात्राम्) इस जीवनकाल की मात्रा को (अमासि) पूर्ण रूप से व्यतीत करूं कि जिससे (स्वः अगाम्) मैं सुखमय आनन्द-मय मोक्ष भी प्राप्त करूं और (आयुष्मान् भूयासम्) दीर्घायु होकर रहूँ। (अथापरं) जैसे०—इत्यादि पूर्ववत् ।

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥ ४६ ॥

भा०—हे पुरुष ! (प्राणः) प्राण, (अपानः) अपान, (व्यानः) व्यान, (आयुः) आयु और (चक्षुः) चक्षु आदि ये इन्द्रियगण (सूर्याय) सबके प्रेरक परमेश्वर रूप सूर्य के (दृशये) नित्य दर्शन करने के लिये बने रहें। हे पुरुष ! तू (यमराज्ञः) सर्वनियन्ता, सबके राजा परमेश्वर के बनाये (अपरि-परेण) तथा कामादि शत्रुओं से रहित (पथा) मार्ग द्वारा (पितॄन्) पूज्य पुरुषों के पीछे २, उनके उपदिष्ट सन्मार्ग से (गच्छ) गमन कर।

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥४७॥

भा०—(ये) जो (अग्रवः) अविवाहित, (शशमानाः) शम का नित्य अभ्यास करते हुए, सब प्रकार के (द्वेषांसि) द्वेष के भावों को (हित्वा) परित्याग कर, (अनपत्यवन्तः) सन्ततिरहित भी रहें, (ते) वे भी (द्याम् उद् इत्य) स्वर्गलोक को जाकर, (नाकस्य पृष्ठे) परम सुखमय धाम में, (अधि दीध्यानाः) विराजते हुए (लोकम्) उस दर्शनीय परमेश्वर को (अविदन्त) प्राप्त करते हैं।

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

भा०—(अवमा) सबसे नीचे की (द्यौः) भूमि (उदन्वती) जल वाली है और (मध्यमा) बीच की भूमि मही के कणों वाली है, (तृतीया) और तीसरी सबसे उत्कृष्ट (प्र-द्यौः इति) अति अधिक प्रकाश वाली है

(यस्याम्) जिस तीसरी भूमि में कि (पितरः) पालक पिता, माता, गुरु, लोग विराजते हैं।

ये नः॑ पि॒तुः पि॒तरो॒ ये पि॑ताम॒हा य आ॑विवि॒शुरु॒र्व॑न्तरि॑क्षम्।
य आ॑क्षि॒यन्ति॑ पृथि॒वीमु॒त द्यां तेभ्यः॑ पि॒तृभ्यो॒ नम॑सा विधेम ४९

भा०—(ये) जो (नः) हमारे (पितुः पितरः) पिता के भी पिता हैं, (ये पितामहाः) जो पितामह हैं, (ये) जो (उरू अन्तरिक्षम्) विशाल आकाश में (आविविशुः) प्रवेश करते हैं और (ये) जो (पृथिवीम्) इस पृथिवी (उत द्याम्) और स्वर्ग या उच्च आकाश में (आक्षियन्ति) निवास करते या उस पर भी वश करते हैं (तेभ्यः) उन सब (पितृभ्यः) पिता आदि के लिये हम (नमसा) नमस्कार या अन्न द्वारा (विधेम) सत्कार करें।

इ॒दमिद् वा उ॒ नाप॑रं दि॒वि प॑श्यसि॒ सूर्य॑म्।
मा॒ता पु॒त्रं यथा॑ सि॒चाभ्ये॑नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥ (११)

भा०—(इदम् इत् वा उ) हे पुरुष ! यही भूलोक तेरे रहने के लिये है, (न अपरम्) इससे भिन्न नहीं। (दिवि) देख द्यौलोक में तो (सूर्यम्) सूर्य जैसे पदार्थ रहते हैं। (भूमे) हे भूमे ! (यथा) जिस प्रकार (माता) माता (पुत्रम्) पुत्र को (सिचा) वस्त्र से ढक लेती है उसी प्रकार तू (एनं) इस पुरुष को (अभि ऊर्णुहि) मकान द्वारा आच्छादित कर, सुरक्षित रख।

इ॒दमिद् वा उ॒ नाप॑रं ज॒रस्य॒न्यदि॒तोऽप॑रम्।
जा॒या पति॑मिव॒ वास॑सा॒भ्ये॑नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५१ ॥

भा०—(इदम् इद् वा उ) गृहस्थ लोक में यही तेरा गृहस्थोचित भोग है (न अपरम्) अन्याश्रमोचित भोग नहीं। (जरसि) और बुढ़ापे में और प्रकार का भोग है जो कि गृहस्थ के भोग से भिन्न है। हे (भूमे) भूमे ! (पतिम्) पति को जिस प्रकार (जाया) उसकी स्त्री (वाससा) वस्त्र से ढकती है उसी प्रकार (एनं अभि ऊर्णुहि) तू इस पुरुष को मकान द्वारा आच्छादित कर।

अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥ ५२ ॥

भा०—हे पुरुष ! मैं (त्वा) तुझको (पृथिव्याः मातुः) पृथिवी के बने मकान द्वारा ढांपूं, जैसे कि माता के वस्त्र द्वारा बच्चे को ढांपा जाता है । (जीवेषु) इस प्रकार जीवों में जो (भद्रम्) सुख और कल्याण है (तत्) वह मुझे प्राप्त हो (स्वधा) ताकि मैं (पितृषु) माता पिताओं को और तुझे अन्न आदि देता रहूँ ।

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ५३

भा०—हे (अग्नीषोमा) हे आग के समान ज्ञानप्रकाशक, और सोम के समान शान्त स्वभाव योगिन् ! आप दोनों (पथि-कृता) सब उत्तम मार्गों को बनाने हारे हो । आप दोनों (देवेभ्यः) ज्ञानवान् पुरुषों के लिये (रत्नम्) रमण करने योग्य (लोकम्) लोक का (वि दधथुः) नाना प्रकार से विधि-विधान करते हो । (यः) जो व्यक्ति (प्रेष्यन्तं) समस्त जगत् के प्रेरणा करने हारे और (पूषणम्) समस्त जगत् के पोषक परमेश्वर को (वहाति) प्राप्त करावे, (तत्र) उसके पास (अञ्जः यानैः) अति वेगवान् रथों द्वारा जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (गच्छतम्) गमन किया करो ।

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥५४

भा०—हे जीव ! (अनष्ट-पशुः) जिस परमेश्वर के जीव गण कभी नष्ट नहीं होते, वह (गोपाः) उत्तम गोपाल के समान (भुवनस्य गोपाः) समस्त संसार का रक्षक है। वह (विद्वान्) सर्वज्ञ तथा (पूषा) सबका पोषक (त्वा इतः) तुझको इस लोक से (प्र च्यवयतु) उत्तम लोक में ले जाता है । (सः) वह ही (अग्निः) पथप्रदर्शक होकर तुझे (सुविद-त्रियेभ्यः) उत्तम ज्ञानवान् और दानशील, (पितृभ्यः) इन पिता और आचार्य आदि देवों के हाथों (परि ददत्) सौंपता है ।

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥५५॥

भा०—हे जीव ! (विश्वायुः) समस्त संसार का जीवनस्वरूप (आयुः) परमेश्वर (त्वा) तेरी (परि पातु) सब प्रकार से रक्षा करे और (पुरस्तात्) आगे भी (प्र-पथे) उत्तम मार्ग में (पूषा त्वा पातु) सर्वपोषक परमात्मा तेरी रक्षा करे । (यत्र) जिस लोक में (ते) वे (सुकृतः) पुण्याचारी लोग (ईयुः) जाते हैं (तत्र) वहां (सविता देवः) सर्वोत्पादक परमेश्वर (त्वा) तुझे (दधातु) रक्खे ।

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ॥ ५६ ॥

भा०—हे जीव ! (अ सुनीताय) प्राण द्वारा लोकान्तर में पहुंचने वाले (ते) तेरी आत्मा को (वोढवे) वहन करने के लिये (इमौ) इन दोनों, प्राण और अपान को मैं (युनिज्म) योग द्वारा एकत्र युक्त करता हूँ । (ताभ्याम्) उन दोनों द्वारा (यमस्य) सर्वनियन्ता परमेश्वर के (सादनम्) आश्रय को तथा (सम्-इतीः च) सत् ज्ञानमय सत्संगों को (अव गच्छतात्) तू प्राप्त हो ।

एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥ ५७ ॥

भा०—हे जीव ! (यत्) जो तूने पूर्व जन्म में भी (अबिभः) धारण किया था (एतत्) वह (वासः) देह का चोला (प्रथमं) सबसे उत्तम (नु त्वा आगन्) तुझे प्राप्त हुआ है । (एतत्) उसको तू (अप ऊह) त्याग दे और अपनी (इष्टापूर्त्तम्) की हुई देव-उपासना और जीवों के भरण-पोषणकारी लोकोपकार के कार्यों के अनुसार, (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर, (अनुसंक्राम) अगले लोक में जा, (यत्र) जहां (बहुधा) प्रायः (विबन्धषु) विशेष बन्धन करने वाले लोकों में (ते) तेरा मन (दत्तम्) लगा हुआ है ।

अ॒ग्नेर्वर्म॒ परि॒ गोभि॒र्व्ययस्व॒ सं प्रोर्णुष्व॒ मेद॑सा॒ पीव॑सा च ।
नेत् त्वा॑ धृ॒ष्णुर्हर॑सा॒ जर्हृषाणो॑ द॒धृग् वि॑ध॒क्षन् प॑री॒ङ्खया॑तै ॥५८॥

भा०—हे जीव ! तू ज्ञानाग्नि के कवच को (गोभिः) वेद की वाणियों द्वारा पहन (परि व्ययस्व) और अपने को (मेदसा) परस्पर प्रेम द्वारा और (पविसा च) देह की पुष्टि द्वारा (सं प्र ऊर्णुष्व) अच्छी प्रकार ढक ले। (धृष्णुः) नहीं तो तेरे बल का नाश करने वाला कामादि तथा रोग आदि शत्रु (हरसा जर्हृषाणाः) अपने हरणशील बल से तुझे हरण करने की इच्छा करता हुआ, (दधृक्) अति निर्भय होकर (वि धक्षन्) नाना प्रकार से संतप्त करता हुआ (परिईखयातै) भय से कंपा देगा।

द॒ण्डं हस्ता॑दा॒दद॑नो ग॒तासोः॑ स॒ह श्रोत्रे॑ण॒ वर्च॑सा॒ बले॑न ।
अत्रै॒व त्वमि॒ह व॒यं सु॒वीरा॒ विश्वा॒ मृधो॑ अ॒भिमा॑तीर्जयेम ॥५९॥

भा०—(गतासोः) प्राणों से रहित अर्थात् शक्तिहीन पुरुष के (हस्तात्) हाथ से (दण्डम्) दमन करने के अधिकार को तथा अभियोगों को (श्रोत्रेण) सुन सकने तथा तत्सम्बन्धी तेज और बल को मैं वापिस ले लेता हूँ। हे शक्तिहीन पुरुष तू (इह) इस स्थान में (अत्र एव) यहां ही रह और (वयम्) हम (सुवीराः) उत्तम वीर्यवान् पुरुष (विश्वाः) समस्त (अभिमातीः) अभिमानी राष्ट्रशत्रुओं का (जयेम) विजय करें।

धनु॒र्हस्ता॑दा॒दद॑नो मृ॒तस्य॑ स॒ह क्षा॒त्रेण॒ वर्च॑सा॒ बले॑न ।
स॒मागृ॑भाय॒ वसु॒ भूरि॑ पु॒ष्टम॒र्वाङ् त्वमेह्युप॑ जीवलो॒कम् ॥६०॥(१२)

भा०—हे पुत्र ! (मृतस्य) मुर्दा अर्थात् निर्बल पुरुष के (हस्तात्) हाथ से (धनुः क्षत्रेण वर्चसा बलेन सह) वीर्य, तेज और बल सहित धनुष् को (आददानः) लेता हुआ तू (भूरि वसु) बहुत अधिक धन (सम् आगृभाय) प्राप्त कर और (त्वम्) फिर तू (जीव-लोकम्) जीवित अर्थात् बलवान् पुरुषों के निवास स्थान को (उप एहि) आ जा।

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[तत्र एकं सूक्तं ऋचश्च षष्टिः]

[३] स्त्री-पुरुषों के धर्म

अथर्वा ऋषिः । यमः मन्त्रोक्ताश्च बह्व्यो देवताः । ५, ६ अग्निः । ५० भूमिः । ५४ इन्दुः । ५६ आपः ॥ ४, ८, ११, २३ सतःपंक्तयः । ५ त्रिपदा निचृद् गायत्री । ६, ५६, ६८, ७०, ७२ अनुष्टुभः । १८, २५–२९, ४४, ४६ जगत्यः । (१८ भुरिक्, २९ विराड्) । ३० पञ्चपदा अतिजगती । ३१ विराट् शक्वरी । ३२–३५, ४७, ४९, ५२ भुरिजः । ३६ एकावसाना आसुरी अनुष्टुप् । ३७ एकावसाना आसुरी गायत्री । ३९ परात्रिष्टुप् पंक्तिः । ५० प्रस्तारपंक्ति । ५४ पुरोऽनुष्टुप् । ५८ विराट् । ६० त्र्यवसाना षट्पदा जगती । ६४ भुरिक् पथ्या पंक्त्यार्षी । ६७ पथ्या बृहती । ६०, ७१ उपरिष्टाद् बृहती, शेषास्त्रिष्टुभः । त्रिसप्तत्यृचं सूक्तम् ॥

मृतपतिक स्त्री का अधिकार

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥ १ ॥

भा०—(पुराणम्) पूर्व के ही पतिव्रत (धर्मं) धर्म का (अनुपालयन्ती) निरन्तर पालन करती हुई (इयम्) यह (नारी) स्त्री, (पतिलोकम्) पति के रूप से पुरुष को (वृणाना) वरण करती हुई, हे (मर्त्य) मरणधर्मा पुरुष ! (त्वा प्रेतम्) तुझ मृतपति के (उप) समीप (नि पद्यते) प्राप्त होती है । (तस्यै) इस स्त्री को तू (प्रजाम्) प्रजा और (द्रविणं च) धन का (धेहि) प्रदान कर अर्थात् मृत पुरुष के सन्तान और धन की स्वामिनी उसकी पत्नी हो ।

पति के मरने पर पुत्र और स्त्री के लिये आज्ञा

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ २ ॥

भा०—हे (नारि) नारि! तू (उद् ईर्ष्व) उठ । तू (गतासुम्)

प्राणरहित (एतम्) इस पुरुष के पास (उप शेषे) पड़ी है । (जीव-लोकम् अभि) जीवित प्राणि-लोक को (आ इहि) प्राप्त हो । हे स्त्रि ! तू (हस्त-ग्राभस्य) पाणिग्रहण करने वाले तथा (दधिषोः) भरण-पोषणकारी (तव पत्युः) तेरे अपने पति के लिये ही, (इदम्) इस (जनित्वम्) अपने भार्यापन को (अभि) लक्ष्य करके, (सं बभूथ) नियुक्त पति के साथ सहवास कर ।

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥३॥

भा०—(मृतेभ्यः) मृत पूर्व पतियों के निमित्त और उनके ही वंश-रक्षार्थ (जीवां युवतिम्) जीवित जवान स्त्री को (नीयमानां) दूर ले जाई गई और (परि नीयमानाम्) विवाह करती हुई, (अपश्यम्) मैं देखूं और (यत्) जब वह (अन्धेन तमसा) शोक-मोह से (प्रावृत) ढकी हुई (आसीत्) हो तो (एनाम्) उसको (प्राक्तः) पहिले के कष्टदायी दृश्य से हटाकर (अपाचीम्) दूसरी ओर (अनयम्) मैं ले जाऊं ।

प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अघ्न्ये) गौ के समान कभी न ताड़ने योग्य स्त्रि ! तू (जीव-लोकं प्रजानती) जीवित लोगों को भली प्रकार जानती हुई और (देवानां) श्रेष्ठ पुरुषों के (पन्थाम्) शिष्टाचार का (अनु संचरन्ती) पालन करती हुई, अपनी इन्द्रियों के स्वामी इस (तं जुषस्व) नियुक्त पति को प्रेम से प्राप्त कर और (एनम्) इसको ही (स्वर्गं लोकम् अधि रोहय) अपने सुखमय गृहस्थ लोक पर अधिकारारूढ कर ।

परिपालक पुरुष का स्वरूप

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्ने पित्तमपामसि ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! ज्ञानमय ! परमेश्वर ! तू (अपाम्)

जलों के समान स्वच्छ आप्त पुरुषों को (पित्तम्) पवित्र करने या पालन करने हारा (असि) है। तू (नदीनाम्) नदियों के (उप) समीप, उनके जलों में उतारने वाली (शाम् उप) सेवार के समान व्यवस्था जाल फैला कर और (वेतसम् उप) बेत के समान तट पर अपने मूल फैला कर, (नदीनां) आप्त पुरुषों की (अवत्-तरः) बड़ी भारी रक्षा करने हारा है।

यं त्वम॑ग्ने स॒मद॑ह॒स्तमु॒ निर्वा॑पया॒ पुन॑ः।
क्या॒म्बूरत्र॑ रोहतु शाण्डदू॒र्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥

भा०—(अग्ने) हे अग्रणी ज्ञानमय परमेश्वर! (त्वम्) तू (यम्) जिसको (सम् अदहः) दुःखाग्नि से जलाता है (तम् उ) उसको ही (पुनः) फिर (निर्वापय) जल के समान शांत कर। (क्याम्बूः) जिस प्रकार अधिक जल पड़ने पर काई (रोहतु) उग आती है और (व्यल्कशा) विविध शाखावाली (शण्डदूर्वा) बड़ी दूब पैदा हो जाती है उसी प्रकार जिस जनपद या आत्मा में तू कठोर दमन किया हो वहां भी ऐसी शान्ति स्थापना कर कि वहां फिर से क्षात्रशक्ति, पशुशक्ति और प्राणशक्ति की वृद्धि हो सके। क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद् दूर्वा। ऐ० ८।८॥ प्राणो दूर्वेष्टका॥ श० ७।४।२२०॥ पशवो वै दूर्वेष्टका॥ ७।४।२।१०।१०॥

इ॒दं त॒ एकं॑ प॒र ऊ॑ त॒ एकं॑ तृ॒तीये॑न॒ ज्योति॑षा॒ सं वि॑शस्व।
सं॒वेश॑ने त॒न्वा॒३॒॑ चारु॑रेधि प्रि॒यो दे॒वानां॑ पर॒मे स॒धस्थे॑ ॥ ७॥

भा०—हे पुरुष! (ते) तेरे लिये (इदम्) यह (एकं) एक ज्योति है जो कि अमर ज्योति है। (ते) और तेरे लिये (एकम्) एक पर ज्योति अर्थात् ब्रह्मज्योति है। तू इस परज्योति में (तृतीयेन ज्योतिषा) तीसरी जीवात्मारूप ज्योति से (सं विशस्व) प्रवेश कर। (संवेशने) इस प्रवेश के लिये तू (तन्वा) अपने शरीर से (चारुः) शोभनरूप हो जो (परमे) और उस परम उत्कृष्ट (सधस्थे) ब्रह्म स्थान में जाने के लिये (प्रियः एधि) देवों का प्रिय बनकर रह।

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥८॥

भा०—हे पुरुष ! (उत तिष्ठ) उठ । (प्र इहि) आगे बढ़ । (प्र द्रव) शीघ्रता से आगे बढ़ । (सलिले) जल के समान शान्त (सधस्थे) परम शरण उस प्रभु में अपना निवास स्थान (कृणुष्व) बना । (त्वं) इस उद्देश्य के निमित्त तू अपने (पितृभ्यः) गुरु, माता, पिता आदि के साथ (सं-विदानः) भली प्रकार सत्संग और ज्ञान लाभ करता हुआ, (सोमेन) सर्वप्रेरक परमेश्वर के साथ (स्वधाभिः) अपने कर्मों से प्राप्त इष्ट फलों का (सं मदस्व) उत्तम आनन्द लाभ कर।

प्र च्यवस्व तन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥ ९ ॥

भा०—हे पुरुष ! तू (तन्वम्) अपने शरीर को (प्र-च्यवस्व) उद्यमी बना और उसको (सं भरस्व) फिर भली प्रकार से पुष्ट कर । (ते) ताकि तेरे (गात्रा) नाना अंग (मा विहायि) छूट न जायं, (मो शरीरम्) शरीर भी तेरा न छूट जाय । जहां तेरा (मनः) मन (निविष्टम्) लगा है वहां ही उसे प्रविष्ट कर । (भूमेः) भूमिलोक के (यत्र) जिस भाग में तुझे (जुषसे) प्रेम लगा है (तत्र) वहां तू (गच्छ) चला जा ।

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥१०॥ (१३)

भा०—(सोम्यासः) ब्रह्मानन्द रस का पान करानेहारे (पितरः) पिता आदि वृद्धजन (मां) मुझको (वर्चसा) ब्रह्मवर्चस् से (अञ्जन्तु) युक्त करें और (देवाः) विद्याप्रदाता गुरु जन मुझे (मधुना) मधुर ज्ञानमय (घृतेन) प्रकाश से (अञ्जन्तु) प्रकाशित करें। (चक्षुषे) साक्षात् दर्शन करने के लिये (प्रतर) बहुत उत्कृष्ट रीति से (मा) मुझको (तारयन्तः) संसारयात्रा के पार पहुँचाते हुए वे वृद्धजन (जरद्-अष्टिम्) वृद्ध अवस्था तक पहुँचने वाले (मा) मुझको (वर्धन्तु) बढ़ावें ।

वर्च॑सा मां सम॑नक्त्व॒ग्निर्मे॒धां मे॒ विष्णु॒र्न्य॑नक्त्वा॒सन्। र॒यिं मे॒ विश्वे॒ नि य॑च्छन्तु दे॒वाः स्यो॒ना माप॑ः पव॒नैः पु॑नन्तु ॥११॥

भा०—(अग्निः) ज्ञान से प्रकाशित और अग्नि के समान तेजस्वी आचार्य (माम्) मुझको (वर्चसा) तेज से (सम् अनक्तु) खूब प्रकाशित करे। (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (मे आसन्) मेरे मुख में (मेधाम्) ज्ञानयुक्त वाणी को (नि अनक्तु) प्रकाशित करे। (विश्वे देवाः) सब इन्द्रियगण, प्राण और विद्वान्‌गण (मे) मुझे (रयिम्) बल, वीर्य प्रदान करें और (आपः) जलों के समान स्वच्छ हृदय वाले आप्तजन (पवनैः) पवित्र करने वाले अपने उपदेशों से (मा पुनन्तु) मुझे पवित्र करें।

मि॒त्रावरु॑णा॒ परि॒ माम॑धातामादि॒त्या मा॒ स्वर॑वो वर्धयन्तु। वर्चो॑ म॒ इन्द्रो॒ न्य॑नक्तु॒ हस्त॑योर्ज॒रद॑ष्टिं मा सवि॒ता कृ॑णोतु ॥१२॥

भा०—(मित्रावरुणौ) मरण से रक्षा और (वरुण) विघ्नों का विनाश करने हारे माता पिता (माम्) मेरा (परि अधाताम्) सब प्रकार से धारण पोषण करें। (आदित्याः) सूर्य के समान तेजस्वी (स्वरवः) तथा उत्तम ज्ञान के उपदेष्टा गुरु लोग (मा) मुझे (वर्धन्तु) ज्ञानोपदेश से बढ़ावें और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (हस्तयोः) मेरे हाथों में (वर्चः) बल (नि अनक्तु) दे। (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर और प्रेरक सूर्य (मा) मुझे (जरदष्टिम्) वृद्धावस्था तक पहुँचने वाला दीर्घायु (कृणोतु) करे।

यो म॒मार॑ प्रथ॒मो मर्त्या॑नां॒ यः प्रे॒याय॑ प्रथ॒मो लो॒कमे॒तम्। वै॒व॒स्व॒तं सं॒गम॑नं॒ जना॑नां य॒मं राजा॑नं ह॒विषा॑ सपर्यत ॥१३॥

भा०—(यः मर्त्यानां = मर्त्यान् प्रथमः सन् ममार = मारयति) जो सर्वश्रेष्ठ प्रभु, मरणधर्मा प्राणियों के प्राण त्याग कराता और (यःप्रथमः) जो सर्वश्रेष्ठ होकर (एतम् लोकम् प्र इयाय) इस लोक में प्राणियों को भेजता है। उस सर्वव्यापक, सर्वनियामक प्रभु की उपासना करो।

परा॑ यात पितर॒ आ च॑ याता॒यं वो॑ य॒ज्ञो मधु॑ना॒ सम॑क्तः। द॒त्तो अ॒स्मभ्यं॒ द्रवि॒णेह भ॒द्रं र॒यिं च॑ नः॒ सर्व॑वीरं दधात ॥१४॥

भा०—हे (पितरः) पूज्य वृद्ध पुरुषो ! (अयम्) यह (वः) आप लोगों का (यज्ञः) यज्ञमय-आत्मा (मधुना) मधु के समान मधुर ज्ञान से (सत् अक्तः) भली प्रकार प्रकाशित है। आप (परायात) दूर २ देशों तक जाओ और (आयात च) दूर २ देशों से आओ भी। (अस्मभ्यम्) हम लोगों को (द्रविणा) नाना प्रकार के ज्ञान और धनों को (दत्त उ) प्रदान करो। (इह) इस लोक में (भद्रम्) कल्याणकारी और सुखकारी (सर्व-वीरम्) सब पुत्रों सहित (रयिम्) ऐश्वर्य को (च) भी (दधात) धारण कराओ।

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥१५॥

भा०—(कण्व) कण्व[1] अर्थात् ज्ञान का उपदेश करने वाला, (कक्षीवान्) [2]कक्षीवान् अर्थात् प्राण, रश्मियों को अपने वश करनेहारा, (पुरुमीढः) [3]पुरुमीढ अर्थात् अति अधिक पुत्रों और धनों से युक्त, (अगस्त्यः) [4]अगस्त्य अर्थात् वृक्ष पर्वतादि को भी बलपूर्वक उखाड़ देने में समर्थ, (श्यावाश्वः) श्यावाश्व अर्थात् दानशील इन्द्रियों से सम्पन्न, (सोभरी) सोभरी अर्थात् उत्तम रीति से पुष्ट करने वाला, (अर्चनानाः) [5]अर्चनानाः अर्थात् पूजनीय उत्तम 'अनस' शकट आदि का रचियता, (विश्वामित्रः) विश्वामित्र अर्थात् सब जगत् का मित्र, (जमदग्निः) [6]जमदग्नि अर्थात् अग्नियों को नित्य प्रज्वलित रखने वाला तेजस्वी, (अत्रिः) [7]अत्रि अर्थात् त्रिविध तापों से मुक्त, (कश्यपः) [8]कश्यप अर्थात् ज्ञान का पालक, ज्ञान का पानकर्ता या जगत् को सूक्ष्म दृष्टि से देखने वाला, (वामदेवः) [9]वामदेव अर्थात् सुन्दरदेव परमेश्वर का उपासक—ये समस्त समर्थ पुरुष (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

---

[१५]-1. कणतेः शब्दार्थकात् औणा० क्वन्। 2- 'कक्षं सेवते' इति याष्कः (नि० २।२)। 3. पुरूणि मीढानि अपत्यानि धनानि वा यस्य

अध्यात्म में—कण्व आदि १२ नाम १२ प्राणों के समझने चाहियें। १२ प्राणों के संग रहने से लक्षणावृत्ति से वह आत्मा भी इन १२ नामों से पुकारा जाता है। आत्मा की उन १२ शक्तियों के साधक भी कण्व आदि नामों से पुकारे जाते हैं।

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुशंसासः पितरो मृडता नः ॥१६॥

भा०—हे (विश्वामित्र) विश्वामित्र अर्थात् सबके मित्र! हे जमदग्नि अर्थात् (जमदग्ने) प्रज्वलित अग्नि वाले! या अग्नि के समान दीप्तियुक्त! हे वशिष्ठ अर्थात् बसने हारों में सबसे मुख्य! हे भरद्-वाज अर्थात् अन्न को भरने हारे! ज्ञानों और अन्नों से सबको पोषण-करने हारे, हे वामदेव अर्थात् ईश्वरोपासक! आप लोग और (शर्दिः) शर्दि अर्थात् शरण देनेवाला, (अत्रिः) अत्रि अर्थात् त्रिविध तापों से मुक्त, ये सब (नः) हमें (अग्रभीत्) ग्रहण करें, स्वीकार करें, अपनावें। ये सभी (सु-संशासः) उत्तम रीति से शासन करने हारे, (पितरः) सबके पालक, आप पूज्य वृद्धजन (नमोभिः) अन्न और दुष्टों के नमाने वाले बलयुक्त साधनों से (नः) हमें (मृडत) सुखी करो। इस मन्त्र में ऋषि सात मुख्य प्राणों के नाम हैं और उन सात शक्तियों के साधक पुरुष और व्यष्टिरूप से जीव आत्मा और समष्टिरूप से परमेश्वर के भी नाम हैं।

इति सायणः। 4. अगान् वृक्षान् अस्यति इति अगस्तिः। दया० उणादि०। 5. 'अर्चनीयमनः शकटं यस्येति सायणः। 6. जमति ज्वलतिकर्मा। 'जमिताग्निः इति यास्कः। 7. तस्मादत्रिर्न त्रय इति यास्कः (नि० ३। १७)। 8. 'कश्यपः पश्यको भवति, यत् सर्व परिपश्यति सौक्ष्म्यात्- (तै० आ० १। ८। ८) 9. वामः वननीयो देवः द्योतको बोधो यस्य सः' इति सा०॥

कश्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ १७ ॥

भा०—(कश्ये) ज्ञानयोग्य, सर्वोपरि शासक, परम वेद्य, ब्रह्म के आश्रय पर विद्वान् लोग अपनी आत्मा को (मृजानाः) शुद्ध करते हुए, (प्रतरम्) अति उत्तम, (नवीयः) नवीन (आयुः) जीवन को (दधानाः) धारण करते हुए, (रिप्रम्) पाप और चित्त के मल को (अति यन्ति) दूर करते हैं । (प्रजया, धनेन) प्रजा और धन ये (आप्यायमानाः) खूब बढ़ते हुए हम लोग (गृहेषु) घरों में (सुरभयः) पुण्य कार्य (स्याम) की सुगन्धि को फैलाते रहें ।

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते १८

भा०—परमेश्वर के उपासक पुरुष (अञ्जते) प्रथम अपने नेत्रों को ज्ञान रूप अंजन से आंजते हैं, (वि अंजते) फिर विशेष रूप से उसका साक्षात् करते हैं और फिर (सम् अञ्जते) भली प्रकार उसका साक्षात् करते हैं और फिर (क्रतुं रिहन्ति) कर्त्ता आत्मा के स्वरूप को भी प्राप्त करते हैं, और उसको (मधुना) अमृत ब्रह्मरस से (अभि अञ्जते) साक्षात् रूप से प्रकाशित करते हैं । (उच्छ्वासे) हृदय समुद्र के श्वासोच्छ्वास में (पतयन्तम्) गति करते हुए, (उक्षणम्) धर्ममेघरूप आनन्द-जल की वर्षा करने वाले, (हिरण्यपावाः) अपने आत्मा को स्वर्ण के समान तप से पवित्र करने वाले तपस्वी योगीजन सर्वद्रष्टा प्रभु को (आसु) इन भीतरी नाड़ियों में (गृह्णते) साक्षात् करते हैं ।

यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥१९॥

भा०—हे (पितरः) माता, पिता, गुरुजनो ! (वः) आप लोगों का (यद्) जो (मुद्रम्) हर्षजनक और (सोम्यं च) सौम्यरूप जो उपदेश है

(तेनो) उसके सहित आप लोग (स्व-यशसः) स्वयं यशस्वी और वीर्यवान् होकर (सचध्वम्) हमें प्राप्त होओ और उसी से (हि) निश्चय से आप सामर्थ्यवान् बने रहो। (ते) वे नाना प्रकार के आप लोग (अर्वाणः) उत्तम मार्ग से गति करने वाले, (कवयः) दूरदर्शी, (सुविदत्राः) उत्तम दानशील या उत्तम ज्ञानसम्पन्न, (विदथे) ज्ञानमय यज्ञ में (हूयमानाः) बुलाये जाकर, (आ शृणोत) हमारे वचनों को सुनो वा हमें उत्तम ज्ञानप्रद वाणियों का उपदेश श्रवण कराओ।

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्
॥ २० ॥ (१४)

भा० —(ये) जो (अत्रयः) अत्रि अर्थात् विविध तापों से रहित, (अंगिरसः) अर्थात् अंगारों के समान तेज से चमकने वाले, (नवग्वाः) अर्थात् नवीन वाणी को प्राप्त करने या प्राप्त कराने वाले, अथवा नवों प्राणों को वश कराने वाले, (इष्टावन्तः) यज्ञ करने हारे, (राति साचः) दान देने, पवित्र दान ग्रहण करने हारे और सबको (दधानाः) धारण पोषण करने वाले हैं, (ये उ) और जो लोगों में (दक्षिणावन्तः) दक्षिणा वाले, दानशील, (सुकृतः) पुण्य कर्मों के करने हारे (स्थ) हैं, वे सब आप एकत्र विराज कर (अस्मिन् बर्हिषि) इस आसन पर या यज्ञ में (मादयध्वम्) प्रसन्न रहो।

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्
॥ २१ ॥

भा०—(अध) और (यथा) जिस प्रकार (नः) हमारे (परासः) अतिश्रेष्ठ, (प्रत्नासः) पुरातन (पितरः) गुरुजन (ऋतम्) सत्य ज्ञान को (आ शशानाः) प्राप्त करते हुए, (शुचि इत्) शुद्ध प्रकाश, शुद्ध आचरण

व शील को (अयन्) प्राप्त होते हैं और (दीध्यतः) स्वयं प्रकाशमान होकर (उक्थ-शासः) वेद मन्त्रों का अनुशासन करते हुए, (क्षाम) अन्धकार को (भिन्दन्तः) नाश करते हुए, (अरुणीः) कान्तिमय ज्ञान-धाराओं या वेदवाणियों को (अप व्रन्) प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार हम भी किया करें।

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥२२॥

भा०—(सुकर्माणः) उत्तम कर्म करने वाले, (सु-रुचः) उत्तम रुचि वाले, (देवयन्तः) देव-उपासना करने वाले, ईश्वर भक्त पुरुष स्वयं (देवाः) विद्वान् होकर अपने (जनिम) जन्म को, (अयः न) लोहार जिस प्रकार लोहे को वा स्वर्णकार जिस प्रकार सोने को आग में तपा २ कर शुद्ध करता है उसी प्रकार (धमन्तः) बराबर तपस्या द्वारा शुद्ध करते हुए और (अग्निं) अपने ज्ञानमय आत्मा को अग्नि के समान (शुचन्तः) प्रदीप्त करते हुए और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की (ववृधन्तः) स्तुतियों द्वारा महिमा बढ़ाते हुए, (उर्वीम्) विशाल (गव्यम्) वाणी के प्रकाश के लिये (नः) हमारी (परिषदम्) परिषद् (अक्रन्) बनावें।

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तांसश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ २३ ॥

भा०—(उग्रः) बलवान् गोपालक जिस प्रकार (क्षुमति) अन्न वाले स्थान पर (पशवः) पशुओं के यूथों की (जनिम) उत्पत्ति को (अन्ति आ अख्यत) देखता है उसी प्रकार (उग्रः) सदा उद्यत दण्ड परमेश्वर भी (देवानां) अग्नि आदि देवों, विद्वानों और प्राणों की (जनिम) उत्पत्ति पर (अंति अख्यत्) सदा दृष्टि रखता है, उसकी रक्षा करता है (मर्त्तास चित्) मरणधर्मा पुरुष तो केवल (उर्वशीः) स्त्रियों का (अकृप्रन्) भोग करते हैं। परन्तु (अर्यः) वह सबका स्वामी परमेश्वर (उपरस्य) गर्भाशय

में वपन किये हुए गर्भस्थ (आयोः) मनुष्य के (वृधे चित्) बढ़ाने में भी समर्थ है।

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥२४॥

भा०—हे परमेश्वर हम (ते) तेरे लिये (अकर्म) कर्म करें और (सु-अपसः) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले होवें। (विभातीः) प्रकाशवान् (उषसः) उषाएं (ऋतम्) हमारे यज्ञ या ज्ञान के कर्म में (अवस्रन्) नित्य आया करें। (देवाः) विद्वान् जन (यद् अवन्ति) जिसकी रक्षा करते हैं। (तद्-विश्वम्) वह विश्व (भद्रम्) अति सुखकारी हो। हम (सुवीराः) उत्तम वीर्यवान् होकर (विदथे) ज्ञानमय यज्ञ में (बृहत्) उस महान् परमेश्वर की खूब (वदेम) स्तुति करें।

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २५ ॥

भा०—(मरुत्वान्) प्राणों और वायुओं या प्रजाओं का स्वामी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान आत्मा, परमात्मा और राजा (मा) मेरी (प्राच्याः) प्राची (दिशः) दिशा से (पातु) रक्षा करे, (उपरि) ऊपर से (उपरि द्याम् इव) जैसे कि सहस्रबाहु परमात्मा की बाहु द्वारा प्रेरित की गई पृथिवी द्युलोक के ऊपर तक गति करती हुई हमारी रक्षा करती है। (ये) जो (देवानाम्) राजा और राजा के नियत अधिकारियों में से (इह) इस राष्ट्र में (हुत भागाः स्थ) आप लोग अपने वेतन या अंश को प्राप्त करने वाले हैं वे (लोक-कृतः) प्रजाओं के व्यवस्थाकर्त्ता और (पथिकृतः) मार्ग दर्शाने वाले या कानून बनाने वाले हैं, हम (यजामहे) उनकी पूजा, सत्कार करें।

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहु० । ० ॥ २६ ॥

भा०—(धाता) सबका पालन पोषण और धारण करने वाला

परमेश्वर (मा) मुझको (निर्ऋत्या) पृथिवी की शक्ति द्वारा (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण की दिशा से (पातु) बचावे जिस प्रकार कि पृथिवी द्युलोक के ऊपर तक गति करती हुई हमारी रक्षा करती है, (लोककृतः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

अदि॑तिर्मादि॒त्यैः प्र॒तीच्या॑ दि॒शः पा॑तु बाहु॒० । ० ॥ २७ ॥

भा०—(अदितिः) अखण्डित शासन वाला परमेश्वर (अदित्यै) अपने उत्पन्न किये सूर्य आदि पदार्थों द्वारा (मा) मेरी (प्रतीच्या दिशः) प्रतीची दिशा से (पातु) रक्षा करे । (बाहुच्युता० इत्यादि) पूर्ववत् ।

सोमो॑ मा॒ विश्वै॑र्दे॒वैरुदी॑च्या दि॒शः पा॑तु बाहु॒० । ० ॥ २८ ॥

भा०—(सोमः) सर्वोत्पादक और सर्वप्रेरक प्रभु (मा) मेरी (विश्वै देवैः) जीवन दान करने वाले, दिव्य गुण वाले पदार्थों द्वारा (उदीच्याः दिशः) उदीची दिशा की ओर से (पातु) रक्षा करे (बाहु-च्युता० इत्यादि) पूर्ववत् ।

ध॒र्त्ता ह॑ त्वा ध॒रुणो॑ धारयाता ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॑वि॒ता द्यामि॑वो॒परि॑ । लो॒क॒कृतः॑ ० ॥ २९ ॥

भा०—(धर्त्ता) विश्व का धारण करने वाला, (धरुणः) आश्रय-स्तम्भ के समान सब विश्व का आधारभूत प्रभु (त्वा) तेरा (ऊर्ध्वम्) ऊंचे स्थानों में भी (धारयातै) उसी प्रकार धारण अर्थात् पालन पोषण करता है जिस प्रकार (सविता) सर्वप्रेरक सूर्य (उपरि) ऊपर (भानुम्) प्रकाशमान (द्याम् इव) द्यौ लोक को धारण करता है । (लोककृतः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

अधिकारियों की पदों पर नियुक्ति

प्राच्यां॑ त्वा दि॒शि पु॒रा सं॒वृतः॑ स्व॒धाया॒मा द॑धामि बाहु॒० । ० ॥ ३० ॥ (१५)

भा०—हे पुरुष ! (प्राच्यां दिशि) प्राची दिशा से (पुरा) पालन

करने वाली पुरी या नगरी के चारों ओर लगी परकोट व परिखा द्वारा (संवृतः) भली प्रकार आवृत, सुरक्षित होकर मैं राजा (त्वा) तुझको (स्वधायाम्) धारण करने योग्य अन्न, वेतन आदि पुरस्कार पर (आदधामि) स्थापित करता हूँ। (बाहुच्युता० इत्यादि) पूर्ववत्।

दक्षिणायां त्वा दिशि । पुरा० । ० ॥ ३१ ॥ प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा० । ० ॥३२॥ उदीच्यां त्वा दिशि पुरा० । ० ॥३३॥ ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा० । ० ॥३४॥ ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दंधामि बाहुच्युतां पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३५ ॥

भा०—हे पुरुष ! (त्वा ५) तुझको (दक्षिणायां दिशि) दक्षिण दिशा में, (प्रतीच्यां दिशि) प्रतीची दिशा में, (उदीच्यां दिशि) उत्तर दिशा में, (ध्रुवायां दिशि) नीचे की दिशा में; (ऊर्ध्वायां दिशि) और ऊपर की दिशा में, (पुरा संवृतः) पुर की परकोट से सुरक्षित रहता हुआ मैं राजा (स्वधायाम् आदधामि) स्वयं धारण ग्रहण करने योग्य अन्न, वेतन आदि पुरस्कार पर, अधिकारी रूप से, नियत करता हूँ (बाहुच्युता लोककृतः० इत्यादि पूर्ववत्)

धर्तासि धरुणोऽसि वंसंगोऽसि ॥ ३६ ॥
उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥

भा०—हे राजन् ! (धर्त्ता असि) तू प्रजाओं का धारण करने हारा, (धरुणः असि) तथा आश्रय है। (वंसगः) वृषभ के समान सुन्दर, नरश्रेष्ठ है। (उदपूः असि) तू जल, मधु और वायु के समान प्रजा का पालन करने वाला है।

राजा और प्रजा का परस्पर व्यवहार

इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्त आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने ॥३८॥

भा०—(यत्) जब राजसभा और प्रजासभा या माता और पिता आप दोनों (यमे) सुव्यवस्थित युगलरूप से (यतमाने) परस्पर के पालन में यत्न करते हुए (ऐतम्) आते हो तब तुम दोनों (माम्) मेरी (इतः च) समीप के देश से और (अमुतः च) दूर के देश से (अवतास्) उसी प्रकार रक्षा करो जैसे पृथ्वी समीप से और आकाश दूर के देश से रक्षा करता है। (देवयन्तः) चमकने वाले और शक्ति देने वाले पदार्थों को अपने वश करने वाले विद्वान् तथा (मानुषाः) विचारशील लोग (वां) तुम दोनों का (भरन्) भली प्रकार पालन-पोषण करें। आप दोनों (स्वं लोकम्) अपने अपने स्थान, पद और प्रतिष्ठा को (विदाने) प्राप्त करते हुए और भली प्रकार जानते हुए (आ सीदताम्) विराजमान रहो।

स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः।
वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ३९

भा०—हे राजगण और प्रजागण! आप दोनों (नः) हमारे (इन्दवे) परम ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (सु-आसस्थे) सुखपूर्वक अपने २ आसन वा पद पर उपविष्ट (भवतम्) हो जाओ। (वां) तुम दोनों को मैं (नमोभिः) वश करने वाला उत्तम नियमों द्वारा (पूर्व्यं ब्रह्म) पुरातन वेद के उपदेश से (युजे) युक्त करता हूँ। (सूरिः) सूर्य जिस प्रकार (पथ्या) उचित मार्गों से आता है, उसी प्रकार (श्लोकः) समस्त पदार्थों का दर्शन कराने वाला यह ज्ञानमय वेद (वि एति) विविध मार्गों में गति करता है। हे (अमृतासः) दीर्घायु पुरुषो! आप (विश्वे) सब लोग (एतत्) इस वेद-ज्ञान का (शृण्वन्तु) श्रवण करें।

त्रीणि पदानि रूपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वेद् व्रतेन।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ४० (१६)

भा०—(रूपः) बीज से उत्पन्न होने वाला पुरुष (त्रीणि पदानि) ज्ञानमय वेद-त्रयी को (अनु, प्ररोहत्) क्रम से चढ़ जाता है। (अनु)

एतत्) और उसके पश्चात् (व्रतेन) ब्रह्मचर्य आदि व्रत पूर्वक (चतुष्पदीम्) चार पदों वाली चतुर्वेदमयी वाणी को प्राप्त होता है, तब (अक्षरेण) अविनाशी 'ओंकार' रूप से (अर्कम्) उपासना करने योग्य परमेश्वर का (प्रति मिमीते) भिन्न २ गुणों से ज्ञान करता है और तब (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (नाभौ) एकमात्र आश्रय रूप परमेश्वर में ही मग्न होकर (अभि) उसको साक्षात् करके अपने को (सं पुनाति) भली प्रकार पवित्र कर लेता है।

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्युं प्रजायै किम्मृतं नावृणीत।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वमा रिरेच ॥ ४१॥

भा०—(देवेभ्यः) देवों से (कम्) किस प्रकार की (मृत्युम्) मृत्यु को परमेश्वर ने (अवृणीत) दूर किया है? (प्रजायै) प्रजा से (कम्) किस प्रकार के (अमृतम्) अमृत को (न अवृणीत) नहीं दूर किया। अर्थात् माता पिता आदि देव सन्तति परम्परा द्वारा अमर कर दिये गये हैं। (बृहस्पतिः) महान् लोकों का पालक (ऋषिः) सर्वद्रष्टा परमेश्वर (यज्ञम्) ऐसे प्रजातन्तु रूप यज्ञ को (अतनुत) विस्तारित करता है और (यमः) वह सर्वनियन्ता परमेश्वर जीव के (प्रियं तन्वम्) प्रिय शरीर को (आ रिरेच) मृत्यु रूप अग्नि से हर लेता है।

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ४२

भा०—हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थों को जानने हारे (अग्ने) सबके अग्रणी! (ईडितः) स्तुतिपात्र (त्वम्) तु (हव्यानि) अन्नों को (सुरभीणि) सुगन्धित (कृत्वा) करके (अवाट्) प्रदान करता है और (पितृभ्यः) प्रजा के पालन करने वाले गृहस्थ माता पिता को (प्र अदाः) प्रदान करता है। (ते) वे (स्वधया) अपने देह को पालन करने वाले पर्याप्त अन्न के रूप में (हव्यानि) उन नाना प्रकार के हव्य रूप अन्नों को (अक्षन्) प्राप्त करते,

उनका उपयोग करते हैं। हे (देव) सबको देने वाले देव! राजन्! प्रभो! (त्वं) तू सब (प्रयता हवींषि) प्रदान किये अन्नों को (अद्धि) स्वीकार कर लेता है।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ४३ ॥

भा०—हे (पितरः) राष्ट्र के पालक, माता पिता, गुरुजन एवं वृद्ध पुरुषो! आप लोग (अरुणीनाम्) लाल वर्ण वाली अर्थात् स्वस्थ माताओं या गौओं या पृथिवियों के (उपस्थे) समीप, उनके आश्रय में (आसीनासः) रहते हुए, (दाशुषे) अन्न आदि देने वाले (मर्त्याय) मरणधर्मा पुरुष को (रयिं धत्त) धन प्रदान करो और (पितरः) पिता लोग जिस प्रकार (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को धनादि प्रदान करते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (वस्वः) धन (प्रयच्छत) प्रदान करो। (ते) हे नाना विभागों के अध्यक्ष अधिकारी पुरुषो! आप लोग (इह) इस राष्ट्र में (ऊर्जम्) बलकारक अन्न (दधात) प्रदान करो।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥४४॥

भा०—(अग्नि-स्वात्ताः) जिन गृहस्थ पुरुषों ने यज्ञ वा सोमपान नहीं किया वे 'अग्निष्वात्त' हैं, अथवा जिन्होंने अग्नि, विद्युत् आदि का विज्ञान प्राप्त किया है, या अग्नि के समान तापदायक तेजों से सम्पन्न हैं, वे आप (पितरः) प्रजा के पालक गण, (इह) इस यज्ञ में (आ गच्छत) आवें। हे (सु-प्र-नीतयः) उत्तम नीति का उपदेश करने हारे विद्वान् लोगो! आप (सदः-सदः) गृह २ में (सदत) प्राप्त होओ और (बर्हिषि) यज्ञ में (प्र-यतानि) प्रदान किये (हवींषि) अन्न आदि पदार्थों को (अत्तो = अत्त उ) खाओ और (नः) हमें (सर्व-वीरम्) सब प्रकार के वीर पुरुषों से युक्त (रयिम्) धन सम्पत्ति का (दधात) प्रदान करो। ये यज्वानस्ते

पितरो बर्हिषदः । ये वा अयज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरोऽग्निष्वाताः, इति तै० ब्रा० १ । ६ । ९ । ६ ॥

उप॑हूता नः पि॒तर॑: सो॒म्यासो॑ बर्हि॒ष्ये॑षु नि॒धिषु॑ प्रि॒येषु॑ ।
त आ ग॑मन्तु त इ॒ह श्रु॑वन्त्वधि॑ ब्रुवन्तु ते ऽवन्त्वस्मान् ॥ ४५ ॥

भा०—(नः) हमारे (सोम्यासः) सौम्य स्वभाव वाले (पितरः) पालक जन, (बर्हिष्येषु) यज्ञ सम्बन्धी (प्रियेषु) प्रिय (निधिषु) रत्न आदि पदार्थों द्वारा (उपहूताः) आदर सत्कारपूर्वक अर्चित किये जायं। (ते) वे (आ गमन्तु) आवें, (ते) वे (इह) इस यज्ञ या राष्ट्र या लोक में (श्रुवन्तु) हमारी प्रार्थनाओं को सुनें और (अस्मान्) हमें (अधि ब्रुवन्तु) उपदेश करें और (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें ।

ये नः॑ पि॒तुः पि॒तरो॒ ये पि॑ताम॒हा अ॑नूजहि॒रे सो॑मपी॒थं वसि॑ष्ठाः ।
तेभि॑र्य॒मः सं॑ररा॒णो ह॒वींष्यु॒शन्नु॒शद्भिः॑ प्रतिका॒मम॑त्तु ॥ ४६ ॥

भा०—(ये) जो (नः) हमारे (पितुः) पिता के (पितरः) पिता और (ये) जो (पितामहाः) बाबा हैं, जो (वसिष्ठाः) बसने वाले बस्ती के निवासियों में सबसे श्रेष्ठ होकर (सोमपीथम्) सोमपान या राष्ट्र के पालन-कार्य को (अनु जहिरे) क्रम से एक दूसरे के बाद करते हैं, (तेभिः) उनके साथ (सं-रराणः) अच्छी प्रकार रमण करता हुआ (यमः) प्रजाओं का नियन्ता राजा, (हवींषि उशन्) श्रेष्ठ अन्नों या भोज्य पदार्थों को चाहता हुआ, (उशद्भिः) नाना भोग्य पदार्थों को स्वयं भी चाहने वाले प्रजारक्षक अधिकारियों के साथ (प्रतिकामम्) अपनी इच्छानुसार (हवींषि) अन्न आदि सात्विक भोग्य पदार्थों का (अत्तु) भोग या ग्रहण, सेवन करे ।

ये ता॑तृ॒षुर्दे॑व॒त्रा जेह॑माना होत्रा॒विदः॒ स्तोम॑तष्टासो अ॒र्कैः ।
आग्ने॑ याहि सु॒हस्रं॑ देवव॒न्दैः स॒त्यैः क॒विभि॒र्ऋषि॑भिर्घर्म॒सद्भिः॑ ४७

भा०—(ये) जो (देवत्रा) विद्वान् , परमेश्वर की प्राप्ति के लिये

(जेहमानाः) निरन्तर यज्ञशील होते हुए (होत्रा-विदः) 'होत्र' त्याग-पूर्वक दिये अन्नों को प्राप्त करने वाले, वा श्रद्धा पूर्वक ग्रहण करने योग्य वेदवाणियों के ज्ञाता (अर्कैः) स्तुति के वचनों द्वारा (स्तोम-तष्टासः) स्तुतियों को करने वाले, (तातृपुः) ईश्वर के रस के लिए पिपासा अनु-भव करते हैं, इन (सत्यैः) सच्चे, (धर्म-सद्भिः) यज्ञ में बैठने वाले (ऋषिभिः कविभिः) हजारों मन्त्रद्रष्टा ऋषियों, कवियों (सहस्रम्) और ईश्वर के उपासकों के साथ हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् या आचार्य ! (आ याहि) आप आवें ।

ये स॒त्यासो॑ हवि॒रदो॑ हवि॒ष्पा इन्द्रे॑ण दे॒वैः सर॑थं तुरेण॑ ।
आग्ने॑ याहि सुवि॒दत्रे॑भि॒र॒र्वाङ् परैः॑ पूर्वै॒र्ऋषि॑भिर्घर्म॒सद्भिः॑ ॥ ४८ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! आचार्य ! परमेश्वर ! (ये) जो (सत्यासः) सत्यवादी, सत्यकर्मा, (हविः-अदः) पवित्र अन्न को खाने वाले, (हविष्पाः) पवित्र रस का पान करने वाले होकर (तुरेण) शत्रु नाशक या वेगवान् राजा के साथ (देवैः) तथा समस्त राजाओं के साथ (सरथम्) उनके समान रथ पर सवार होकर चलते हैं, उन (सु-विदत्रेभिः) उत्तम ज्ञानी पुरुषों और (परैः) उत्कृष्ट (पूर्वैः) और ज्ञान में पूर्ण, (घर्म-सद्भिः) सूर्य के प्रखर तेज के समान तापकारी तेज में विराजमान, (ऋषिभिः) ज्ञानद्रष्टा ऋषियों के साथ (आ याहि) हमें प्राप्त हो ।

उप॑ सर्प मा॒तरं॒ भूमि॑मे॒तामु॑रु॒व्यच॑सं पृथि॒वीं सु॒शेवा॑म् ।
ऊर्ण॑म्रदाः पृथि॒वी दक्षि॑णावत ए॒षा त्वा॑ पातु प्रप॑थे पु॒रस्ता॑त् ४९

भा०—हे राजन् ! (एताम्) इस (उरु-व्यचसम्) विशाल विस्तार वाली, (सु-शेवाम्) सुखप्रद, तथा सबको उत्पन्न करने वाली पृथिवी माता को (उप-सर्पः) तू प्राप्त हो । (दक्षिणावतः) दक्षिणा, या शक्ति, वा अन्न से सम्पन्न अर्थ-सम्पत्ति, या कार्य को अधिक बलपूर्वक

करने की शक्तियों से सम्पन्न पुरुष के लिए यह (पृथिवी) पृथिवी भी (ऊर्णम्रदाः) कठिन न होकर उनके समान अति कोमल है, (एषा) वह पृथिवी (प्रपथे) सर्वोत्तम मार्ग में (पुरस्तात्) आगे चलने वाला जो है (त्वा) उसकी (पातु) पालना करे ।

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥ (१७)

भा०—हे (पृथिवि) भूमि ! (उत्-सु-अञ्चस्व) उन्नति को प्राप्त हो । (मा नि बाधथाः) अपने ऊपर के निवासी प्रजा और राजा को पीड़ित मत कर । (अस्मै) इस उत्तम राजा के लिये (सू-उपायना) उत्तम रीति से प्राप्त करने योग्य, एवं उपहार के समान और (सु-उपसर्पणा) उत्तम रीति से उसके शरण में आने वाली होकर (भव) रह । हे (भूमे) सर्वाश्रय भूमे ! (यथा माता पुत्रं) जिस प्रकार माता पुत्र को अपना दूध पिलाता है उसी प्रकार तू (एनम्) इस राजा को (सिचा) सुखप्रद अन्नों से पूर्ण कर और (अभि ऊर्णुहि) उसे सब प्रकार से आच्छादित कर, सुरक्षित कर ।

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥५१॥

भा०—(उत् स्वञ्चमाना) खूब पुलकित शरीर अर्थात् खूब ओषधि और कृषि आदि से सम्पन्न पृथिवी (सु तिष्ठतु) उत्तम रीति से विराजमान रहे । (सहस्रम्) हज़ारों लोग (मितः = मिथः) परस्पर मिलकर (श्रयन्ताम्) इस पर अपना बसेरा करें । (ते) वे (गृहासः) गृह (घृतश्चुतः) घृत आदि पुष्टि-कारक पदार्थों को देने वाले, (स्योनाः) सुखकारक और (अस्मै) इस स्वामी के लिये (विश्वाहा) सब प्रकार से, सब दिनों, (अत्र) इस लोक में (शरणाः) शरणप्रद (सन्तु) हों ।

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ५२

भा०—हे राजन् ! (ते पृथिवीम्) तेरे निमित्त पृथिवी को (उत् स्तभ्नामि) उन्नत करता हूँ (त्वत् परि) तेरे इर्दगिर्द, (इमं लोगम्) इस लोकसमाज को (निदधन्) बसाता हुआ (अहम्) मैं (मो रिषम्) पीड़ित न होऊं। (पितरः) राष्ट्र के पालक लोग (स्थूणाम्) राज्य के भार को उठाने वाली इस धुरा को (धारयन्ति) स्वयं धारण करते हैं। हे पुरुष ! (तत्र) उस कार्य में (यमः = मयः) व्यवस्थापक या शिल्पी (ते) तेरे लिये (सादना) अनेक आश्रयस्थान, गृहों, इमारतों को (कृणोतु) बनावे ।

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥५३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! सेनापते ! तू (इमम्) इस (चमसम्) पृथ्वी के भोग्य पदार्थों के भोग करने वाले, राजा के प्रति (मा वि जिह्वरः) कुटिलता का वर्त्ताव मत कर। यह (देवनां प्रियः) समस्त विद्वानों और राजाओं का (उत) और (सोम्यानाम्) ज्ञान से सम्पन्न विद्वानों का (प्रियः) प्यारा है। (अयम्) यह (यः) जो (देव-पानः) विद्वानों का रक्षक (चमसा) स्वयं भी नाना भोग्य पदार्थों का भोक्ता है (तस्मिन्) उसके आश्रय पर रहने वाले (अमृताः) अमृत रूप (देवाः) विद्वान् पुरुष (मादयन्ताम्) हर्षित और आनन्दित हों ।

अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते ।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ५४

भा०—(अथर्वा) अथर्ववेद का ज्ञाता (यम्) जिस (पूर्णम्) पूर्ण (चमसम्) चमस पात्र को, (वाजिनीवते) सेना के बल से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् सेनापति के लिये (अबिभः) स्वयं धारण करता है, (तस्मिन्) उसके आश्रय पर ही (सु-कृतस्य) उत्तम पुण्यमय कार्यों के (भक्षम्) भोग्य फल को (कृणोति) वह उत्पन्न करता है। (तस्मिन्) और उसके

आश्रय पर हों (इन्दुः) पात्र में रखे सोम के समान ज्ञान रस से सम्पन्न विद्वान् गण भी (विश्वदानीम्) सदा (पवते) उन्नति को प्राप्त करते हैं।

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥५५॥

भा०—हे पुरुष ! (ते) तेरे शरीर में (यत्) यदि (कृष्णः शकुनः) काला पक्षी, काक आदि का काटने हारा शक्तिशाली जन्तु, (पिपीलः) कीड़ा आदि जन्तु, (सर्पः) सांप, (उत श्वापदः) और कुत्ता, भेड़िया आदि हिंसक जन्तु, (आ तुतोद) घाव कर दे तो (तत्) उसको (विश्व-अत्) सब पदार्थों का भक्षक (अग्निः) अग्नि (अगदं कृणोतु) रोग रहित करे और (यः) जो (सोमः) सोम ओषधि का ज्ञाता (ब्राह्मणान्) वेद के विद्वान् पुरुषों में (आविवेश) विद्यमान है वह वैद्य भी तुझको (अगदं कृणोतु) रोगरहित करे।

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥ ५६ ॥

भा०—(ओषधयः) सब ओषधियां (पयस्वतीः) रस वाली हों और (मामकं पयः) मेरा वचन भी (पयस्वत्) रस वाला हो और (यत्) जो (अपाम्) जलों के (पयसः) सारभूत पदार्थ का भी (पयः) रस है (तेन सह) उससे परमात्मा (मा) मुझे (शुम्भतु) सुशोभित करे।

स्त्रियों के कर्त्तव्य

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ५७ ॥

भा०—(इमा) ये (अविधवाः) सधवा (नारीः) नारियें (सु-पत्नीः) उत्तम गृहस्वामिनी हैं, वे (सर्पिषा) घृत से मिले (आञ्जनेन) अंजन वा लेपन द्रव्य से (संस्पृशन्ताम्) अपनी देह आंजें, उसे देह में मलें और

वे (अनश्रवः) बिना आंसू के, सुप्रसन्न, (अनमीवाः) रोगरहित (जनयः) सन्तान जनने में समर्थ स्त्रियां (सु रत्ना) उत्तम रत्नों को धारण करती हुई (अग्रे) प्रथम (योनिम्) निवासगृह या प्रतिष्ठा के पद या सेज को (आ रोहन्तु) प्राप्त करें । स्त्री और पुरुषों में प्रथम स्त्रियें ही आदर पूर्वक प्रवेश करें अनन्तर पुरुष, यह शिष्टाचार है ।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ ५८ ॥

भा०—हे पुरुष ! तू (पितृभिः) पालन करने वाले वृद्ध महानुभावों से (सं गच्छस्व) सत्संग किया कर । (यमेन) इन्द्रियों का संयम करने वाले ब्रह्मचारी पुरुष से (सम्) संगति लाभ कर । (परमे व्योमन्) उस परम रक्षास्थान परमेश्वर का आश्रय लेकर (इष्ट-आपूर्तेन सम्) यज्ञ आदि देव-उपासना के कार्यों और लोकोपकार के कार्यों के साथ (सं) अपने को संगत कर और (अवद्यं हित्वा) निन्दा योग्य आचरण को छोड़ कर तू (पुनः) फिर (अस्तम्) अपने घर को आ और (सु-वर्चाः) उत्तम तेज से सम्पन्न होकर (तन्वा) देह से (सं गच्छताम्) सदा संयुक्त रहे ।

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥५९॥

भा०—(ये) जो (नः) हमारे (पितुः) पिता के (पितरः) पिता और (पितामहाः) उनके भी पितामह हैं और (ये) जो भी (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (आ-विविशुः) प्रविष्ट हैं अर्थात् देह छोड़ कर मोक्ष में आश्रय करते हैं, (असु-नीतिः) सर्व-प्राणप्रद (स्व-राड्) स्वयं प्रकाशमान परमेश्वर (यथा-वशम्) उनकी प्रबल इच्छाओं या संस्कारों के अनुसार (अद्य) आज तक (तेभ्यः) उनके (तन्वः) शरीरों को (कल्पयाति) बनाता है ।

शं ते॑ नीहा॒रो भ॑वतु॒ शं ते॑ प्रु॒ष्वाव॑ शीयताम् ।
शीति॑के॒ शीति॑कावति॒ ह्लादि॑के॒ ह्लादि॑कावति ।
म॒ण्डू॒क्य॒प्सु शं भु॑व इ॒मं स्व॒ग्निं श॑मय ॥ ६० ॥ (१८)

भा०—हे पुरुष ! (ते) तेरे लिये (नीहारः) कोहरा (शं) सुखकार (भवतु) हो। (प्रुष्वा) जलविन्दु के फुहारे भी (ते) तेरे लिये (शम्) सुखकारी रूप से (अव शीयताम्) भूमि पर आवें। हे (शीतिके) शीत गुण वाली लते ! हे (शीतिकावति) शीतगुण वाली लता से युक्त भूमे ! और (ह्लादिके) चित्त में हर्ष उत्पन्न करने वाली लते ! और हे (ह्लादि-कावति) हर्ष उत्पन्न करने वाली ओषधियों से युक्त भूमे ! तू (मण्डूकी) मेंढक के समान जल में डूबी रह कर सदा (शं भुवः) कल्याणकारी हो और (इमम् अग्निम्) इस जीव रूप अग्नि को (सु शमय) भली प्रकार शान्त कर।

वि॒वस्वा॑न् नो॒ अभ॑यं कृणोतु॒ यः सु॒त्रामा॑ जी॒रदा॑नुः सु॒दानुः॑ ।
इ॒हेमे वी॒रा ब॒हवो॑ भवन्तु॒ गोम॒दश्व॑व॒न्मय्य॑स्तु पु॒ष्टम् ॥ ६१ ॥

भा०—(यः) जो (सु-त्रामा) उत्तम रीति से प्रजा के पालन में समर्थ, (जीरदानुः) सबको प्राण और अन्न देने में समर्थ और (सु-दानुः) उत्तम कल्याणमय दान करने हारा है, वह (विवस्वान्) विशेष धनैश्वर्य-सम्पन्न महापुरुष राजा या प्रभु, विविध वस्तुओं के स्वामी सूर्य के तुल्य (नः) हम प्रजाओं के लिये (अभयम्) अभय (कृणोतु) करे। (इह) इस राष्ट्र में (इमे) ये (बहवः) नाना प्रकार के (वीराः) वीर पुरुष (भवन्तु) रहें और (मयि) मेरे पास (गोमत्) गौओं और (अश्ववत्) घोड़ों वाला बहुत (पुष्टम्) पुष्टिकारी या अतिपुष्ट जंगम धन (अस्तु) हो।

वि॒वस्वा॑न् नो॒ अ॒मृत॒त्वे द॑धातु॒ परै॑तु मृ॒त्युर॒मृतं॑ न॒ ऐतु॑ ।
इ॒मान् र॑क्षतु॒ पुरु॑षा॒ना ज॑रि॒म्णो मो ष्वे॑षा॒मस॑वो य॒मं गुः॑ ॥६२॥

भा०—(विवस्वान्) विविध ऐश्वर्यों से युक्त राजा, सूर्य, या परमेश्वर

(नः) हमें (अमृतत्वे) दीर्घजीवन के मार्ग में (दधातु) बनाये रक्खे। (मृत्युः) प्राणों का देह से छूटने की घटना (परा एतु) दूर चली जाय। (अमृतम्) सैकड़ों वर्षों का जीवन (नः) हमें (एतु) प्राप्त हो। वह प्रभु (इमान् पुरुषान्) इन राष्ट्रवासी पुरुषों की (आ जरिम्णः) शरीर के स्वयं जीर्ण हो जाने के काल तक (रक्षतु) रक्षा करे। (एषाम्) इनके (असवः) प्राण (यमम्) मृत्यु के वश (मो सु गुः) न हों।

यो दुध्रे अन्तरिक्षे न मुह्ना पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम्।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात्॥६३॥

भा०—(यः) जो (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (न) मानो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष आकाश में समस्त लोकों को (दध्रे) धारण करता है और जो (पितृणाम्) पालकों में से (कविः) सबसे अधिक प्रज्ञावान् और (मतीनाम्) मननशील पुरुषों में से (प्र-मतिः) सबसे उत्कृष्ट मतिमान् है, हे (विश्व-मित्राः) समस्त प्राणियों को स्नेह करने वाले या सब विश्व को मरण से बचाने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (तम् अर्चत) उसकी अर्चना करो, उसकी जो कि (नः) हम सबका (यमः) नियन्ता है और जो हमें (जीवसे) जीवन भर (प्र-तरम्) बड़ी ही उत्तम रीति से (धात्) पालन पोषण करता है। विश्वमित्राः = सर्वजनमित्रभूताः ब्राह्मणाः। सा०॥

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ६४

भा०—हे (ऋषयः) वेद मन्त्रों का साक्षात् करने हारे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (उत्त-मम्) सबसे उत्तम (दिवम्) और प्रकाश-मय मोक्ष पदवी को (आ रोहत) प्राप्त करो। आप लोग (मा बिभीतन) निर्भय हो जाओ। हे (सोम-पाः) ब्रह्मानन्द रस का पान करने हारे योगिजनो ! और हे (सोम-पायिनः) अन्यों को आनन्दरस का पान कराने हारे पुरुषो ! (वः) आप लोगों के लिये (इदम्) यह (हविः)

अन्न (क्रियते) तैयार किया जाता है। हम भी आप की कृपा से (उत्-तमम्) सर्वोत्कृष्ट (ज्योतिः) परम प्रकाश परमेश्वर को (अगन्म) प्राप्त होते हैं।

प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ६५ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानमय, सर्वप्रकाशक, सबका अग्रणी परमेश्वर (बृहता केतुना) बड़े भारी ज्ञान से (प्र भाति) खूब प्रकाशित है। (रोदसी) आकाश और पृथिवी को वह (वृषभः) सब सुखों का वर्षक (आ रोरवीति) अपनी गर्जना से खूब प्रतिध्वनित करता है। वह (दिवः) महान् आकाश के (अन्तात्) पहले सिरे से (उप-माम्) मेरे तक (उत् अनाट्) व्याप रहा है। वही (महिषः) महान् सर्वव्यापक (अपाम्) मूल प्रकृति के परमाणुओं के (उपस्थे) भीतर भी (ववर्ध) व्यापक है।

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६६॥

भा०—हे परमात्मन् ! (हृदा वेनन्तः) हृदय से कामना करते हुए ऋषि लोग (नाके) परम आनन्दमय मोक्षधाम में (उप पतन्तम्) गमन कर रहे हैं, जो कि (त्वा) तेरा (हृदा अभि अचक्षत) हृदय से साक्षात् दर्शन करते हैं, (हिरण्य-पक्षम्) अभिरमणीय तेजोमय स्वरूप को ग्रहण करने वाला है, (वरुणस्य) जो तू श्रेष्ठ पुरुष का (दूतम्) दूत के समान हितकर है और (योनौ) यम नियमों के पालन करने वाले के हृदय में (शकुनम्) शक्ति देने वाला (भुरण्युम्) तथा भरण-पोषण करने वाला है।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥६७॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (यथा) जिस प्रकार (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को धन-ऐश्वर्य और ज्ञान प्रदान करता है उसी प्रकार तू (नः) हमें (क्रतुम्) कर्म, कर्मफल और ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा । हे समस्त मनुष्यों से पुकारे गये ! (नः) हमें (शिक्ष) शिक्षा दो । (अस्मिन्) इस (यामनि) व्यवस्थित राष्ट्र वा संसार-मार्ग में (जीवाः) हम जीवित रह कर (ज्योतिः अशीमहि) उत्तम ज्ञान-ज्योति का भोग करें ।

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ६८ ॥

भा०—हे पुरुष ! (देवाः) दिव्य पदार्थ, पञ्च भूत, सूर्य, चन्द्र, मेघ आदि नैसर्गिक शक्तिमान् पदार्थ या स्वयं प्राणगण (यान्) जिन (ते) तेरे (कुम्भान्) रस को गुप्तरूप से धारण करने हारे कलशों के समान शारीरिक रस के पात्रों को, (अपूप-अपिहितान्) इन्द्रियों और तद् ग्राह्य विषयों से आच्छादित रूप से (अधारयन्) धारण कर रहे हैं, (ते) वे नाना प्रकार के रसपूर्ण कलश (ते) तेरे लिये (स्वधावन्तः) आत्मा या देह के अपने धारण सामर्थ्य या शक्ति से युक्त (मधुमन्तः) मधु के समान मधुर आनन्द से युक्त घटों के तुल्य, (घृतश्चुतः) घृत के समान पुष्टिकर और तेज को प्रदान करने वाले (सन्तु) हों ।

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥६९॥

भा०—हे पुरुष ! (ते) तेरे निमित्त (याः) जो (स्वधावतीः) तिल, अन्न, (धानाः) और धान्य (अनु किरामि) खेतों में बखेरता हूँ, (ताः) वे (ते) तेरे लिये (विभ्वीः) खूब अधिक, (प्रभ्वीः) और उत्कृष्ट बल पैदा करने वाली मात्रा में (सन्तु) हों । (यमः राजा) राष्ट्र का नियन्ता राजा (ताः) उन अन्न-सम्पत्तियों को प्राप्त करने के लिये (ते) तुझे (अनु मन्यताम्) अनुज्ञा करे । वह उसमें बाधा न करे ।

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥ ७० ॥

भा०—हे (वनस्पते) महावृक्ष के समान सब पर अपनी कृपा छाया रखने हारे सर्वशरण परमेश्वर । (यः एषः) जो यह पुरुष (त्वयि) तुझमें (निहितः) विलीन हो जाता है, इस देह को छोड़ कर तेरे पास पहुँच जाता है, तू उसको (पुनः देहि) पुनः शरीर प्रदान कर, (यथा) जिससे (यमस्य) सर्वनियन्ता के (सादने) शरण में रहता हुआ ही वह परोपकारी जन सर्व साधारण को (विदथानि) ज्ञानों का (वदन्) उपदेश करता हुआ (आसातै) इस लोक में विद्यमान रहे ।

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥ ७१ ॥

भा०—हे (जात-वेदः) समस्त उत्पन्न प्राणियों को जानने हारे परमेश्वर ! (आ रभस्व) तू उसे अपनी शरण में ले । (ते) तेरा (हरः) हरणशील सामर्थ्य (तेजस्वत्) अग्नि के समान तेज से युक्त (अस्तु) हो । (अस्य) इस जीव के (शरीरम्) शरीर को (सं दह) सामान्य अग्नि के समान ही भस्म कर डाल, जिससे फिर कर्मबीज अंकुरित न हो और (एनम्) इस पुरुष को (सुकृताम्) पुण्यकारी पुरुषों के (लोके) लोक में ही (धेहि) रख ।

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ ७२ ॥

भा०—(ये ते) वे जो (पूर्वे) पूर्व पुरुषा लोग (परागताः) हमसे परे वानप्रस्थ आदि में चले गये हैं और (ये) जो अपने दूसरे (पितरः च) पिता के समान पूजनीय पुरुष हमारे समीप विद्यमान हैं, (तेभ्यः) उन सबके लिये, (घृतस्य कुल्याः) पुष्टिकारक अन्न, जल और आनन्द रस की नहर (शतधारा) सैकड़ों धारा वाली होकर (व्युन्दती) नाना प्रकार से आर्द्र करती हुई (एतु) प्राप्त हो ।

एतदा रोह वयं उन्मृजानः स्वा इह बृहद्दु दीदयन्ते।
अभि प्रेहि मध्यतो मापं हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥७३॥ (१९)

भा०—हे पुरुष ! (उन्मृजानः) तू जीवन को शुद्ध करता हुआ (एतत वयः) इस पूर्ण आयु को (आ रोह) प्राप्त कर। (इह) इस लोक में (स्वाः) तेरे अपने बन्धुजन (बृहत्) बहुत अच्छी प्रकार (दीदयन्ते) प्रकाशित हो रहे हैं। तू उनके (मध्यतः) बीच में (अभि प्रेहि) उनके सामने आ। (पितृणां लोकम्) पिता, पितामह आदि का लोक (यः) जो (अत्र) इस लोक में (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ है उसका (मा अप हास्थाः) परित्याग मत कर। इति तृतीयोऽनुवाकः॥

[तत्र त्रिसप्ततिर्ऋचः]

[४] देवयान और पितृयाण

अथर्वा ऋषिः। यमः, मन्त्रोक्ताः बहवश्च देवताः। (८१ पितरो देवताः, ८८ अग्निः, ८९ चन्द्रमाः)। १, ४, ७, १४, ३६, ६० भुरिजः, २,५, ११, २९, ५०, ५१, ५८ जगत्यः। ३० पञ्चपदा भुरिगतिजगती, ६, ९, १३ पञ्चपदा शक्वरी (९ भुरिक्, १३ त्र्यवसाना), ८ पञ्चपदातिशक्वरी, १२ महाबृहती, १६-२४ त्रिपदाभुरिक् महाबृहती, २६, ३२-४३ उपरिष्टाद् बृहती, (२६ विराट्) २७ याजुषी गायत्री [२५]३१, ३२, ३८, ४१,४२, ५५-५७,५९, ६१ अनुष्टुप् (५६ ककुम्भती) ३९, ६२, ६३ आस्तारपंक्तिः (३९ पुरोविराट्, ६२ भुरिक्, ६३ स्वराट्), ४९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्। ५३ पुरोविराट् सतः पंक्तिः, ६६ त्रिपदा स्वराड् गायत्री, ६७ द्विपदार्ची अनुष्टुप्, ६८, ७१ आसुरी अनुष्टुप्, ७२-७४, ७९ आसुरीपंक्तिः, ७५ आसुरीगायत्री, ७६ आसुरीउष्णिक् ७७ दैवी जगती,७८ आसुरीत्रिष्टुप्, ८० आसुरी जगती, ८१ प्राजापत्यानुष्टुप्, ८२ साम्नी बृहती, ८३, ८४ साम्नीत्रिष्टुभौ, ८५ आसुरी बृहती, (६७, ६८, ७१-८६ एकावसाना), ८६, ८७, चतुष्पदा

उष्णिक् (८६ ककुम्मती, ८७ शंकुमती), ८८ त्र्यवसाना पथ्यापंक्तिः, ८९ पंचपदा पथ्या पंक्तिः, शेषा त्रिष्टुभः। एकोननवत्यृचं सूक्तम्॥

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके॥१॥

भा०—हे (जातवेदसः) ब्रह्मज्ञानी विद्वानो! आप लोग (पितृ यानैः) प्रजापति के योग्य मार्गों से (जनित्रीम्) प्रजा के उत्पन्न करने वाली उस परमेश्वरी जगदम्बा शक्ति को (आरोहत) प्राप्त करो। मैं (वः) आप लोगों को (आ रोहयामि) उस तक पहुँचाता हूँ। हे (हव्य-वाहः) ज्ञानों को धारण करने हारे विद्वानो! (इषितः) कामना से प्रेरित आत्मा (हव्या) स्तुतियों को (अवाट्) उस परमेश्वर के प्रति समर्पित करता अर्थात् उनसे प्रभु की उपासना-स्तुति, पूजा करता है। आप लोग (ईजानम्) देवोपासना करने हारे आत्मा को (युक्ताः) एकाग्रचित्त होकर (सुकृतां लोके) पुण्याचरण करने वाले पुरुषों के लोक में (धत्त) रखो।

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्॥२॥

भा०—(देवाः) विद्वान् पुरुष, राजागण और (ऋतवः) ऋतुएं, प्राण और होतागण दिशाएं, राजसभा के सदस्य आदि (यज्ञम्) यज्ञ (कल्पयन्ति) करते हैं। उसमें (हविः) अन्न (पुरोडाशम्) 'पुरोडाश' है और (स्रुचः) आहुति देने के चमस, स्रुवे, प्राण और ये लोक (यज्ञायुधानि) यज्ञ करने के आयुध, हथियार या उपकरण के समान हैं। (तेभिः) उन (देवयानैः) देवों के गमन करने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (ईजानाः) यज्ञ द्वारा देव-उपासना करने वाले लोग (स्वर्गं लोकम्) सुखमय लोक को (यन्ति) प्राप्त होते हैं।

ऋतवो वा होत्राः। गो० ३।६।६॥ सदस्या ऋतवोऽभवन्। तै० ३। १२॥ दिशः। गो० उ० ६।१२॥ याः षड् विभूतयः ऋतवस्ते। जै० ३।९।

२१।१॥ आत्मा वै यजमानस्य पुरोडाशः। कौ० १३।४।६॥ मस्तिष्को वै पुरोडाशः। तै० ३।२।२।७॥ पुरोडाश शब्द से ब्रह्माण्ड, आत्मा, मस्तिष्क और हवि आदि लिये जाते हैं।

स्रुचः—इमे वै लोकाः स्रुचः। तै० ३।३।१।२॥ प्राणा वै स्रुचः। तै० ३।२।१।५॥ आधिदैविक, आध्यात्मिक आदि भेद से इनकी योजना कर लेनी चाहिये।

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति
तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ३ ॥

भा०—(ऋतस्य) सत्यस्वरूप प्रजापति के उस (पन्थाम्) मार्ग को (साधु) भली प्रकार (अनु पश्य) साक्षात् कर (येन) जिससे (सुकृतः) उत्तम रूप से योगादि कर्म करने हारे (आंगिरसः) ज्ञानी पुरुष (यन्ति) जाते हैं। (तेभिः) उन (पथिभिः) मार्गों से हे पुरुष ! तू (स्वर्गम्) सुखमय उस स्वर्ग लोक को (याहि) प्राप्त हो (यत्र) जहां (आदित्याः) अखण्ड ब्रह्म के पुत्ररूप परम योगी, आदित्य के समान तेजस्वी पुरुष (मधु) ब्रह्ममय, अमृत, अभय, आनन्द का (भक्षयन्ति) भोग करते हैं। हे पुरुष ! तू (तृतीये) उस तीर्णतम, सबसे उत्कृष्ट, (नाके) सर्व दुःख-रहित, निःश्रेयस पद में (अधि वि श्रयस्व) अपने आपको प्रतिष्ठित कर।

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥ ४ ॥

भा०—(त्रयः) तीन (सुपर्णाः) सुपर्ण अर्थात् उत्तम पालन शक्ति से युक्त अग्नि, सूर्य और सोम (उपरस्य) मेघ के (मायू) गर्जना कराने वाले हैं (नाकस्य पृष्ठे) वे स्वर्ग के स्थान पर (अधि विष्टपि) सूर्य में (श्रिताः) आश्रित हैं। (स्वर्गाः लोकाः) सुखमय सब लोक (अमृतेन) जल से

(विष्ठाः) व्याप्त हैं। वे (यजमानाय) यज्ञ करने वाले पुरुष के लिये (इषम् ऊर्जम्) अन्न और उत्तम रस का (दुहाम्) प्रदान करते हैं।

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम्।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुह्राम् ॥५॥

भा०—विराट् यज्ञ का वर्णन करते हैं—(जुहूः) परमेश्वर की विशाल आदान करने वाली वशकारिणी शक्ति (द्याम्) महान् आकाश जिसमें समस्त सूर्य और नक्षत्र विद्यमान हैं उसको (दाधार) धारण करती है। (उपभृत्) समस्त प्राणियों का भरण पोषण करने वाली महान् परमेश्वरी शक्ति (अन्तरिक्षम्) जिसमें वायु और मेघ विद्यमान हैं उसको धारण करती है । (ध्रुवा) परमात्मा की स्थिर करने वाली अचल शक्ति (प्रतिष्ठाम्) सब प्राणियों को अपने भीतर स्थिर करने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण करती है। (इमाम् प्रति) इस पृथिवी के प्रति (घृतपृष्ठा) घृत के समान पुष्टिकारक पदार्थ और जल से पूर्ण वाले (स्वर्गाः) सुखमय लोक या प्रदेश (यजमानाय) देवोपासक के लिये (कामं कामम्) उसकी प्रत्येक कामना को (दुह्राम्) पूर्ण करते हैं।

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥ ६ ॥

भा०—हे (ध्रुवे) अचलशक्ते ! (विश्व-भोजसम्) समस्त भोग्य पदार्थ के आश्रयभूत (पृथिवीम्) इस पृथिवी पर तू (आरोह) अधिष्ठात्री होकर रह। हे (उपभृत्) समस्त प्राणियों को भरण पोषण करने वाली शक्ते ! तू (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक में (आक्रमस्व) सदा विद्यमान रह। हे (जुहु) भूमि से जल आदि लेने और उस पर बरसाने वाली शक्ति ! तू (यजमानेन साकम्) ईश्वर की यज्ञ द्वारा उपासना करने

हारे पुरुष के साथ (आसु गच्छ) सूर्य में विद्यमान रह। (वत्सेन) बछड़े के समान दिशाओं के आश्रय में रहने वाले (स्रुवेण) निरन्तर गतिशील वायु द्वारा (दिशः) समस्त दिशाएं (प्रपीनाः) पूरी तरह से भरी पूरी हैं। बछड़े को देखकर जैसे गौएं अपना दूध प्रेम से बहाती हैं इसी प्रकार वायु के द्वारा दिशाएं भी अपना रस पृथ्वी पर बरसाती हैं। हे पुरुष! तू (सर्वाः) उन सबको (अहृणीयमानः) बिना किसी लज्जा और संकोच के (धुक्ष्व) दोहन कर।

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (तीर्थैः) तैरने के साधन नाव आदि द्वारा (महीः) बड़ी (प्रवतः) वेगवान् नदियां तरी जाती हैं उसी प्रकार (तीर्थैः) भवसागर से पार उतरने के साधनभूत अध्यात्म यज्ञ, तप आदि तीर्थों और तपस्वी आदि जंगम तीर्थों द्वारा (महीः प्रवतः) बड़ी २ भारी विपत्तियों को भी (तरन्ति) लोग तर जाते हैं। (इति) इस प्रयोजन से (येन) जिस मार्ग द्वारा (सुकृतः) उत्तम कर्म करने हारे पुण्यात्मा और (यज्ञ-कृतः) ईश्वरोपासना करने वाले यज्ञशील पुरुष (यन्ति) गमन करते हैं (अत्र) उसी मार्ग में रहकर वे (दिशः) दिशा और (भूतानि) उत्पन्न प्राणी (यत्) जो २ भी (अकल्पयन्तः) बनाये हैं वे (यजमानाय) परमेश्वर के उपासक यज्ञशील पुरुष के लिये (लोकम्) स्थान को (अदधुः) बनाते हैं।

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं
गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ॥८॥

भा०—(अङ्गिरसाम्) ज्ञानी पुरुषों का (अयनम्) परम उद्देश्य रूप आश्रय, (पूर्वः अग्निः) पूर्व दिशा से निकलने वाले सूर्य के समान

सबसे पूर्व विद्यमान, आदि मूल, सबका प्रवर्त्तक नेता परमेश्वर है। (आदित्यानाम्) आदित्य के समान सबके पालक-पोषक प्रजा पतियों का (अयनम्) आश्रयस्थान, (गार्हपत्यः) गृहपति के समान होकर रहने द्वारा प्रजापति है और (दक्षिणानाम्) बलवान् पुरुषों का आश्रय, (दक्षि-णाग्निः) क्रियाशक्ति प्रदान करने वाला वही परमेश्वर है। हे पुरुष (विहितस्य) नाना प्रकार से वर्तमान (अग्नेः) उस सर्वप्रकाशक परमेश्वर के (महिमानम्) महत्त्व को तू (ब्रह्मणा) वेद से जान जो तू कि (सम्-अङ्गः) भली प्रकार ज्ञानवान्, (सर्वः) सब प्रकार से पूर्ण और (शग्मः) शक्तिमान् है।

पूर्वो॑ अ॒ग्निष्ट्वा॑ तपतु॒ शं पु॒रस्ता॒च्छं प॒श्चात् त॑पतु॒ गार्ह॑पत्यः।
दक्षि॒णाग्निष्टे॑ तपतु॒ शर्म॒ वर्मो॑त्तर॒तो म॑ध्य॒तो अ॒न्तरि॑क्षाद्
दि॒शोदि॑शो अग्ने॒ परि॑ पाहि घो॒रात् ॥ ६ ॥

भा०—हे पुरुष ! (पूर्वः) पूर्व से या सबसे पूर्ण (अग्निः) ज्ञानी, अग्रणी परमेश्वर (पुरस्तात्) तेरे आगे (शं) कल्याण और शान्ति प्रदान करने के लिये (तपतु) तुझे प्रकाशित करे और (पश्चात्) पीछे से (गार्हपत्यः) गृहपति के समान प्रजापति परमेश्वर (तपतु) प्रदीप्त हो। (दक्षिणाग्निः) बलप्रदाता परमेश्वर (ते) तुझे (शर्म) सुखदायक और (वर्म) कवच के समान रक्षक होकर (तपतु) तपे। हे (अग्ने) परमेश्वर ! तू (उत्तरतः) बहुत ऊपर से, (मध्यतः) बीच से, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से और (दिशः-दिशः) प्रत्येक दिशा से आने वाले (घोरात्) कष्टदायी आक्रमण से (परि पाहि) रक्षा कर।

यू॒यम॑ग्ने॒ शंत॑माभिस्त॒नूभि॑रीजा॒नम॒भि लो॒कं स्व॒र्गम् ।
अश्वा॑ भू॒त्वा पृ॑ष्टि॒वाहो॑ वहाथ॒ यत्र॑ दे॒वैः स॑ध॒मादं॒ मद॑न्ति १० (२०)

भा०—हे परमेश्वर और उसकी नाना शक्तियो ! (यूयम्) तुमह सब (शतमाभिः) अत्यन्त कल्याणकारी (तनूभिः) स्वरूपों से, (पृष्टिवाः

अश्वाः) पीठ पर लाद कर चलने वाले घोड़ों के समान (भूत्वा) होकर, (ईजानम्) दानशील, ईश्वर-उपासक और विद्युत्, जलवायु के साधक विज्ञानवान् पुरुष को (स्वर्गं लोकम् अभि) उस सुखमय लोक में (वहाथ) ले जाते हो (यत्र) जहां मुक्त आत्मा लोग (देवैः) देवों के साथ (सधमादंमदन्ति) आनन्द प्रसन्न करते हुए उनके सुख का भोग करते हैं।

शर्मग्ने पृश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥११॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! तू (पश्चात्) पीछे से (शं) कल्याणरूप होकर (तप) आत्मा को परिपक्व कर, (पुरस्तात् शं तप) आगे से भी कल्याणकारी होकर परिपक्व कर (उत्तरात् शम्) ऊपर से भी कल्याणकारी होकर परिपक्व कर और (एनम्) इस आत्मा को (अधरात् शं तप) नीचे से भी कल्याणकारी होकर परिपक्व कर। हे (जातवेदः) सर्वज्ञ प्रभो ! आप (एकः) एक हैं, तो भी (त्रेधा) तीन अग्नियों के तुल्य तीन प्रकार से (विहितः) विशेष रूप से बतलाये जाते हो। आप (एनम्) इस आत्मा को (सुकृताम्) उत्तम कर्म करने वाले पुण्यात्माओं के (लोके) लोक में (सम्यग्) भली प्रकार (धेहि) स्थापित करो।

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १२ ॥

भा०—(समिद्धाः) खूब प्रदीप्त (अग्नयः) ज्ञानी जन, (जातवेदसः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर, (प्राजापत्यं) प्रजापति अर्थात् परमेश्वर सम्बन्धी (मेध्यं) पवित्र यज्ञकार्य को (आ रभन्ताम्) प्रारम्भ करें। आप लोग इस आत्मा को भी अन्न के समान (शृतं कृण्वन्तः) परिपक्व करते हुए, (इह) इस मृत्यंलोक में (मा अव विक्षिपन्) न गिरने दें।

यज्ञ एति वितंतः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १३ ॥

भा०—(स्वर्गम् लोकम् अभि) सुखमय लोक को उद्देश्य करके (ईजानम्) यज्ञ करने हारे देव-उपासक पुरुष को, (यज्ञः) यज्ञमय परमात्मा (कल्पमानः) सब प्रकार से समर्थ होकर (विततः) व्यापकरूप में (एति) प्राप्त होता है। (सर्वहुतम्) सर्वस्व को ईश्वर के निमित्त समर्पण कर देने वाले पुरुष को, (अग्नयः) प्रकाशवान् (जातवेदसः) ज्ञानी पुरुष भी, (प्राजापत्यं मेध्यम्) प्रजापति के अनुरूप पूजनीय, पवित्र जानकर (जुषन्ताम्) प्राप्त होते हैं। वे उसको (श्रृतं कृण्वन्तः) परिपक्व तपोनिष्ठ करते हुए (इह) इस संसार में (मा अव चिक्षिपन्) कभी नीचे न गिरने दें।

ई॒जा॒नश्चि॒तमारु॑क्षद॒ग्निं नाक॑स्य पृ॒ष्ठाद् दिव॑मुत्पति॒ष्यन्।
तस्मै॒ प्र भा॑ति॒ नभ॑सो॒ ज्योति॑षीमान्त्स्व॒र्गः पन्थाः॑ सु॒कृते॑ देव॒यानः॑ ॥ १४ ॥

भा०—(ईजानः) देव का उपासक जन (नाकस्य पृष्ठात्) सुखमय लोक से (दिवम्) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के प्रति (उत्पतिष्यन्) ऊपर उठने की अभिलाषा करता हुआ (चितम्) चित्-स्वरूप (अग्निम्) ज्ञानमय परमेश्वर का (आरुक्षत्) आश्रय लेता है। (तस्मै) उसके लिये ही (नभसः) आकाश के बीच (ज्योतिषीमान्) ज्योतिर्मय परमेश्वर (प्र भाति) प्रकाशित होता है। यही वास्तव में (स्वर्गः) सुख से गमन करने योग्य (देवयानः पन्थाः) देवयान-मार्ग (सुकृते) उत्तम कर्म करने हारे के लिये प्राप्त होने योग्य है।

अ॒ग्निर्होता॑ध्व॒र्युष्टे॒ बृह॒स्पति॒रिन्द्रो॑ ब्र॒ह्मा द॑क्षिण॒तस्ते॑ अस्तु।
हु॒तोऽयं संस्थि॑तो य॒ज्ञ एति॒ यत्र॒ पूर्व॒मय॑नं हु॒ताना॑म् ॥ १५ ॥

भा०—हे पुरुष (ते) तेरे यज्ञ का (होता) होता (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर ही है। वही (बृहस्पतिः) समस्त वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर (ते अध्वर्युः) तेरा अध्वर्यु अर्थात् रक्षक है और (इन्द्रः) वही ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (ते ब्रह्मा) तेरे यज्ञ का ब्रह्मा (ते) तेरे (दक्षिणतः) दक्षिण भाग

में (अस्तु) सदा विद्यमान रहे। हे पुरुष (संस्थितः) जीवन समाप्त करके मृत हुआ (अयं) यह देह (हुतः) अग्नि में आहुति कर दिया जाता है और (यज्ञः) यज्ञ रूप आत्मा उस स्थान पर (एति) चला जाता है (यत्र) जहां (एवं हुतानाम्) एवं आहुति किये आत्माओं का (अयनम्) आश्रय लोक है।

अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १६॥ अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह ०।०॥ १७॥ अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह ०।०॥ १८॥ अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह ०।०॥ १९॥ अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह ०।०॥ २०॥ (२१) अपूपवानन्नवांश्चरुरेह ०।० ॥ २१॥ अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह ०।०॥ २२॥ अपूपवान् रसवांश्चरुरेह ०।०॥ २३॥ अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २४॥

भा०— (इह) इस लोक में (अपूपवान्) अपूप वाला और (क्षीरवान्) क्षीर से युक्त (चरुः) भोग्य अन्न (आ सीदतु) रक्खा जावे। (देवानां) देवों के निमित्त (ये) जो लोग (हुत-भागः) उनके प्राप्त होने योग्य भोग्य अंशों का प्रदान करते (स्थ) हैं उन (लोक कृतः) लोक-व्यवस्थापक पुरुषों और (पथि-कृतः) मार्ग निर्माण करने वाले उपकारी पुरुषों को (यजामहे) हम उक्त पदार्थ प्रदान करें॥ १६॥ (अपूपवान् दधिवान् चरुः इह आसीदतु) इस लोक में अपूप और दधि वाला अन्न रक्खा जाय इत्यादि पूर्ववत् ॥ १७॥ (अपूपवान्, द्रप्सवान् चरुः० इत्यादि) अपूप और रस वाला चरु यहां रक्खा जाय इत्यादि पूर्ववत ॥ १८॥ (अपूपवान् घृतवान् इत्यादि) अपूप और घृत से युक्त चरु यहां रक्खा जाय इत्यादि पूर्ववत् ॥ १९॥ (अपूपवान् मांसवान् चरुः० इत्यादि)

अपूपवाला और मांस अर्थात् गूदेवाला चरु यहां रक्खा जाय इत्यादि पूर्ववत् ॥ २० ॥ (अपूपवान् अन्नवान् चरु० इत्यादि) अपूप और अन्न से युक्त चरु यहां रक्खा जाय, इत्यादि पूर्ववत् ॥ २१ ॥ (अपूपवान् मधुमान् चरु० इत्यादि) अपूप और मधु से युक्त चरु यहां रक्खा जाय, इत्यादि पूर्ववत् ॥ २२ ॥ (अपूपवान् रसवान् चरु० इत्यादि) अपूप और रस-वाला चरु इत्यादि पूर्ववत् ॥ २३ ॥ (अपूपवान् अपवान चरु० इत्यादि) अपूप और जल से युक्त चरु यहां रक्खा जाय इत्यादि पूर्ववत् ॥ २४ ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन्।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ २५॥

भा०—(अपूप-अपिहितान्) अपूप आदि द्वारा परिपुष्ट हुए शरीर जो तुझे दिव्य शक्तियों द्वारा मिले रहते हैं (अधारयन्) उनमें अपने को धारने की शक्ति हो। वे (मधुमन्तः) माधुर्यमय और वीरवान् हों।

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ २६॥

भा०—हे पुरुष ! (याः धानाः) तिलों से मिश्रित और तेरे शरीर को धारण कर सकने में समर्थ जिन खीलों या फूलियों को (अनुकिरामि) तेरी जीवनस्थिति के अनुकूल में विस्तृत करता हूँ, (ते) वे तेरे लिये (उद्भ्वीः) उत्तम स्थिति पैदा करने वाली (प्रभ्वीः) तथा शक्ति देने (सन्तु) वाली हों और (यमः) सर्वनियन्ता (राजा) सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर (ताः) तेरे निमित्त उनको (अनुमन्यताम्) अनुकुल बनावे।

अक्षितिं भूयसीम् ॥ २७ ॥

भा०—हे पुरुष ! नियन्ता परमेश्वर की अनुमति से तू (भयसीम्) बहुत (अक्षितिम्) कभी क्षय न होने वाली सम्पत्ति को चिरकाल तक भोग कर।

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ २८॥

भा०—(द्रप्सः) आदित्य1, (पृथिवीम् अनु, द्याम् अनु) पृथिवी और आकाश को (चस्कन्द) व्याप्त करता है अर्थात् (इमं योनिम् च) वह इस लोक को और (यः च पूर्वः) जो इससे पूर्व विद्यमान द्यौ लोक है (अनु) उसको भी अनुप्राणित करता है । (समानं योनिम्) दोनों लोकों में समानरूप से (अनु संचरन्तम्) व्याप्त होते हुए (द्रप्सम्) उस तेजस्वरूप आदित्य के (तनु) आश्रय पर ही (सप्त होत्राः) सात होत्र अर्थात् सबको अपने भीतर समा लेने वाली ७ दिशाएं हैं, इनके प्रति मैं आहुति देता हूँ ।

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् २९

भा०—(शतधारं) सैकड़ों के परिपोषक, (वायुम्) क्रियाशील, (अर्कम्) एवं अर्चना करने योग्य और (स्वर्विदम्) सुख के प्राप्त करने और कराने वाले परमेश्वर को, (ते) वे (नृचक्षसः) सर्वनेता परमेश्वर को साक्षात् करने वाले, (रयिम्) सर्वैश्वर्यरूप, प्राणरूप, बलरूप में ही (अभि चक्षते) साक्षात् कहते हैं और (ये) जो पुरुष (सर्वदा) सब कालों में (पृणन्ति) समस्त जीवों का पालन करते हैं और उनको (प्र यच्छन्ति च) अन्न, वस्त्र, आश्रय, सुख प्रदान करते हैं (ते) वे, (सप्त-मातरम्) सातों प्रकार के अन्नों वाली, अथवा सात निर्मातृ पदार्थों अर्थात् सप्त धातुओं वाली, (दक्षिणां) दक्षिणा रूप पृथिवी को (दुहतेः) दोहते हैं, वे पृथिवी के समस्त जीवनोपयोगी उत्तम २ सार पदार्थों को प्राप्त करते हैं ।

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥३०॥ (२२

भा०—(धेनुम्) चार छिद्रों वाले चार थनों से युक्त गाय के

1. असौ वादित्यो द्रप्सः । स दिवं च पृथिवीं च स्कन्दति । श० ब्रा० 7 । 4 । 120 ॥

समान चार वेदों वाली जो मधुर वाणी है, जोकि ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान रूपी धनों का खजाना है (इडाम्) उसको (स्वस्तये) प्रजा की रक्षा और कल्याण के लिये विद्वान् लोग (दुहन्ति) दोहते हैं । हे ज्ञानवन् ! अग्रणी नेतः ! तू (अदितिम्) विनष्ट न होने वाली (ऊर्जम्) तथा परम रस से जनों को (मदन्तीम्) संतृप्त करती हुई (अदितिम्) उस वेदवाणी की (मा हिंसीः) कभी हिंसा मत कर। इसी प्रकार ४ स्तन-छिद्रों वाली, मधुर दुग्ध देने हारी, बल-अन्न देने वाली गाय की भी परम रक्षा करनी चाहिये ।

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥ ३१ ॥

भा०—हे पुरुष ! (सविता) सबका उत्पादक (देवः) परमेश्वर (ते) तुझे (भर्तवे) अपने देह को बचाने के लिये (एतत्) यह (वासः) वस्त्र या निवासस्थान (ददाति) प्रदान करता है । (त्वं) तू (यमस्य) सर्व-नियन्ता परमेश्वर के (राज्ये) राज्य में (वसानः) निवास करता हुआ (तार्प्यं चर) आत्मा को तृप्त कर । (त्वं यमस्य राज्ये एत् तार्प्यं वसानः चर) 'तृपा' नाम तृण के बने वस्त्र को पहन कर विचर ।

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥

भा०—पूर्वोक्त २६वें मन्त्र में कहे 'तिलमिश्रा धाना' की व्याख्या करते हैं । (धानाः) 'धाना' अर्थात् खीलें लोक के धारण पोषण में समर्थ होने से ही (धेनुः अभवत्) धेनु है और तिल स्नेहयुक्त होने से (अस्याः वत्सः) उसका बछड़ा है (तिलः अभवत्) २७वें मन्त्र में कहे 'अक्षिति' की व्याख्या करते हैं । (यमस्य राज्ये) नियन्ता परमेश्वर के राज्य में (ताम्) उस गो माता को (अक्षिताम्) सदा अक्षीण रूप में या अक्षय सम्पदा के रूप में प्राप्त करके उसके आधार पर (उप जीवति) यह लोक अपनी आजीविका चलाता है ।

एतास्ते॑ असौ धेनवः॑ काम॒दुघा॑ भवन्तु ।
एनी॑ः श्येनी॑ः स॒रूपा॒ विरू॑पास्ति॒लव॑त्सा॒ उप॑ तिष्ठन्तु त्वात्र॑ ॥३३॥

भा०—हे पुरुष ! (एताः धेनवः) ये रसपान कराने हारी धेनुएं (ते) तेरे लिये (कामदुघाः भवन्ते) कामनाओं को पूर्ण करने वाली 'कामधेनु' हों। ये (एनीः) गेहुँए रंग की, (श्येनीः) श्वेतवर्ण की, (सरूपाः) समानरूप की, (विरूपाः) और विविध रूप की, तथा तिलों के समान, स्नेह युक्त छोटे २ बछड़ों वाली गौएं (त्वां) तुझे (अत्र) इस भूमि पर (उप तिष्ठन्तु) प्राप्त हों।

एनी॑र्धा॒ना हरि॑णीः श्येनी॑रस्य कृ॒ष्णा धा॒ना रोहि॑णीर्धे॒नव॑स्ते ।
ति॒लव॑त्सा॒ ऊर्ज॑मस्मै॒ दुहा॑ना वि॒श्वाहा॑ सन्त्वन॑पस्फुरन्तीः ॥३४॥

भा०—(एनीः) गेहुँए रंग की, (हरिणीः) हरित या नीले वर्ण की, (श्येनीः) श्वेत वर्ण की, (कृष्णाः) काले रंग की, (रोहिणीः) लाल रंग की गौवें, जो (अस्य धानाः) इस लोक को धारण पोषण करने में समर्थ हैं, वे ही (धानाः) 'धाना' शब्द से कही जाती हैं, वे (धानाः) भरण पोषण में समर्थ (धेनवः) दुधार गौवें (ते) तुझे प्राप्त हों और (तिल-वत्साः) तिल के समान स्नेह से पूर्ण बछड़ों वाली गौवें (अस्मै) इस लोक के निमित्त (ऊर्जम्) परम पुष्टिकारक रस को (दुहानाः) प्रदान करती हुई, (विश्वाहा) सब दिन (अनपस्फुरन्तीः) निर्भय, निराकुल, आपद्रहित, सुखी (सन्तु) रहें।

वै॒श्वा॒न॒रे ह॒विरि॒दं जु॑होमि साह॒स्रं श॒तधा॑रमुत्स॑म् ।
स बि॑भर्ति पि॒तरं॑ पिताम॒हान् प्रपि॑ताम॒हान् बि॑भर्ति॒ पिन्व॑मानः ३५

भा०—(वैश्वानरे) समस्त मनुष्यों के हितकारी देव के निमित्त मैं (इदं हविः) इस अन्न आदि त्याग करने योग्य पदार्थ की (जुहोमि) आहुति करता हूँ। यह (साहस्रम्) सहस्रों फलों को देने वाला (शत-धारम्) सैकड़ों धाराओं वाला (उत्सम्) स्रोत है। (सः) वह समस्त

लोक का हितकारी, परम देव (पिन्वमानः) स्वयं प्रसन्न होकर (पितरम्) पालक पिता को (पितामहान् प्रपितामहान्) पितामह और प्रपितामह आदि वृद्ध पूजनीय पुरुषों का (बिभर्ति) पालन पोषण करता है।

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥ ३६ ॥

भा०—(सलिलस्य पृष्ठे) अन्तरिक्ष के पृष्ठ पर (वि-अच्यमानम्) विविध प्रकार से प्रकट होने वाले, (सहस्रधारम्) सहस्रों धारण शक्तियों या सहस्रों धाराओं से समृद्ध, (शतधारम्) सैकड़ों का धारण पोषण करने वाले, (अक्षितम्) अक्षय, (उत्सं) जल आदि सुखकारी पदार्थों को बहाने वाले, (ऊर्जं दुहानम्) समस्त प्राणियों को सर्वोत्तम अन्नादि रस का प्रचुर मात्रा में प्रदान करने हारे, (अनपस्फुरन्तम्) धीर परमेश्वर की, (पितरः) प्रजापालक लोग (स्वधाभिः) अपनी धारणा ध्यान आदि शक्तियों द्वारा (उपासते) उपासना करते हैं।

इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धुः ॥ ३७ ॥

भा०—पुरुष की उत्पत्ति का रहस्य खोलते हैं। (इदं) यह विकस्वर 'अम्बु' अर्थात् वीर्य ही (चयनेन) अवयवों के एकत्र संगृहीत हो जाने से (चितम्) संचित होकर उत्पन्न हो जाता है। हे (स-जाताः) समान जाति वाले बन्धुजनो! (आ इत) आओ, इसे (अव पश्यतः) देखो। (मर्त्यः अयम्) यह मरणधर्मा मनुष्य अपने (अमृतत्वम्) कर्मों से मोक्ष को भी (एति) प्राप्त कर लेता है। (अस्मै) इस मनुष्य के लिये (यावत् सबन्धु) जितने भी बन्धु जन हैं (तस्मै गृहान् कृणुत) गृह आदि बनावें।

इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥ ३८ ॥

भा०—हे पुरुष! तू (धन सनिः) धन का प्रदान करने वाला बन-

कर (इह एव) यहां ही (एधि) रह। (इह-चित्तः) इस लोक में सर्व प्रसिद्ध (इह-क्रतुः) इस लोक में प्रशस्त कर्मवान्, (वीर्यवत् तरः) अन्य पुरुषों की अपेक्षा अधिक वीर्यवान्, (वयोधाः) अन्न और ऐश्वर्य को धारण करने वाला, (अपराहतः) और शत्रु से पराजित न होता हुआ रह।

पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥३९॥

भा०—(इमाः आपः) जलों के समान स्वच्छ आचरण वाली, (देवीः) दिव्य उपदेश प्रदान करने वाली (आपः) आप्त प्रजाएं, (पुत्रं पौत्रम्) पुत्रों और पौत्रों को (अभितर्पयन्तीः) सब प्रकार से तृप्त करती हुई और स्वयं (मधु-मतीः) मधुर अन्न से समृद्ध होकर, (पितृभ्यः) पालक पितरों को (स्वधाम्) शरीर का धारण पोषण करने में समर्थ अन्न और (अमृतम्) जल (दुहानाः) प्रदान करते हुए, (उभयान्) पुत्र पौत्र और पालक पितृजनों को (तर्पयन्तु) सदा तृप्त, प्रसन्न किया करें।

आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम्।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान्
॥ ४० ॥ (२३)

भा०—हे (आपः) आप्तजनो! आप लोग (पितॄन् उप) रक्षकों और गुरुजनों के समीप (अग्निम्) अपने अग्रणी नेता पुरुष को (प्र हिणुत) भेजा करो और (पितरः) पालक पितृजन (मे यज्ञम्) यज्ञमय श्रेष्ठ कर्म में (जुषन्ताम्) प्रेम पूर्वक योग दें। (ये) जो लोग (आसीनाम्) बैठी हुई (ऊर्जम्) बलकारिणी सेनाशक्ति का (सचन्ते) सेवन करते हैं या उपयोग करते हैं (ते) वे वीर जन (नः) हमें (सर्ववीरम्) समस्त वीरों से युक्त (रयिम्) धनैश्वर्य (नि यच्छान्) प्रदान करें।

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम्।
स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ॥ ४१ ॥

भा०—(घृत-प्रियम्) घृत आदि पदार्थों के प्रिय अग्नि के समान तेजस्वी, (हव्य-वाहम्) चरु आदि के समान स्तुतियों और ज्ञानों का वहन करने वाले, (अमर्त्यम्) अविनाशी परमात्मा को, यज्ञ की अग्नि के समान, (सम् इन्धते) अपनी हृदय-वेदि में प्रदीप्त करते हैं। वह परमेश्वर (निहितान्) गुप्त रूप से रखे (निधीन्) खजानों अर्थात् ऋद्धि सिद्धि आदि ऐश्वर्यों को (वेद) जानता है और वही (परावतः गतान्) दूर गये (पितॄन्) या दूर स्थित हमारे पूज्य पुरुषों व पालक पदार्थों को (वेद) जानता है।

यं ते॑ म॒न्थं यमो॑द॒नं यन्मां॒सं नि॑पृ॒णामि॑ ते ।
ते ते॑ सन्तु स्व॒धाव॑न्तो॒ मधु॑मन्तो घृत॒श्चुतः॑ ॥ ४२ ॥

भा०—हे पुरुष ! मैं परमेश्वर (यं) जिस (मन्थम्) मथे हुए दहि को, (यम् ओदनम्) जिस भात को और (यत् मांसम्) जिस मन चाहे परम अन्न, फल आदि गूदेदार पदार्थ को (ते) तेरे लिये (निपृणामि) क्षुधा तृप्ति के निमित्त प्रदान करता हूँ, (ते) वे समस्त पदार्थ, (ते) तेरे लिये (स्वधावन्तः) शरीरों को पुष्टि देने वाले, (मधुमन्तः) मधुर रस वाले और (घृत-श्चुतः) घृत सदृश वीर्य के देने वाले (सन्तु) हों।

यास्ते॑ धा॒ना अ॑नुकि॒रामि॑ ति॒लमि॑श्राः स्व॒धाव॑तीः ।
तास्ते॑ सन्तु॒द्भ्वीः प्र॒भ्वीस्तास्ते॑ य॒मो राजानु॑ मन्यताम् ॥४३॥

भा०—व्याख्या देखो इसी सूक्त का मन्त्र २६ और १८।३।६९॥

इ॒दं पूर्व॒मप॑रं नि॒यान॒ं येना॑ ते॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॒ परे॑ताः ।
पु॒रो॒ग॒वा ये अ॑भि॒शाचो॑ अ॒स्य ते त्वा॑ वहन्ति सु॒कृता॑मु लो॒कम् ४४

भा०—हे पुरुष ! (इदं) यह मनुष्य देह ही वह (नियानम्) रथ है जो कि (पूर्वम् अपरम्) पहले मिला था और बाद में भी प्राप्त होता है, (येन) जिसके साथ (ते) तेरे (पूर्वे पितरः) पहले पिता, पितामह आदि

(परा इताः) भी संगत हुए थे। (अस्य) इस देह में लगे (अभिशाचः) सब प्रकार से शक्तिमान् और (पुरोगवाः) आगे लगे बैलों के समान आगे आगे ले जाने वाले ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय रूप अश्व (त्वा) तुझको (सुकृताम्) पुण्याचारवान् पुरुषों के स्थान में (वहन्ति) ले जाते हैं।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥४५॥

भा०—(देवयन्तः) उपास्य परमेश्वर को प्राप्त करने की इच्छा वाले विद्वान् पुरुष (सरस्वतीम्) परमेश्वर की रस से परिपूर्ण नदी के समान (हवन्ते) स्तुति करते हैं और (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञ के (तायमाने) किये जाते हुए यज्ञकर्त्ता जन भी (सरस्वतीं हवन्ते) परमेश्वर को उसी रूप से स्मरण करते हैं। (सुकृतः) पुण्य कर्म करने हारे पुरुष भी (सरस्वती हवन्ते) 'सरस्वती' नाम परमेश्वर का स्मरण करते हैं (सरस्वती) वह आनन्दरसमय प्रभु-देवता (दाशुषे) आत्मसमर्पक भक्त को (वार्यम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ धन (दात्) प्रदान करती है।

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४६॥
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४७॥

भा०—व्याख्या देखो अथर्व० १८।१।४२, ४३ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः।
परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥ ४८॥

भा०—(पृथिवीम्) पृथिवी के समान व्रतपालन में स्थिर रहने वाली हे स्त्रि ! (त्वाम्) तुझको (पृथिव्याम्) इस पृथिवी पर (आ वेशयामि) बसाता हूँ। (धाता) सर्वपोषक, (देवः) सब पदार्थों का प्रदाता परमेश्वर (नः) हमें (आयुः) दीर्घजीवन (प्र तिराति) प्रदान करे।

हे प्रजागण ! (परा-परा-एता) दूर दूर तक के देशों में जाने वाला व्यापारी (वसुविद्) तुम्हें धन प्राप्त कराने में समर्थ (अस्तु) हो । (अध) और (मृताः) जो पुरुष मर जायं वे (पितृषु:) मां-बापों के घरों में पुत्र रूप से (सं भवतु) उत्पन्न हों ।

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥४९॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जब (आ प्र च्यवेथाम्) धर्म-युक्त मार्ग से स्खलित हो जाया करो तब (अभि-भाः) सर्वतः प्रकाशमान विद्वान् पुरुष (अत्र) इस विषय में (वाम्) आप दोनों को (यत्) जैसा (ऊचुः) उपदेश करें तदनुसार (तत्) उस स्खलित पाप कर्म को (अप मृजेथाम्) त्याग कर शुद्ध हो जाया करो । हे (अघ्न्यौ) अविनाशी आत्माओ ! (अस्मात्) इस प्रकार स्खलित पाप से तुम सदा (आ इतम्) लौट कर सत् पथ पर आ जाओ । (तत्) तुम्हारा यह कर्म ही (वशीयः) तुम्हारी सब पाप-प्रवृत्तियों पर वश करने में प्रशस्त है और (मम दातुः) पालकों की श्रेणी में स्थित तुम दोनों मुझ पुत्र के पालक बनो ।

एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ५० (२४)

भा०—(इयम् दक्षिणा) यह दक्षिणारूप से प्राप्त गौ (भद्रतः) उत्तम कर्म और कल्याणमय पुरुष से (नः) हमें (आ अगन्) प्राप्त हो । क्योंकि (अनेन) इस उत्तम यजमान से (दत्ता) प्रदान की हुई यह गौ (वयः-धाः) अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थों को देने हारी, दीर्घ जीवन की पोषक, (सु-दुघा) और सुगमता से दुहने योग्य होती है, (जरा) जवान और बूढ़े सभी (जीवान्) जीवों को (उप-पृञ्चती) प्रेम करती हुई (इमान्) इन समस्त जीवों को (उप-सं-परा-नयात्) पर्याप्त दीर्घ जीवन तक की यात्रा करा देती है, अर्थात् पर्याप्त काल तक पालती रहती है ।

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ५१

भा०—(पितृभ्यः) पिता पितामह आदि के लिये मैं (इदम्) यह (बर्हिः) कुश आदि का बना आसन (प्र भरामि) नित्य लाऊं और (देवेभ्यः) विद्याप्रदाता गुरुजनों के लिये (जीवन्) स्वयं जीवित रहता हुआ (उत्तरम्) अपने मां बाप से भी ऊंचा आसन (स्तृणामि) बिछाऊं। हे (पुरुष) पुरुष ! तू (मेध्यः) पूज्य (भवन्) होकर (तत्) उस आसन पर (आ रोह) विराजमान हो। (पितरः) पिता आदि गुरुजन (परा इतम्) दूर स्थान पर प्राप्त हुए भी (त्वाम्) तुझको (प्रति जानन्तु) स्मरण करें ।

एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं१ सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥५२॥

भा०—हे पुरुष ! तू (इदम्) इस (बर्हिः) कुशा के बने आसन पर (आ असदः) बैठ और (मेध्यः अभूः) पवित्र हो। (पितरः) तेरे पिता माता, गुरु आदि (परा इतम्) देशान्तर में दूर चले जाने पर भी (त्वा) तुझे (प्रतिजानन्तु) स्मरण करें। तू (यथा परु) शरीर के प्रत्येक जोड़ की बिना उपेक्षा किये अपने (तन्वं) शरीर को (सं भरस्व) अच्छी प्रकार पुष्ट कर। मैं (ते गात्राणि) तेरे अंगों को (ब्रह्मणा) वैदिक विधि से (कल्पयामि) शक्तिशाली बनाता हूँ। गो० ५ । ३ । ४ ॥

पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो वि दधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ५३ ॥

भा०—(चरूणाम्) जिस प्रकार भात जो पतीली में पकते हैं उनको सुरक्षित रखने के लिये (पर्णम् अपिधानम्) पत्ते का ढक्कन धर दिया जाता है उसी प्रकार (चरूणाम्) संचरण करने वाली प्रजाओं को (अपि-धानम्) ढकने (पर्णः) और उनका पालन और पूर्ण करने वाला

पुरुष ही उनका रक्षक है। वह ही (ऊर्जः) राष्ट्र का बल और प्राण स्वरूप, (सहः) शत्रुओं का पराजय करता, (ओजः) देह में ओज के समान राष्ट्र में तेजःस्वरूप होकर (नः) हमें (आ अरन्) प्राप्त होता है। वह (शत-शारदाय) सौ बरस तक के (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन को प्राप्त करने के लिये (जीवेभ्यः) राष्ट्र की प्रजाओं को (आयुः) जीवन (विदधत्) प्रदान करता है।

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥५४॥

भा०—(ऊर्जः) अन्न या बल और प्राण देने वाले पदार्थ का (यः) जो (भागः) षष्ठ भाग (इमम्) इस राजा को (जजान) उत्पन्न करता है, उससे ही वह (अन्नानाम् अश्मा) अन्नों को पीस डालने वाली चक्की के पाट के समान प्रजाओं को दलन करने में समर्थ वीर्यवान् होकर ही (आधिपत्यम्) अधिपति पद को (जगाम) प्राप्त होता है। हे (विश्व-मित्राः) समस्त प्रजाओं के स्नेहपात्र, प्रतिष्ठित पुरुषो! आप लोग (हविर्भिः) उत्तम स्तुतियों और अन्नों द्वारा (तम् अर्चत) उसकी पूजा सत्कार करो। (सः) वह (नः) हमारा (यमः) नियन्ता राजा है, वह हमें (प्रतरम्) खूब लम्बे (जीवसे) जीवन के लिये (धात्) शक्ति प्रदान करे।

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥ ५५॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (पञ्च मानवाः) पांच प्रकार के मनुष्य (यमाय) सर्व नियन्ता राजा के लिये (हर्म्यम्) राजमहल (अव पन्) खड़ा कर देते हैं, (एव) उसी प्रकार मैं (हर्म्यम्) बड़ा महल अपने लिये भी (वपामि) खड़ा करूं, (यथा) जिससे (मे) मेरे अधीन (भूरयः) बहुत से मिलने-जुलने वाले मित्र, भृत्य आदि (असत्) रहें।

इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥ ५६॥

भा०—हे पुरुष! (यतः) जिस (हिरण्यम्) सुवर्ण के आभूषण को (ते पिता) तेरे पिता ने (पुरा) पहले (अबिभः) धारण किया, तू (इदम्) उसी (हिरण्यम्) सुवर्ण के बने आभूषण को (बिभृहि) धारण कर। (स्वर्गम्) स्वर्गमय लोक में (यतः) प्रयाण करते हुए (पितुः) पिता के (दक्षिणम् हस्तम्) दायें हाथ को (निर्मृड्ढि) स्वच्छ कर, अर्थात्—उसके दायें हाथ का कर्तव्य अपने ऊपर ले और पाल।

ये च॑ जी॒वा ये च॑ मृ॒ता ये जा॒ता ये च॑ य॒ज्ञियाः॑ ।
तेभ्यो॑ घृ॒तस्य॑ कु॒ल्यै॑तु॒ मधु॑धारा व्यु॒न्द॒ती ॥ ५७ ॥

भा०—(ये च) जो भी (जीवाः) जीवित पुरुष हैं और (ये च मृताः) जो मर गये हैं और (ये जाताः) जो नवजात शिशु हैं और (ये च) जो (यज्ञियाः) आत्मा और परब्रह्म की उपासना में लगे हैं, (तेभ्यः) उन सबके लिये (घृतस्य कुल्या) घृत और अन्यान्य पुष्टिकारक पदार्थों की धारा और (मधु-धारा) मधु और आनन्द की धारा (वि उन्दती) हृदय को आर्द्र करती हुई (एतु) प्राप्त हो।

अध्यात्म ऊर्ध्वगति का वर्णन करते हैं

वृषा॑ मती॒नां प॑वते विचक्ष॒णः सूरो॒ अह्नां॑ प्रत॒रीतो॒षसां॑ दि॒वः ।
प्रा॒णः सिन्धू॑नां क॒लशाँ॑ अचिक्रद॒दिन्द्र॑स्य॒ हार्दि॑मावि॒शन्म॑नी॒षया॑ ॥ ५८ ॥

भा०—(मतीनाम्) मनन करने योग्य ज्ञानों का (वृषा) वर्षण करने वाला, (विचक्षणः) विविध प्रकार से ज्ञानों का द्रष्टा; (अह्नाम्) दिनों के (सूरः) उत्पादक तथा (दिवः) प्रकाश और (उषसाम्) उषाओं के (प्रतरीता) प्रवर्त्तक सूर्य के समान (विचक्षणः) विविध रूप से दर्शनीय, (सिन्धूनाम्) निरन्तर विषयों में बहने वाले इन्द्रियों का (प्राणः) मुख्य, प्राण रूप आत्मा, (कलशान्) घटरूप इन देहों को (अचिक्रदत्) प्राप्त होता और उनको भी सजीव करता है और वह शक्तिशाली परमात्मा

के (हार्दिम्) हृदय में (मनीषया) मन की नियन्त्रणा द्वारा (आविशत्) प्रविष्ट होता है।

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छुक्र आततः।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ५९ ॥

भा०—हे पुरुष! (ते) तेरा (धूमः) कम्पा देने वाला (त्वेषः) प्रकाश (ऊर्णोतु) सर्वत्र फैले और (दिवि) प्रकाशस्वरूप मोक्ष में तू (शुक्रः) निष्पाप होकर (आततः) व्याप्त हो। (त्वम्) तू (द्युता) कान्ति से (सूरः न) सूर्य के समान प्रकाशवान् होकर (पावक) हे आत्ममलशोधक अग्निस्वरूप आत्मन्! अपने सामर्थ्य से (रोचसे) प्रकाशित हो।

प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः।
मर्यइव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥६०॥ (२५)

भा०—(इन्दुः) चन्द्र के समान आह्लादक गुणों से युक्त तथा पर-प्रकाश से प्रकाशित होने वाला जीव, मोक्ष में, (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्य-वान् परमेश्वर के (निष्कृतिम्) परम मोक्ष धाम को जिसमें कोई कार्य करना शेष न रह जाय (प्र एति) प्राप्त होता है। तब (सखा सख्युः न) जिस प्रकार मित्र अपने परममित्र के स्थान को प्राप्त करता है और बराबर (संगिरः) उत्तम मित्रतायुक्त प्रेमोक्तियों को (प्रमिनाति) कहता है उसी प्रकार जीव भी उस परमेश्वर के धाम को पहुँच कर उसके संग (सं-गिरः) उत्तम स्तुतिवाणियों का (प्र मिनाति) उच्चारण करता है, उसकी बहुत २ स्तुतियां करता है और फिर हे परमेश्वर! जिस प्रकार समर्थपुरुष (मर्यः योषाः इव) स्त्री का पालन कर उसे सुखी करता है उसी प्रकार तू प्रेम युक्त होकर जीवों का अपने अनन्त सामर्थ्य से सबको उसी आनन्दमय रूप में (शतयामना पथा) सैकड़ों पुरुषों से चलने योग्य मार्ग द्वारा (कलशे) हृदय कलश में (सम् अर्षसे) सबको एक साथ ही प्राप्त होता है, साक्षात् हो आनन्दित करता है।

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥

भा०—(स्व-भानवः) स्वयंप्रकाश (विप्राः) मेधावी पुरुष जब उस परब्रह्म के साक्षात्कार से प्राप्त सोम-रस का (अक्षन्) आस्वादन करते हैं, तब वे (अमीमदन्त) निरन्तर तृप्त रहा करते हैं, तब वे अपने (प्रियान्) प्रिय शरीर के भोगों को (अधूषत) कपांकर छोड़ देते हैं और (अस्तोषत) परब्रह्म की स्तुति करते हैं। इन ज्ञानी पुरुषों के पास हम (यविष्ठाः) अति तुच्छ, ज्ञान वाले पुरुष (ईमहे) उनको प्राप्त होकर ज्ञान की याचना करते हैं।

आ यांत पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥६२॥

भा०—हे (पितरः) पूजनीय पुरुषो! आप लोग (सोम्यासः) ब्रह्म ज्ञान का अभ्यास करने हारे, (गम्भीरैः) अति गम्भीर (पितृयाणैः) संसार के परिपालक पिताओं के जाने योग्य (पथिभिः) सन्मार्गों से (आयात) गमन करो और (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (आयुः) दीर्घ आयु करें और (प्रजां च) प्रजाओं का (दधतः) भली प्रकार धारण पोषण करते हुए (रायः पोषैः च) ऐश्वर्य के द्वारा प्राप्त पोषक उपायों से (नः) हमें (सचध्वम्) प्राप्त होओ।

परां यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यांत नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ६३

भा०—हे (सोम्यासः) ब्रह्मज्ञान के अभ्यास करने हारे (पितरः) पूजनीय पुरुषो! आप लोग (गम्भीरैः) दुर्गम तथा (पूर्याणैः) पुर के समान भीतरी ब्रह्मपुरी को पहुँचाने वाले (पथिभिः) योग आदि मार्गों से (परा यात) मोक्ष को जाओ। अथवा (पूर्याणैः परायात) पुरी तक पहुँचने वाले मार्गों से ही आप पुनः अपने २ आश्रमों में पधारें। (अधा) और

(मासि) मास पूर्ण हो जाने पर, प्रति पूर्णिमा पर (नः गृहान्) हमारे घरों पर (पुनः) फिर (सु-प्रजसः) उत्तम प्रजा और (सु-वीराः) उत्तम वीर सन्तान एवं शिष्यगण से युक्त होकर (हवि-अत्तुम्) अन्न खाने के लिये (आ यात) आइये ।

यद् वो॑ अ॒ग्निरज॑हा॒देक॒मङ्गं॑ पितृलो॒कं ग॒मयं॑ज्जा॒तवे॑दाः ।
तद् व॑ ए॒तत् पुन॒रा प्या॑ययामि सा॒ङ्गाः स्व॒र्गे पि॒तरो॑ मादयध्वम् ६४

भा०—हे पूज्य पितृपुरुषो । (यद्) यदि (जातवेदाः अग्निः) सर्वज्ञ प्रभु (वः) आप लोगों को (पितृलोकम्) पिता माता के पद तक (गमयन्) पहुँचाता हुआ (एकम् अङ्गम्) तुम्हारे एक अंग, स्त्री आदि किसी सम्बन्धी को (अजहात्) त्याग करा दे, पीछे छोड़ दे, (तद्) तो (वः) तुम्हारे (एतत्) उस अंग को मैं (पुनः आप्याययामि) पुनः पूर्ण करूं, अर्थात् शिक्षा द्वारा उसे तुम्हारे साथ चलने योग्य बना दूं, जिससे आप लोग, हे (पितरः) पितृपद पर विराजमान पुरुषो ! (सांगाः) सम्पूर्ण अंगों सहित (स्वर्गे) सुखमय लोक में (मादयध्वम्) हर्ष आनन्द का लाभ करें ।

अभू॑द् दू॒तः प्रहि॑तो जा॒तवे॑दाः सा॒यं न्य॒ह्न उ॑प॒वन्द्यो॒ नृभिः॑ ।
प्रादाः॑ पि॒तृभ्यः॑ स्व॒धया॒ ते अ॑क्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि॑ ६५

भा०—(जातवेदाः) वेदों का जानने हारा जो पुरुष सूर्य के समान हमारे पास (दूतः) उत्तम संदेश पहुंचाने वाले के रूप में (प्रहितः) भेजा (अभूत्) जाता है, वह (सायं नि-अह्ने) सायं प्रातः दोनों समय (नृभिः) पुरुषों द्वारा (उपवन्द्यः) सदा नमस्कार करने योग्य होता है। हे (जातवेदः) विद्वन् ! तू (हवींषि) नाना अन्न (पितृभ्यः) पूज्य पितरों को (प्र अदाः) प्रदान कर। (ते) वे (स्वधया) अपने शरीर के धारण के हेतु (हवींषि अक्षन्) उन अन्नों का भोजन करें और हे (देव) विद्वन् ! अनन्तर (त्वम्) तू (प्रयता) अति नियमित (हवींषि) अन्नों का स्वयं (अद्धि) भोग कर ।

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः ।
अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ६६ ॥

भा०—(हे असौ) परदेशगत पुरुष ! (इह ते मनः) तेरा मन उस देश में ही लगा है । (जामयः-इव) भगनियें या स्त्रियें जिस प्रकार (ककुत्सलम्) अपने कन्धे के भाग को ढके रहती हैं, हे (भूमे) भूमे ! तू भी (एनम्) उसको उसी प्रकार (अभि ऊर्णुहि) सब प्रकार से ढांक, सुरक्षित रख, उसकी रक्षा व पालन कर ।

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ६७

भा०—(पितृ-सदनाः) पूज्य पुरुषों के घर (शुम्भन्ताम्) सुशोभित रहे । हे पूजनीय पुरुष ! (पितृसदने लोके) पितरों के विराजने के स्थान में (त्वा) तुझको (आसादयामि) आदर पूर्वक बिठाता हूँ ।

ये३ऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥ ६८ ॥

भा०—(ये) जो (अस्माकं) हमारे (पितरः) पूज्य गुरुजन हैं, यह आसन (तेषां) उनकी (बर्हिः असि) प्रतिष्ठा का साधन रूप है ।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ६९ ॥

भा०—हे (वरुण) सबसे वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! आप हमारे (उत्तम) उत्कृष्ट (पाशम्) सात्विक कर्मबन्धन को (उत् श्रथय) ऊपर से खोल दो । (अधमं पाशं अव श्रथय) नीचे के पाश को नीचे ढीला कर सरका दो और (मध्यमम्) बीच के राजस कर्मबन्धन को भी (वि श्रथय) विशेष रूप से ढीला कर दो । (अथ) और हे (आदित्य) सूर्य के समान सबके वशयितः ! (तव व्रते) तेरे व्रत में निष्ठ होकर (वयम्) हम (अदितये) अविनाशी पद की प्राप्ति के लिये (अनागसः) पापरहित, (स्याम) हों । व्याख्या देखो (अथर्व० ७।८३।३॥)

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ७०(२६)

भा०—हे (वरुण) परमात्मन्! (अस्मत्) हमसे (सर्वान्) उन सब (पाशान्) कर्मबन्धनों को (प्र मुञ्च) छुड़ा, (यैः) जिनसे यह जीव (समामे) समान रूप से (बध्यते) बांधा जाता है और जिन्हों से जीव (व्यामे) विशेष रूप से भी बन्ध जाता है। हे (राजन्) सबके राजन् परमेश्वर। हम (त्वया गुपिताः) तेरे द्वारा सुरक्षित रहते हुए (शरदां शतानि) सैकड़ों वर्ष (जीवेम) जीवें।

राजा और राष्ट्रपालकों का स्वागत

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥ सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२ ॥ पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥ ७३ ॥ यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४ ॥ एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥ एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥ एतत् ते तत स्वधा ॥ ७७ ॥ स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥ ७८ ॥ स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥ स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥ ८० ॥ (२७)

भा०—(काव्यवाहनाय) मेधावी पुरुषों के हितकारी सात्विक अन्न रूप पदार्थों को प्राप्त करने वाले (अग्नये) अग्रणी, नेता पुरुष का हम (स्वधा) देह के पोषक पदार्थ द्वारा (नमः) आदर करते हैं। (पितृमते सोमाय) राष्ट्र के पालक पितृगणों से युक्त, सबके प्रेरक सोम राजा का (स्वधा नमः) अन्न द्वारा हम आदर करते हैं। (सोमवद्भ्यः पितृभ्यः) सोम राजा से युक्त पालक पुरुषों का (स्वधा नमः) अन्न द्वारा सत्कार करते हैं। (पितृमते यमाय स्वधा नमः) प्रजा पालक पुरुषों से युक्त नियन्ता राजा का हम अन्न द्वारा सत्कार करते हैं ॥ ७१–७४ ॥

हे (प्रततामह) प्रपितामह! (ते) तेरे निमित्त और (ये च) जो भी (त्वाम् अनु) तेरे पीछे अनुसरण करनेहारे हैं उनके लिये, (एतत्) यह (स्वधा) शरीर पोषक अन्न है। हे (ततामह) पितामह (ते ये च त्वाम् अनु) तेरे

और तेरे पीछे अनुसरण करने हारों के लिये (एतत् स्वधा) यह शरीर पोषक अन्न है। (तत् ते एतत् स्वधा) पिता तेरे लिये यह अन्न है ॥७४–७७॥

(पृथिविषद्भ्यः पितृभ्यः) पृथिवी पर विराजने वाले पालक माता पिता आदि पूजनीय पुरुषों को (स्वधा) अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थ प्राप्त हों। (अन्तरिक्ष-सद्भ्यः स्वधा) अन्तरिक्ष में विराजने वाले पालक पुरुषों को अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों। (दिवि-सद्भ्यः पितृभ्यः स्वधा) तेजोमय मोक्ष मार्ग में विराजमान पूज्य गुरुजनों को आत्मपोषक बल आदि प्राप्त हों ॥ ७५–८० ॥

नमो॑ वः पितर ऊर्जे नमो॑ वः पितरो रसा॑य ॥ ८१ ॥ नमो॑ वः पितरो भामाय नमो॑ वः पितरो मन्यवे॑ ॥ ८२ ॥ नमो॑ वः पितरो यद् घोरं तस्मै॒ नमो॑ वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै॑ ॥ ८३ ॥ नमो॑ वः पितरो यच्छिवं तस्मै॒ नमो॑ वः पितरो यत् स्योनं तस्मै॑ ॥ ८४ ॥ नमो॑ वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥ ८५ ॥

भा०—हे (पितरः) पालक पुरुषो। (वः ऊर्जे नमः) अन्नादि परम रस के निमित्त हम आप लोगों का आदर करते हैं। (वः) आप लोगों के निमित्त (रसाय) ओषधि आदि रस का (नमः) आदर करते हैं। हे (पितरः) पालक पुरुषो ! (वः भामाय नमः) आप लोगों के क्रोध वा तेज का हम आदर करते हैं, (वः मन्यवे नमः) आप लोगों की मानस असहिष्णुता वा ज्ञान, वा मन का भी हम आदर करते हैं। हे (पितरः २) पालक पुरुषो ! (वः यद्) आप लोगों का जो (घोरम्) भयंकर कार्य है (तस्मै नमः) उसका भी हम आदर करते हैं। (यत् वः क्रूर तस्मै नमः) जो आपका युद्ध आदि के अवसर पर क्रूर, शत्रुहिंसा आदि कर्म है उसका भी हम आदर करते हैं। हे (पितरः पितरः) प्रजा के पालक पुरुषो ! (यः यत् शिवम् तस्मै नमः) आप लोगों का जो शिव, मङ्गल, कल्याण-कारी कार्य है उसका हम आदर करते हैं। (वः यत् स्योनं तस्मै नमः)

आप लोगों का जो प्रजा को सुख पहुँचाने वाला कार्य है उसका हम आदर करते हैं। हे (पितरः २) पालक पुरुषो ! (वः नमः) आप लोगों का हम आदर करते हैं और (वः स्वधा) आप लोगों के निमित्त शरीर-पोषक यह अन्न प्रदान करते हैं।

ये॑ऽत्र पि॒तर॑ः पि॒तरो॒ ये॑ऽत्र यू॒यं स्थ ।
यु॒ष्मांस्ते॑ऽनु यू॒यं तेषां॒ श्रेष्ठा॑ भूयास्थ ॥ ८६ ॥

भा०—हे (पितरः) माता, पिता, आचार्य आदि गुरुजन ! (अत्र) इस लोक में (ये) जो भी (पितरः) पालन करने हारे हैं और (ये) जो (अत्र) यहां (यूयं स्थ) आप लोग हैं, उनमें से जो (युष्मान् अनु ते) आप लोगों के अनुगामी हैं पूजनीय हैं और (तेषाम्) उनमें से (यूयम्) आप लोग ही (श्रेष्ठा भूयास्थ) श्रेष्ठ, अधिक आदर और प्रशंसा के पात्र रहें।

य इ॒ह पि॒तरो॑ जी॒वा इ॒ह व॒यं स्म॑ः ।
अ॒स्मांस्ते॑ऽनु व॒यं तेषां॒ श्रेष्ठा॑ भूयास्म ॥ ८७ ॥

भा०—हे (पितरः) पालक जनो ! (इह) इस लोक में (जीवाः) अन्य भी जीव हैं और (इह) इस लोक में (ये वयं स्मः) हम लोग भी हैं, (ते) वे अन्य जीव (अस्मान् अनु) हमसे उतर कर रहें और (वयं) हम (तेषाम्) उन सब जीवों में (श्रेष्ठाः भूयास्म) श्रेष्ठ होकर रहें।

आ त्वा॑ग्न इधीमहि द्यु॒मन्तं॑ देवा॒जर॑म् ।
यद् घ॒ सा ते॒ पनी॑यसी स॒मिद् दी॒दय॑ति॒ द्यवि॑ ।
इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥ ८८ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! हे (देव) द्योतमान ! (द्युमन्तम्) प्रकाशमान और (अजरम्) अविनाशी (त्वा) जो तू है उसकी हम (इधीमहि) उपासना करें। (यत्) क्योंकि (ते) तेरी ही (सा) यह जगत् प्रसिद्ध (पनीयसी) अति प्रशंसनीय और (समित्) अति देदीप्यमान सूर्यरूप शक्ति (द्यवि) द्यौलोक में (दीदयति) प्रकाशमान है।

हे परमेश्वर! तू (स्तोतृभ्यः) गुणगान करने वाले उपासकों को (इषम्) अन्न और भीतरी मानस प्रेरणा (आ भर) प्राप्त करा।

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८९ ॥ (२८)

भा०—(अप्सु अन्तरा) ज्ञान और कर्मों के बीच वर्तमान, (चन्द्रमाः) चन्द्र के समान सूर्य रूप परम-आत्मा को प्रकाश से प्रकाशित होकर स्वयं सबको आह्लादित करने हारा, (सुपर्णः) उत्तम ज्ञानवान् आत्मा, (दिवि) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर में (धावते) वेग से गति करता है। हे (विद्युत) विशेष द्युति से प्रकाशित हुए ज्ञानी पुरुषो! (हिरण्य-नेमयः) सुवर्ण के समान अभिरमणीय पदार्थों के प्रति झुकने वाले संसारलिप्त भोगी लोग (वः पदं) आप लोगों के पद को (न विन्दन्ति) नहीं पाते हैं। हे (रोदसी) पापों से रोकने हारे गुरु और उपदेशक लोगो! तुम दोनों (अस्य मे) इस मेरी ओर भी (वित्तम्) ध्यान रखो। मुझे भी इस संसार-सागर से पार उतारो। इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[तत्रैकं सूक्तं नवाशीतिश्चर्चः]

इत्याष्टादशं काण्ड समाप्तम्

अथैकोनविंश काण्डम्

[१] यज्ञ के रूप से राष्ट्र की वृद्धि का उपदेश

ब्रह्मा ऋषिः। यज्ञः चन्द्रमाश्च देवते। १, २ पथ्याबृहत्यौ, ३ पंक्तिः। तृचं सूक्तम्।

सं सं स्रवन्तु नद्यः१ सं वाताः सं पतत्रिणः।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

भा०—(नद्यः) समृद्ध करने हारी नदियों के समान ऐश्वर्यों की नदियां (सं सं स्रवन्तु) खूब बहें। (वाताः) वायुएं और (पतत्रिणः) पाल

वाली नौकाएं वा विमान भी (सं सं) बराबर चला करें। हे (गिरः) उत्तम उपदेश करने हारे पुरुषो! आप लोग (इमं यज्ञम्) इस यज्ञ या यज्ञ करने हारे पुरुष को, या परस्पर की संगति, उत्तम व्यवस्था से बंधे समाज और राष्ट्र को (वर्धयत) बढ़ाओ, समृद्ध और उन्नत करो।

उपाय से राष्ट्र की रक्षा करता हूँ।

[२] शान्तिदायक जलों का वर्णन

सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवता। अनुष्टुभः। पञ्चर्चं सूक्तम्।

हे परमेश्वर ! तु (स्तोतृभ्यः) गुणगान करने वाले उपासकों को (इषम्) अन्न और भीतरी मानस प्रेरणा (आ भर) प्राप्त करा।

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी

केतुं

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो —
(अथर्व - २०।२६।६)

केतुं > √चाय् + तु (

यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

भा०—(नद्यः) समृद्ध करने हारी नदियों के समान ऐश्वर्यों की नदियां (सं सं स्रवन्तु) खूब बहें। (वाताः) वायुएं और (पतत्रिणः) पाल

वाली नौकाएं वा विमान भी (सं सं) बराबर चला करें। हे (गिरः) उत्तम उपदेश करने हारे पुरुषो! आप लोग (इमं यज्ञम्) इस यज्ञ या यज्ञ करने हारे पुरुष को, या परस्पर की संगति, उत्तम व्यवस्था से बंधे समाज और राष्ट्र को (वर्धयत) बढ़ाओ, समृद्ध और उन्नत करो। मैं (सं-स्राव्येण हविषा) भली प्रकार धन और ऐश्वर्य और सुख को लाने वाले उपाय से इस यज्ञ में (जुहोमि) आहुति करता हूँ, अपने आपको लगाता हूँ।

इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ २ ॥

भा०—हे (होमाः) यज्ञो! आप (इमम् यज्ञम्) इस यज्ञकर्त्ता पुरुष या यज्ञमय राष्ट्र की (अवत) रक्षा करो। (उत) और हे (संस्रावणः) समस्त ऐश्वर्यों को भली प्रकार प्राप्त कराने हारे उपायो! तुम भी (इमं अवत) इस यज्ञपति और राष्ट्रपति की रक्षा करो। (यज्ञम् इमम् इत्यादि) पूर्ववत्।

रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

भा०—(रूपं-रूपं) प्रत्येक प्रकार के रूप अर्थात् पशु और (वयोः-वयः) प्रत्येक प्रकार के अन्न और बल को (सं-रभ्य) भली प्रकार प्राप्त करके मैं (एनम्) इस राष्ट्रपति और यज्ञपति को (परि ष्वजे) सब ओर से आलिंगन करता हूँ, सब ओर से उसकी रक्षा करता हूँ। (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओं के वासी जन (इमम्) उसको (वर्धयन्तु) बढ़ावें। (संस्राव्येण हविषा जुहोमि) मैं, धन को बढ़ाने वाले उपाय से राष्ट्र की रक्षा करता हूँ।

[२] शान्तिदायक जलों का वर्णन

सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवता। अनुष्टुभः। पञ्चर्चं सूक्तम्।

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्य ! (ते) तुझे (हैमवतीः आपः) हिम वाले पर्वतों से बहने वाली जलधाराएं (शम्) कल्याणकारी हों । (ते) तुझे (उत्स्याः) सोतों से बहनेवाली जलधाराएं (शम् उ सन्तु) सुखकारी हों । (सनिष्यदाः आपः) विशेष वेग से बहने वाली जलधाराएं (ते शम्) तुझे कल्याणकारी हों, (वर्ष्याः) वर्षा से प्राप्त जलधाराएं (ते) तुझे (शम् उ सन्तु) शान्तिदायक हों ।

शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः ।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥ २ ॥

भा०—हे मनुष्य ! (धन्वन्याः) मरुदेश में होने वाली (आपः) जल-धाराएं (ते शम्) तुझे शान्तिदायक हों । (अनूप्याः) अनूपदेश में उत्पन्न जलधाराएं (ते शम् सन्तु) तुझे शान्तिदायक हों । (खनित्रिमाः आपः) खोदकर प्राप्त हुए जल (ते शम्) तुझे शान्तिदायक हों और (याः) जो (कुम्भेभिः) घड़ों में भरकर (आभृताः) रखे हैं, या घड़ों द्वारा घर में लाये हैं वे जल में (शम्) शान्तिकारक हों ।

अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥ ३ ॥

भा०—(विप्राः) जो बिना कुदाली के ओषधियों को केवल हाथों से खोदते हैं उन मेधावी पुरुषों के समान (आपः) वे जल भी (भिषग्भ्यः) सब रोग दूर करने हारी ओषधियों से भी अधिक (भिषक्-तराः) रोग-विनाशक हैं जिनके विषय में हम (अच्छा वदामसि) उत्तम रूप से उपदेश करें ।

अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् ।
अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (दिव्यानाम् अपाम्) आकाश से बरसने वाले और (स्रोतस्यानाम् अपाम्) स्रोतों से उत्पन्न होने वाले तथा अन्यान्य (अपाम्) जलों को (प्रणेजने) शुद्ध कर सेवन करने से (अश्वाः) अश्वों के समान शीघ्रकारी ! (वाजिनः) तथा बल युक्त सदा (भवथ) बने रहो ।

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषों ! (ताः) वे नाना प्रकार के (अपः) जल (शिवाः अपः) कल्याणकारी जल कहाते हैं जो कि (अयक्ष्मंकरणीः) राजयक्ष्मा आदि रोगों को उत्पन्न नहीं करते । (ते) वे आप लोग (ताः) उन २ (भेषजीः) औषधरूप जलों का (आदत्त) ग्रहण करो (यथैव) जिस प्रकार से (मयः तृप्यते) सुख बराबर बढ़े ।

[३] जातवेदा अग्नि, परमेश्वर का वर्णन

अथर्वाङ्गिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । १-५ त्रिष्टुभः । २ भुरिक् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्ततं स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥

भा०—(दिवः) द्यौलोक से, (पृथिव्याः) पृथिवीलोक से, (अन्तरिक्षात् परि) अन्तरिक्ष से (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों में से, (ओषधीभ्यः अधि) ओषधियों में से और (यत्र-यत्र) जहां जहां भी (जातवेदाः) व्यापक अग्नि (विभृतः) विशेष रूप से विद्यमान है, (ततः) वहां वहां से अग्नि (जुषमाणः) उपभोग करने योग्य होकर (नः) हमें (परि एहि) प्राप्त हो । द्यौलोक में सूर्य, पृथिवी पर की अग्नि, अन्तरिक्ष में विद्युत, वनस्पतियों और ओषधियों में तेज़ाब और रसायन से प्राप्त वैद्युत आदि तेजों का मनुष्य उपयोग करें ।

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।
अग्ने सर्वास्तन्वः१ सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! (ते) तेरा (यः) जो (अप्सु) जलों में (महिमा) महत्त्वपूर्ण सामर्थ्य है और (यः) जो (वनेषु) वनों में और वनस्पतियों में जो तेरा महान् सामर्थ्य है, (यः ओषधीषु) और जो ओषधियों में और (पशुषु) पशुओं में और (अप्सु) प्रजाओं या जलों में तेरा महान् सामर्थ्य है, हे अग्ने ! तू (सर्वाः) समस्त (तन्वः) रूपों को (सं रभस्व) उत्तम रीति से प्रकट कर और (ताभिः) उन सहित (नः) हमें धन, ऐश्वर्य के प्रदाता और (यजस्रः) अविनाशी रूप में (एहि) प्राप्त हो ।

यस्ते॑ दे॒वेषु॑ महि॒मा स्व॒र्गो या ते॑ त॒नूः पि॒तृष्वा॑वि॒वेश॑ ।
पुष्टि॒र्या ते॑ मनु॒ष्येषु पप्र॒थेऽग्ने॒ तया॑ र॒यिम॒स्मासु॑ धेहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (ते) तेरा (यः महिमा) जो महान् सामर्थ्य (देवेषु) विद्वानों में (स्वर्गः) सूर्य और प्रकाश को प्राप्त करने वाला आनन्दमय है और (या ते तनूः) जो तेरा स्वरूप (पितृषु) प्रजा के पालन करने हारे वृद्ध, अनुभवी, शक्तिशाली पुरुष और ऋतु आदि पदार्थों में (आविवेश) आविष्ट है और (या ते) जो तेरा स्वरूप (पुष्टिः) पोषक स्वरूप से (मनुष्येषु) मनुष्यों में (पप्रथे) विस्तृत है, (तया) उस सर्वपोषक, ज्ञानमय, रक्षामय, पुष्टिमय स्वरूप से (अस्मासु) हममें (रयिं धेहि) सब प्रकार के ऐश्वर्य और बलों का प्रदान कर ।

श्रुत्क॑र्णाय क॒वये॒ वेद्या॑य॒ वचो॑भिर्वा॒कैरुप॑ यामि रा॒तिम् ।
यतो॑ भ॒यमभ॑यं॒ तन्नो॑ अ॒स्त्वव॑ दे॒वानां॑ यज॒ हेडो॑ अग्ने ॥ ४ ॥

भा०—(श्रुत्-कर्णाय) प्रार्थनाओं को सुनने वाले, (कवये) क्रान्तदर्शी, (वेद्याय) ज्ञान करने योग्य परमेश्वर से, (वाकैः) नित्य पाठ करने योग्य अथवा (वाकैः = पाकैः) अच्छी प्रकार सुविचारित (वचोभिः) वेदमन्त्रों द्वारा, (रातिम्) अभिलषित दान की (उपयामि) याचना करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि (यतः) जिधर से भी (भयम्) भय हो (तत्)

उधर से (नः अभयम् अस्तु) हमें अभय करो। हे (अग्ने) अग्रणीनेतः! प्रभो! आप (देवानाम्) दिव्य पदार्थों और विद्वानों के (हेडः) क्रोध को (अव यज) दूर कर। राजा और ईश्वर के पक्ष में समान है।

[४] वाणी और आकूति का वर्णन

अथर्वाङ्गिरा ऋषिः। अग्निरुत मन्त्रोक्ता देवता। १ पञ्चपदा विराड् अतिजगती २ जगती ३, ४ त्रिष्टुभौ। चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः। तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥ १ ॥

भा०—(अथर्वा) परमात्मा ने (याम्) जिस (आहुतिम्) दी गई वेदवाणी को (प्रथमाम्) सबसे प्रथम (अकृणोत्) प्रकट किया और (या) जो स्वयं प्रकट हुई, (या = यया) जिस द्वारा (जातवेदः) वेदों के उत्पादक परमेश्वर ने (हव्यम्) ज्ञान करने योग्य इस समस्त संसार को (अकृणोत्) प्रकट किया, (ताम्) उस (एताम्) को ही मैं (प्रथमः) सबसे प्रथम, हे पुरुष! (ते) तुझे (जोहवीमि) प्रदान करता हूँ, उपदेश करता हूँ। (ताभिः) उन वेद-वाणियों द्वारा (स्तुतः) यथार्थ रूप से वर्णन करने योग्य (अग्निः) सर्वप्रकाशक परमेश्वर (हव्यम्) समस्त संसार का (वहतु) धारण करता है। (अग्नये) उस अग्निरूप परमेश्वर की हम (स्वाहा) उत्तम रीति से प्रार्थना, स्तुति, उपासना करते हैं।

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु। यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२॥

भा०—(सु-भगाम्) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, (देवीम्) सर्व गूढ़-तत्वों को दर्शाने और प्रकाशित करने वाली, (आकूतिम्) वाक्यतात्पर्यरूप शक्ति को मैं (पुरः दधे) साक्षात् धारण करता हूँ, उसका ज्ञान करता हूँ। वह (चित्तस्य) ज्ञान करने के साधन रूप अन्तःकरण की (माता)

बनाने वाली, (सु-हवा) उत्तम रीति से ज्ञान करने वाली (नः) हमें (अस्तु) प्राप्त हो। मैं (याम्) जिस (आशाम्) आशा या कामना को (एमि) चाहूँ (सः) वह (मे) मेरी (केवली) अवश्य शुद्धरूप (अस्तु) पूर्ण हो और (मनसि) मन में (प्रविष्टाम्) रस रूप से विद्यमान (एनाम्) इस 'आकूति' की अर्थात् साक्षात्कारशक्ति को मैं (विवेयम्) जान लूं, उसको साक्षात् करूं।

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उप आ गहि।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥ ३ ॥

भा०—हे (बृहस्पते) वेदवाणी के स्वामिन्! आप (आ-कूत्या) वाक्य के तात्पर्यरूप वाणी के मर्म द्वारा (नः) हमें (उप आ गहि) प्राप्त होते हो। (आ-कूत्या नः उप आ गहि) इस रूप से ही आप हमें प्राप्त होते हो। (नः) हमें (भगस्य) ज्ञानरूप ऐश्वर्य (धेहि) प्रदान कर (अथो) और (नः) हमारे लिये (सु-हवः) उत्तम रीति से स्तुतियोग्य (भव) हो।

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम्।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥४॥

भा०—(आङ्गिरसः) अंग २ में रस रूप से विद्यमान, (बृहस्पतिः) बृहती वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर, (आ-कूतिम्) जो बात मेरे मुख से निकले उसका प्रथम स्पष्ट तात्पर्य रूप विचार और फिर (एताम्) तदनुरूप प्रकट होने वाली (वाचम्) व्यक्त रूप से उच्चारण की जाने वाली व्यक्त वाणी को भी (प्रति जानातु) मुझे प्रदान करे। (यस्य) जिसके अधीन (देवाः) सब बल प्रदान करने वाले और बाह्य विषयों का प्रकाश करने वाले इन्द्रियगण भी (सु-प्रणीताः) उत्तम रीति से प्रयोग किये जाते हैं और (देवताः) शरीर में आत्मा की विशेष शक्तियां (सं-बभूवुः) जिससे प्रकट होती हैं (सः) वह (कामः) महान् 'काम' समष्टिकामना, या महती इच्छा रूप संकल्पमय परमात्मा (अस्मान्) हमें (अनु एतु) प्राप्त हो।

[५] उपास्य देव

अथर्वाङ्गिरा ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । एकर्चं सूक्तम् ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥१॥

भा० (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमात्मा (जगतः) समस्त जगत् का, (चर्षणीनाम्) समस्त प्रजाओं का और (अधिक्षमि) इस पृथिवी पर (यत्) जो कुछ भी (विषुरूपम्) नाना प्रकार के पदार्थ हैं उन सबका (राजा) राजा है वह (ततः) वह अपने खज़ाने में से (दाशुषे) दानशील पुरुष को (वसूनि) नाना जीवनोपयोगी ऐश्वर्य (ददाति) प्रदान करता है। वह ही (चित् उपस्तुतः) भक्ति पूर्वक स्तुति करने योग्य है। वह (अर्वाक्) हमारे प्रति (राधः) ऐश्वर्य और ज्ञान (चोदत्) प्रदान करे ।

[६] महान् पुरुष का वर्णन

नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुभः षोडशर्चं सूक्तम् ।

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

भा०—(सहस्र-बाहुः) हजारों बाहुओं वाला, (सहस्र-अक्षः) हजारों आंखों वाला, (सहस्र-पात्) हजारों पैरों वाला (पुरुषः) पुरुष इस ब्रह्माण्ड रूप पुर में व्यापक है। (सः) वह (विश्वतः) सब ओर से (भूमिम्) समस्त प्राणियों और समस्त जगत् की उत्पत्ति करने वाली भूमि के समान उत्पादिका प्रकृति को (वृत्वा) व्याप्त करके, (दश-अङ्गुलम्) दश विकार भूत अर्थात् ५ स्थूल भूत और ५ सूक्ष्म भूत पदार्थों को (अतिष्ठत्) अति क्रमण करके व्याप्त है।

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥ २ ॥

भा०—(त्रिभिः पद्भिः) यह पुरुष तीन अंशों से (द्याम्) प्रकाश रूप मोक्ष को (रोहत्) व्याप्त करता है और (अस्य) इसका (पात्) एक अंश (इत्) ही इस दृश्य जगत् में (पुनः) बार २ सृष्टि और प्रलय के रूप में (अभवत्) प्रकट होता है । (तथा) इसी प्रकार से वह (विश्वम्) विश्व में (वि अक्रामत्) व्याप्त हो रहा है । वह (अशन-अनशने) भोजन करने वाले प्राणियों और भोजन न करने वाले जड़ पदार्थों के (अनु) भीतर भी व्याप्त है ।

तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस पुरुष के (तावन्तः महिमानः) वे सब लोक-लोकान्तर और उसमें होने वाले बड़े २ कार्य उसकी महान् शक्ति के प्रदर्शनमात्र हैं, (पुरुषः) वह पुरुष (ततो ज्यायान् च) उन सबसे कहीं बड़ा है । (विश्वा भूतानि) ये समस्त भूत अर्थात् चर अचर जगत् (अस्य) इस महान् पुरुष का (पादः) एक अंश है । (अस्य) इसके (त्रिपात्) शेष तीन अंश (दिवि) परम तेजोमय स्वरूप में (अमृतम्) मोक्षरूप है ।

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥ ४ ॥

भा०—(इदं सर्वम्) यह सब कुछ (यत् भूतम्) जो उत्पन्न हुआ था और (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला है और (यत्) जो (अन्येन) ब्रह्म या चेतन रूप के अतिरिक्त जड़ प्रकृति द्वारा उत्पन्न हुआ है, वह (पुरुष एव) परमात्मा ही की रचना है (उत) वह (अमृतत्वस्य) अमृत सत्ता का (ईश्वरः) स्वामी है ।

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥

भा०—(यत्) जो विद्वान् पुरुष (पुरुषम्) उस पूर्ण पुरुष का

(वि अदधुः) विशेष रूप से प्रतिपादन करते हैं, उसको उन्होंने (कतिधा) भला कितने प्रकार से (वि अकल्प यन्) विविध रूपों में कल्पित किया है, (अस्य) इसका (मुखम् किम्) मुख क्या पदार्थ है, (बाहू किम्) बाहुएं क्या हैं, (ऊरू किम्) जांघें क्या हैं और (पादौ) पैर भाग क्या (उच्येते) कहे जाते हैं ?

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥

भा०—(अस्य) इस पुरुष की बनाई सृष्टि में ब्राह्मण (मुखम् आसीत्) मुख हैं। वे मुख के समान ऊंचे पद पर स्थित एवं समाज के अग्रणी और प्रमुख हैं। (राजन्यः) राजा के पुत्र के समान पालित वीर योद्धा जन (बाहू कृतः) शरीर में विद्यमान बाहु के समान शत्रुओं के बाधक, समाज के रक्षक और बल का कार्य करने में समर्थ बनाये गये हैं। (अस्य यत् मध्यम्) इस विराट् शरीर का जो मध्य भाग अर्थात् ऊरू, कटि, पेट के समान है (तत् वैश्यः) वह वैश्य जन है। (पद्भ्याम्) पैरों से (शूद्र) शूद्र को (अजायत्) प्रकट किया जाता है। अर्थात् शूद्रों को पैरों के समान दर्शाया जाता है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥ ७ ॥

भा०—(चन्द्रमाः) चन्द्र (मनसः) मन से (जातः) कल्पना किया गया है। (चक्षोः सूर्यः अजायत) चक्षु सूर्य का स्थानापन्न है। (मुखात् इन्द्रः च अग्निः च) मुख से विद्युत और अग्नि दो को कल्पित किया गया। (प्राणाद् वायुः अजायत) प्राण इन्द्रिय से वायु को कल्पित किया। मानो उस विराट् शरीर में चन्द्र मन था, सूर्य आंख थी, इन्द्र और अग्नि मुख के दो जबाड़े थे, वायु नासिकागत प्राण था।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ ८ ॥

भा०—(नाभ्याः) नाभि से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (आसीत्) कल्पित था। (शीर्ष्णः) शिर से (द्यौः) ऊपर का महान् आकाश (सम् अवर्तत) कल्पित था। (पद्भ्यां भूमिः) पैरों से भूमि और (श्रोत्रात् दिशः) कानों से दिशाएं कल्पित की गयीं। (तथा) और उसी प्रकार विद्वान् पुरुषों ने (लोकान् अकल्पयन्) अन्य लोकों को भी प्रजापति शरीर के अन्य अंगों के रूप में कल्पना की।

विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ९ ॥

भा०—(ततः) उस पूर्ण पुरुष से (अग्रे) सबसे प्रथम (विराट्) ज्योतिर्मय पदार्थों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड (सम् अभवत्) उत्पन्न हुआ। उस (विराजः) ब्रह्माण्ड के भी (अधि) ऊपर (पुरुषः) व्यापक परमेश्वर अधिष्ठाता रूप से विराजमान रहा। (सः) वह (जातः) इतने विविध पदार्थों में शक्ति रूप से प्रकट होकर भी (अति अरिच्यत) अभी बहुत अधिक शेष रहा, अर्थात् संसार के संचालक अंश से भी अतिरिक्त शक्ति का बहुत बड़ा अंश और शेष है। वही (पश्चात्) इस प्रथम उत्पन्न विराट् के बाद (भूमिम्) सब जंगम, स्थावर सृष्टि के आश्रयभूत और उत्पादक भूमि को उत्पन्न करता है, (अथो पुरः) और नाना शरीरों को भी रचता है।

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जब (हविषा) स्वीकार करने योग्य (पुरुषेण) व्यापक परमेश्वर द्वारा, (देवाः) विद्वान् गण, (यज्ञम्) उपासनारूप या देवार्चनारूप यज्ञ (अतन्वत) करते हैं, तब (अस्य) इस यज्ञ का (वसन्तः) वर्ष के प्रारम्भ काल के समान दिन का प्रारम्भ भाग घृत सदृश है (आज्यम्) अर्थात् यज्ञ में जिस प्रकार घृत अग्नि को प्रदीप्त करता है,

उसी प्रकार दिन का प्रारम्भ काल आत्मा की शक्ति को प्रदीप्त करता है। (ग्रीष्मः) वर्ष का ग्रीष्म काल जिस प्रकार सूर्य को प्रचण्ड करता है उसी प्रकार दिन का गर्म मध्याह्न काल मानस यज्ञ में आत्मा की ज्ञानाग्नि को (इध्मः) अग्नि में डाले काष्ठ के समान दीप्त करता है और (शरत्) वर्ष का शरत् काल जिस प्रकार सूर्य के तेज को कुछ शीतल या सौम्य कर देता है, उसी प्रकार मानस यज्ञ करने वाले के लिये (शरत्) रात्रिकाल अत्यन्त शान्तिमय होने से (हविः) आत्मा की समस्त शक्तियों को आत्मा में आहुति कर देने, उनको ध्यानबल से एकत्र कर आत्मा में लीन करा देने के लिये अति उत्तम है।

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥

भा०—(तम्) उस (यज्ञम्) यज्ञस्वरूप तथा (अग्रशः) समस्त सृष्टि के भी पूर्व (जातम्) विद्यमान जगत् के कर्त्ता को, योगीजन (प्रावृषा) वर्षा के समान आत्मरूप भूमि में ब्रह्मानन्द के वर्षण करने वाले धर्ममेघ समाधि द्वारा (प्र औक्षन्) खूब अभिषिक्त करते हैं। (देवाः) ज्ञानी पुरुष, (साध्याः) योगाभ्यास आदि साधनों के करने हारे और (ये च) जो (वसवः) प्राणों को वश करने वाले हैं, वे (तेन) उसी यज्ञमय परमपुरुष द्वारा (अयजन्त) आत्मयज्ञ सम्पादन करते हैं।

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२ ॥

भा०—(अश्वाः) घोड़े और (ये च के च) जो कोई भी (उभयादतः) ऊपर नीचे दोनों जबाड़े के दांतों वाले प्राणी हैं (तस्मात्) उस परमपुरुष से ही (अजायन्त) उत्पन्न होते हैं और (तस्मात्) उससे ही (गावः) गौएं अर्थात् दूध देने वाले वे पशु जिनके ऊपर के दांत नहीं होते वे भी

उत्पन्न हुए और (तस्मात्) उससे ही (अज-अवयः) बकरी और भेड़ें भी (जाताः) पैदा हुईं ।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ १३ ॥

भा०—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय (सर्व-हुतः) सर्वदाता परमात्मा से (ऋचः सामानि जज्ञिरे) ऋग्वेद के मन्त्र और साम के समस्त गान उत्पन्न हुए। (तस्मात्) उससे ही (छन्दः जज्ञिरे) छन्द अर्थात् अथर्व के मन्त्र उत्पन्न हुए और (तस्मात्) उससे ही (यजुः अजायत) यजुर्वेद के मन्त्र भी उत्पन्न हुए ।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४ ॥

भा०—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) यज्ञमय (सर्वहुतः) सर्वप्रद परमेश्वर से (पृषद्-आज्यम्) दधि, घी आदि समस्त भोज्य पदार्थ (सम् भृतम्) प्राप्त हुआ है। वह (वायव्यान्) वायु विहारी पक्षियों को और (ये अरण्याः) तथा जंगल के वासी, हरिण, सिंह, हस्ती आदि को और (ग्राम्याः च) ग्राम के वासी गर्दभ, अश्व, गौ आदि को (चक्रे) उत्पन्न करता है ।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

भा०—(देवाः) योगीजन (यद्) जब (यज्ञं तन्वानाः) उपासना करते हुए (पशुम्) सर्वद्रष्टा (पुरुषम्) व्यापक आत्मा को (अबध्नन्) समाधि द्वारा साक्षात् करते हैं तो देखते हैं कि (अस्य) इसकी (सप्त परिधयः) सात परिधि अर्थात् इसको सब ओर से घेरने वाले ७ पदार्थ हैं और (त्रिः सप्त समिधः कृताः) इक्कीस पदार्थ उसके (सम् इधः) उत्तम रीति से प्रकाशक (कृताः) बनाये गये हैं ।

सात परिधियें—गायत्री आदि सात छन्द। २१ समिधें = १२ मास, ६ ऋतुएं, ३ लोक। अध्यात्म में—५ महाभूत, ५ तन्मात्रा, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय और मन। ब्रह्माण्ड में प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, ५ महाभूत, ५ सूक्ष्मभूत, ३ गुण, ५ ज्ञानेन्द्रिय।

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥ १६ ॥

भा०—(पुरुषात्) व्यापक परमेश्वर से (अधि जातस्य) उत्पन्न हुए, (मूर्ध्न) शिर के समान सर्वोपरि विद्यमान, (बृहतः) महान्, (देवस्य) और प्रकाशमान (सोमस्य) सर्वोत्पादक बीज से (सप्त सप्ततीः) ४९० चारसौ नव्वे (अंशवः) सूक्ष्मतत्व (अजायन्त) उत्पन्न हुए। ब्रह्माण्ड के ४९० सूक्ष्मतत्वों का विश्लेषण वैज्ञानिक करें।

[७] नक्षत्रों का वर्णन

गार्ग्य ऋषिः। नक्षत्राणि देवताः। त्रिष्टुभः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥१॥

भा०—(चित्राणि) नाना वर्ण के, (साकम्) एक साथ (रोचनानि) दीप्तिमान्, (भुवने) उत्पन्न ब्रह्माण्ड में (जवानि) वेगवान्, (सरीसृपाणि) सदा गतिशील, (अहानि) कभी नष्ट न होने वाले नक्षत्रों को और (नाकम्) सुखमय द्यौलोक को, (गीर्भिः) उत्तम ज्ञानवाणियों द्वारा (तुर्मिशम्) अनिष्टनाशक (सुमतिम्) शुभमति को (इच्छमानः) चाहता हुआ (सपर्यामि) उनका ज्ञान करूं, उनके द्वारा उचित कार्य और तदनुसार होने वाली अन्तरिक्ष और आकाश की घटनाओं के जानने का अभ्यास करूं।

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (कृत्तिका रोहिणी च) कृतिका और रोहिणी दोनों नक्षत्र (सु-हवं) उत्तम रीति से यज्ञ करने योग्य हों। (मृगशिरः) मृगशिरा नक्षत्र (भद्रम् अस्तु) सुखकारी हो। (आर्द्राशम्) आर्द्रा नक्षत्र शान्तिदायक हो। (पुनर्वसू) दोनों पुनर्वसु नक्षत्र (सूनृता) उत्तम ज्ञान देने वाले हों। (पुष्यः चारु) पुष्य नक्षत्र उत्तम हो। (आश्लेषा) आश्लेषा नक्षत्र (भानुः) अति दीप्तिजनक हो और (मघा) मघा नक्षत्र (मे) मेरे लिये (अयनम्) सब सम्पत्ति प्राप्त कराने वाला या सूर्य की गति का चरम स्थान हो।

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥

भा०—(पूर्वा-फल्गुन्यौ) पूर्वाफल्गुनी के दो नक्षत्र (पुण्यम्) सुखकर हों। (अत्र) इस लोक में (हस्तः) हस्त नक्षत्र और (चित्रा) चित्रा नक्षत्र (शिवा) कल्याणकारी हों। (स्वाति) स्वाति नक्षत्र (मे सुखः अस्तु) मुझे सुखकारी हो। (राधे विशाखे) राधा नक्षत्र और विशाखा नक्षत्र दोनों (सुहवा) उत्तम रीति से यज्ञ करने योग्य और (अनुराधा) अनुकूल सिद्धि देने वाले होवें। (ज्येष्ठा सु नक्षत्रम्) ज्येष्ठा उत्तम नक्षत्र हो। (मूलम् अरिष्ट) मूल नक्षत्र भी कल्याणकारी हो।

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥

भा०—(पूर्वा अषाढा) पूर्वा अषाढा नक्षत्र (मे अन्नम्) मुझे अन्न (रासताम्) प्रदान करे। (उत्तरा) उत्तरा अषाढा नक्षत्र (देवी) प्रकाशवान् होकर (ऊर्जम्) अन्नरस और बल (आवहन्तु) प्राप्त करावें। (अभिजित्) अभिजित् नामक नक्षत्र (मे पुण्यम् रासताम्) मुझे पवित्रता प्रदान करे। (श्रवणः श्रविष्ठाः) श्रवण और श्रविष्ठा दोनों नक्षत्र (सु-पुष्टिम्) उत्तम पुष्टि प्रदान (कुर्वताम्) करें।

आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥५॥

भा०—(महत् शतभिषग्) बड़ा भारी शतभिषग् नामक नक्षत्र मुझे (वरीयः) सर्वश्रेष्ठ धन प्राप्त करावे । (द्वया प्रोष्ठपदा) दोनों प्रोष्ठपदा नाम के नक्षत्र (मे सुशर्म आवहताम्) मुझे उत्तम सुख प्रदान करें । (रेवती अश्वयुजौ च) रेवती और अश्विनी के दोनों नक्षत्र (मे भगम् आ) मुझे ऐश्वर्य प्राप्त करावें । (भरण्यः) भरणी नाम के नक्षत्र (मे रयिम् आ वहन्तु) मेरे लिये ऐश्वर्य आदि समृद्धि प्रदान करावें ।

[८] नक्षत्रों का वर्णन

गार्ग्य ऋषिः । मन्त्रोक्तानि नक्षत्राणि देवताः । ९ ब्रह्मणस्पतिर्देवता । १ विराट् जगती । २, ५, ७ त्रिष्टुभः । ६ त्र्यवसाना षट्पदा अति जगती ।
सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥१॥

भा०—(यानि) जो नक्षत्र (दिवि) आकाश में (यानि) जो (अन्तरिक्षे) वायुमण्डल में, (अप्सु) जलों में या समुद्रों में, (भूमौ) भूमि पर, (नगेषु) पर्वतों पर और (दिक्षु) समस्त दिशाओं में दिखाई देते हैं और (यानि) जिन नक्षत्रों को (चन्द्रमाः) चन्द्र (प्रकल्पयन्) अपनी गति से पृथक् निर्देश करता हुआ (एति) प्राप्त होता है, (एतानि सर्वाणि) वे सब (मम) मेरे लिये (शिवानि सन्तु) सुखकारी हों ।

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु २

भा०—(अष्टाविंशानि) पूर्व कहे अट्ठाईस नक्षत्र (शिवानि) कल्याणकारी तथा (शग्मानि) सुखकारी होकर (मे) मेरे लिये (सह) चन्द्र के साथ (योगम् भजन्तु) योग प्राप्त करें । तदनुसार मैं भी (योगं प्रपद्ये)

अलभ्य वस्तु की प्राप्ति करूं, (क्षेमं च प्रपद्ये) प्राप्त वस्तु को सुरक्षित रक्खूं और सदा (क्षेमं च प्रपद्ये योगं च) कल्याण और सुखप्रद पदार्थों को प्राप्त करता रहूँ। (अहोरात्राभ्यां नमः अस्तु) दिन और रात्रि दोनों काम मेरे अनुकूल रहें, दोनों का मैं सद्-उपयोग करूं।

स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु।
सुहुतमग्ने स्वस्त्य१मर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥ ३ ॥

भा०—(मे) मेरे लिये (सु-अस्ततम) सूर्य का अस्तकाल कल्याणप्रद हो। (सु-प्रातः) प्रातःकाल सुखप्रद हो। (सु-सायम्) सायंकाल सुखकारी हो। (सु दिवम) दिन का काल सुखकर हो। (सु-मृगम्) वनचारी पशुओं का मेरे प्रति व्यवहार उत्तम हो। (सु-शकुनम्) पक्षियों का व्यवहार (मे) मेरे लिये उत्तम (अस्तु) हो। हे (अग्ने) परमेश्वर! मेरा (सु-हवम्) उत्तम अग्निहोत्र (स्वस्ति) सबको कल्याणकारी हो। हे (सूर्य) जीव! तू (अभिनन्दन्) साक्षात सबको प्रसन्न करता हुआ (अमर्त्यम्) अविनश्वर भाव को (गत्वा) प्राप्त होकर (पुनः आ अय) यहां पुनः आ, दर्शन दे।

अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्।
सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर। (अनु-हवम्) दूसरे का मेरे साथ स्पर्द्धा करना, (परि-हवम्) वर्जन करने योग्य संघर्ष, (परि-वादम्) वर्जनीयवचन अर्थात् निन्दा, (परि-क्षवम्) चारों ओर से मुझ पर घृणा का भाव, इन (सर्वैः) सबके साथ (मे) मेरे प्रति (रिक्त-कुम्भान्) खाली घड़ों के समान निःसार बातों को और समस्त क्षुद्र पुरुषों और तुच्छ बातों को हे (सवितः) सर्वप्रेरक परमेश्वर! तू (परा सुव) मुझसे दूर कर।

अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥ ५ ॥

भा०—(पापम्) पाप से प्राप्त हुए (परिक्षवम्) वर्जनीय अन्न को (अप) हमसे दूर करें और (पुण्यम्) पुण्य से प्राप्त (क्षवम्) अन्न का हम (भक्षीमहि) भोग करें। हे (पाप) पापी पुरुष (ते) तेरी (नासिकाम् अभि) नासिका पर (शिवा) कल्याणकारी स्त्री और (पुण्यः-गः च) पुण्यमार्ग से जाने वाला पुरुष, अर्थात् उत्तम स्त्री पुरुष दोनों, (मेहताम्) मूत्र करें, अर्थात् तेरा अपमान करें तुझे मान आदर न दें। क्षु—इत्यन्नाम [निघं० अ० ७ । ९]

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते ।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणः स्पते) वेद के पति परमेश्वर ! ये जो प्रतिकूल (वातः) वायुएं बहती हैं (ताः) उनको हे ईश्वर ! तू (संध्रीचीः) मेरे साथ चलने वाली, मेरे सहयोगी (कृत्वा) करके (मह्यं) मेरे लिये (शिवतमाः कृधि) अत्यन्त कल्याणकारी बना ।

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ ७ ॥

भा०—हे ईश्वर ! (नः) हमारा (स्वस्ति अस्तु) कल्याण हो। (नः अभयम् अस्तु) हमें अभय हो। (अहोः रात्राभ्यां) दिन रात्रि पर (नमः) हमारा वश (अस्तु) हो।

[९] सुख शान्ति की प्रार्थना

ब्रह्मा ऋषिः । शान्तिसूक्तम् । शान्तिर्देवता । १ विराड् उरो बृहती । ५ पञ्चपदा पथ्यापंक्तिः । ९ पञ्चपदा ककुम्मती । १२ त्र्यवसाना शप्तपदा अष्टिः । १४ चतुष्पदा संकृति । २,४,६,८,१०,११,१३ अनुष्टुभः । चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥

भा०—(द्यौः शान्तम् अस्तु) आकाश शान्तिदायक हो, (पृथिवी शान्ता) पृथिवी शान्तिदायक हो। (इदम् उरु अन्त-रिक्षम्) यह विशाल

अन्तरिक्ष (शान्तम्) शान्तिदायक हो। (उदन्वती: आप:) समुद्र के जल भी (शान्ता:) शान्तिदायक हों। (नः) हमारे लिये (ओषधीः) ओषधियें (शान्ताः) शान्तिदायक हों।

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥ २ ॥

भा०—(पूर्व-रूपाणि) उपद्रवों और रोगों के पूर्वरूप हमारे लिये (शान्तानि) शान्तिदायक हों। (नः) हमारे (कृत-अकृतम्) किये कार्य और प्रमादवश न किये हुए अवश्य कर्त्तव्य कार्य भी (नः) हमें (शान्तम् अस्तु) शान्तिदायक हों। (भूतं भव्यं च शान्तम्) अतीत-काल और भविष्यत् काल दोनों भी हमें सुखप्रद हों (नः) हमारे लिये (सर्वम् एव) सब ही (शम्) शान्तिदायक हों।

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥ ३ ॥

भा०—(या) जो (इयम्) यह (परमेष्ठिनी) सर्वोपरि विद्यमान परमेश्वर में स्थित (वाग् देवी) वाणी-रूप दिव्य शक्ति (ब्रह्म-संशिता) ब्रह्मवर्चस या ब्रह्मचर्य के बल से अति बलवती है, (यया एव) जिससे ही (घोरम्) क्रोध आदि भयानक कार्य (ससृजे) किये जा सकते हैं, (तया एव) उससे ही (नः) हमें (शान्तिः) सुखप्राप्ति (अस्तु) हो।

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥ ४ ॥

भा०—(यद्) जो (इदम्) यह (ब्रह्म-संशितम्) ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मचर्य के बल से तीक्ष्ण होकर (परमेष्ठिनम्) परम स्थान में स्थित (वां मनः) हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों का मन है, (येन एव) जिससे ही (घोरं ससृजे) घोर, क्रूरकर्म भी किये जा सकते हैं, (तेन एव नः शान्तिः अस्तु) उससे ही हमें शान्ति सुख प्राप्त हो।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
येरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५ ॥

भा०—(इमानि यानि) ये जो प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त (मनः-षष्ठानि) छठे मन सहित (पञ्च इन्द्रियाणि) पांच ज्ञानेन्द्रिय (ब्रह्मणा) ब्रह्मचर्य के बल से (संशितानि) अति उत्तम रूप से खूब तीक्ष्ण होकर (मे हृदि) मेरे हृदय में आश्रित हैं, (यैः एव घोरम् ससृजे) जिनके द्वारा घोर कार्य भी किया जाता है (तैःएव) उनसे ही (नः शान्तिः अस्तु) हमें शान्ति प्राप्त हो।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥

भा०—(नः) हमें (मित्रः) सबका स्नेही, सबको मरण से त्राण करने वाला पुरुष (शम्) शान्तिदायक हो । (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सबके वरण करने योग्य, एवं सब शत्रुओं का वारक पुरुष (शम्) कल्याणकारी हो । (विष्णुः) सर्वत्र प्रभुता से सम्पन्न या व्यवस्थापक पुरुष हमें शान्तिदायक हो । (प्रजापतिः शम्) प्रजा का पालक पुरुष भी शान्तिदायक हो । (बृहस्पतिः) वाणी का पालक ऐश्वर्यवान् पुरुष, (अर्यमा) और न्यायकारी पुरुष ये सब (शम्) सदा हमें सुख प्रदाता (भवतु) हों । अथवा ये सब विशेषण परमेश्वर के हैं । गुण भेद से ये सभी नाम परमात्मा के हैं ।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥ ७ ॥

भा०—(मित्रः) सबका स्नेही, सबका मरण से त्राता, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सबके वरण करने योग्य, सब दुखों का वारक, (शम् शम्) सुखकारी, शान्तिदायक हो । (विवस्वान् शम्) विविध वस्तुओं या जीवों को प्राण देकर बसाने वाला, या विविध ऐश्वर्यों का स्वामी, पुरुष या सूर्य या परमेश्वर (शम्) शान्ति प्रदान करे । (अन्तकः) अन्त करने

वाला मृत्यु हमें (शम) शान्ति दे । (पार्थिव-अन्तरिक्षा) पृथिवी और अन्तरिक्ष में होने वाले (उत्पाताः) नाना उपद्रव और (दिवि-चरा) आकाश में विचरने वाले ग्रह धूमकेतु, उल्का आदि भी अपने आकर्षण विकर्षण आदि द्वारा (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों ।

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥ ८ ॥

भा०—(वेप्यमाना भूमिः शम्) भूचाल में कांपती हुई भूमि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हो । (उल्का शम्) आकाश से भूमि पर गिरने वाले लघुग्रह (शम्) शान्तिदायक हों और (यत् निर्हतम्) जो भी वेग से पृथ्वी पर आकर गिरें वह भी हमें शान्ति-दायक हों । (गावः) गौएं जो (लोहितक्षीराः) रोग के कारण रुधिर के समान दूध देती हों वे भी (शम्) शान्ति दें और (अव तीर्यतीः) फट जाने वाली (भूमिः) भूमि भी (शम्) शान्तिकारी हो ।

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥९॥

भा०—(उल्का-अभिहतम्) उल्का से युक्त (नक्षत्रम्) नक्षत्र (नः शम् अस्तु) हमारे लिये कल्याणकारी हों । (अभिचाराः) हम पर किये गुप्त आक्रमण (नः शम्) हमारे लिये शान्त ही रहें । (कृत्याः) घातक क्रिआएं भी (शम् उ सन्तु) शान्त ही रहें । (नि-खाताः) धोखा देकर गिरा कर मारने, या भीतर विस्फोटक द्रव्य भरकर उड़ा देने के लिये खोदे हुए स्थान, सुरंग (Mines) (नः) हमारे लिये हानिरहित रहें । (वल्गाः) अन्य कपट के हिंसा के कार्य भी हमारे लिये शान्त रहें । (उल्काः) पृथ्वी पर उल्काओं का गिरना (शम्) शान्त हो । देश उप-सर्गाः) देश में उत्पन्न होने वाले संहारक उपद्रव (नः) हमारे लिये (शं उ भवन्तु) शान्त ही रहें, उत्पन्न ही न हों ।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १० ॥

भा०—(चान्द्रमसाः) चन्द्रमा से सम्बद्ध या चन्द्रमा को ग्रहण करने वाले भूमि की छाया आदि (ग्रहाः) ग्रहण (नः शम्) हमें शान्ति दें । (राहुणा) प्रकाश के नाशक आवरण से युक्त (आदित्यः च) आदित्य भी (शम्) शान्ति दे । (मृत्युः) जनों के मृत्यु का कारण (धूम-केतुः) धूमकेतु (नः शम्) हमारे लिये हानि रहित रहें । (तिग्म-तेजसः रुद्राः) तीक्ष्ण प्रकाश वाले, प्रजा को रुलाने वाले नाना 'रुद्र' नामक केतु ग्रह अथवा प्राण, अपान आदि ११ रुद्र भी (शम्) शान्त रहें, उत्पात न करें ।

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥ ११ ॥

भा०—(रुद्राः शम्) पापों को रुलाने वाले 'रुद्र' रूप ३६ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक पुरुष हमारे लिये शान्तिदायक हों । (वसवः) वसु नामक २४ वर्ष के ब्रह्मचारी (श) हमारे लिये कल्याणकारी हों । (आदित्याः) आदित्य, ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी गण हमें (शम्) सुख दें । (अग्नयः) अग्नि के समान तीक्ष्ण स्वभाव के पुरुष अथवा राजागण, क्षत्रियजन और अन्य विद्वान् लोग हमें (शम्) सुख दें । (देवाः) ज्ञान प्रकाशक, ज्ञानप्रद, तेजस्वी (महर्षयः) बड़े २ मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषिजन (नः शम्) हमारे लिये शान्तिदायक हों । (देवाः) विद्वान्‌गण और संसार के दिव्य पदार्थ (शं) शान्तिदायक हों । (बृहस्पतिः शम्) महान् लोकों का पालक परमेश्वर हमें शान्ति दे । अथवा (रुद्राः) रुद्र ११ = प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीव । वसु आठ = अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, द्यौः, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और १२ आदित्य = १२ मास ।

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छतु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥ १२ ॥

भा०—(ब्रह्म) महान् परमेश्वर, (प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा (धाता) सबका पोषक वायु, (लोकाः) समस्त लोक, (वेदाः) ज्ञानमय समस्त वेद, ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, (सप्त ऋषयः) सात प्रकार के मन्त्रार्थद्रष्टा, अथवा शरीरस्थ सात इन्द्रियें और (अग्नयः) पांचों ज्ञानेन्द्रियां (तैः) इन सब में मेरे लिये (स्वस्ति-अयनम्) कल्याण का मार्ग (कृतम्) बना हो। (इन्द्रः) परमेश्वर (मे) मुझे (शर्म यच्छतु) सुख प्रदान करे। (ब्रह्मा) वेदों का ज्ञाता ब्रह्मा (मे) मुझे (शर्म यच्छतु) सुख प्रदान करे। (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् (मे शर्म यच्छतु) मुझे सुख शान्ति दें। (सर्वे देवाः मे शर्म यच्छतु) समस्त दिव्य शक्तियां मुझे शान्ति प्रदान करें।

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥ १३ ॥

भा०—(लोके) लोक में (सप्त-ऋषयः) शरीरगत सातों इन्द्रियें और उन द्वारा सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्वान् ब्राह्मण (यानि कानिचित्) जिन किन्हीं पदार्थों को भी (शान्तानि) शान्तिदायक (विदुः) जानें (सर्वाणि) वे सब (मे शं भवन्तु) मेरे लिये कल्याणकारी हों। (मे शम् अस्तु) मुझे शान्ति प्राप्त हो, (अभयम् मे अस्तु) मुझे अभय प्राप्त हो।

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः। ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥ १४ ॥

भा०—(पृथिवी, अन्तरिक्षम्, द्यौः, आपः, ओषधयः, वनस्पतयः, विश्वे देवाः, सर्वे देवाः) पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, जल, ओषधियां, वनस्पति, बड़े वृक्ष, समस्त विद्वान् लोग, सब दिव्यगुणवान् पदार्थ (मे) मेरे लिये (शान्तिः) शान्ति उत्पन्न करें। (शान्तिभिः) समस्त प्रकार की शक्तियों के साथ २ (शान्तिः) मेरा शान्तिमय आत्मा भी (शान्तिः) शान्तरूप धारण करे। (ताभिः शान्तिभिः) उन शान्तियों से और अन्यान्य (सर्वशान्तिभिः) सब प्रकार के शान्त-साधनों से (अहम्) हम लोग (शम् अयामः) शान्तिमय परम सुख को प्राप्त हों (यत् इह घोरम्) जो पदार्थ इस लोक में (घोर) कष्टदायक, (यत् इह क्रूरम्) हों, जो यहां हिंसाजनक, त्रासोत्पादक और (यत् इह पापम्) जो यहां पापी हों (तत् शान्तम्) वह शान्त हो। (तत् शिवम्) वह सब कल्याणकारी हो। (नः) हमारे लिये (सर्वम् एव) सब ही (शम् अस्तु) शान्तिदायक हो। इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[अत नव सूक्तानि एकोनषष्टिश्चर्चः]

[१०] सुख शान्ति का वर्णन

शान्तिकामो ब्रह्मा [ऋ० वसिष्ठ] ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुभः। दशर्चं सूक्तम्॥

शं न॑ इन्द्राग्नी भ॑वतामवो॑भिः शं न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या।
शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः शं न॒ इन्द्रा॒पूष॒णा वाज॑सातौ ॥१॥

भा०—(इन्द्र-अग्नी) राजा और सेनापति या प्राण और उदान (अवोभिः) रक्षा साधनों द्वारा (नः शम् भवताम्) हमें शान्तिदायक हों। (रात-हव्या) अन्न आदि उत्तम पदार्थ प्राप्त करके (इन्द्रा-वरुणा) वायु और मेघ, या राजा और दुष्टों का दमन करने हारा पुलिस विभाग का अध्यक्ष, या प्राण और व्यान (नः शम्) हमें सुख और शान्ति दें। (इन्द्र-सोमा) वायु और सूर्य, या राजा और न्यायाधीश, या प्राण और समान (सुविताय) उत्तम सुख के लिये (शं योः) रोगों के शमन और भयों के

दूर करने के लिये हों (इन्द्र-पूषणा) वायु और अन्न या प्राण और अपान (वाजसातौ) बल और वीर्य के प्राप्त करने के कार्य में (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों ।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

भा०—(भगः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर अथवा धनाढ्य लोग (नः शम्) हमें शान्ति सुख दें। (शंसः नः शम्) उत्तम उपदेश करने हारा शास्त्र-वक्ता अथवा प्रशंसनीय परमेश्वर (नः शम् उ) हमें सुख शान्ति दे । (पुरन्धिः) नगर का धारण करने वाला पुरुष, या (पुरं-धिः) देह को धारण करने वाली बुद्धि, अथवा पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला परमेश्वर, (नः शम्) हमें शान्ति सुख दे । (रायः) समस्त ऐश्वर्य (शम् उ सन्तु) हमें शान्तिदायक हों । (सु-यमस्य) उत्तम रूप से संयमन करने वाले (सत्यस्य) सत्यस्वरूप परमेश्वर का (शंसः) भजन-कीर्त्तन (नः शम्) हमें शान्ति दे । (पुरु-जातः) बहुत से प्रजाजनों में सबकी सहमति से बनाया गया (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः शम् अस्तु) हमें शान्तिदायक हो ।

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥

भा०—(धाता) पालन पोषण करने वाला परमेश्वर, या दुग्ध आदि से पुष्ट करने वाला पिता (नः शम) हमें शान्ति सुखदायक हो । (धर्ता नः शम्) आश्रय प्रदाता परमेश्वर या संरक्षक हमें शान्तिदायक (अस्तु) हो । (उरूची) बहुत दूर २ तक फैली हुई पृथिवी (स्वधाभिः) अन्नों द्वारा (नः शम् भवतु) हमें सुखप्रद हो । (बृहती) विशाल (रोदसी) पृथिवी और अन्तरिक्ष (शम्) हमें सुख दें । (अद्रिः) पर्वत और मेघ (नः शम्) हमें सुख दें । (देवानाम्) विद्वानों की (सु-हवानि) उत्तम स्तुतियें

उत्तम ज्ञान और उत्तम उपदेश (नः शम् संतु) हमें सुखद और कल्याणकारी हों।

शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम्।
शं नः॑ सु॒कृतां॑ सुकृ॒तानि॑ सन्तु शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वातः॑ ॥४॥

भा०—(ज्योतिः अनीकः) ज्वालाओं वाले मुख वाली (अग्निः) आग, या आग के समान ज्ञान-तेज को अपने मुख पर धारण करने वाला, या अग्नि के समान ज्ञान-प्रकाशक ब्राह्मण, या ज्योतिर्मय तेजस्वी पुरुषों के सेना बल से युक्त सेनापति (नः) हमारे लिये (शम् अस्तु) कल्याणकारक हो। (मित्रावरुणौ) मित्र अर्थात् परस्पर स्नेह करने वाली धन और ऋण विद्युतें और वरुण अर्थात् स्वसमान विद्युत् को परे वारण कर देने वाली धन और ऋण दोनों (नः) हमें (शम्) शांतिदायक हों। (अश्विना) सूर्य रूप अश्व पर सदा आरूढ़ दिन और रात एवं देहरूप रथ और इन्द्रियरूप अश्वों पर आरूढ़ प्राण और अपान (शम्) शांतिदायक हों। (सुकृताम्) सुंदर कार्य करने वाले शिल्पियों के (सु-कृतानि) बनाये उत्तम प्रशंसनीय शिल्प के कार्य और पुण्यात्माओं के किये हुए उत्तम प्रशंसनीय परोपकार के कार्य (नः) हमें (शम्) शांतिदायक (संतु) हों। (इषिरः) निरंतर गतिशील (वातः) महान् वायु और देहों का प्रेरक प्राण वायु (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी होकर (वातु) प्रवाहित हो।

शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु।
शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ॥५॥

भा०—(द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (पूर्वहूतौ) सबसे पूर्व समस्त पदार्थ प्रदान करने में (नः शम्) हमें शांतिदायक हों। (अंतरिक्षम्) वातावरण भी (दृशये) हमारी दर्शन शक्ति के स्वतंत्र व्यापार के लिये (नः शम् अस्तु) हमें कल्याणकारी हो, अर्थात् अंतरिक्ष स्वच्छ रहे

कि हम दूर २ तक देख सकें। (ओषधीः) ओषधियें (वनिनः) सेवन करने योग्य होकर (नः शं भवन्तु) हमें शांतिदायक हों। (रजसः पतिः) लोकों का पालक सूर्य और सूर्य के समान तेजस्वी (जिष्णुः) विजयशील राजा (नः शम् अस्तु) हमें शांतिदायक हो।

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

भा०—(देवः) ऐश्वर्यवान् सूर्य (वसुभिः) प्राणियों को अपने में बसाने में समर्थ पृथिवी आदि लोकों सहित (नः शम्) हमें शांतिदायक (अस्तु) हो, अथवा (देवः) राजा (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (वसुभिः) वसु विद्वान् शासकों के साथ हमें शांतिदायक हो, या आत्मा वसुरूप प्राणों सहित हमें शांतिदायक हो। (वरुणः) सबके वरण करने योग्य राजा (आदित्येभिः) आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों के साथ (सु-शंसः) उत्तम रीति से स्तुति करने योग्य होकर, या बारह मासों सहित सूर्य के समान (शम् अस्तु) हमें कल्याणकारी हो। (रुद्रः) सब दुष्टों को रुलाने वाला पुरुष-सिंह (रुद्रेभिः) दुष्टों को रुलाने में समर्थ अन्य अधिकारियों सहित (जलाषः) सुखकारी होकर (नः शम्) हमें शांतिदायक हो। (त्वष्टा) सर्वस्रष्टा परमेश्वर (ग्नाभिः) अपनी व्यापक दिव्य शक्तियों सहित (नः) हमारे लिये (शम्) शांतिप्रद हो और (इह) इस लोक में हमारी सब प्रार्थनायें (शृणोतु) श्रवण करे।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

भा०—(सोमः) वायु और सोम ओषधि (नः शम् भवतु) हमें शांतिदायक हो। (ब्रह्म) वेदज्ञान (न शम्) हमें शांतिदायक हो। (ग्रावाण) उपदेशकर्त्ता गुरुजन (नः शम्) हमें शांतिदायक हो, अथवा (ग्रावाणः) सिलबट्टे के समान शत्रुओं को पीसने वाले शस्त्रधारी पुरुष

(नः शम्) हमारे लिये शान्तिदायक हों । (यज्ञाः उ शम् सन्तु) यज्ञ भी शांतिदायक हों (स्वरूणां) उपदेशप्रद मंत्रों के (मितयः) ज्ञान करने वाले विद्वान् जन (नः शम्) हमारे लिये शांतिदायक (भवन्तु) हों । (प्र-स्वः) नाना प्रकार से उत्पन्न होने वाली ओषधियां या उत्कृष्ट पुत्रोत्पादक माताएं और गौएं (नः शम्) हमें शांति सुख दें । (वेदिः) यज्ञवेदि हमको (शम् अस्तु) शांति दे ।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

भा०—(उरुचक्षाः) विस्तीर्ण तेज वाला (सूर्यः) सूर्य (नः शम्) हमें शांतिदायक होकर उदित हो । (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) मुख्य दिशाएं (नः शं भवन्तु) हमें शांतिदायक हों । (ध्रुवयः) स्थिर खड़े (पर्वतः) पर्वत (नः शं भवन्तु) हमें शांति सुख देने हारे हों । (सिन्धवः) वेग से बहने वाली नदियां और (आपः) अन्य नाना जल (नः शम्) हमें शांतिदायक हों ।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

भा०—(अदितिः) अखण्ड पृथिवी (व्रतेभिः) नाना व्रतों द्वारा (नः शम् भवतु) हमें शांतिदायक हो । (स्वर्काः) उत्तम गति करने वाली (मरुतः) वायुएं, प्राण और वैश्यजन (नः शम् भवन्तु) हमें शांतिदायक हों । (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो । (पूषा) पोषक अन्न (नः शम् उ) हमें शांतिदायक हो (भवित्रम्) यह उत्पत्तिस्थान भुवन हमें (शं नः अस्तु) शांतिदायक हो । (वायुः शम् उ अस्तु) वायु हमें शांतिदायक हो ।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१०॥

भा०—(त्रायमाणः) सबका पालन करता हुआ (सविता) सर्वोत्पादक (देवाः) प्रकाशक सूर्य (नः शम्) हमें शांतिदायक हो । (विभातीः) विविध और विशेषरूप से प्रकाशित (उषसः) उषाएं (नः शं भवन्तु) हमें शांतिदायक हों । (पर्जन्यः) मेघ (नः) हमें (शं भवतु) शांतिदायक हो । (क्षेत्रस्य पतिः) शरीर रूपी क्षेत्र का स्वामी आत्मा और प्रकृति का स्वामी परमेश्वर (नः शम् अस्तु) हमारे लिये शांतिदायक हों ।

[११] शान्ति की प्रार्थना

शान्तिकामो ब्रह्मा ऋषिः । बहवो देवताः । त्रिष्टुभः । षडृचं सूक्तम् ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥

भा०—(सत्यस्य पतयः) सत्य की रक्षा करने वाले, प्राड्विवाक और धर्माधिकारी आदि (नः) हमें (शम् भवन्तु) शांतिदायक हों । (अर्वन्तः) शीघ्रगामी अश्व (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों । (गावः) गौएं (शम् उ सन्तु) हमें शांति सुख दें । (सुकृतः) उत्तम २ पदार्थ बनाने वाले (सुहस्ताः) शिल्प में सिद्धहस्त (ऋभवः) शिल्पीजन (नः शम्) हमें शांतिप्रद हों । (हवेषु) यज्ञों और युद्धों में (पितरः) राष्ट्र के रक्षक अधिकारी लोग (नः शम् भवन्तु) हमें शांतिदायक हों ।

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः॥२॥

भा०—(विश्व-देवाः) विजयी व्यवहारों में निपुण (देवाः) विद्वान् लोग (नः शंभवन्तु) हमें शांति सुखदायक हों । (सरस्वती) वाणी (धीभिः सह) नाना ध्यानगम्य विचारों और कर्मों के सहित (शम् अस्तु) शांतिदायक हो । (अभि-षाचः) चारों ओर से एकत्र होकर विराजने वाले प्रतिनिधि गण (शम्) शांतिदायक हों । (राति-षाचः) दक्षिणा के दान और प्राप्ति के लिये एकत्र होने वाले दाता और प्रतिग्रहीता (शम्) हमें शान्तिदायक

हों। (दिव्याः) दिव्य आकाश से प्राप्त होने वाले पदार्थ (पार्थिवाः) और पृथिवी से उत्पन्न पदार्थ और (अप्याः) जल से उत्पन्न पदार्थ सब (नः शम्, नः शम्) हमें शान्तिप्रद हों।

शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद् दे॒वो अ॑स्तु॒ शमहि॑र्बु॒ध्न्य॑१: शं स॑मु॒द्रः।
शं नो॑ अ॒पां नपा॑त् पे॒रुर॑स्तु॒ शं न॒: पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पा ॥३॥

भा०—(एकपात्) शक्ति के एक-चतुर्थांश द्वारा चराचर जगत् को धारण करने वाला (देवः) प्रकाशमय परमेश्वर (नः शम् अस्तु) हमें शान्तिदायक हो। (अहिर्बुध्न्यः) जो कभी नाश नहीं होता, वह सर्वाधार परमेश्वर (शम्) शान्ति प्रदान करे। (सम्-उद्रः) समस्त संसार की उत्पत्ति तथा लय का स्थान महासमुद्र रूप परमेश्वर (शम्) हमें शान्ति प्रदान करे। (पेरुः) समस्त दुखों से पार उतारने हारा (अपां नपात्) आपोमय प्राणों को धारण करने वाला परमेश्वर (नः शम्) हमें शान्ति दे। (देवगोपाः) सूर्य आदि पृथिव्यादि पांच भूत, १० इन्द्रिय, पञ्च प्राण आदि समस्त देवों का रक्षक (पृश्निः) समस्त रसों और ज्योतिर्मय पिण्डों का आश्रय, परमेश्वर (नः शम्) हमें शांति दे।

आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वो जुषन्तामि॒दं ब्रह्म॑ क्रि॒यमा॑णं॒ नवी॑यः।
शृ॒ण्वन्तु॑ नो दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता उ॒त ये य॒ज्ञिया॑सः ॥४॥

भा०—(इदम्) इस (नवीयः) नये से नये (क्रियमाणम्) बनाये गये (ब्रह्म) बृहत जगत् को (आदित्याः) १२ मास, (रुद्राः) नाना वायुगण या प्राण, (वसवः) तथा जीवों के वास कराने हारे लोक (जुषन्ताम्) पालन करें। (दिव्याः) दिव्य गुणों वाले (पार्थिवासः) पृथिवी के स्वामी राजा लोग और (गोजाता) वाणी में प्रसिद्ध मेधावी पुरुष (यज्ञियासः) तथा यज्ञ में विराजमान ऋत्विक्गण (नः) हमारे वचनों का (शृण्वन्तु) श्रवण करें।

ये दे॒वाना॑मृ॒त्विजो॑ य॒ज्ञिया॑सो॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः।
ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः ॥५॥

भा०—(ये) जो (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों में से (ऋत्विजः) ऋतुओं में यज्ञ करने वाले, (यज्ञियासः) यज्ञों में पूजनीय, (मनोः) मननशील पुरुष के (यजत्राः) यज्ञ को कराने वाले, (अमृताः) अमरण-धर्मा, (ऋतज्ञाः) सत्य ज्ञान के जानने वाले हैं (ते) वे (नः) हमें (उरु-गायम्) विशाल ज्ञानोपदेश (अद्य) निरन्तर (रासन्ताम्) प्रदान करें। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयम्) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक साधनों से (नः सदा पात) हमारी सदा रक्षा करें।

तद॑स्तु मित्रावरुणा तद॑ग्ने शं योर॒स्मभ्य॑मि॒दम॑स्तु श॒स्तम्।
अ॒शी॒महि गा॒धमु॒त प्र॑ति॒ष्ठां नमो॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते साद॑नाय ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मरण से बचाने वाले और (वरुणा) सर्व दुःखवारक प्राण और अपान, और हे (अग्ने) जाठर शक्ते ! (अस्म-भ्यम्) हमें (तत्) नाना प्रकार के पदार्थ (शम्) शान्तिदायक और (योः) विपत्तिनाशक (अस्तु) हों। (इदम्) यह प्राप्त पदार्थ भी (शस्तम् अस्तु) प्रशस्त हो। हम (गाधम्) अभिलषित ऐश्वर्य और (प्रतिष्ठाम्) कीर्ति का (अशीमहि) लाभ करें और (बृहत) बड़ा भारी (सादनाय) आश्रय प्राप्त करने के लिये (दिवे) द्यौलोक के समान विशाल पृथिवी को (नमः) हम अपने वश करें।

[१२]

वसिष्ठ ऋषिः। उषा देवता। त्रिष्टुप्। एकर्चं सूक्तम्।

उ॒षा अप॒ स्वसु॒स्तमः॒ सं व॑र्तयति वर्त॒निं सु॑जा॒तता॑।
अ॒या वाजं॑ दे॒वहि॑तं सनेम॒ मदे॑म श॒तहि॑माः सु॒वीराः॑ ॥ १ ॥

भा०—(स्वसुः) आप से आप हट जाने वाली रात्रि के (तमः) अन्धकार को (उषाः) प्रभात वेला (अपवर्तयति) दूर हटा देती है और (सु-जातता) अपनी सुखकर उत्पत्ति से (वर्तनिम्) उत्तम मार्ग को या लोक-व्यवहार को (सं-वर्तयति) भली प्रकार चला देती है। (अया) इस

अन्त में, (सः मध्यतः) वही बीच में, (सः पश्चात्) वही पीछे से (सः पुरस्तात्) वही आगे से भी (नः रक्षिता) हमारा रक्षक (अस्तु) हो।

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्व१र्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजन् ! तू (नः) हमें (उरुं लोकं नेषि) विशाल देश में ले जा (यत्) जहां (स्वः) सुखमय, प्रकाशमय (ज्योतिः) सूर्य का प्रकाश और (अभयम्) अभय, (स्वस्ति) कल्याण हो। हे राजन् ! (स्थविरस्य) युद्ध में स्थिर रहने वाले (ते) तेरी (बाहू) बड़ी बाहुओं को ही (शरणा) आश्रयस्थान मानकर (उप क्षयेम) सुख से रहें।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥५॥

भा०—(अन्तरिक्षम्) वातावरण (नः) हमें (अभयं करति) अभय प्रदान करे। (इमे उभे द्यावापृथिवी) ये दोनों आकाश और पृथिवी (अभयं करतः) अभय करें। (पश्चाद् अभयम्) पीछे से या पश्चिम से भय न रहे। (अभयं पुरस्तात्) आगे से या पूर्व से अभय हो। (उत्तरात् अधरात्) ऊपर से और नीचे से अथवा उत्तर और दक्षिण से (नः अभयम् अस्तु) हमें अभय हो।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥६॥

भा०—(मित्रात् अभयम्) मित्र से भय न रहे, (अमित्रात् अभयम्) शत्रु से भय न रहे। (ज्ञातात् अभयम्) जाने हुए पुरुष से भय न रहे। (ये पुरः) और जो अनजान हमारे सामने आ जांय उससे भी (अभयम्) भय न रहे। (नक्तम् अभयम्) रात को अभय रहे। (दिवा अभयम्) दिन को भय न रहे। (सर्वाः आशाः) समस्त दिशाएं (मम मित्रं भवन्तु) मेरे मित्र होकर रहें।

[१६] अभय और रक्षा की प्रार्थना

अथर्वा ऋषिः। मन्त्रोक्ता देवताः। १ अनुष्टुप्, २ त्र्यवसाना सप्तपदा बृहतीगर्भातिशक्वरी। द्वयृचं सूक्तम् ॥

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम्।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १ ॥

भा०—(सविता) सबका प्रेरक राजा और (शची-पतिः) सेनापति ये दोनों (पुरस्तात्) आगे से और (पश्चात्) पीछे से, या पूर्व और पश्चिम दिशाओं से (दक्षिणतः उत्तरात्) तथा दक्षिण और उत्तर से, दायें बायें से (नः) हमें (असपत्नम्) शत्रुरहित और (अभयम्) भयरहित (कृतम्) करें।

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम्।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥ २ ॥

भा०—(दिवः) आकाश से (आदित्याः) १२ मास (मा रक्षन्तु) मेरी रक्षा करें। (भूम्याः) भूमि से (अग्नयः) अग्रणी नेता लोग (रक्षन्तु) रक्षा करें। (पुरस्तात्) आगे से (मा) मुझको (इन्द्राग्नी रक्षताम्) वायु और आग एवं राजा और सेनापति रक्षा करें। (अश्विनौ) दिन और रात, या सूर्य चन्द्र, या अश्वारोही सेना, सेनापति जन, (अभितः) इधर उधर से (शर्म यच्छताम्) सुख प्रदान करें। (जात-वेदाः) प्रज्ञा-वान् पुरुष (अघ्न्या) न मारने योग्य (तिरश्चीन्) तिर्यग् योनि के जन्तुओं की (रक्षतु) रक्षा करें। (भूत-कृतः) पञ्चभूतों के नाना प्रकार के विकारों और विज्ञानों के आविष्कर्ता लोग (मे) मेरे (सर्वतः) सब ओर से (वर्म सन्तु) रक्षाकारी कवच के समान हों।

[१७] रक्षा की प्रार्थना

अथर्वा ऋषिः मन्त्रोक्ता देवताः। १-४ जगत्यः। ५, ७, १० अतिजगत्यः। ६ भुरिक्, ९, पञ्चपदातिशक्वरी। दशर्चं सूक्तम् ॥

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ १ ॥

भा०—(अग्निः) अग्रणी, ज्ञानवान् (पुरस्तात्) आगे से या पूर्व की दिशा से (वसुभिः) वसुओं सहित (मा पातु) मेरी रक्षा करे । मैं (तस्मिन्) उसके बल पर (क्रमे) आगे पग बढ़ाऊं । (तस्मिन् श्रये) उसी में आश्रय लूं, (तां) उसको (पुरम्) अपनी दुर्गनगरी समझकर (प्र एमि) प्राप्त करूं । (सः मा रक्षतु) वह मेरी रक्षा करे, (स मा गोपायतु) वह मुझे बचाये रखे । (तस्मै) उसी के हाथों (आत्मानं परिददे) मैं अपने आपको सौंपता हूँ । (सु-आहा) यह मेरी उत्तम आहुति या त्याग या प्रार्थना है ।

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे० । ० ॥ २ ॥

भा०—(वायुः) वायु, या वायु के समान तीव्र वेगवान् बलवान् पुरुष (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष से (एतस्या दिशः) इस पूर्व दिशा से (पातु) मेरी रक्षा करे । (तस्मिन् क्रमे०) पूर्व कहे 'वायु' में मैं पैर जमाऊं, (तस्मिन् श्रये) उसमें आश्रय पाऊं इत्यादि पूर्ववत् ।

सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु० । ० ॥ ३ ॥

भा०—(सोमः) सोम (रुद्रैः) रोदनकारी प्राणों सहित (दक्षिणायाः दिशः पातु) दक्षिण दिशा से मेरी रक्षा करे । (तस्मिन् क्रमे०) इत्यादि पूर्ववत् ।

वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु० । ० ॥ ४ ॥

भा०—(वरुणः) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर (मा) मुझे (आदित्यैः) १२ मासों द्वारा (एतस्याः) इस दक्षिण दिशा से रक्षा करे । शेष पूर्ववत् ।

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु० । ० ॥ ५ ॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य (मा) मुझे (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम दिशा से (द्यावापृथिव्याम्) द्यौः और पृथिवी द्वारा (पातु) रक्षा करे । शेष पूर्ववत् ।

आपो मौषधिमतीरेतस्यां दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि । ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु तास्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ६ ॥

भा०—(ओषधीमतीः आपः) ओषधियों के रस से पूर्ण जल (एतस्याः दिशः पान्तु) इस प्रतीची दिशा से मेरी रक्षा करे । (तासु क्रमे०) उनके बल पर आगे बढ़ूं। इत्यादि पूर्ववत् ।

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे०।०॥७

भा०—(विश्व-कर्मा) विश्व का रचने वाला परमेश्वर (मा) मेरी (सप्त ऋषिभिः) सात प्राणों द्वारा (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा से (पातु) रक्षा करे ।

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्यां दिशः पातु० ॥ ८ ॥

भा०—(मरुत्वान् इन्द्रः) प्राणों से सम्पन्न आत्मा (एतस्य दिशः) उदीची दिशा से (मा पातु) मेरी रक्षा करे ।

प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु०।० ॥९

भा०—(प्रजननवान्) प्रजा के उत्पन्न करने के सामर्थ्य से युक्त (प्रजापतिः) परमेश्वर या गृहस्थ (प्रतिष्ठायाः) जमकर या घर बसाकर बैठने अर्थात् प्रतिष्ठा देने वाली (ध्रुवाया दिशः) नीचे की आधार दिशा से (मा पातु) मेरी रक्षा करे । शेष पूर्ववत् ।

बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ १० ॥

भा०—(बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक, या महान् लोकों का पालक (विश्वैः देवैः) समस्त दिव्य पदार्थों द्वारा (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊपर की दिशाओं से (मा पातु) मेरी रक्षा करे । शेष पूर्ववत् ।

[१८] रक्षा की प्रार्थना

अथर्वा ऋषिः। मन्त्रोक्ता देवताः। १, ७ साम्नीत्रिष्टुभौ, २, ६ आर्ष्यनुष्टुभौ। ५ सम्राड्=स्वराड्। ७,९,१० प्राजापत्यास्त्रिष्टुभः दशर्चं सूक्तम्॥

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु।
ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात्॥ १॥
वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात्॥ २॥

भा०—(ये) जो (मा) मुझ पर (अघायवः) वध का प्रयोग करने वाले दस्यु लोग (प्राच्याः दिशः) पूर्व की दिशा से (अभिदासात्) हिंसाकारी आघात करें (ते) वे (वसुवन्तम्) नव युवक योद्धाओं सहित (अग्निम्) अग्रणी सेनापति को (ऋच्छन्तु) पहुँचकर विनष्ट हो जावें।

और (ये अघायवः मा एतस्या दिशः अभिदासात्) जो मेरे द्रोही, आक्रामक लोग इसी दिशा से आवें वे (अन्तरिक्षवन्तम् वायुम्) अन्तरिक्ष को वश करने वाले वायु के समान सेनापति को प्राप्त होकर (ऋच्छन्तु) नष्ट हो जांय।

सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु।
ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात्॥ ३॥
वरुणं ते आदित्यवन्तमृच्छन्तु।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात्॥ ४॥

भा०—(ये मा अघायवः दक्षिणायाः दिशः अभिदासात्) जो मेरे द्रोही, दक्षिण दिशा से, या दायें से आक्रमण करें (ते) वे (रुद्रवन्तं सोमम्) रोदनकारी योद्धाओं के स्वामी, उनके प्रेरक राजा को प्राप्त होकर (ऋच्छन्तु) विनाश को प्राप्त हों।

इसी प्रकार (ये मा अघयव इत्यादि) वे इसी दिशा के आक्रमक लोग (आदित्यवन्तम् वरुणम्) आदित्य के समान तेजस्वी तथा चमचमाते अग्नि-

अथ अश्वों के स्वामी तथा (वरुणम्) शत्रुवारक सेनापति को प्राप्त होकर (ऋच्छन्तु) नष्ट हो जांय ।

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ५ ॥
अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ६ ॥

भा०—(ये मा अघायवः प्रतीच्यः दिशः अभिदासात्) जो मेरे द्रोही, मुझ पर पश्चिम दिशा से आक्रमण करें (ते) वे (द्यावापृथिवीवन्तम् सूर्यम्) आकाश और पृथिवी पर वश करने वाले 'सूर्य' नाम अधिकारी को (ऋच्छन्तु) प्राप्त होकर नष्ट हो जांय । (ये मा अघाय० इत्यादि) और वे इसी दिशा से आक्रमण करने वाले (ओषधीमतीः आपः प्राप्य ऋच्छन्तु) ओषधियों से समृद्ध जलों के समान सर्वरोग और कष्ट दूर करने में समर्थ पुरुषों को प्राप्त होकर नष्ट हो जांय ।

विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ७ ॥
इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ८ ॥

भा०—(ये अघायवः मा उदीच्याः दिशः अभिदासात् ते) जो द्रोही मेरे ऊपर उत्तर दिशा से आक्रमण करें वे (सप्तऋषिवन्तं विश्वकर्माणं ऋच्छन्तु) सात ऋषियों से युक्त विश्वकर्मा को प्राप्त होकर नष्ट हो जांय । (ये अघायवः मा एतस्याः दिशः अभिदासात्) जो द्रोही इसी दिशा से मुझ पर आक्रमण करते हैं (ते) वे (मरुत्वन्तम् इन्द्रम् ऋच्छन्तु) वायु के समान वेगवान् सैनिकों से सम्पन्न सेनापति को प्राप्त होकर नष्ट हों ।

प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥ ९ ॥

बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥

भा०—(ये अघायवः मा ध्रुवायाः दिशः अभिदासात्) जो द्रोही लोग मुझ पर नीचे की दिशा, पृथ्वी की ओर से आक्रमण करें (ते) वे (प्रजननवन्तं प्रजापतिम् ऋच्छन्तु) सन्तानोत्पादन की शक्ति से युक्त प्रजा पालक गृहस्थ जन को प्राप्त होकर नाश हों। (अघायवः मा ऊर्ध्वायाः दिशः अभिदासात्) जो द्रोही लोग मुझ पर ऊपर की दिशा से आक्रमण करें वे (विश्वदेववन्तम् बृहस्पतिम् ऋच्छन्तु) समस्त विद्वान् पुरुषों से युक्त वेदज्ञ विद्वान् के पास प्राप्त होकर नष्ट हों।

[१९] रक्षा की प्रार्थना

अथर्वा ऋषिः । चन्द्रमा उत मन्त्रोक्ता देवताः । १, ३, ९ भुरिग् बृहत्यः, १० स्वराट् २,४–८,११ अनुष्टुग्गर्भाः। शेषाः पंक्तयः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छन्तु ॥१॥

भा०—(मित्रः) प्रजा के साथ स्नेह करने वाला, प्रजा को व्याधि शत्रु आदि जन्म मरण से बचाने वाला राजा (पृथिव्या) पृथिवी द्वारा (उद् अक्रामत्) उच्च पद प्राप्त करता है, मैं (ताम्) उसको (वः) तुम लोगों के लिये (पुरम्) पालक और रक्षक दुर्ग के समान (प्र णयामि) बनाता हूँ। हे पुरुषो! (ताम्) उसके आश्रय में (आ विशत) आकर बसो। (प्र विशत) उसमें प्रवेश करो। (सा) वह (वः) तुमको (शम्) सुख दे और (वर्म च) दुखों से बचने की ढाल के तुल्य (यच्छतु) प्रदान करे।

वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां० ।०॥ २॥ सूर्यो दिवोदक्रामत् तां० । ० ॥ ३ ॥ चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां० । ० ॥ ४॥ सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां० । ०॥ ५॥ यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत्

तां । ० ॥ ६ ॥ समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां० । ० ॥ ७ ॥ ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां० । ० ॥ ८ ॥ इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत् तां० । ० ॥ ९ ॥ देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां० । ० ॥ १० ॥ प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ११ ॥

भा०—(२) (वायुः) वायु (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्षस्थ मेघ, विद्युत् आदि शक्तियों द्वारा (उत् अक्रामत्) उच्च पद को प्राप्त है, उसको भी मैं तुम्हारे लिये पालक दुर्ग के समान बनाता हूँ, उसमें आश्रित होकर रहो, उसमें प्रवेश करो, वह तुमको दुःख और विपत्तियों से बचने का कवच या साधन प्रदान करे । (३) सूर्य तेजोमय सूक्ष्मतत्व द्वारा (उद् अक्रामत्) उच्च शक्ति को प्राप्त है । उसको भी हे जीव ! एक दुर्ग के समान बनाता हूँ । इत्यादि पूर्ववत् । (४) (चन्द्रमाः नक्षत्रैः उद् अक्रामत्) चन्द्रमा नक्षत्रों के संग द्वारा उत्तम पद को प्राप्त है, (तां वः पुरम् प्रणयामि) इत्यादि पूर्ववत् । (५) (सोमः ओषधीभिः उद् अक्रामत्) सोमलता ओषधियों के संग से उन्नत पद को प्राप्त है । हे प्रजाओ ! (ताम् पुरम् वः प्रणयामि) इत्यादि पूर्ववत् । (६) (यज्ञः दक्षिणाभिः उद् अक्रामत्) यज्ञ दक्षिणाओं के संग से उन्नति को प्राप्त है, (ताम् पुरम्०) इत्यादि पूर्ववत् । (७) (समुद्रः नदीभिः उद् अक्रामत्) समुद्र नदियों के द्वारा उच्चगति को प्रा है, (ता पुरं वः०) इत्यादि पूर्ववत् । (८) (ब्रह्म ब्रह्मचारिभिः उद् अक्रामत्) वेद, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले ब्रह्मचारी पुरुषों के योग से उन्नति को प्राप्त होता है, (तां पुरम्०) इत्यादि पूर्व-वत् । (९) (इन्द्रः वीर्येण उद् अक्रामत्) ऐश्वर्यवान् राजा वीर्य उन्नत पद को प्राप्त है, (तां पुरं० इत्यादि) पूर्ववत् । (१०) (देवाः) विद्वान् जन (अमृतेन) परमात्मा के ज्ञान या मोक्ष बल से उन्नति को प्राप्त होते हैं, (ताम् पुरम्०) इत्यादि पूर्ववत् । (११) (प्रजापतिः) प्रजा का पालक

परमेश्वर या गृहस्थ (प्रजाभिः) उत्कृष्ट सन्ततियों द्वारा (उद् अक्रामत्) उत्तम पद को प्राप्त होता है. (तां पुरं०) इत्यादि पूर्ववत्।

[२०] रक्षा की प्रार्थना

अथर्वा ऋषिः। नाना देवताः १. त्रिष्टुप्, २ जगती, ३ पुरस्ताद् बृहती, ४ अनुष्टुप्। चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः॥१

भा०—(यम्) जिस (पौरुषेयम्) पुरुषों द्वारा किये जाने वाले (वधम्) मारने या घात-प्रतिघात के साधन शस्त्र-अस्त्रों को (अप नि अधुः) वे शत्रुगण गुप्त रूप में ला रखते हैं उस (मृत्योः) प्राणघातक साधन से (इन्द्र-अग्नि) विद्युत् और अग्नि (धाता) पोषक वायु, (सविता) सूर्य, (बृहस्पतिः) वाणी का स्वामी, (सोमः) ओषधियों का स्वामी, (राजा) प्रजा का स्वामी राजा, (वरुणः) दुष्टों का वारक, (अश्विना) स्त्री पुरुष, या दिन और रात (यमः) नियन्ता, (पूषा) तथा सबका पोषक परमेश्वर (अस्मान् परि पातु) हमारी रक्षा करें।

यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु॥२॥

भा०—(भुवनस्य) संसार का (यः) जो (पतिः) पालक, (प्रजापतिः) उत्पन्न होने वाले प्राणियों का स्वामी, (मातरिश्वा) तथा सर्वनिर्मात्री प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के भीतर भी व्यापक (यानि) जिन रक्षासाधनों को (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (चकार) बनाता है और (यानि) जो रक्षासाधन (प्रदिशः दिशः च) मुख्य दिशाओं और उपदिशाओं तक को (वसते) आच्छादित कर रहे हैं, (तानि) वे सभी (बहुलानि) बहुत प्रकार के पदार्थ (वर्माणि) कवच के समान मेरे जीवन के रक्षक (सन्तु) हों।

यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः॥ ३॥

भा०—(द्यु-राजयः) ज्ञान से चमकने वाले (देहिनः) शरीरधारी (देवाः) विद्वान् और योद्धा लोग (यत् वर्म) जिस कवच को (तनूषु) शरीरों में बांधते हैं वे कवच और (इन्द्रः) राजा (यत्) जिस (वर्म) रक्षा के समान दुर्ग आदि को (चक्रे) बनवाता है, (तत् अस्मान् विश्वतः पातु) वह हमारी सब ओर से रक्षा करे ।

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रतीचिका ॥ ४ ॥

भा०—(द्यावा पृथिवी) आकाश और पृथिवी (मे वर्म) मेरे लिये रक्षाकारी कवच हों, (अहः) दिन (सूर्यः) सूर्य और (विश्वेदेवाः) समस्त दिव्य पदार्थ या विद्वान् जन (वर्म) मेरे रक्षाकारी कवच (क्रन्) बनावें जिससे (प्रतीचिका) मेरे विरुद्ध उठने वाली शत्रुसेना (मा) मुझ तक (मा प्रापत्) न पहुँच सके । इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[तत्रैकादश सूक्तानि द्वासप्ततिश्चर्चः]

[२१] छन्दों का वर्णन

ब्रह्मा ऋषिः । छन्दो देवता । एकावसाना द्विपदासाम्नी बृहती । एककं सूक्तम् ॥

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥ १ ॥

भा०—(गायत्री) गायत्री छन्द, (उष्णिग्) उष्णिग् छन्द, (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् छन्द, (बृहती) बृहती छन्द, (पंक्तिः) पंक्ति छन्द, (त्रिष्टुप् जगत्यै) त्रिष्टुप् छन्द और जगती छन्द इन समस्त छन्दों का ज्ञान विद्वानों को करना चाहिये । ये क्रम से २४, २८, ३२, ३६, ४०, ४४, ४८ अक्षरों वाले होते हैं । अध्यात्म में—सप्तप्राण, अधियाज्ञिक में सप्त सोमयाग, देह में सप्तधातु, राज्य में सप्त प्रकृति और त्रिभुवन में ५ सूक्ष्म भूत और महत् और अहंकार तत्त्व इत्यादि सात छन्दों को यथोचित रीति से जानना चाहिये ।

[२२] अथर्व सूक्तों का संग्रह

अंगिरा ऋषिः । मन्त्रोक्ता देवताः । १ साम्न्युष्णिक् ३,१९ प्राजापत्या गायत्री । ४,७,११,१७ दैव्यो जगत्यः । ५,१२,१३ दैव्यस्त्रिष्टुभः, २,६, १४–१६,२० दैव्यः पंक्तयः । ८–१० आसुर्यो जगत्यः । १८ आसुरी अनुष्टुप् । २१ चतुष्पदा त्रिष्टुप् । (१–२० एकावसानाः) एकविंशत्यृचं प्रथमं समाससूक्तम् ॥

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥

भा०—(आङ्गिरसानाम्) आंगिरस वेद में कहे अनुवाकों में से (आद्यैः) आदि के (पञ्च-अनुवाकैः) पांच अनुवाकों [का० १ सू० १–२८] से (स्वाहा) उत्तम ज्ञान प्राप्त करो।

षष्ठाय स्वाहा ॥ २ ॥ सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥ ३ ॥

भा०—(षष्ठाय स्वाहा) छठे अनुवाक से उत्तम शिक्षा ग्रहण करो [का० १ सू० २९–३५]। (सप्तम-अष्टमाभ्यां स्वाहा) सातवें और आठवें [का० २ । सू० १–५, ६–१०] अनुवाकों से उत्तम ज्ञान प्राप्त करो।

नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

भा०—(नीलनखेभ्यः) 'नीलनख' नामक सूक्तों से उत्तम ज्ञान प्राप्त करो ।

हरितेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥

भा०—(हरितेभ्यः स्वाहा) हरितसूक्त जिनमें ओषधिलता, वनस्पतियों का वर्णन है उनसे उत्तम ज्ञान प्राप्त करो ।

क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥

भा०—(क्षुद्रेभ्यः स्वाहा) क्षुद्र नामक सूक्त जिनमें अति सूक्ष्म ब्रह्म का विवेचन किया है उनसे भी तुम ज्ञान का लाभ करो ।

पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥

भा०—(पर्यायिकेभ्यः स्वाहा) पर्याय सूक्तों से भी उत्तम ज्ञान करो।

प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥ द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥ तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥

भा०—(प्रथमेभ्यः, द्वितीयेभ्यः, तृतीयेभ्यः, शंखेभ्यः ३ स्वाहा ३) प्रथम, द्वितीय और तृतीय शंखसूत्रों का भी उत्तम ज्ञान प्राप्त करो। शंख सूक्त 'शंनोदेवी' आदि शान्तिगण में पठित सूक्त समझने चाहियें।

उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ १२ ॥
उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥

भा०—(उपोत्तमेभ्यः उत्तमेभ्यः उत्तरेभ्यः स्वाहा ३) उत्तमों के समीप उपोत्तम, उत्तम और उत्तर इन तीन प्रकार के सूक्तों का भी ज्ञान करना चाहिये, मोक्ष विषयक सूक्त उत्तम, साधनाविषयक सूक्त उपोत्तम, और कर्मकाण्ड विषयक या यज्ञ विषयक सूक्त उत्तर प्रतीत होते हैं।

ऋषिभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥ शिखिभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥

भा०—(ऋषिभ्यः स्वाहा) वेदमन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों के उत्तम ज्ञान को प्राप्त करो। (शिखिभ्यः स्वाहा) ब्रह्मज्ञान के प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारियों से प्राप्त होने योग्य ज्ञान को प्राप्त करो।

गणेभ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥ महागणेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥
सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥ १८ ॥
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥ १९ ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २० ॥

भा०—(गणेभ्यः स्वाहा) गणों में पढ़े गये सलिल, शान्ति सूक्त आदि का उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करो (महागणेभ्यः स्वाहा) महागण, बड़े गणों में पढ़े गये पृथ्वी सूक्त आदि का भी उत्तम रीति से ज्ञान करो। (सर्वेभ्यः अंगिरोभ्यः विदगणेभ्यः स्वाहा) समस्त आंगिरसवेद के जानने हारे विद्वान पुरुषों द्वारा देखे गये ज्ञानसूक्तों का भी उत्तम रीति से मनन करो। 'पृथक् सूक्त' अर्थात् १८वां काण्ड और 'सहस्र सूक्त' अर्थात् पुरुषसूक्त इनका भी ज्ञान उत्तम रीति से प्राप्त करो। (ब्रह्मणे स्वाहा) समस्त ब्रह्मविषयक सूक्तों का स्वाध्याय करो।

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥२१॥

चाहते हैं, (तत्) उस (चन्द्रम्) आल्हादजनक (त्वः) तुझ आत्मा को (यः बिभर्ति) जो धारण करता है वह (वर्चसा) तेज से (संसृजाति) युक्त हो जाता है और (आयुष्मान् भवति) दीर्घायु हो जाता है।

आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुष ! (आयुषे) आयु, (वर्चसे) तेज, (ओजसे) ओज, (च) और (बलाय च) बल के लिये (त्वा २) तुझे वह परम आत्मा रूप सुवर्ण प्राप्त है (यथा) जिसके कारण तू (जनान् अनु) जनों के प्रति (हिरण्य-तेजसा) सुवर्ण के तेज से (विभासासि) विशेष रूप से चमकने में समर्थ है।

यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यंभुवत् तत ते वर्चस्यंभुवत् ॥४

भा०—(यत्) जिसको (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ (राजा) राजा (वेद) प्राप्त करता है। जिसको (बृहस्पतिः) बड़े २ लोकों का पालक (देवः) देदीप्यमान पुरुष (वेद) प्राप्त करता है और (यत्) जिसको (वृत्र-हा) पापनाशक (इन्द्र) आत्मा (वेद) प्राप्त करता है, (तत्) वह आत्मरूप सुवर्ण (ते) तेरे लिये (आयुष्यम्) दीर्घ आयुप्रद (भुवत्) हो और (तत्) वही (ते वर्चस्यं भुवत्) तुझे तेजस्वी बनाने वाला हो।

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[तत्र सूक्तानि सप्त। पञ्चषष्टिश्चर्चः]

[२७] जीवन रक्षा

मृग्वंगिरा ऋषिः। त्रिवृद् उत चन्द्रमा देवता। ३-९ त्रिष्टुभौ। १० जगती। ११ आर्ची उष्णिक्। १२ आर्च्यनुष्टुप्। १३ साम्नी। त्रिष्टुप् (११-१३ एकावसानाः)। शेषा अनुष्टुभः। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्य ! (ऋषभः) श्रेष्ठ परमात्मा (गोभिः) वेद वाणियों द्वारा (पातु) तेरा पालन करे। (वाजिभिः) मेघ अन्नों द्वारा (त्वा पातु) तेरा पालन करे। (वायुः) वायु (ब्रह्मणा) अपनी बड़ी शक्ति द्वारा तेरा पालन करे। (इन्द्रः) जीवात्मा (इन्द्रियैः) इन्द्रियों द्वारा (त्वा पातु) तेरा पालन करे।

सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥

भा०—(सोमः) सोमलता (ओषधीभिः) अपनी दोषनाशक शक्तियों से (त्वा पातु) तेरी रक्षा करे। (सूर्यः) सूर्य तुझे (नक्षत्रैः पातु) नाश से त्राण करने वाले गुणों से पालन करे। (चन्द्रः) आल्हादकारी चन्द्र (त्वा) तुझे (माद्भ्यः) अपने मासों से रक्षा करे और (वृत्र-हा) आवरणकारी मेघों का नाशक, मेघों को छिन्न भिन्न करने वाला (वातः) वायु (त्वा रक्षतु) तेरी रक्षा करे।

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान्।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ३ ॥

भा०—(तिस्रः दिवः आहुः) तेज को तीन प्रकार का बतलाते हैं। (तिस्रः पृथिवीः आहुः) पृथिवी को भी तीन प्रकार का बतलाते हैं। (त्रीणि अन्तरिक्षाणि) अन्तरिक्ष अर्थात् वायु को भी तीन रूप का बतलाते हैं। (समुद्रान् चतुरः आहुः) समुद्रों को चार प्रकार का बतलाते हैं। (स्तोमं त्रिवृतम्) स्तोम अर्थात् लोक, प्राण और वीर्य तीन प्रकार का है। (आपः त्रिवृतः) आपः अर्थात् जल या प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को भी तीन प्रकार का कहते हैं। (ता) वे सब (त्वा) तुझको (त्रिवृता) तीन २ रूपों में परिणत होकर (त्रिवृद्भिः) तीन २ रूपों से (त्वा रक्षन्तु) तेरी रक्षा करें।

त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान्।
त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥ ४ ॥

भा०—मैं तेरे लिये (त्रीन् नाकान्) तीन सुखमय लोकों को, (त्रीन् समुद्रान्) तीन समुद्रों को, (त्रीन् ब्रध्नान्) तीन बन्धनशील पदार्थों को, (त्रीन् वैष्टपान्) तीन विशेष रूप से तपने तपाने वाले वा सर्वथा ताप रहित शान्तिपूर्ण लोकों को (त्रीन् मातरिश्वनः) तीन वायुओं को (त्रीन् सूर्यान्) तीन सूर्यों को हे पुरुष ! (ते) तेरे (गोप्तॄन्) रक्षक (कल्पयामि) बनाता हूँ।

घृतेन॑ त्वा॒ सम॑क्षाम्यग्न॒ आज्ये॑न व॒र्धय॑न् ।
अ॒ग्नेश्च॒न्द्रस्य॒ सूर्य॑स्य॒ मा प्रा॒णं मा॒यिनो॑ दभन् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी राजन् ! जिस प्रकार अग्नि को घृत से बढ़ाया जाता है उसी प्रकार (आज्येन) आजि अर्थात् युद्ध की उपयोगी सामग्री और सेना बल से तुझे (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ (सम् उक्षामि) अभिषेचित करता हूँ। (अग्नेः) अग्नि के समान शत्रुतापक, (चन्द्रस्य) चन्द्र और (सूर्यस्य) सूर्य के समान मनोहर और तेजस्वी तुझ राजा के (प्राणम्) प्राण का (मायिनः) मायावी लोग (मा दभन्) विनाश न करें।

मा वः॑ प्रा॒णं मा वो॑ऽपा॒नं मा हरो॑ मा॒यिनो॑ दभन् ।
भ्राज॑न्तो वि॒श्ववे॑दसो दे॒वा दैव्ये॑न धावत ॥ ६ ॥

भा०—(मायिनः) मायावी पुरुष (वः) आप लोगों के (प्राणम्) प्राण अपान और बल का (मा दभन्) विनाश न करें। हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (विश्ववेदसः) सब प्रकार ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् एवं (भ्राजन्तः) तेजस्वी होकर (दैव्येन) दिव्य वेग से (धावत) शीघ्र कार्य किया करो।

प्रा॒णेना॒ग्निं सं सृ॑जति॒ वातः॑ प्रा॒णेन॒ संहि॑तः ।
प्रा॒णेन॑ वि॒श्वतो॑मुखं॒ सूर्यं॑ दे॒वा अ॑जनयन् ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्य (प्राणेन) अपने प्राणवायु से या फूंक

से (अग्निम्) आग को (संसृजति) उत्पन्न करता है, क्योंकि (वातः) यह बाह्य वायु (प्राणेन) शरीरगत प्राण के साथ (संहितः) सम्बद्ध रहता है, ठीक इसी प्रकार (देवाः) दिव्य पदार्थ भी (विश्वतः मुखम्) सब ओर प्रकाशमान सूर्य को (प्राणेन) प्रकृष्ट महावायु या महान् चैतन्य के बल से (अजनयन्) दीप्त रूप से प्रकट कर रहे हैं।

आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥

भा०—(आयुः-कृताम्) आयु को दीर्घ बनाने वाले पदार्थों के (आयुषा) जीवनवृद्धि करने वाले बल से, हे पुरुष ! तू (जीव) प्राण धारण कर । हे पुरुष ! तू (आयुष्मान्) दीर्घायु होकर (जीव) जीता रह । (मा मृथाः) मर मत । (आत्मन्-वताम्) आत्मशक्ति से युक्त शूरवीर पुरुषों के (प्राणेन) प्राण बल से तू (जीव) प्राण धारण कर । (मृत्योः वशम्) मृत्यु के वश में (मा उद् अगाः) मत जा ।

देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः ।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ९ ॥

भा०—(देवानाम्) इन्द्रियों, दिव्य शक्तियों के भीतर (निहितम्) गुप्त रूप से रक्खे, (निधिम्) जिस ख़ज़ाने को (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आत्मा (देव-यानैः) प्राणों द्वारा जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों द्वारा (अनु अविन्दत्) प्राप्त करता है, उस (हिरण्यम्) अति रमणीय, आत्मारूप ख़जाने को (आपः) आप्त पुरुष (त्रिवृद्भिः) तीन प्रकार के प्राणों द्वारा (जुगुपुः) रक्षा करते हैं । (ताः) वे आप्त जन (त्रि-वृद्भिः) तीन २ गुणों से (त्रि-वृता) त्रिवृत हुए प्राण से (त्वा रक्षन्तु) तेरी रक्षा करें ।

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः ।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥ १० ॥

भा०—(देवताः) दिव्य शक्तियां (त्रयः त्रिंशत्) तेतीस हैं और

(वीर्याणि च) विशेष रूप से प्रेरक बल (त्रीणि) तीन हैं। वे (अप्सु अन्तः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के भीतर उस (हिरण्यम्) आत्मा को अति (प्रियायमाणाः) प्रिय बनाते हुए (अस्मिन् चन्दे) इस अल्हादकारी आत्मा में (यत् हिरण्यम्) जिस हित और रमणीय तेज को (जुगुपुः) सुरक्षित रखते हैं (तेन) उससे (अयम्) यह आत्मा (वीर्याणि) वीर्य को (कृणवत्) उत्पन्न करे।

त्रयस्त्रिंशद् देवताः—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र और प्रजापति। कायिक, वाचिक, मानस ये तीन वीर्य हैं।

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ ११ ॥
ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् १२
ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ १३

भा०—हे (देवाः) दिव्य पदार्थों ! आप (दिवि) द्यौलोक में, (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में और (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ये) जो (एकादश ३) ग्यारह, ग्यारह, ग्यारह (स्थ) हो, (ते) वे आप (देवासः) दिव्य पदार्थ (इदम्) इस (हविः) अन्न को (जुषध्वम् ३) सेवन करें। (११-१३)

यजुर्वेद (७।१७) भाष्य में महर्षि दयानन्द के लेखानुसार द्यौ में ११ देव = प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीव अप्सुक्षित् एकादश देव = श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ और मन। भूमि पर एकादश देव = पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम्।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १४ ॥

भा०—(नः) हमारे (पुरस्तात्) आगे और (पश्चात्) पीछे से (असपत्नम्) शत्रुओं से रहित (अभयम्) अभय (कृतम्) बना रहे।

(मा दक्षिणतः) मेरे दायें तरफ (सविता) सर्वप्रेरक राजा और (मा उत्तरात्) मेरे ऊपर या बायें तरफ (शची-पतिः) शक्तिवाली सेना का स्वामी सेनापति रहे ।

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥१५

भा०—(आदित्याः) १२ मास (मा) मुझे (दिवः) आकाश की ओर से (रक्षन्तु) रक्षा करें । (भूम्याः) भूमि की ओर से (अग्नयः) अग्नि के समान शत्रुसंतापक वीर और विद्वान् लोग मेरी (रक्षन्तु) रक्षा करें । (इन्द्राग्नी) राजा और सेनापति (मा) मुझे (पुरस्तात्) आगे से (रक्षताम्) रक्षा करें । (अभितः) दोनों ओर से (अश्विनौ) दिन रात के समान दो अश्वारोही मुझे (शम् यच्छताम्) शान्ति प्रदान करें । (जातवेदाः) विद्वान् पुरुष (तिरश्चीन्) तिर्यग् योनियों में गये (अघ्न्याः) न मारने योग्य पालतू पशुओं की (रक्षतु) रक्षा करें । (भूतकृतः) पञ्च भूतों के बने यन्त्रों आदि द्वारा प्राणियों के हितकारक विद्वान् पुरुष (सर्वतः) सब प्रकार से (मे) मेरे (वर्म) शरीर के कवच के समान रक्षक (सन्तु) हों ।

[२८] शत्रुनाशक सेनापति दर्भमणि का वर्णन

सपत्नक्षयकामो ब्रह्मऋषिः । मन्त्रोक्ता दर्भमणिर्देवता । अनुष्टुभः । दशर्चं सूक्तम् ॥

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! और प्रजाजन ! मैं (ते) तेरे (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन और (तेजसे) तेज तथा पराक्रम के कार्य के लिये, (सपत्न-दम्भनम्) शत्रुनाशक, (द्विषतः) शत्रु के (हृदः) हृदय को (तपनम्) तपाने वाले, (दर्भम्) दुष्टों के हिंसक (मणिम्) मननशील पुरुष को (बध्नामि) नियुक्त करता हूँ ।

द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्मइवाभीन्त्संतापयन् ॥ २ ॥
घर्मइवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥ ३ ॥

भा०—(द्विषतः) प्रेम न करने वाले पुरुष के (हृदः) हृदय को (तापयन्) सन्तप्त करता हुआ और (शत्रूणाम्) शत्रुओं के (मनः) मन को (तापयन्) सन्तप्त करता हुआ और (सर्वान् दुर्हार्दः) सभी दुष्ट हृदय वाले (अभीन्) भय रहित पुरुषों को, (घर्मं इव) घाम के समान (अभितपन्) खूब प्रचण्ड होकर, (सन्तापयन्) खूब तपाता हुआ, हे (मणे) मननशील नर-रत्न ! (द्विषतः नि तपन्) बहुत से शत्रुओं को भी खूब तपाता हुआ, (बलम् इन्द्र इव विरुजन्) मेघ को सूर्य या प्रचण्ड वायु या विद्युत् के समान नाना प्रकार से छिन्न भिन्न करता हुआ राजा (सपत्नानाम्) शत्रुओं के (हृदः) हृदयों को (भिन्द्धि) भेदे और उनके (बलम्) सेनाबल को तोड़ डाले ॥ २, ३ ॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे।
उद्यन् त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥ ४ ॥

भा०—हे (दर्भ) शत्रुहिंसक मननशील सेनापते ! तू (सपत्नानाम्) हमारे राष्ट्र पर अपना अधिकार करने वाले और (द्विषताम्) द्वेष करने वाले पुरुषों के (हृदयं भिन्द्धि) हृदय को तोड़ दे और (उद्यन्) ऊपर उठता हुआ सूर्य जिस प्रकार (भूम्याः) पृथिवी के (त्वचम् इव) घेरने वाले मेघ को नीचे बरसा देता है, उसी प्रकार तू (उद्यम्) ऊपर उठता हुआ (एषां शिरः) इन शत्रुओं के शिर को (वि पातय) नाना प्रकार से नीचे गिरा दे।

भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥

भा०—हे (दर्भ) शत्रु नाशकारी पुरुष ! तू (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं और (मे पृतनायतः) मेरे राष्ट्र पर सेना लेकर चढ़ने वाले शत्रुओं को (भिन्द्धि २) तोड़ दे और हे (मणे) मननशील पुरुष ! तू (मे) मेरे प्रति (सर्वान् दुर्हार्दः) सब दुष्ट हृदय वाले और (मे द्विषतः) द्वेषकारी पुरुषों को (भिन्द्धि २) विनाश कर।

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दांश्छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥

भा०—(मे पृतनायतः, मे सपत्नान्) हे शत्रुनाशक सेनापते ! तू मेरे पर सेना लेकर चढ़ने वाले और द्वेष करने वाले पुरुषों को (छिन्द्धि २) काट डाल, उनको फोड़ डाल। हे (मणे) शिरोमणि पुरुष ! (सर्वान् दुर्हार्दान् द्विषतः) सब दुष्ट हृदय वाले शत्रुओं को भी (छिन्द्धि २) काट डाल या फोड़ डाल।

वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥
कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥
विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥ १० ॥

भा०—हे (दर्भ) शत्रुनाशक सेनापते ! (मे सपत्नान्) मेरे शत्रुओं को और (मे पृतनायतः) मेरे ऊपर सेना से चढ़ाई करने वालों को (वृश्च) फरसा जिस प्रकार लकड़ी को काटता है उस प्रकार काट डाल। (कृन्त) कैंची जिस प्रकार कपड़े को काट डालती है उस प्रकार काट डाल। (पिंश) चक्की जिस प्रकार दानों को पीस डालती है उस प्रकार पीस

डाल । इसी प्रकार (सर्वान् द्विषतः दुर्हार्दः [दोन्] समस्त द्वेष करने वाले, दुष्ट हृदयों से युक्त, कुटिल पुरुषों को भी (वृश्च, कृन्त, पिंश, विध्य) फरसे के समान काट, कैंची के समान कतर, चक्की के समान पीस, बाण के समान वेध ।

[२९] शत्रु का उच्छेदन

सपत्नक्षयकामो ब्रह्मा ऋषिः । दर्भो देवता । अनुष्टुभः । नवर्चं सूक्तम् ॥

निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥ १ ॥
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ २ ॥
रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ३ ॥
मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥ ४ ॥
मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥
पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥
ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥
दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥

भा०—हे (दर्भ) शत्रुहिंसन करने में कुशल पुरुष ! तू (मे सपत्नान् पृतनायतः) मेरे शत्रुओं और मुझसे सेना द्वारा युद्ध करने वालों को (निक्ष) नाग के समान डंस डाल । हे (मणे) नरमणे ! (मे द्विषतः) मेरे से द्वेष करने वालों को और (सर्वान् दुर्हार्दः) समस्त दुष्ट हृदय वालों को भी (निक्ष) काट डाल, मूर्छित कर ॥१॥ (तृन्धि) उनको तिनके की तरह तोड़ डाल ॥२॥ (रुन्धि) उनको हाथी के समान पैरों तले रौंद डाल ॥३॥ (मृण) कुम्हार जिस प्रकार मट्टी को मसलता है उस प्रकार मसल डाल ॥४॥ (मन्थ) जिस प्रकार मक्खन के लिये दही को मथा जाता है उसी प्रकार मथ डाल या आटे के समान गूंध डाल ॥५॥ (पिण्ड्ढि) सिल पर चटनी के समान पीस डाल या कुम्हार के समान गीली मिट्टी की तरह मल २ कर पिण्डे बना डाल ॥६॥ (ओष) हांडी में दाल की तरह पका डाल ॥७॥ (दह) भट्टी में लकड़ी के समान जला डाल ॥८॥ (जहि) उनको नाना प्रकार से हनन कर ॥९॥

[३०] शत्रु का उच्छेदन

सपत्नक्षयकामो ब्रह्मा ऋषिः । दर्भो देवता । अनुष्टुभः । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ्जहि वीर्यैः ॥ १ ॥

भा०—हे (दर्भ) शत्रुनाशक सेनापते ! (यत्) जो (ते) तेरे (शतम्) सैकड़ों प्रकार के (वर्मसु) कवचों में सबसे उत्तम (वर्म) कवच अर्थात् रक्षा साधन है (जरामृत्युः) जो कि वृद्धावस्था के पश्चात् मृत्यु प्राप्त करने वाला है, (ते) उस रक्षाकारी कवच से (इमम्) इस पुरुष को (वर्मिणं कृत्या) कवचवान् करके (वीर्यैः) नाना सामर्थ्यों से (सपत्नान्) इसके शत्रुओं का (जहि) नाश कर ।

शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥ २ ॥

भा०—हे (दर्भ) शत्रुनाशक सेनापते ! (ते वर्माणि शतम्) तेरे सैकड़ों कवच अर्थात् रक्षासाधन हैं। (ते वीर्याणि सहस्रम्) तेरे सामर्थ्य भी सहस्रों हैं। इसीलिये (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् पुरुष (तम्) उस (त्वाम्) तुझ वीर्यवान् पुरुष को (अस्मै) इस राजा के प्रति (जरसे) वृद्धावस्था तक (भर्तवे) भरण पोषण के निमित्त (अदुः) सौंपते हैं।

त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम्।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (दर्भ) शत्रुहिंसक पुरुष ! (त्वां) तुझको (देववर्म आहुः) राजा और विद्वानों के कवच के समान कहते हैं और (त्वाम्) तुझे (ब्रह्मणः पतिम्) वेद या विशाल राष्ट्र का पालक कहते हैं। (त्वाम्) तुझको (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा या धनवान् समृद्ध राष्ट्र का (वर्म आहुः) रक्षक कहते हैं। क्योंकि (त्वं) तू (राष्ट्राणि) राष्ट्रों की (रक्षसि) रक्षा करता है।

सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥

भा०—हे (दर्भ) शत्रुओं का नाश करने वाले पुरुष। (द्विषतः) शत्रु के (हृदः) हृदय को (तपनम्) तपाने और (सपत्न-क्षयणम्) शत्रु का क्षय करने वाले और (क्षत्रस्य वर्धनम्) क्षत्रियों के क्षात्र-बल को बढ़ाने वाले तुझ (मणिम्) शिरोमणि पुरुष को, हे राजन् ! (ते) तेरे (तनू-पानम्) शरीर की रक्षा करने वाला (कृणोमि) नियत करता हूँ।

यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥ ५ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (समुद्रः) जलों का बरसाने वाला (पर्जन्यः) मेघ (विद्युता) विद्युत् के (सह) साथ (अभि अक्रन्दत्) खूब गरजता है, उससे (हिरण्ययः) हिततम और रमणीय (बिन्दुः) जलबिन्दु

उत्पन्न होता है और उससे (दर्भः) कुशा घास (अजायत) उत्पन्न होता है, उसी प्रकार (समुद्रः) प्रजाओं पर नाना उपकारों की वर्षा करने वाला समुद्र के समान गम्भीर और (विद्युता सह पर्जन्यः) विशेष शोभा के साथ प्रजा को सन्तुष्ट करने वाला राजा (अभि अक्रन्दत्) गर्जना करता है और उससे (हिरण्यः बिन्दुः) हितकारी राजा उत्पन्न होता है, (ततः) और उससे (दर्भः) शत्रुनाशक पुरुष भी (अजायत) उत्पन्न होता है।

[३१] औदुम्बर मणि के रूप में अन्नाध्यक्ष, पुष्टपति का वर्णन

पुष्टिकामः सविता ऋषिः । मन्त्रोक्त उदुम्बरमणिर्देवता । ५, १२ त्रिष्टुभौ । ६ विराट् प्रस्तार पंक्तिः । ११, १३ पञ्चपदे शक्वर्यौ । १४ विराड् आस्तारपंक्तिः । शेषा अनुष्टुभः । चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १ ॥

भा०—(औदुम्बरेण) उत्तम पुष्टि करने वाले या पापों से ऊंचे उठाने वाले या अन्नाध्यक्ष, (वेधसा) विद्वान् (मणिना) नरशिरोमणि द्वारा (सविता) सर्वप्रेरक राजा, (पुष्टिकामाय) पुष्टि की कामना करने वाला जो मैं हूँ उसकी (गोष्ठे) गोशाला में (सर्वेषां पशूनाम्) समस्त पशुओं की (स्फातिम्) वृद्धि (करत्) करे। राजा अपने राज्य में राष्ट्र के पशुओं की वृद्धि और पुष्टि का काम, पशु-पुष्टिवित् विद्वान् द्वारा संचालित करे।

सोऽब्रवीत् अयं वाव स मा सर्वस्मात् पाप्मन उद् अभार्षीत्। तस्मात् उदुम्बरः । उदुम्बर इति आचक्षते परोक्षम् । श० ७।५।१।२२॥ अन्नं वा ऊर्ग् उदुम्बरः । श० ३।२।१।३३॥

यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (अग्निः) अग्रणी (गार्हपत्यः) गृहपति (नः) हमारे

(पशूनाम्) पशुओं का (अधिपाः) अधिष्ठाता (असत्) है (स) वही (औदुम्बरः) पुष्टिकारक अन्न उत्पन्न करने में कुशल, (वृषा) सब सुखों का वर्षक (मणि) नरश्रेष्ठ, (मा) मुझको (पुष्ट्या) धन-ऐश्वर्य और पशु-सम्पत्ति की वृद्धि से (सृजतु) युक्त करे।

करी॒षिणीं॒ फल॑वतीं स्व॒धामिरां॑ च नो गृ॒हे।
औदु॑म्बरस्य॒ तेज॑सा धा॒ता पु॒ष्टिं द॑धातु मे ॥ ३ ॥

भा०—(धाता) पोषक राजा अपने नियत किये हुए (औदुम्बरस्य) अन्न और पुष्टि के अध्यक्ष के (तेजसा) प्रयत्न से, (नः गृहे) हमारे घरों में, (करीषिणीम्) समृद्धि से युक्त और (फलवतीम्) खूब उत्तम फल से युक्त (स्वधाम्) अन्न और (इराम्) जल को प्रदान करे और (मे) मुझे (पुष्टिम्) पशु-समृद्धि प्रदान करे।

पुरीष्य इति वै तमाहुः यः श्रियं गच्छति। समानं वै पुरीषं च करीषं च ॥ श० २। १। १। ७ ॥

यद् द्वि॒पाच्च॒ चतु॑ष्पाच्च॒ यान्यन्ना॑नि॒ ये रसाः॑।
गृ॒ह्णे॒३॒॑ऽहं त्वे॒षां॑ भू॒मान॑ं॒ बिभ्र॒दौदु॑म्बरं॒ म॒णिम् ॥ ४ ॥

भा०—(अहम्) मैं (औदुम्बरम् मणिम्) 'औदुम्बर' नामक पुरुष को नियुक्त करता हुआ, (यत् द्विपात् च) जो दो पाये और (चतुष्पात् च) चौपाये जन्तु हैं और (यानि अन्नानि) जितने अन्न और (ये रसाः) जितने रस हैं, (एषाम्) उन सबकी (भूमानम्) बहुत भारी संख्या को (गृह्णे) प्राप्त करने में समर्थ हूँ।

पु॒ष्टिं प॑शू॒नां परि॑ जग्रभा॒हं चतु॑ष्पदां द्वि॒पदां॒ यच्च॑ धा॒न्यम्।
पयः॑ पशू॒नां रस॒मोष॑धीनां॒ बृह॒स्पतिः॑ सवि॒ता मे॒ नि य॑च्छात् ॥ ५ ॥

भा०—(सविता) सबका प्रेरक, (बृहस्पतिः) बड़ों बड़ों का स्वामी राजा या परमेश्वर, (मे) मुझे (पशूनाम्) पशुओं के (पयः) दूध और (ओषधीनाम्) ओषधियों के (रसम्) रस का (नि यच्छात्) प्रदान

करे। (अहन्) मैं (पशूनाम्) पशुओं और (द्विपदां चतुष्पदाम्) दो पाये और चौपायों की (पुष्टिम्) पुष्टि और (यत् च धान्यम्) जो उनके खाने योग्य धान्य है वह (परि जग्रभ) सब प्रकार से प्राप्त करूं।

अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥

भा०—(अहम्) मैं (पशूनाम्) पशुओं का (अधिपाः) स्वामी (असानि) होऊं। (पुष्ट-पतिः) पोषणकारी अन्न आदि पालक पुरुष (मयि) मुझ में (पुष्टम्) पोषणकारी अन्न आदि पदार्थ (दधातु) प्रदान करे। (औदुम्बरः) वही अन्न का वृद्धिकारी (मणिः) सर्वश्रेष्ठ अध्यक्ष (मह्यम्) मुझे (द्रविणानि) नाना प्रकार के धन (नि यच्छतु) प्रदान करे।

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा द्वारा (जिन्वितः) वेतन आदि द्वारा सन्तुष्ट करके नियुक्त किया (मणिः) शिरोमणि पुरुष, (वर्चसा सह) तेज सहित (मा आ अगन्) मुझे प्राप्त हो। वह (औदुम्बरः मणिः) 'अन्नाध्यक्ष' नरश्रेष्ठ (प्रजया च धनेन च) उत्तम सन्तान और धन के सहित (मा उप अगन्) मुझे प्राप्त हो।

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥ ८ ॥

भा०—(देवः) प्रदाता (मणिः) नरशिरोमणि पुरुष (सपत्न-हा) शत्रुओं का नाशकारी और (धन-सा) नाना प्रकार के धन ऐश्वर्यों का प्रदाता होकर, (धन-सातये) हमें ऐश्वर्यलाभ के लिये उपयोगी हो। वह हमें (पशोः) पशु, (अन्नस्य) अन्न और (गवां) गौ आदि नाना पशुओं की (भूमानम्) बहुत भारी (स्फातिम्) समृद्धि (नि यच्छतु) प्रदान करे।

यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ९ ॥

भा०—हे (वनस्पते) वनों के पालक ! (यथा) जिस प्रकार (त्वम्) तू (अग्रे) सबसे प्रथम स्वयं (पुष्ट्या) पोषणकारी शक्ति के साथ (जज्ञिषे) प्रकट होता है, उसी प्रकार (सरस्वती) समस्त रसों का प्रदान करने वाली, पुष्टि की स्वामिनी, स्त्री या समिति भी (मे) मुझे (धनस्य स्फातिम्) धन की समृद्धि (आ दधातु) प्रदान करे ।

सरस्वती पुष्टिः पुष्टिपत्नी । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १० ॥

भा०—(सरस्वती) उत्तम रस प्रदान करने वाली और (सनीवाली) अन्न प्रदान करने वाली स्त्री, (मे) मुझे (धनम्) धन, (पयः-स्फातिम्) खूब अधिक पुष्टिकारक दूध, घी आदि पदार्थ और (धान्यं च) अन्न आदि धान्य (उप आ वहाद्) प्राप्त करावे और इसी प्रकार (अयम्) यह (औदुम्बरः मणिः) अन्नों और रसों का स्वामी मुझे धन, दूध, अन्नादि प्रदान करे ।

त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वा-
रादरातिममतिं क्षुधं च ॥ ११ ॥

भा०—हे नरशिरोमणि ! (त्वं) तू (मणीनाम्) नर-रत्नों का भी (अधि-पाः) पालक और (वृषा) अन्नादि पदार्थों का मेघ के समान उदारता से देने वाला (असि) है । (पुष्ट-पतिः) पोषणकारी समस्त पदार्थों का स्वामी अर्थात् राजा (त्वयि) तेरे बल पर (पुष्टम्) पोषणकारी पदार्थों को (जजान) उत्पन्न करता है, (त्वयि) तेरे बल पर (इमे) ये सब (वाजाः) अन्न, (द्रविणानि) समस्त धन, ऐश्वर्य उत्पन्न किये जाते हैं । इसलिये तू

(औदुम्बरः = उरुम्-भरः) प्रजा को बहुत पुष्ट करने वाला अधिकारी होकर (अरातिम्) कृपणता, (अमतिम्) अविवेक और मूर्खता (क्षुधम् च) और भूख प्यास को (अस्मत् आरात्) हमसे (सहस्व) दूर कर।

ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२ ॥

भा०—हे शिरोमणि पुरुष ! तू (ग्रामणीः असि) ग्राम का नेता है, तू (उत्थाय) उच्च पद प्राप्त करके स्वयं (ग्रामणीः) 'ग्रामणी' अर्थात् ग्राम के प्रमुख नेतृत्व के पद पर (अभिषिक्तः असि) अभिषेक किया जाता है। तू (मा) मुझ राजा को भी (वर्चसा-सिञ्च) तेज से युक्त कर। तू स्वयं (तेजः असि) तेजः-स्वरूप है तू (मयि) मुझमें भी (तेजः अधि धारय) तेज धारण करा। तू (रयिः असि) साक्षात् 'रयि', धनैश्वर्यमय है। तू (मे) मुझे (रयिं धेहि) ऐश्वर्य प्रदान कर।

पुष्टिरसि पुष्टया मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥

भा०—तू (पुष्टिः असि) साक्षात् पुष्टि है, (मा) मुझको (पुष्ट्या) पोषणकारी अन्न आदि की समृद्धि से (सम् अङ्ग्धि) युक्त कर। तू (गृह-मेधी, गृहम्-एधी) गृह की वृद्धि करने वाला है (मा) मुझको (गृहपतिं कृणु) गृह का स्वामी बना। (त्वम्) तू (औदुम्बरः) बहुतों को अन्न आदि से पुष्ट करने में समर्थ, अति बलवान् है। (त्वम्) तू (अस्मासु) हममें भी बहुतों का पालन और भरण पोषण करने का सामर्थ्य (धेहि) स्थापन कर और (नः) हमें (सर्ववीरं रयिम् च) समस्त वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य (नियच्छ) प्रदान कर। (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको (रायः-पोषाय) धन-ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (प्रति मुञ्चे) धारण करता हूँ, अपने राष्ट्र में नियुक्त करता हूँ।

अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् १४

भा०—(अयम्) यह (औदुम्बरः) बहुतों के पालन पोषण में समर्थ (मणिः) शिरोमणि पुरुष (वीरः) वीर्यवान् होकर (वीराय) वीर्यवान् राजा के उपकार के निमित्त (बध्यते) बांधा जाता है, वेतन आदि द्वारा नियुक्त किया जाता है। (सः) वह (नः) हमारी (सनिम्) धन प्राप्ति को (मधु-मतीम्) आनन्द और सुख से युक्त (कृणोतु) करे और (नः सर्व-वीरं च रयिम् नियच्छात्) हमें सब सामर्थ्यों से युक्त धन ऐश्वर्य प्रदान करे।

[३२] शत्रु दमनकारी 'दर्भ' नामक सेनापति

सर्वकाम आयुष्कामो भृगुर्ऋषिः। मन्त्रोक्तो दर्भो देवता। ८ पुरस्ताद् बृहती। ९ त्रिष्टुप्। १० जगती। शेषा अनुष्टुभः। दशर्चं सूक्तम्॥

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः।
दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे॥ १॥

भा०—(शत-काण्डः) सैकड़ों काम्य पदार्थों से सम्पन्न, अथवा सैकड़ों बाणों से युक्त, (दुश्च्यवनः) संग्राम में शत्रु द्वारा न डिगाये जाने वाला, (सहस्र-पर्णः) सहस्रों शीघ्रगामी बाणों, रथों, विमानों वाला, (उत् तिरः) शत्रुओं को उखाड़ देने में समर्थ, (उग्रः) भयानक (ओषधिः) शत्रुओं के संतापकारी पराक्रम को धारण करने वाला, (दर्भः) उनका हिंसक 'दर्भ' नामक सेनापति है। हे राजन्! (तम्) उसको (ते) तेरे (आयुषे) जीवन की रक्षा के लिये (बध्नामि) नियुक्त करता हूँ।

नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति॥ २॥

भा०—(अच्छिन्न-पर्णेन) निरन्तर चलने वाले बाणों, रथों, विमानों से युक्त तथा (दर्भेण) शत्रुहिंसक सेनापति द्वारा (यस्मा) जिसको (शर्म)

सुख (यच्छति) प्रदान किया जाता है, (अस्य) उसके सम्बन्धी लोग (केशान न प्रवपन्ति) परस्पर के बाल नहीं नोंचते और (न उरसिताडम् आघ्नते) न छाती पीट २ कर दुहत्थड़ मार कर रोया करते हैं अर्थात् वे सुखी रहते हैं।

दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (ओषधे) शत्रुओं को सन्तापदायक पुरुष ! (ते) तेरा (तूलम्) अग्रभाग, मुख्य बल (दिवि) आकाश में सूर्य के समान, सभा में विद्यमान है और तू स्वयं (पृथिव्याम्) पृथिवी में (निष्ठितः, असि) दृढ़ता से स्थित है। (सहस्र-काण्डेन त्वया) सहस्रों बाणों से युक्त तेरे द्वारा हम राष्ट्र के (आयुः) जीवन को (प्र वर्धयामहे) बढ़ाते हैं।

तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥ ४ ॥

भा०—शत्रुनाशकारी पुरुष (तिस्रः दिवः) तीनों द्यौलोक और (इमाः तिस्रः पृथिवीः) इन तीनों पृथिवियों को (अति अतृणत्) पार कर जाता है। (त्वया) तेरे बल से (अहम्) मैं राजा (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले पुरुष की (जिह्वाम्) जीभ और (वचांसि) वचनों को (नि तृणद्मि) सर्वथा नाश करूं।

त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान्।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि ॥ ५ ॥

भा०—हे शिरोमणे ! (त्वम्) तू (सहमानः) शत्रुओं को निरन्तर दबाता रहता (असि) है और (अहम्) मैं राजा भी (सहस्वान्) शत्रुओं को पराजित करने वाले बल से युक्त (अस्मि) हूँ। (उभौ) हम दोनों (सहस्वन्तौ भूत्वा) बलवान् होकर (सपत्नान्) शत्रुओं को उनकी सेनाओं सहित (सहिषीवहि) दबाने में समर्थ हों।

सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे शत्रुओं को स्तम्भन करने हारे पुरुष ! तू (नः) हमारे प्रति (अभि-मातिम्) अभिमान करने वाले, गर्वीले शत्रु को (सहस्व) पराजित कर और (पृतनायतः) सेना से आक्रमण करने वाले शत्रुओं को भी (सहस्व) पराजित कर । (सर्वान् दुर्हार्दः) समस्त दुष्ट चित्त वालों को भी (सहस्व) पराजित कर । (मे) मेरे (बहून्) बहुत से (सुहार्दः) उत्तम चित्त वाले मित्रों को (कृधि) उत्पन्न कर, बना ।

दुर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥ ७ ॥

भा०—(दिवि) महान् आकाश में जिस प्रकार सूर्य अपनी शक्ति से समस्त ग्रहों को थामे रहता है, उसी प्रकार (शश्वत् इत्) निरन्तर (स्तम्भेन) राष्ट्र के उत्तम भाग में स्थित होकर सबको थामने वाले, (दर्भेण) शत्रु नाशक (तेन) उस पुरुष द्वारा, (शश्वतः) निरन्तर रहने वाले (जनान्) प्रजाजनों को (असनम्) प्राप्त करूं और (सनवानि च) अपने वश किये रहूँ ।

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८ ॥

भा०—हे शत्रुनाशन ! तू (मा) मुझको (ब्रह्म-राजन्याभ्याम्) ब्राह्मणों और क्षत्रियों (शूद्राय च अर्याय च) शूद्रों और वैश्यों और (यस्मै च) जिसको हम (कामयामहे) चाहते हैं और जो (विपश्यते) अपने विपरीत शत्रुभाव से हमें देखते हैं (सर्वस्मै च) उन सबका भी (मा) मुझे (प्रियं कृणु) प्रिय बना ।

यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ स्वयं (पृथिवीम्) पृथिवी को (अदृंहत्) दृढ़ करता है और जो (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को अपने वश करता और (दिवं च) विद्वानों की सभा को सूर्य के समान प्रकाशित करता है, (बिभ्रतम्) भरण पोषण करने वाले (यम्) जिसको (पाप्मा) पाप (ननु विवेद) नहीं छूता, (स दर्भः) वह शत्रु-नाशक सेनापति, (वरुणः) सब पापों का निवारक होकर, (दिवा) दिन के समान प्रकाश (कः) करता है, अर्थात् अन्याय-अन्धेर मिटाकर व्यवस्थित राज्य की स्थापना करता है।

स॒प॒त्न॒हा श॒तका॑ण्डः सह॑स्वा॒नोष॑धीनां प्रथ॒मः सं ब॑भूव ।
स नो॒ऽयं द॒र्भः परि॑ पातु वि॒श्वत॒स्तेन॑ साक्षीय पृत॑नाः पृतन्य॒तः॥१०॥

भा०—जो (सपत्नहा) शत्रुओं का हनन करने वाला, (शत-काण्डः) सैकड़ों बाणों से युक्त, (सहस्वान्) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ होकर, (ओषधीनाम्) शत्रु और दुष्टों को सन्ताप देने में (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ (सं बभूव) है, (सः) वह (अयम् दर्भ) यह 'दर्भ' नाम से विख्यात शत्रुनाशक अधिकारी पुरुष (नः) हमारी (विश्वतः) सब ओर से और सब प्रकार से (परि पातु) रक्षा करे। (तेन) उसके बल से मैं (पृतन्यतः) सेना द्वारा आक्रमण करने वाले शत्रु की (पृतनाः) सेनाओं को (साक्षीय) विजय करने में समर्थ होऊं।

[३३] 'दर्भ', 'अग्नि', नामक अभिषिक्त राजा

सर्वकामो भृगुर्ऋषिः । दर्भो देवता । १ जगती । २, ५ त्रिष्टुभौ । ३ आर्षी पंक्तिः । आस्तारपंक्तिः । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

स॒ह॒स्रा॒र्घः श॒तका॑ण्डः पय॑स्वान॒पाम॒ग्निर्वी॒रुधां॑ रा॒ज॒सूय॑म् ।
स नो॒ऽयं द॒र्भः परि॑ पातु वि॒श्वतो॑ दे॒वो म॒णिरायु॑षा॒ सं सृ॑जाति नः॥१॥

भा०—(सहस्र-अर्घः) सहस्रों पुरुषों और राजाओं से सहस्रों प्रकार से सम्मान प्राप्त करने वाला, (शतकाण्डः) सैकड़ों बाणों या बाणधारियों

का स्वामी, (पयस्वान्) समुद्र के समान गम्भीर और स्वयं 'पयः' अर्थात् पुष्टिकारक सामर्थ्य वाला, (अपाम्) समुद्र के जलों के बीच में भी (अग्निः) दहकने वाले और्वानल के समान प्रजाओं के बीच में (अग्निः) अग्रणी और (वीरुधाम्) बढ़ते शत्रु दलों को विशेष रूप से रोकने वाले योद्धाओं का (राज-सूयम्) राजारूप से प्रेरक (सः अयं) यह (दर्भः) शत्रुनाशक सेनापति, (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (परि पातु) रक्षा करे और वह (मणिः) मननशील शत्रुस्तम्भन में समर्थ होकर (नः) हमें (आयुषा सं सृजाति) दीर्घ आयु से युक्त करे।

घृतादुल्लु॑प्तो मधु॑मान् पय॑स्वान् भूमिदृंहोऽच्यु॑तश्च्यावयि॒ष्णुः ।
नुदन्त्सपत्ना॒नध॑रांश्च कृ॒ण्वन् दर्भा रो॑ह मह॒तामि॑न्द्रि॒येण॑ ॥ २ ॥

भा०—(घृतात्) तेज से (उल्लुप्तः) आवृत, (मधुमान्) अन्न आदि समृद्धि से युक्त, (पयस्वान्) पुष्ट वीर्य से समर्थ, (भूमि-दृंहः) राष्ट्र को दृढ़ करने वाला, (अच्युतः) युद्ध में स्वयं अविचलित (च्यावयिष्णुः) शत्रुओं को पदच्युत करने वाला, (सपत्नान्) शत्रुओं को (नुदन्) पीछे हटाता हुआ और उनको (अधरान् च कृण्वन्) नीचे गिराता हुआ, हे (दर्भः) शत्रुनाशक सेनापते! तू (महताम्) बड़े २ नरपतियों के (इन्द्रियेण) बल वीर्य से (आ रोह) सबसे ऊंचे पद पर आरूढ़ हो।

त्वं भूमि॒मत्ये॒ष्योज॑सा॒ त्वं वेद्यां॑ सीदसि॒ चारु॑रध्व॒रे ।
त्वां प॒वित्र॒मृष॑यो॒ऽभर॑न्त॒ त्वं पु॑नीहि दुरि॒तान्य॒स्मत् ॥ ३ ॥

भा०—(त्वम्) तू (भूमिम्) भूमि को अपने (ओजसा) पराक्रम से (अति एषि) अतिक्रमण कर जाता है और तू (अध्वरे) अहिंसामय राष्ट्र-पालनरूप यज्ञ में (चारुः) अति उत्तम होकर (वेद्याम्) यज्ञवेदि या पृथिवी पर (सीदसि) विराजता है। (पवित्रं त्वाम्) सबको पवित्र करने वाले तुझको (ऋषयः) मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण (प्र भरन्त) पुष्ट करते

तथा सत्यासत्य विवेक करने के लिये न्यायासन पर ला बिठलाते हैं। (त्वम्) तू (दुरितानि) दुष्टाचरणों को (अस्मत्) हमसे दूर करके हमें (पुनीहि) पवित्र कर।

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४॥

भा०—(तीक्ष्णः) अति तीक्ष्ण, (राजा) सर्वोपरि राजमान, (वि-षासहिः) विविध उपायों से शत्रु को पराजय करने वाला, (रक्षः-हा) राष्ट्रव्यवस्था में विघ्नकारी पुरुषों का नाशक, (विश्व-चर्षणि) समस्त राष्ट्र का द्रष्टा, (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों का (ओजः) पराक्रमस्वरूप और (एतत्) मूर्तिमान् (उग्रं बलम्) उग्र भयंकर बल यह सेनापति है। (तम्) उसको हे राजन्! (ते) तेरे (जरसे) वृद्धावस्था तक के (स्वस्तये) कल्याण के लिये (बध्नामि) नियुक्त करता हूँ।

दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्यं इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन्! (त्वम्) तू (दर्भेण) शत्रुनाशक सेनापति के बल से (वीर्याणि) पराक्रम के कार्य (कृणवद्) करता हुआ और (आत्मना) अपने बल से (दर्भम्) उस शत्रुनाशक सेनापति का (बिभ्रत्) भरण-पोषण करता हुआ, (मा व्यथिष्ठाः) कभी दुखित मत हो। (अध) और (वर्चसा) अपने तेज से (अन्यान्) अन्य शत्रु राजाओं पर (अति-ष्ठाय) प्रबल राजा होकर (चतस्रः प्र-दिशः) चारों दिशाओं को (सूर्यं इव) सूर्य के समान (आ भाहि) प्रकाशित कर। इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[तत्र सप्त सूक्तानि, अष्टाषष्टिश्च ऋचः]

[३४] जंगिड नामक रक्षक का वर्णन

अंङ्गिरा ऋषिः। वनस्पतिर्लिंगोक्ता वा देवता। अनुष्टुभः। दशर्चं सूक्तम् ॥

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥ १ ॥

भा०—हे जंगिड ! तू (जंगिडः असि) जंगिड अर्थात् शत्रुओं को निगलने वाला, अतएव (जंगिडः) तू सचमुच 'जंगिड' है । तू (जंगिडः) जंगिड़ होकर ही (रक्षिता असि) प्रजा का रक्षक है । (अस्माकम्) हमारे (द्विपात्) दोपाये और (चतुष्पाद्) चौपाये (सर्वम्) सबका (जंगिडः रक्षतु) जंगिड़ ही रक्षा करे ।

'जातानां' निगरणकर्त्ता असि अतो 'जंगिड' इत्युच्यते । यद्वा जंगम्यते शत्रून् बाधितुम् इति जंगिडः । अथवा जनेर्जयतेर्वा डप्रत्यये 'ज' इति भवति । जं गिरतीति जंगिरः । कपिलकादित्वात् लत्वम् । पूर्वपदस्थस्य सुपो लुगभावश्छान्दसः । खच् प्रत्ययो वा द्रष्टव्यः इति सायणः ॥

उत्पन्न हुए प्राणियों को निगलने वाला या शत्रुओं पर चढ़ाई करने वाला, या विजयी लोगों को भी निगलने वाला, वीर पुरुष 'जंगिड' कहाता है ।

या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥ २ ॥

भा०—(याः) जो (त्रि-पञ्चाशीः) ५३ या १५० प्रकार की या सैंकड़ों, (गृत्स्यः) लोभकारिणी या विषय-विलास में फंसी स्त्रियें या जन श्रेणियां और (शतम्) सौ प्रकार के या बहुत से (कृत्या-कृतः) घातक प्रयोग करने वाले (ये) जो दुष्ट पुरुष हैं, (सर्वान्) उन सबको, (तेजसा) अपने तेज से (जंगिडः) जंगिड नामक सेनापति (विनक्तु) हमसे दूर करे और उनको (अरसान्) निर्बल (करत) करे ।

या 'त्रि-पञ्चाशीः गृत्स्यः'—१५० या ५३ लोभ की चालें चलने वाली मनुष्यों की श्रेणियां हैं, जो जुएखोरी का पेशा करती हों । देखो ऋ० १० । ३४ । ९ ॥

अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥

भा०—हे (जंगिड) शत्रुनाशक ! तू (कृत्रिमम्) कृत्रिम साधनों द्वारा उत्पन्न किये (नादम्) विस्फोटक अस्त्रों के नाद को (अरसम्) निर्बल कर देता है। तेरे सामने (विस्रसः) विविध दिशाओं से आने वाले सातों शत्रु (अरसाः) निर्बल हो जाते हैं। (अमतिम्) अदृश्य शत्रु को भी (इतः) यहां से (अस्ता इषुम् इव) धनुर्धारी जिस प्रकार बाण को दूर फेंक देता है, उसी प्रकार (अप शातय) दूर मार भगा।

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥

भा०—(अयम्) यह (कृत्या-दूषणः) घातक गुप्त प्रयोगों का नाश करने वाला, (अथो) और (अराति-दूषणः) शत्रुओं का नाश करने वाला है। (अथो) और (जंगिडः) शत्रुओं को निगलने में समर्थ वीर राजा (सहस्वान्) शक्तिशाली होकर (नः आयूंषि) हमारे जीवनों को (प्र तारिषत्) बढ़ावे।

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह (जङ्गिडस्य) पूर्वोक्त शत्रुविजयी राजा का (महिमा) महान् सामर्थ्य है जो (नः) हमारी (विश्वतः परि पातु) सब ओर से रक्षा करे। (येन) जिस सामर्थ्य से (विष्कन्धम्) सेना के पृथक् २ दस्तों को और (संस्कन्धम् ओजः) शत्रु सेना के संयुक्त सेनाबल के वीर्य को भी अपने (ओजसा) वीर्य से (सासह) धर दबाता है।

त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक राजन्! (देवाः) युद्धक्रीड़ी पुरुष (भूम्याम् अधि) भूमि पर (त्वा) तुझको (त्रिः) तीन बार (निस्थितम्) स्थापित (अजनयन्) करते हैं। (तम् उ त्वा) उस तुझको ही (पूर्व्याः ब्राह्मणाः) तुझसे पूर्व विद्यमान, वृद्ध विद्वान् पुरुष (अङ्गिराः) ,'आङ्गिराः'' अङ्गार के समान प्रदीप्त या अङ्ग अर्थात् शरीर में रस के समान प्राण रूप (विदुः) जानते हैं।

न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥

भा०—(पूर्वाः) तुझसे पूर्व उत्पन्न हुई (ओषधयः) सन्तापदायी शक्तियां और (याः नवाः) जो नयी शक्तियां भी उत्पन्न हैं, वे भी (त्वा) तुझको (न तरन्ति) पार नहीं करतीं। तू स्वयं (उग्रः) उग्र होकर (जंगिडः) शत्रुओं की शक्तियों को निगल जाने वाला, (परि-पानः) सब ओर से राष्ट्र की रक्षा करता हुआ और (सु-मङ्गलः) मङ्गलस्वरूप होकर शत्रुओं को, (वि-बाध) विविध प्रकार से पीड़ित करने हारा है।

अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥

भा०—(अथ) और हे (उपदानः) अपने समीप प्राणों के रक्षक! हे (भगवः) ऐश्वर्यशील! हे (जङ्गिड) शत्रुओं को अपने भीतर निगल जाने में समर्थ! हे (अमित-वीर्य) असीम बलशालिन्! (उग्राः) उग्र होकर (पुरा) पहले ही से (ग्रसते ते) शत्रुओं को ग्रास कर जाने में समर्थ होते हुए तुझे तेरी रक्षा के लिये, (इन्द्रः) राष्ट्र के समृद्धिमान् लोग अपना (वीर्यम्) बल भी तुझे (उप ददौ) प्रदान करता है।

उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ।
अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥

भा०—(उग्रः इन्द्रः) उग्र (इन्द्रः) राजा, हे (वनस्पते) महावृक्ष के

समान प्रजापालक ! (ते) तुझे (ओज्मानम्) बल (दधौ) प्रदान करता है। तू (सर्वान्) समस्त (अमीवाः) पीड़ाकारी शत्रुओं का (चातयन्) विनाश करता हुआ, हे (ओषधे) रोगनाशक ओषधि के समान ! तू भी (रक्षांसि) विघ्नकारियों का (जहि) विनाश कर।

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम्।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥ १० ॥

भा०—(जङ्गिडः) शत्रुनाशक वीर (आ-शरीकम्) चारों ओर से राष्ट्र पर आघात करने वाले, (वि-शरीकम्) नाना प्रकार से पीड़ा देने वाले, (बलासम्) बल के नाशक, (पृष्टि-आमयम्) पीठ में विद्यमान रोग के समान राष्ट्र के धारण करने में असमर्थ, (पृष्टि-आमयम्) पीठ की पसुलियों के समान दृढ़ राज्य के मुख्य पुरुषों में रोग के समान विद्यमान, (तक्मानम्) ज्वर के समान पीड़ाकारी, (विश्व-शारदम्) समस्त आयु भर लगे हुए, या समस्त वर्ष भर दुःखदायी शत्रु को भी (अरसान्) निर्बल (करत्) कर।

इस सूक्त में साथ ही 'जङ्गिड' नामक ओषधि का वर्णन भी किया है। जङ्गिड ओषधि का दूसरा नाम 'अर्जुन' है (दारिल)।

[३५] पूर्वोक्त जङ्गिड सेनापति का वर्णन

अंगिरा ऋषिः। जंगिडो वनस्पतिर्देवता। ३ पंथ्यापंक्तिः। ४ निचृत् त्रिष्टुप्। शेषा अनुष्टुभः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥ १ ॥

भा०—(गृह्णन्तः) जङ्गिड अर्थात् शत्रुनाशक सेनापति के लिये 'इन्द्र' की उपाधि स्वीकार करते हुए (ऋषयः) तत्वदर्शी लोग (जङ्गिडम्) शत्रुनाशक उस पुरुष को ही (ददुः) वह पद प्रदान करते हैं। (यम्) जिसे कि (देवाः) विद्वान् पुरुष (अग्रे) सर्वप्रथम (विष्कन्ध-दूषणम्)

शत्रु के विविध सेनास्कन्धों (छावनियों) को नाश करने वाला (भेषजम्) उपाय (चक्रुः) बनाते हैं।

स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम्॥ २॥

भा०—(धनपालः) धनाध्यक्ष (धना इव) जिस प्रकार धनों की रक्षा करता है ऐसे ही (जङ्गिडः) वह शत्रु नाशक पुरुष हमारी (रक्षतु) रक्षा करे, (यम्) जिसको (ब्राह्मणाः) ब्रह्म, वेद के विद्वान् और (देवाः) दानशील राजा लोग (परि-पानम्) चारों ओर से रक्षा करने, (अराति-हम्) और शत्रुओं को नाश करने में समर्थ (चक्रुः) बनाते हैं।

दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम्।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः॥३॥

भा०—यदि मैं (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय के पुरुष की (संघोर) घोर (चक्षुः) चक्षु को और (पाप-कृत्वानाम्) अत्याचार करने वाले को (आ अगमम्) प्राप्त हो जाऊं तो हे (सहस्र-चक्षो) हजारों गुप्तचरों की चक्षुओं से युक्त राजन्! तू (तान्) उन दुष्ट हृदय वाले, अत्याचारी पुरुषों का (प्रति-बोधेन) उन पर सदा सतर्क रहने की प्रवृत्ति से (नाशय) विनाश कर, क्योंकि तू (जङ्गिडः) शत्रुनाश करने वाला और सब ओर से (परिपानः असि) रक्षा करने हारा है।

परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान्॥४॥

भा०—(जङ्गिडः) जङ्गिड नाम राजा (मा) मुझको (दिवः परिपातु) सुदूर आकाश की ओर से, (मा पृथिव्याः परि पातु) पृथिवी की ओर से, (अन्तरिक्षात् परि पातु) अन्तरिक्ष से, (वीरुद्भ्यः परि पातु) जंगलों से रक्षा करे। (मा भूतात् परि पातु) मुझे अतीत से, (उत मा भव्यात् परिपातु) और भावी काल से रक्षा करे और (अस्मान्) हम सबको (दिशोः-दिशः) प्रत्येक दिशा से (परि पातु) रक्षा क

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वास्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५ ॥

भा०—(ये) जो (देव-कृताः) राजा या विद्वानों द्वारा बनाये गये या नियुक्त किये हुए (ऋष्णवः) हिंसाकारी पदार्थ या पुरुष हैं, (उतो) और (यः) जो (अन्यः) हमारा शत्रु (ववृते) है, (तान् सर्वान्) उन सबको, (विश्व-भेषजः) उपाय करने वाला (जङ्गिडः) शत्रुनिवारक पुरुष, उनको (अरसान्) निर्बल (करत्) करे ।

[३६] 'शतवार' नामक वीर सेनापति का वर्णन

ब्रह्मा ऋषिः । शतवारो देवता । अनुष्टुभः । षड्ऋचं सूक्तम् ॥

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥ १ ॥

भा०—(शत-वारः) सैकड़ों शत्रुओं को वारण करने में समर्थ, (मणिः) शत्रुओं का स्तम्भन करने वाला और (दुर्नाम-चातनः) दुष्ट ख्याति वाले बदनाम पुरुषों का नाशकारी, अपने (वर्चसा सह) तेज से (आरोहन्) उन्नति को प्राप्त होकर, (तेजसा) पराक्रम और तेज से (यक्ष्मान्) पीड़ाकारी और (रक्षांसि) विघ्नकारी पुरुषों को ओषधि के तुल्य (अनीनशत्) विनाश करे ।

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २ ॥

भा०—वह 'शतवार' नाम पुरुष (शृङ्गाभ्याम्) सींगों के समान हिंसाकारी दो साधनों द्वारा (रक्षः नुदते) दुष्ट पुरुषों को भगाता है और (मूलेन) अपने मूलबल द्वारा (यातुधान्यः) प्रजा को पीड़ाकारी स्त्रियों वा शत्रुसेनाओं से बचाता है। (मध्येन) अपने बीच के भाग से (यक्ष्मम्) रोगजनक कारणों को (बाधते) दूर करता है और (एनम्) इसको (पाप्मा) कोई भी पापकारी पुरुष (न अति तत्रति) नहीं दबा सकता ।

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (यक्ष्मासः) दुःखदायी कारण (अर्भकाः) छोटे हैं और (ये) जो (महान्तः) बड़े और (शब्दिनः) विकराल शब्द करने में कारणभूत हैं, (सर्वान्) उन सब (दुर्नामहा) दुष्ट नाम वाले, दुर्दान्त पुरुषों का, (शतवारः) सैकड़ों को वारण करने में समर्थ (मणिः) शत्रु-स्तम्भक पुरुष (अनीनशत्) नाश करे ।

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् ।
दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥

भा०—वह (शतं वीरान्) सैकड़ों वीर पुरुषों को (अजनयत्) उत्पन्न करता है और (शतं यक्ष्मान्) सैकड़ों कष्टदायी पुरुषों को (अप अवपत्) उखाड़ने में समर्थ है। वह (सर्वान्) समस्त (दुर्नाम्नः) बदनाम पुरुषों को (हत्वा) मारकर (रक्षांसि) विघ्नकारी पुरुषों को (अव धूनुते) धुन डालता है ।

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।
दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५ ॥

भा०—(हिरण्य-शृङ्गः) धातु के बने अति प्रदीप्त शृङ्ग अर्थात् हिंसा साधन शस्त्रों वाला, (ऋषभः) नरश्रेष्ठ, (शतवारः मणिः) सैकड़ों का वारण करने में समर्थ, शत्रुस्तम्भक पुरुष, (सर्वान्) समस्त (दुर्णाम्नः) दुर्दमनीय पुरुषों का (तृड्ढ्वा) नाश करके (रक्षांसि) प्रजा के कार्यों में विघ्नकारी पुरुषों को भी (अव अक्रमीत्) दबाता है ।

शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥

भा०—(शतम्) सैकड़ों (दुः-नाम्नीनाम्) दुर्दान्त (गन्धर्व-अप्सरसाम्) कामी पुरुष और कामिनी स्त्रियों को और (शतं च) सैकड़ों

(श्वन्वतीनाम्) कुत्तों के दोष, गुण, कर्म, स्वभाव वाली अति कामुक स्त्रियों को, मैं प्रजापालक पुरुष (शत-वारेण) सैकड़ों को वारण करने में समर्थ पुरुष के द्वारा वारण करूं।

ओषधि पक्ष में—शतवार नामक ओषधि सैकड़ों रोगों को वारण करती, तथा मूल द्वारा पीड़ाओं को और काण्ड द्वारा राजयक्ष्मा को नाश करती है। वह बुरे नाम के कुष्ठ आदि त्वचा के रोगों को भी दूर करती है। वह गन्धर्व और अप्सरा अर्थात् गन्ध या वायु द्वारा या जल द्वारा मनुष्य को लग जाने वाली बीमारियों को और श्वन्वती अर्थात् कुत्तों द्वारा फैल जाने वाले रोगों को भी दूर करती है।

'शतवार' नामक ओषधि कदाचित् 'शतावरी' या 'सतावर' हो।

[३७] वीर्य, बल की प्राप्ति

अथर्वा ऋषिः। अग्निर्देवता। १ त्रिष्टुप्। २ आस्तारपंक्तिः। ३ त्रिपदा महा बृहती। ४ पुर उष्णिक्। चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

इदं वर्चो॑ अ॒ग्निना॑ द॒त्तमाग॑न् भर्गो॒ यशः॒ सह॒ ओजो॒ वयो॒ बल॑म्।
त्रय॑स्त्रिंशद् यानि॑ च वी॒र्या॒णि॒ तान्य॒ग्निः प्र द॑दातु मे ॥ १॥

भा०—(इदं) यह (वर्चः) तेज जो (अग्निना) अग्नि ने (दत्तम्) प्रदान किया है वह मुझे (भर्गः) तेज, (यशः) यश, (सहः) शत्रुधर्षक बल, (ओजः) ओज, (वयः) दीर्घ आयु और (बलम्) बल रूप में (आ अगन्) प्राप्त हो। (यानि) जो (त्रयः त्रिंशत् वीर्याणि) तेंतीस वीर्य, अधिकार हैं (तानि) उन सबको वह (अग्निः) अग्नि अर्थात् परमेश्वर, राजा, आचार्य और विद्युत् (मे प्र ददातु) मुझे प्रदान करे।

वर्च॒ आ धे॑हि मे त॒न्वां॒३ सह॒ ओजो॒ वयो॒ बल॑म्।
इ॒न्द्रि॒याय॑ त्वा॒ कर्म॑णे वी॒र्या॒य॒ प्रति॑ गृह्णामि श॒तशा॑रदाय ॥ २॥

भा०—हे अग्ने! तू (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर में (वर्चः) ब्रह्मवर्चस, (सहः) सहनशक्ति, (ओजः) ओज, (वयः) जीवनशक्ति और

(बलम्) बल, (आ धेहि) प्रदान कर। (त्वा) तुझको मैं (इन्द्रियाय) इन्द्रियों के बल के लिये, (कर्मणे) क्रियाशक्ति को प्राप्त करने के लिये, (वीर्याय) वीर्य प्राप्त करने के लिये और (शत-शारदाय) सौ वर्ष के जीवन के लिये, (प्रति ग्रहृणामि) स्वीकार करता हूँ।

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥ ३ ॥

भा०—हे अग्ने! राजन् (त्वा) तुझको (ऊर्जे) अन्न से पुष्टि, बल, (ओजसे) पराक्रम, (सहसे) शत्रुधर्षण, (अभि-भूयाय) शत्रुओं का पराजय, (राष्ट्र-भृत्याय) राष्ट्र के भरण-पोषण और (शत-शारदाय) प्रजाओं के सौ २ वर्षों तक के दीर्घजीवन के लिये (परि ऊहामि) स्वीकार करता हूँ।

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्ने! राजन्! (त्वा) तुझको (ऋतुभ्यः) ऋतुओं, ऋतुविभागों, मासों तथा वर्षों अर्थात् कालगणना को नियत करने के लिये वरण करता हूँ और (धात्रे) राष्ट्र के धारण करने वाले, (वि-धात्रे) सृष्टि के आदि में कानून देने वाले, (समृधे) सबको सम्पन्न करने वाले, (भूतस्य पतये) तथा प्रजाओं के पालक उस परमेश्वर का (यजे) मैं संगति लाभ करूं। देखो अथर्व० ५। २८। १३॥

[३८] राजयक्ष्मा नाशक 'गुल्गुलु' ओषधि

अथर्वा ऋषिः। मन्त्रोक्ता गुल्गुलुर्देवता। १ अनुष्टुप्। २ चतुष्पदा उष्णिक्। ३ एकावसाना प्राजापत्यानुष्टुप्। तृचं सूक्तम् ॥

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥
विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते।

भा०—(यम्) जिसके शरीर को (भेषजस्य) रोग नाशक (गुल्-ग्लोः) गूगल का (सुरभिः) उत्तम (गन्धः) गन्ध (अश्नुते) व्यापता है (तम्) उसको (यक्ष्माः) राजयक्ष्मा के रोग (न अरुन्धते) नहीं घेरते और (एनं) उसको (शपथः) दूसरे का निन्दावचन भी (न अश्नुते) नहीं लगता है। वह सदा स्वस्थ, प्रसन्न रहने से दूसरे के कहे बुरे वचनों को भी बुरा नहीं मानता। (तस्मात्) उससे (विश्वञ्चः) सब प्रकार के (यक्ष्माः) राजयक्ष्मा आदि रोग (अश्वाः मृगाः इव) शीघ्रगामी हिरणों के समान (ईरते) डरकर भागते हैं।

यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥ २ ॥
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये।

भा०—(यद्) जो (गुल्गुलु) गूगल (सैन्धवम्) नदी के तटों पर उत्पन्न होता है और (यद् वा असि) जो (समुद्रियम् असि) समुद्र के तट पर उत्पन्न होता है (उभयोः) उन दोनों के (नाम) स्वरूप का (अस्मै) इस पुरुष के (अरिष्ट-तातये) कल्याण के लिये (अग्रभम्) उपदेश करता हूँ।

[३९] कुष्ठ नामक ओषधि

भृग्वङ्गिरा ऋषिः। मन्त्रोक्तः कुष्ठो देवता। २, ३ त्र्यवसाना पथ्यापंक्तिः। ४ षट्पदा जगती। ५ सप्तपदा शक्वरी। ६–८ अष्टयः (५–९ चतुरवसानाः) शेषा अनुष्टुभः दशर्चं सूक्तम् ॥

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥

भा०—(त्रायमाणः) रक्षा करने वाला (देवः) दिव्य गुणवान् (कुष्ठः) कुष्ठ नामक वनस्पति (हिमवतः परि) हिम वाले पर्वत से (आ एतु) हमें प्राप्त हो। हे कुष्ठ ! (सर्वम्) सब प्रकार के (तक्मानम्) पीड़ादायी ज्वरों को और (सर्वाः च यातुधान्यः) सब प्रकार की पीड़ाकारिणी यातनाओं को (नाशय) नष्ट कर।

त्रीणि॑ ते कुष्ठ नामा॑नि नद्यमारो न॑ घारिषः। नघायं पुरु॑षो रिषत्।
यस्मै॑ परि॒ब्रवी॑मि त्वा सा॒यंप्रा॑त॒रथो॒ दिवा॑॥ २॥

भा०—हे (कुष्ठ) कुष्ठ! (ते) तेरे (त्रीणि) तीन प्रकार के (नामानि) रोगों को दमन करने के सामर्थ्य हैं। एक तो (न-घ-मारः) पुरुष को कभी मरने नहीं देता, दूसरा (न-घ-अरिषः) कभी कोई अरिष्ट या रोग नहीं होने देता। अथवा कुष्ठ के तीन नाम हैं कुष्ठ, नघमार और नघा-रिष। इसी कारण हे कुष्ठ! (यस्मै) जिस पुरुष को भी (त्वा) तेरा (परि ब्रवीमि) मैं उपदेश करूं (अयम्) वह (पुरुषः) पुरुष चाहे (सायं प्रातः अथो दिवा) सायंकाल, प्रातःकाल, मध्याह्न हो, कभी भी (नघ रिषत्) पीड़ा आदि कष्ट को प्राप्त नहीं होता।

जी॒वला नाम॑ ते मा॒ता जीव॒न्तो नाम॑ ते पि॒ता। नघायं पु०। ०॥३॥

भा०—(ते माता) तेरी रचना करने वाली शक्ति (जीवला नाम) प्राण धारण करने वाली होने से 'जीवला' कहाती है। इसी प्रकार (पिता) तेरी पालक शक्ति भी (जीवन्तः) जीवनप्रद होने से 'जीवन्त' नाम से कहाती है। (नघ अयम्० इत्यादि) पूर्ववत्।

उ॒त्त॒मो अ॒स्योष॑धीनामन॒ड्वान् जग॑तामिव व्या॒घ्रः श्वप॑दामिव।
नघायं पुरु॑षो रिषत्। यस्मै॑ परि॒ब्रवी॑मि त्वा सा॒यंप्रा॑त॒रथो॒ दिवा॑॥ ४॥

भा०—हे कुष्ठ नामक ओषधे! तू (ओषधीनाम्) दोषों को नाश करने वाली ओषधियों में से (उत्तमः) उत्तम (असि) है और (जगताम्) जंगम संसार में (अनड्वान् इव) बैल जिस प्रकार हृष्ट पुष्ट एवं गाड़ी खींचने में समर्थ होता है उसी प्रकार यह ओषधि शरीर को चलाने में समर्थ है। (श्व-पदाम्) कुत्ते के से पैरों वाली जाति के प्राणियों में से (व्याघ्रः इव) जिस प्रकार सिंह बलवान् होने से सबसे श्रेष्ठ है उसी प्रकार बलकारी यह ओषधि भी सबसे श्रेष्ठ है। (नघ अयम्०) इत्यादि पूर्ववत्।

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि । त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः । स कुष्ठो विश्वभेषजः । साकं सोमेन तिष्ठति । तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह (कुष्ठः) कुष्ठ नामक (विश्व-भेषजः) समस्त रोगों को दूर करने वाली ओषधि (शाम्बुभ्यः = साम्बुभ्यः) साम्बु अर्थात् जल सहित नदी, समुद्र और मेघ इनसे (त्रिः) तीन प्रकार का (जातः) उत्पन्न होता है । इसी प्रकार (अङ्गिरेभ्यः) अग्नियों या रस के भेदों से भी वह (त्रिः) तीन प्रकार का होता है । (आदितेभ्यः) मासों के भी तीन प्रकार ग्रीष्म, वर्षा और शीत ऐसे ऋतुभेद होने से वह कुष्ठ (त्रिः परि जातः) तीन प्रकार का हो जाता है और (विश्वेदेवेभ्यः) समस्त अन्य देव अर्थात् जल, वायु, पृथिवी आदि भेद से भी (त्रिः जातः) वह तीन प्रकार का हो जाता है । इसी कारण से (सः) वह (कुष्ठः) कुष्ठ ओषधि (विश्व-भेषजः) सभी रोगों के औषध हो जाते हैं । यह (सोमेन) उत्तेजक रस के (साकम्) साथ (तिष्ठति) विद्यमान है । इसकी सहायता से हे पुरुष ! तू (सर्वं तक्मानम्) सब कष्टदायी रोगों को और (सर्वाः च यातुधान्यः) सब प्रकार की पीड़ा प्रदान करने वाली दशाओं को भी (नाशय) विनाश कर ।

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत० । ० ॥ ६ ॥

भा०—(देव-सदनः) दिव्य गुणों (अश्वत्थः) तथा अग्नि का आश्रय सूर्य, (इतः) इस लोक से (तृतीयस्यां दिवि) तीसरे द्यौलोक में विद्यमान है । (तत्र) वहां ही (अमृतस्य) परम जीवनप्रद रस का (चक्षणम्) स्रोत है । (ततः) उससे ही (कुष्ठः) कुष्ठ नाम औषधि (अजायत) उत्पन्न होती है । (सः-कुष्ठः०) इत्यादि पूर्ववत् ।

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत० । ० ॥ ७ ॥

अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इममिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३॥

भा०—मैं (सु-मतिम्) उत्तम मति (आवृणानः) चाहता हुआ (सु-त्राव्णे) सबसे उत्तम रक्षक, (अंहः मुचे) सब पापों और कष्टों से छुड़ाने वाले परमात्मा के लिये (मनीषाम्) अपनी मानस इच्छा या स्तुति को (आ भरे) भेटरूप में रखता हूँ। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर! तू (इमं हव्यम्) इस स्तुति को (प्रति गृभाय) स्वीकार कर। (यजमानस्य) देवोपासना करने वाला जो मैं हूँ (कामाः) उसकी सब कामनाएं (सत्याः) सत्य रूप से सफल (सन्तु) हों।

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥४॥

भा०—(अंह-मुचम्) सब पापों और कष्टों से मुक्त करने वाले, (यज्ञियानाम्) पूजनीय माता पिता, गुरु, आचार्य इत्यादियों में से भी (वृषभम्) सबसे श्रेष्ठ, (अध्वराणाम्) समस्त यज्ञों में (प्रथमम्) सर्वोत्तम पद पर (विराजन्तम्) विराजमान, (अपां नपातम्) प्रजाओं को न नाश होने देने हारे परमेश्वर की (धियः) ज्ञानमय स्तुतियों का (हुवे) उच्चारण करता हूँ। हे (अश्विनौ) माता पिताओ! तुम दोनों (इन्द्रियेण) आत्मासम्बन्धी बल के साथ २ (इन्द्रियम्) इन्द्र अर्थात् ईश्वर के दिये बल को और (ओजः) तेज को (दत्त) धारण करो।

[४३] ईश्वर से परमपद की प्रार्थना

ब्रह्मा ऋषिः। ब्रह्म, बहवो वा देवताः। त्र्यवसानाः। ककुम्मत्यः पथ्यापंक्तयः। अष्टर्चं सूक्तम् ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥१॥

भा०—(यत्र) जिस पद पर (दीक्षया) दृढ़ व्रत पालन की प्रतिज्ञा और (तपसा) तपस्या के (सह) साथ (ब्रह्म-विदः) ब्रह्मवेत्ता लोग (यान्ति) जाते हैं, (तत्र) उसी पद पर (अग्निः) सर्वप्रकाशक परमेश्वर (मा नयतु) मुझे ले जाय । वही (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (मे) मुझे (मेधाः) नाना उत्तम वाक्शक्ति और बुद्धियें (दधातु) धारण करावे । (अग्नये स्वाहा) उस ज्ञानवान् परमेश्वर से मैं यह उत्तम प्रार्थना करता हूँ ।

यत्र॑० । वा॒युर्मा॒ तत्र॑ नयतु वा॒युः प्रा॒णान् द॑धातु मे । वा॒यवे॒ स्वाहा॑ ॥ २ ॥ यत्र॑० । सूर्यो॑ मा॒ तत्र॑ नयतु चक्षुः सूर्यो॑ द॑धातु मे । सूर्या॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ३ ॥ यत्र॑० । च॒न्द्रो मा॒ तत्र॑ नयतु मन॑श्च॒न्द्रो द॑धातु मे च॒न्द्राय॒ स्वाहा॑ ॥ ४ ॥ यत्र॑० । सोमो॑ मा॒ तत्र॑ नयतु पयः॒ सोमो॑ दधातु मे । सोमा॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ५ ॥ यत्र॑० । इन्द्रो॑ मा॒ तत्र नयतु बल॒मिन्द्रो दधातु मे । इन्द्रा॑य॒ स्वाहा ॥६॥ यत्र॑० । आपा मा॒ तत्र॑ नयन्त्व॒मृतं॒ मोप॑ तिष्ठतु । अ॒द्भ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ यत्र॑ ब्रह्म॒विदो॒ यान्ति॑ दी॒क्षया॑ तप॑सा स॒ह । ब्र॒ह्मा मा॒ तत्र॑ नयतु ब्र॒ह्मा ब्रह्म॑ दधातु मे । ब्र॒ह्मणे॒ स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

भा०—(यत्र) जहां (ब्रह्म-विदः) ब्रह्मवेत्ता लोग (दीक्षया तपसा सह) दीक्षा और तप के सहित (यान्ति) जाते हैं (तत्र) वहां (सूर्यः) सूर्य के समान प्रकाशमान परमेश्वर (मा नयतु) मुझे ले जाय और वह (सूर्यः) सूर्य के समान ही (मे) मुझे (चक्षुः) चक्षु (दधातु) प्रदान करे । (३) (चन्द्रः मा तत्र नयतु) चन्द्र के समान आल्हादकारी परमेश्वर मुझे वहां ले जाय, (चन्द्रः मे मनः दधातु) वह आल्हादकारी प्रभु मुझे मननशक्ति प्रदान करे । (चन्द्राय स्वाहा) उस अल्हादकारी की मैं स्तुति करता हूँ । (४) (सोमः मा तत्र नयतु) सोमलता के समान सब लोकों का प्रेरक प्रभु मुझे उस पद पर ले जावे, (सोमः मे पयः दधातु)

सोमाय स्वाहा) सर्वप्रेरक प्रभु मुझे पय अर्थात् पुष्टिकारक अन्न, ओषधि, वीर्य, तेज प्रदान करे। उस सर्वप्रेरक की मैं उत्तम स्तुति करता हूँ। (५) (इन्द्रः मा तत्र नयतु) ऐश्वर्यवान् ईश्वर मुझे उस पद पर ले जावे। (इन्द्रः मे बलं दधातु) वह ही मुझे बल प्रदान करे। (इन्द्राय स्वाहा) उसकी मैं उत्तम गुणस्तुति करता हूँ। (६) (आपः मा तत्र नयन्तु) जलों के समान स्वच्छ परमेश्वर मुझे उस पर ले जाय और (मा अमृतम् = उपतिष्ठत) मुझे अमृत प्राप्त हो। (अद्भ्यः स्वाहा) परमेश्वर की व्यापक शक्तियों की मैं स्तुति करता हूँ। (७) (ब्रह्मा मा तत्र नयतु) मुझे उस पद पर वेद का परम विद्वान् ले जाय और (ब्रह्मा मे दधातु) चतुर्वेदज्ञ परमेश्वर मुझे ब्रह्मज्ञान का उपदेश करे (ब्रह्मणे स्वाहा) उस ब्रह्म की मैं स्तुति करता हूँ।

[४४] तारक 'आञ्जन' का वर्णन

भृगुर्ऋषिः। मन्त्रोक्तमाञ्जनं देवता। ८, ९ वरुणो देवता। ४ चतुष्पदा शङ्कुमती उष्णिक्। ५ त्रिपदा निचृद्विषमा गायत्री १–३, ६–१० अनुष्टुभः। दशर्चं सूक्तम्॥

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे।
तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम्॥ १॥

भा०—हे (आञ्जन) नयनों में आंजने के योग्य आंजन के बने औषध के समान चक्षुर्दोष के नाशक! तू (आयुषः) जीवन को (प्र-तरणः) दीर्घ करने वाला उत्कृष्ट पथ पर ले जाने वाला (असि) है। तू (विप्रम्) विविध रूप से कामनाओं को पूर्ण करने वाला, (भेषजम्) सब रोगों को दूर करने में समर्थ (उच्यसे) कहा जाता है। हे (आञ्जन) ज्ञान-प्रकाशक (शं-ताते) हे कल्याणकारिन्! हे (आपः) आप्त स्वरूप! (त्वम्) तू (शम्) शान्तिदायक और (अभयम् कृतम्) भयरहित शरणरूप बनाया गया है।

यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥ २ ॥

भा०—हे पुरुष ! तेरे शरीर में (यः हरिमा) जो पीलिया का रोग है और (जायान्यः) स्त्रियों से प्राप्त होने वाला तपेदिक और (विसल्पकः) विशेष रूप से फैलने वाला, विसर्पक [एग्ज़ीमा], (अंग-भेदः) अंगों के फूटन की तीव्र वेदना आदि रोग हैं, (सर्वम्) उन सब (यक्ष्मम्) रोगों को (ते अंगेभ्यः) तेरे शरीर से वह (आञ्जनम्) अञ्जन की बनी औषध (बहिः) बाहर (निर्हन्तु) निकाल दे ।

आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३ ॥

भा०—(पृथिव्याम्) पृथिवी में (जातम्) उत्पन्न हुआ (आञ्जनम्) यह अंजन (भद्रम्) सुखकारक है । वह मुझे (अप्रमायुकम्) मरण से रहित, (रथ जूतिम्) रमण साधन इस देह में वेग से युक्त (अनागसम्) पापों से रहित और (पुरुष-जीवनम्) पूर्ण जीवन प्राप्त करने वाला (कृणोतु) करे ।

प्राणं प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥

भा०—हे (प्राण) जगत् को प्राण धारण कराने हारे ! हमारे (प्राणं त्रायस्व) प्राण की रक्षा कर । हे (असो) सब दुखों को दूर फेंकने हारे तू (असवे) हमारी प्राण-शक्ति को (मृड) सुखी कर । हे (निर्ऋते) दुष्टों को दुःख देने वाले प्रभो ! तू (नः) हमें (निर्ऋत्याः) दुःखदायिनी प्रकृति के (पाशेभ्यः) पाशों से (मुञ्च) छुड़ा ।

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (सिन्धोः गर्भः) नदियों और समुद्रों का

गर्भाशय है। प्रस्रवण करने (विद्युताम्) बिजुलियों को (पुष्पम्) विकसित करने वाला है। तू (वातः) महान् वायु रूप (प्राणः) सबका प्राण, (सूर्यः) साक्षात् प्रकाशमय सूर्य, (चक्षुः) सबकी आंख और (दिवः पयः) द्युलोक का सार है।

देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥

भा०—हे (देव आञ्जन) सर्वकान्तिमय परमेश्वर! आप (त्रैक-कुदम्) तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ हैं। (मा) मुझको (विश्वतः) सब प्रकार से (परि पाहि) पालन करो, बचाओ। (बाह्याः) भूमि के बाहर के पृष्ठ भाग पर उत्पन्न होने वाली और (पर्वतीयः) पर्वत के गर्भ से खोदकर प्राप्त की जाने वाली (ओषधयः) रोगनाशक समस्त ओषधियां भी (त्वा न तरन्ति) तुझसे बढ़कर नहीं हैं।

वीदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥ ७ ॥

भा०—(इदम्) यह (रक्षः-हा) दुष्ट भावों का नाश करने वाला, (अमीव-चातनः) समस्त रोगों का नाशक होकर, (मध्यम्) इस अन्तः-करण के बीच में (वि असृपत्) विशेष रूप से घुस गया है। वह (सर्वाः अमीवाः चातयन्) सब रोगों का नाश करता हुआ (इतः) इस हृदय से (अभि-भाः) मुझे सब तरफ से दबाने वाले विषय विकारों को (नाशयत्) दूर करे।

बह्वी३दं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वरुण) पापनिवारक (राजन्) परमेश्वर! (पुरुषः) यह पुरुष (इदम्) इस प्रकार का तुच्छ २ (बहु अनृतम्) बहुत सा असत्य (आह) बोला करता है, हे (सहस्र-वीर्य) सहस्रों बलों से युक्त! (नः) हमें (तस्मात् अंहसः) उस पाप से (परि मुञ्च) छुड़ा।

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ९ ॥

भा०—(आपः) आप्त पुरुष जलों के समान स्वच्छ अन्तःकरण वाले हैं, ये (अघ्न्याः इति) कभी भी न मारने योग्य, सदा आदरणीय लोग हमारे साक्षी हैं, (वरुण इति) तथा हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! तू ही हमारे समस्त कार्यों का साक्षी है, (इति) इस प्रकार (यद्) जब हम (यत्) जो कुछ (ऊचिम) अपना अपराध स्वीकार करें, तो (तस्मात्) उस (अंहसः) अपराध से, हे (सहस्र-वीर्य) सहस्रों शक्तियों वाले ! तू (नः) हमें (मुञ्च) मुक्त कर ।

मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥

भा०—हे (आञ्जन) ज्ञानप्रकाशक ब्रह्मन् ! (मित्रः च) सबका मित्र न्यायाधीश और (वरुणः च) सबको पापों से वारण करने वाला दण्डकर्त्ता दोनों, (त्वा अनु प्रेयतुः) तेरे ही पीछे २ गमन करते हैं । (तौ) वे दोनों (त्वा) तेरे (अनुगत्य) पीछे २ चलकर (दूरम्) बहुत दूर तक (भोगाय) सुखभोग के लिये या राष्ट्र के परिपालन के लिये (पुनः) बार २ तुझे (आ ऊहतुः) अपने ऊपर अधिष्ठाता रूप से वहन करते या धारण करते हैं ।

[४५] रक्षक और विद्वान् 'आञ्जन'

भृगुर्ऋषिः । आञ्जनं देवता । १, २ अनुष्टुभौ । ३–५ त्रिष्टुभः । ६–१० एकावसानाः महाबृहत्यः (६ विराड् । ७–१० निचृत) दशर्चं सूक्तम् ॥

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥

भा०—हे (आञ्जन) ज्ञानप्रकाशक ! विद्वन् ! जिस प्रकार (ऋणात्)

लिये ऋण में से (ऋणम्) ऋण को ऋणदाता के पास पुनः लौटा दिया जाता है, उसी प्रकार (कृत्याकृतः) घातक प्रयोग करने वाले के (कृत्याम्) हिंसा के प्रयोग को भी उसी के (गृहम्) घर (सं नयन्) पुनः लौटाता हुआ तू, (चक्षुर्मन्त्रस्य) आंख के इशारों से गुप्त मन्त्रणा करने वाले, तथा (दुहार्दः) दुष्ट हृदय के पुरुष की (पृष्टीः अपि) पीठ की पसुलियों को भी (शृण) तोड़ डाल ।

यद॒स्मासु॑ दुः॒ष्वप्न्यं॒ यद् गोषु॒ यच्च॑ नो गृ॒हे ।
अना॑मग॒स्तं च॑ दु॒र्हार्दः॑ प्रि॒यः प्रति॑ मुञ्चताम् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो (अस्मासु) हम में और (यत्) जो (गोषु) गौओं में और (यत् च) जो (नः) हमारे (गृहे) घर में (दुःष्वप्न्यम्) दुःखपूर्वक सोने आदि का कष्ट है, उसको वह पुरुष प्राप्त करे जो कि परमात्मा का नाम नहीं लेता और दुष्ट हृदय वालों का जो कि प्रिय है, मित्र है ।

अ॒पामूर्ज॒ ओज॑सो वावृ॒धान॑म॒ग्नेर्जा॒तमधि॑ जा॒तवे॑दसः ।
च॒तु॒र्वी॒रं प॑र्व॒तीयं॒ यदाञ्ज॑नं॒ दिशः॑ प्र॒दिशः॑ कर॒दिच्छि॒वास्ते॑ ॥३॥

भा०—(अपाम्) आप्त पुरुषों का (ऊर्जः) बलरूप (ओजसः) तेज की (वावृधानम्) निरन्तर वृद्धि करने वाला (जात-वेदसः) वेद के ज्ञानैश्वर्य से सम्पन्न (अग्नेः) आचार्य से (जातम्) प्रकट होने वाला, (चतुः-वीरम्) चार प्रकार के वीर्यों से युक्त, (पर्वतीयम्) तथा पूर्ण ज्ञान देने वाले गुरु से प्राप्त (यद्) जो (आञ्जनम्) ज्ञानप्रकाशक ब्रह्मज्ञान है वह (दिशः प्रदिशः) दिशाओं और उपदिशाओं को (ते) तेरे लिये (शिवाः) कल्याणकारी (करत्) करे ।

च॒तु॒र्वी॒रं ब॑ध्यत॒ आञ्ज॑नं ते॒ सर्वा॒ दिशो॒ अभ॑यास्ते भवन्तु ।
ध्रु॒वस्ति॑ष्ठासि सवि॒तेव॒ चार्य॑ इ॒मा विशो॑ अ॒भि ह॑रन्तु ते ब॒लिम् ४

भा०—(चतुर्वीरं) चारों दिशाओं में वीर्यवान् या चारों प्रकार के

वीर पुरुषों से युक्त (आञ्जनम्) तथा तेजस्वी पुरुष को, हे राजन् ! (ते) तेरे हित के लिये (बध्यते) नियुक्त किया जाता है, जिससे (ते) तेरे लिये (सर्वाः दिशः) समस्त दिशाएं (अभयाः) भय रहित (भवन्तु) हो जावें। (सविता इव) सूर्य के समान तेजस्वी और (आर्यः च) सर्वश्रेष्ठ स्वामी तू, (ध्रुवः) स्थिर होकर (तिष्ठासि) राज्यासन पर विराजमान हो और (इमाः विशः) ये समस्त प्रजाएं (ते) तेरे लिये (बलिम्) बलि अर्थात् कर (अभि हरन्तु) प्रदान करें।

'चतुर्वीरं'—चतुरंग सेना अर्थात् पदाति, अश्व, रथ और गज।

आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम्।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥५॥

भा०—(एकम्) एक वीर को (आ अक्ष्व) सर्वत्र विचारने की आज्ञा दे और (एकम्) एक को (मणिम्) सबका शिरोमणि (कृणुष्व) बना, (एकेन) एक के बल पर (स्नाहि) अपना राज्याभिषेक कर और (एषाम्) इनमें से (एकम्) एक का (पिब) पान या पालन कर अर्थात् प्रजारूप से उपयोग कर। (चतुर्वीरम्) चार वीरों से युक्त हमारा राष्ट्र (चतुर्भ्यः) चार प्रकार के कष्टों तथा (ग्राह्याः) पकड़ लेने वाली कैद आदि बन्धनों से (परि पातु) हमें सुरक्षित रक्खे।

अध्यात्म में—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार सामर्थ्यों से युक्त प्रभु 'आंजन' है। चारों में से धर्म से प्रसिद्धि प्राप्त करे, अर्थ से लक्ष्मी-संग्रह करे, मोक्ष से स्नान कर पवित्र हो और एक कामना भोग करे और चारों सामर्थ्य प्राप्त करके ग्राही अविद्या के चतुर्विध बन्धनों से मुक्त रहे।

अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस।
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निः) आचार्य या अग्रणी नेता या शत्रुसंतापक सेनापति या ज्ञानमय प्रभु, (अग्निना) अपने २ सामर्थ्य द्वारा, (प्राणाय) प्राण,

(अपानाय) अपान, (आयुषे) दीर्घ जीवन, (वर्चः) ब्रह्मवर्चस्, (ओजसे) ओज, (तेजसे) तेज, (स्वस्तये) सुखपूर्वक जीवन और (सु-भूतये) उत्तम विभूति के लिये (मा अवतु) मेरी रक्षा करे। (स्वाहा) यह हमारी उत्तम प्रार्थना सफल हो।

इन्द्रो॑ मेन्द्रि॒येणा॑वतु प्रा॒णाया॑० ॥ ७ ॥ सोमो॑ मा सौम्येना॑वतु० ॥ ८ ॥ भगो॑ मा भगे॑नावतु० ॥ ९ ॥ म॒रुतो॑ मा ग॒णैर॑वन्तु प्रा॒णा॒या॒पा॒नाया॒युषे॒ वर्च॑स॒ ओज॑से॒ तेज॑से॒ स्व॒स्तये॑ सुभू॒तये॒ स्वाहा॑ १०

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (इन्द्रियेण) अपने ऐश्वर्य से, (सोमः सौम्येन) सोम अपने सौम्यगुण से, (भगः) भग (भगेन) सौभाग्य गुण से, (मरुतः) मरुत् अपने (गणैः) गणों से, (प्राणाय, अपानाय, आयुषे, वर्चसे, ओजसे, तेजसे, स्वस्तये, सुभूतये) प्राण, अपान, आयु, वर्चस, ओज, तेज, सुखपूर्वक जीवन और उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (मा अवतु) मेरी रक्षा करें, (स्वाहा) यह हमारी उत्तम प्रार्थना है।

राष्ट्र में अग्नि = अग्रणी सेनापति। सोम = न्यायाधीश। भग = संग्राहक। मरुतः = सेना के सैनिक या प्रजागण। ईश्वर में भी ये सब गुण घटित हैं। इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[तत्र द्वादश सूक्तानि। पञ्चसप्ततिश्च ऋचः]

[४६] अस्तृत नाम वीर पुरुष की नियुक्ति

प्रजापतिर्ऋषिः। अस्तृतमणिर्देवता। १ पञ्चपदा मध्येज्योतिष्मती त्रिष्टुप्। २ षट्पदा भुरिक् शक्वरी। ३, ७ पञ्चपदे पथ्यापंक्ति। ४ चतुष्पदा। ५ पञ्चपदा अतिशक्वरी। ६ पञ्चपदा उष्णिग्गर्भा विराड् जगती। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र॒जाप॑तिष्ट्वा बध्नात् प्रथ॒मम॑स्तृ॒तं वी॒र्या॒य॒ कम्।
तत् ते॑ बध्ना॒म्यायु॑षे॒ वर्च॑स॒ ओज॑से च॒ बला॑य॒ चास्तृ॒तस्त्वा॒भि र॑क्षतु ॥ १ ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! (प्रजापतिः) प्रजा का पालक स्वामी (वीर्याय) वीर कर्म के लिये (प्रथमम्) सर्वश्रेष्ठ (अस्तृतम्) तथा शत्रु से न मारे जाने वाले (त्वा) तुझको (बध्नात्) बांधता, नियुक्त करता है। हे राजन् ! उस वीर पुरुष को मैं (ते) तेरी (आयुषे) आयु, (वर्चसे) वर्चस्, (ओजसे) ओज और (बलाय) बल की वृद्धि के लिये (बध्नामि) तेरे अधीन नियुक्त करता हूँ। वह (अस्तृतः) कभी न मरने वाला बलवान् पुरुष (त्वा अभि रक्षतु) तेरी रक्षा करे।

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः । इन्द्रइव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥

भा०—हे (अस्तृत) कभी न मारे जाने वाले पुरुष ! तू (ऊर्ध्वः) सबसे ऊपर रह कर (रक्षन्) इस राजा और राष्ट्र की रक्षा करता हुआ, (अप्रमादम्) बिना प्रमाद के (तिष्ठतु) रहे। (इमं त्वा) इस तुझको (यातु-धानाः) पीड़ादायी (पणयः) व्यवहार कुशल लोग (मा दभन्) विनष्ट न करें और (पृतन्यतः) सेना द्वारा आक्रमण करने वाले (दस्यून्) नाशकारी डाकू लोगों को (इन्द्रः इव) विद्युत् के समान या प्रबल वायु के समान (अव धूनुष्व) धुन डाल और तू (अस्तृतः) अखण्डित रह कर (सर्वान् शत्रून्) समस्त शत्रुओं को (वि सहस्व) खूब परास्त कर। हे राजन् ! (अस्तृतः त्वा अभि रक्षतु) वह 'अस्तृत' नाम का वीर योद्धा तेरी रक्षा करे।

शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ३ ॥

भा०—(शतं च न) सैकड़ों आदमी भी (प्रहरन्तः) प्रहार करते हुए और (निघ्नन्तः च) मारते हुए जिसको (यं न तस्तिरे) न मार सकें (तस्मिन्) ऐसे वीर्यवान् पुरुष के प्रति (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (चक्षुः)

निरीक्षण कार्य, (प्राणम्) अपनी प्राणरक्षा का कार्य और (बलम्) सेना समूह (परि अदत्त) सौंप देता है। हे राजन्! वह (अस्तृतः) अहिंसनीय पुरुष (त्वा अभि रक्षतु) तेरी रक्षा करे।

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् अधिराजा के (वर्मणा) रक्षाकारी कवच से (त्वा) तुझको (परि धापयामः) ढांपते हैं, (यः) जो (देवानाम्) राजाओं का भी (अधि-राजः) अधिराज अर्थात् राजाधिराज (बभूव) है। (देवाः) समस्त विजिगीषु राजा लोग (त्वा) तुझको (पुनः) फिर एक बार (प्र नयन्तु) अपना प्रमुख बनावें। हे राजाधिराज ! (अस्तृतः त्वा अभि रक्षतु) अखण्डित वीर पुरुष तेरी रक्षा करे।

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ५ ॥

भा०—(अस्मिन् मणौ) इस शिरोमणि 'अस्तृत' नामक पुरुष में (एकशतं वीर्याणि) एकसौ एक या सैकड़ों वीरकर्म करने के सामर्थ्य हैं और (अस्मिन् अस्तृते) इस अखण्ड वीर पुरुष में (सहस्रं प्राणाः) हजारों प्राणियों को जीवित रखने का सामर्थ्य है, या हजारों प्राणियों के बराबर कार्य करने का बल है। हे वीर पुरुष ! तू (व्याघ्रः) व्याघ्र के समान शूरवीर होकर (सर्वान् शत्रून्) समस्त शत्रुओं पर (अभि तिष्ठ) आक्रमण कर और (यः) जो (त्वा) तुझ पर (पृतन्यात्) सेना द्वारा आक्रमण करे (सः) वह (अधरः अस्तु) तेरे नीचे आ पड़े। ऐसे अवसर में (अस्तृतः त्वा अभि रक्षतु) अखण्डित उक्त वीर पुरुष तेरी रक्षा करे।

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ६ ॥

भा०—(घृतात्) तेज से (उल्लुसः) सम्पन्न, (पयस्वान्) वीर्यवान्, (सहस्र-प्राणः) सहस्र गुण जीवनशक्ति से युक्त, (शत-योनिः) सैकड़ों अपने आश्रय-स्थानों का स्वामी, (वयः-धाः) अन्न को अपने भण्डार में सञ्चित करके रखने वाला वा दीर्घायु, (शं-भूः च) शान्ति और कल्याण का उत्पादक, (मयः भूः च) सुख का उत्पादक, (उर्जस्वान् च) अन्नादि से सम्पन्न या बलयुक्त, (पयस्वान् च) और पुष्टिमान् होकर (अस्तृतः) अखण्ड वीर पुरुष 'अस्तृत' (त्वा अभि रक्षतु) तेरी रक्षा करे।

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु

भा०—(यथा) जिस प्रकार से हे राजन्! (त्वम्) तू (उत्तरः) सबसे उत्कृष्ट, (असपत्नः) शत्रुरहित, (सपत्नहा) और शत्रुओं का नाश करने वाला होकर (असत्) रहे और (सजातानाम्) समान बल वीर्य वाले समस्त राजाओं को (वशी) अपने वश में करने वाला (असम्) हो, (तथा) उस प्रकार से (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझे (करत्) बनावे और (अस्तृतः) वह अखण्ड वीर पुरुष (त्वा अभि रक्षतु) तेरी रक्षा करे।

'अस्तृत' अर्थात् अखण्डित अहिंसित इत्यादि विशेषण अध्यात्म में परब्रह्म पर भी लगते हैं। जैसे (अथर्व० ५। ९। ७) सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्। अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय॥

[४७] रात्रिरूप ब्रह्मशक्ति और राष्ट्रशक्ति

गोपथ ऋषिः। मन्त्रोक्ता रात्रिर्देवता। १ पथ्याबृहती। २ पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा परातिजगती। ६ पुरस्ताद् बृहती। ७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती। शेषा अनुष्टुभः। नवर्चं सूक्तम्॥

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः॥ १॥

भा०—हे (रात्रि) रात्रि ! समस्त प्राणियों को रमण करने हारी ! (पार्थिवं) पृथिवी (रजः) लोक (पितुः) पिता परमात्मा के बनाये (धामभिः) तेजों से (अप्रायि) पूर्ण है और तू (बृहती) बड़ी भारी शक्ति वाली होकर समस्त (दिवः) द्यौलोक या आकाश में वर्त्तमान (सदांसि) समस्त लोकों में (वि तिष्ठसे) विविध प्रकार से विराजमान है, (त्वेषम्) दीप्तिमान् चन्द्र तथा तारागणों से सुशोभित (तमः) अन्धकार (आ वर्तते) सर्वत्र व्याप रहा है।

समस्त प्राणियों को जीवन देने वाली समष्टि प्रकृति भी रात्रि है।

ब्रह्मणो वै रूपमहः। क्षत्रस्य रात्रिः। तै० ३।९।१४।३। इस प्रमाणों से प्रजा की पालक राज्यव्यवस्था का भी नाम 'रात्रि' है। उस पक्ष में हे रात्रि! राजशक्ते! पालक राजा के तेजों से यह पृथ्वीलोक व्याप्त है। तू महान् होकर (दिवः सदांसि) उच्च ज्ञान-प्रकाश के विद्वानों पर शासन करती है, तेरा चमकीला प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है।

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति। अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ॥ २ ॥

भा०—रात्रि का स्वरूप। (यस्याः) जिस अनन्त प्रकृति का (पारं न दृशे) पार दिखाई नहीं देता। (अस्याम्) इसमें (यत्) जो भी लोक (एजति) गति कर रहा है वह (विश्वम्) समस्त लोक (अस्याम्) ही (न योयुवत्) इससे पृथक् न रहता हुआ इसमें (नि विशते) आश्रय ले रहा है। (हे) हे पृथिवी के समान आश्रय देने वाली! हे (तमस्वति) तमोगुण से युक्त, हे (रात्रि) जीवों को अपने में रमण कराने वाली भोगदात्रि! हम (अरिष्टासः) बिना दुःख प्राप्त किये (ते) तेरे (पारम्) पार अर्थात् पालन करने वाले सामर्थ्य का (अशीमहि) भोग करें। हे (भद्रे) कल्याणकारिणी! सुखदायिनि! (ते पारम् अशीमहि) तेरे पालन सामर्थ्य को हम प्राप्त करें।

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव॑ः ।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (रात्रि) समस्त प्रजा को रमण कराने एवं सुख प्रदान करने वाली राजशक्ते ! (ते ये) तेरे जो (नृ-चक्षसः) मनुष्यों को देखने वाले और (द्रष्टारः) राज्यव्यवहारों को देखने वाले (नवतिः नव) ९९ (निन्यानवे) या (अष्टा अशीतिः) ८८, (उतो) या (सप्त सप्ततिः) ७७ (सन्ति) व्यक्ति हैं ।

षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि ।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४ ॥
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः ।
तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५ ॥

भा०—हे (रेवति) धनवति ! ऐश्वर्यवती राजशक्ते ! हे (सुम्नयि) प्रजा को सुख देनेहारी ! हे (वाजिनि) अन्न और बल से सम्पन्न ! हे (दिवः दुहितः) आदित्य की पुत्री उषा के समान प्रकाश करने वाली (दिवः दुहितः) राजसभे ! राजशक्ते ! (ते) तेरे जो प्रजा के व्यवहारों के देखने वाले संख्या में (षट च षष्टिः च) ६६ या (पञ्च पञ्चाशत् च) ५५, (चत्वारः चत्वारिंशत् च) या ४४, या (त्रयः त्रिंशत् च) ३३, या (द्वौ च विंशतिः च) २२, या (अवमाः) कम से कम (एकादशः) ग्यारह विद्वान् पुरुष हैं, (अद्य) निरन्तर (तेभिः पायुभिः) उन पालन करने वाले देशपालक पुरुषों द्वारा (पाहि नु) हमारा पालन कर ।

अर्थात् राजसभा में ९९, ८८, ७७, ६६, ५५, ४४, ३३, २२ या कम से कम ११ विद्वान् हों, उन पर राज्यकार्यों को देखने का भार हो । उन सभासदों का नाम 'नृचक्षा' है । इन्द्र की राजसभा में १००० ऋषि थे । इसीसे वह सहस्राक्ष कहाता था । अर्थशास्त्र कौटल्य ।

'योनिरेव वरुणः' । श० १२।९।१।१७॥ इस प्रमाण से 'अस्तृत' सूक्त मं० ६ में शतयोनि का तात्पर्य 'शतवरुण' समझना चाहिये अर्थात्

जिसके अधीन सौ प्रजा के स्वयंवृत नेता हों। वे प्रजा को संभालें, इसी से वे 'शतधाम' कहाते हैं। राजा 'सोम' के ७७ अशु देखो कां० १९। सू० ६।१६॥

रक्षा मार्किर्नो अघशंस ईशत् मा नो दुःशंस ईशत।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत॥ ६॥
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः।
परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु॥ ७॥

भा०—हे राजशक्ते! तू हमारा ऐसा (रक्ष) पालन कर कि (नः) हम पर (अघ-शंसः) हत्या और पाप कार्यों की चर्चा करने वाला दुष्ट पुरुष (मा ईशत) कभी अधिकार प्राप्त न करे। (दु-शंसः) दुष्ट कार्यों की प्रेरणा करने वाला पुरुष भी (नः) हम पर (मा ईशत) कभी प्रभुत्व न करे। (स्तेनः) चोर (नः) हमारी (गवां) गौओं पर (मा ईशत) अपना प्रभुत्व न करे। (वृकः) भेड़िये के समान छुपकर आक्रमण करने वाला चोरवृत्ति पुरुष हमारी (अवीनाम्) भेड़ों या रक्षा के पदों पर (मा ईशत) प्रभुत्व न करे। हे (भद्रे) सुखदायिनी राजव्यवस्थे! (तस्करः) अमुक अमुक नाना प्रकार के निन्द्य कार्य करने वाला चोर हमारे (अश्वानाम्) घोड़ों पर भी (मा ईशत) प्रभुत्व न जमावे और (यातु-धान्यः) प्रजाओं को पीड़ा देने वाली स्त्रियां हमारे (नृणाम्) नेता लोगों और मनुष्यों पर भी (मा ईशत) अपना अधिकार न जमा लें। (स्तेनः) परद्रव्य का अपहरण करने वाला और (तस्करः) छुपकर निन्द-नीय नाना कार्यों को करने वाला पुरुष (परमेभिः पथिभिः) दूर मार्गों से ही (धावतु) दौड़ जाय। (दत्वती रज्जुः) दांतों वाली रस्सी अर्थात् सांप या शस्त्रों वाली सेना (परेण) दूर मार्ग से ही (अर्षतु) चली जाय और (अघायुः) हम पर हत्या की चेष्टा करने वाला दुष्ट पुरुष भी (परेण अर्षतु) दूर ही रहे।

अधं रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ ८ ॥

भा०—हे (रात्रि) प्रजा को सुख और दुष्टों को दण्ड देने हारी राजशक्ते ! (अध) तू (तृष्ट-धूमम्) प्यास लगाने वाले फुंकारों को लेने वाले (अहिम्) सांप को और सांप के स्वभाव वाले पुरुष को जो कि (तृष्ट-धूमम्) गले को सुखा देने वाले धूम का दूसरों पर प्रयोग करे (अशीर्षाणम्) शिर से रहित (कृणु) कर दे और (वृकस्य) भेड़ियों के स्वभाव वालों के (हनू) जबाड़ों को (जम्भय) तोड़ डाल और (स्तेनम्) परद्रव्य पर डाका डालने वाले (तम्) उस डाकू को (द्रु पदे) खूंटे में बांध कर (जहि) दण्ड दे ।

त्वयिं रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यों नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (रात्रि) प्रजा को सुख देने वाली और दुष्टों को दण्ड देने वाली राजशक्ते ! हम (त्वयि) तेरे आधार पर (वसामसि) निवास करते हैं । हम निश्चिन्त होकर (स्वपिष्यामसि) सोते हैं और तू (जागृहि) हमारी रक्षा के लिये जाग । तू (नः) हमारी (गोभ्यः) गौओं (अश्वेभ्यः) अश्वों और (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये (शर्म यच्छ) सुखमय शरण प्रदान कर ।

[४८] राष्ट्रशक्ति का रूप 'रात्रि'

गोपथ ऋषिः । रात्रिर्देवता । १ त्रिपदा आर्षी गायत्री । २ त्रिपदा विराड् अनुष्टुप् । बृहती गर्भा अनुष्टुप् । ५ पथ्यापंक्तिः । शेषा अनुष्टुभः । षड्चं सूक्तम् ॥

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि ।
तानि ते परि दद्मसि ॥ १ ॥

भा०—(अथो) और (यानि) जिन पदार्थों का हम (चयामहे) संग्रह करते हैं, (यानि) जिन वस्तुओं को (अन्तः) भीतर (परि-नहि) सब ओर

से बन्द सन्दूक आदि में रखते हैं, (तानि) उन सब धन, वस्त्र आदि को (ते) तेरे ही अधीन (परि दध्मसि) हम धारण करते हैं।

रात्रि मातरुषसे नः परि देहि।
उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥ २ ॥

भा०—हे (मातः) माता के समान पालन करने वाली, (रात्रि) तथा प्रजा को सुख देने वाली रात्रि ! तू (नः) हमको (उषसे) उषा के प्रति (परि देहि) सौंप दे। अर्थात् हम सुख से रात में सोकर स्वस्थ रूप में प्रातःकाल उठें। राजा के पक्ष में—हे राजशक्ते ! तू (नः उषसे) हमें उषा अर्थात् दुष्टों का दहन करने वाली (पोलिस) पोलिस के अधीन कर दे या (उषसे) प्रकाशमयी विद्वत्-सभा के अधीन कर दे और जिस प्रकार उषा समस्त जीवों को दिन के अधीन कर देती है उसी प्रकार (उषाः) वह विद्वत्सभा (नः) हमें (अह्ने) न दण्ड देने योग्य ब्राह्मणगण के अधीन (परि ददातु) सौंप दे और हे (विभावरि) विशेष रूप से तेजस्विनि ! (अहः) दिन जिस प्रकार जीवों को रात्रि के अधीन कर देता है उसी प्रकार वह ब्राह्मणगण फिर (तुभ्यम्) तुझे राजशक्ति के अधीन सौंप दे।

यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम्।
यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ॥ ३॥

भा०—(यत् किं च) जो यह प्राणिवर्ग (पतयति) उड़ा करते हैं और (यत् किं च इदम्) जो (सरीसृपम्) सरकने वाले, सांप आदि प्राणी हैं और (यत् किं च) जो प्राणी (पर्वते) पर्वतों में (आ, असत्व) विद्यमान हैं, हे (रात्रि) राजशक्ते ! (तस्मात्) उन सब प्राणियों से (त्वम्) तू (नः पाहि) हमारी रक्षा कर।

सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४ ॥

भा०—(सा) वह तू (पश्चात् पाहि) पीछे से या पश्चिम दिशा से हमारी रक्षा कर। (सा) वह तू (पुरः) आगे से या पूर्व दिशा से हमारी रक्षा कर। (सा उत्तरात्) वह तू उत्तर दिशा से या बायीं ओर से या ऊपर से हमारी रक्षा कर। (उत अधरात्) और नीचे से या दायीं ओर से भी रक्षा कर। हे (विभावरि) विशेष तेज से सम्पन्न रात्रि! तू (नः) हमारी (गोपाय) रक्षा कर, (ते) तेरे हम (इह) यहां (स्तोतारः स्मसि) स्तुति करने वाले, यथार्थ गुण कहने वाले हैं।

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति
ते नः पशुषु जाग्रति ॥ ५॥

भा०—(ये) जो (रात्रिम्) सुखप्रद और दुष्टों को दण्ड देने वाली व्यवस्था को (अनुतिष्ठन्ति) ठीक प्रकार से चलाते हैं और (ये) जो (भूतेषु) भूतों और प्राणियों में (जाग्रति) सदा सावधान रहते हैं और (ये) जो (सर्वान्) समस्त (पशून्) पशुओं की (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं, (ते) वे व्यवस्थापक पुरुष (नः आत्मसु) हममें सावधान हो। (जाग्रति) जागते हैं और (ते) वे (नः) हमारे (पशुषु) पशुओं के रक्षा-कार्य में भी (जाग्रति) सावधान होकर रहते हैं।

वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥ ६॥

भा०—हे (रात्रि) समस्त जगत् को अपने भीतर लेने वाली सर्वोपरि शक्ते! (ते नाम अहं वेद) तेरा नाम मैं जानता हूँ कि तू (घृताची नाम) 'घृताची' नामक (असि) है। (भरद्वाजः) भरद्वाज अर्थात् अन्न और बलों को धारण करने वाला (तां त्वाम्) उस तुझको (वेद) जानता या प्राप्त करता है। (सः) वह (नः) हमारे (वित्ते) समस्त प्राप्त करने योग्य पदार्थों पर (जाग्रति) जागती है, सावधान होकर रहती है।

'घृताची'—घृ क्षरणदीप्त्योः (चुरादिः) गृ घृ से सेचने (भ्वादिः) एताभ्यामौणादिकः क्तः । जिघर्त्ति सञ्ज्वलति दीप्यते वा तद् घृतम् । उदकं सर्पिः प्रदीप्त वा । इति दया० । अर्थात् घृत जल है। इससे मेघ पृथ्वी को सींचता है। या घृत तेज है। उसके तत्व को 'भरद्वाज' अर्थात् अन्नोत्पादक विद्वान् जानते हैं। अध्यात्म में—मनो वै भरद्वाज ऋषिः। अन्नं वाजः। ये वै मनो बिभर्ति सो अन्नं वाजं बिभर्ति। तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः। मन भरद्वाज है। अन्न वाज है। वही शरीर में रहकर समस्त प्राणों को धारण करता है। वह आत्मा की घृताची शक्ति को जानता है।

[४९] 'रात्रि' परम शक्ति का वर्णन

गोपथो भरद्वाजश्च ऋषिः। रात्रिर्देवता। १–५,८ त्रिष्टुभः। ६ आस्तार-पंक्तिः। ७ पथ्यापंक्तिः। १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती। दशर्चं सूक्तम् ॥

इ॒षि॒रा योषा॑ युव॒तिर्दमू॑ना॒ रात्री॑ दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्भग॑स्य।
अ॒श्व॒क्षु॒भा सु॒हवा॒ संभृ॑तश्री॒रा प॑प्रौ॒ द्यावा॑पृथि॒वी म॑हि॒त्वा ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (युवतीः) युवति स्त्री (सवितुः) पुत्रोत्पादन करने में समर्थ पुरुष की (इषिरा) इच्छा करने वाली होती है और (दमूनाः) उसी के अधीन अपने चित्त को वश करके रहती है, उसी प्रकार (रात्रिः) समस्त जगत् को व्यक्त रूप प्रदान करने वाली प्रकृति-शक्ति (भगस्य) सबके भजन करने योग्य, सदैश्वर्यवान् (सवितुः) सर्वोत्पादक, सर्व जगत् के सञ्चालक, (देवस्य) सर्व प्रकाशमान, सर्वज्ञान-प्रद परमेश्वर के लिये (इषिरा) उसकी इच्छाशक्ति द्वारा प्रेरित करने योग्य होती है। अर्थात् ईश्वर अपनी कामना या इच्छा से प्रकृति को जगत्-सृष्टि के लिये प्रेरित करता है। प्रकृति की अविकृत अवस्था अर्थात् जब जगत् अव्यक्तरूप में प्रकृति में लीन रहता है वेदोक्त 'रात्रि' है। उस दशा में विद्यमान प्रकृति में ईश्वर की प्रेरणा से सृष्टि का उत्पादक क्षोभ

उत्पन्न होता है। वह स्वयं उस परमात्मा की (योषा) स्त्री के समान नित्य निरन्तर संग करने वाली अर्थात् ईश्वर के सम्पर्क से उसकी शक्ति तेज या वीर्य से गर्भित होकर समस्त सृष्टि को उत्पन्न करने वाली (युवतिः) सदा जवान (दमूनाः) और स्वयं दान्तमना अर्थात् मनन या चेतना से रहित केवल परमात्मा के ही संकल्प से चलने वाली है। वही प्रकृति (अश्वक्षभा = अशु-अक्ष-भा) अति शीघ्र व्यापकशक्ति से सृष्टि उत्पन्न करने में समर्थ हुई। (सु-हवा) उत्तम रीति से पति की आज्ञा में रहने वाली स्त्री के समान वह भी उत्तम रीति से उसके वशीभूत, (संभृतश्रीः) समस्त शोभाओं को धारण करने वाली, अथवा (संहृत-श्रीः) एकत्र प्राप्त हुए समस्त विकृत पदार्थों, पञ्चभूतों का आश्रय स्थान है। वह प्रकृति अपने (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (द्यावापृथिवी आ पप्रौ) द्यौ और पृथिवी को व्याप रही है।

राजशक्ति के पक्ष में—वह (दमूनाः) दमनकारिणी, (देवस्य सवितुः भगस्य) सबके सञ्चालक, ऐश्वर्यवान् राजा की निरन्तर बलवती इच्छा के अनुकूल प्रेरित, (अशु-अक्ष-भा) शीघ्रकारी तथा चतुर इन्द्रियों के समान उसके साथ जुड़े अध्यक्ष पुरुषों से शोभामान, (सु-हवा) उत्तम ज्ञान से पूर्ण, (संभृत श्रीः) अपनी महिमा से (द्यावापृथिवी आ पप्रौ) राजा और प्रजा दोनों को पूर्ण करती है। अर्थात् दोनों को सम्पन्न, समृद्ध करती है।

अति॒ विश्वा॑न्यरुहद् ग॒म्भी॒रो वर्षि॑ष्ठमरुहन्त॒ श्रवि॑ष्ठाः।
उ॒श॒ती रा॒काऽनु॑ सा भ॒द्राभि ति॑ष्ठत मि॒त्र इ॑व स्व॒धाभिः॑ ॥ २॥

भा०—(गम्भीरः) गम्भीर पुरुष ही (अति [अभि, अधि] अरुहत्) सब पर अधिष्ठातृ रूप से विराजता है। (श्रविष्ठाः) और विश्रुत योगी पुरुष (वर्षिष्ठम्) सबसे महान्, सबके प्रति आनन्दवर्षण करने हारे परमेश्वर तक (अरुहन्त) पहुंचते हैं। (उशती) पति की कामना करने वाली, (भद्रा) अतिसुखकारिणी, (अनु) पति की वशवर्तिनी स्त्री (स्वधाभिः) गृहस्थ को धारण करने की शक्तियों सहित होकर जिस

प्रकार प्रियतम के पास आ जाती है उसी प्रकार (मित्र इव) परमेश्वरी शक्ति मित्र के समान होकर (अभि तिष्ठते) योगी के सन्मुख आ उपस्थित होती है।

राजशक्ति के पक्ष में—गम्भीर राजा सबके ऊपर शासक हो, विद्वान् लोग उसके आश्रय पर रहें। वशकारिणी राजशक्ति अपने धारण सामर्थ्यों से राजा-प्रजा के मित्र के समान प्रकट होती है।

वर्य्ये वन्द्ये सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम्।
अस्माँस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥३॥

भा०—हे (वर्ये) वरण करने योग्य! हे (वन्दे) स्तुति करने योग्य हे (सु-भगे) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न! हे (सु जाते) शुभरूपे! (रात्रि) राजशक्ते! और ईश्वरीय शक्ते! (आजगन्) तू निरन्तर आती है। मैं (इह) इस लोक में (सु मनाः) उत्तम चित्त वाला होकर (स्याम्) रहूँ। तू (गव्यानि) मनुष्यों से उत्पादित शिल्प द्वारा उत्पन्न पदार्थों और पशुओं से प्राप्त दुग्ध, घृत आदि पदार्थों (पुष्ट्या) की पुष्टि के द्वारा (त्रायस्व) हमारा पालन कर।

सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥४॥

भा०—(उशती रात्री) सबको वश करने वाली राजशक्ति (सिंहस्य) सिंह के, (पींपस्य [पिशस्य, पिषस्य, पीपस्य]) सबको चूर्ण कर देने वाले हाथी के और (व्याघ्रस्य) व्याघ्र तथा (द्वीपिनः) चीते के (वर्चः) तेज को (आददे) ग्रहण कर लेती है और वही (वि-भाती) नाना प्रकार से प्रकाशित होने वाली राजशक्ति इन्द्रियरूपी अश्वों को (ब्रध्नम्) बांधने या उन्हें संयम में रखने का साधन है। (पुरुषस्य) वही देहपुरी में निवास करने वाले आत्मा की (मायुम्) वाक्शक्ति का भी निर्माण (कृणुषे) करती है और राष्ट्र में (पुरु रूपाणि कृणुषे) नाना रूपों को रचती है।

अर्थात् राजशक्ति शिक्षा का प्रबन्ध करती और नाना प्रकार के (रूपाणि) शिल्पसाध्य पदार्थों को उत्पन्न करती है।

शि॒वां रात्रि॑मनु॒सूर्यं॑ च हि॒मस्य॑ मा॒ता सु॒हवा॑ नो अस्तु।
अ॒स्य स्तोम॑स्य सुभगे॒ नि बो॑ध॒ येन॑ त्वा॒ वन्दे॒ विश्वा॑सु दि॒क्षु ॥५॥

भा०—हे (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्यवति ! तू (हिमस्य) शत्रुओं का हनन करने वाले राजा की (माता) माता के समान राजा को बनाने वाली हो। तू (नः) हमें (सु-हवा) ज्ञान-उपदेश देने में समर्थ (अस्तु) हो। तू (अस्य स्तोमस्य) इस 'स्तोम' अर्थात् वीर पुरुषों के उत्पन्न करने के कार्य को (नि बोध) भली प्रकार जान। (येन) जिससे कि हम (विश्वासु) समस्त (दिक्षु) दिशाओं में (त्वा) तुझ (शिवाम्) कल्याण-कारिणी (रात्रिम्) राज्यशक्ति के और (अनु सूर्यम्) उसके अनुकूल अनुगमन करने वाले सूर्य के समान उदयशील तेजस्वी राजा के (वन्दे) गुणों का और यश का गान करें।

१—'हिमस्य'—हन्तेर्हि च। १। २॥

२—वीर्यं वै स्तोमाः। श० ५। ४। वीरजननं वै स्तोमाः। ता० २१। ९। ३॥ राजा का बल या सेनाबल स्तोम कहाता है।

स्तोम॑स्य नो विभावरि॒ रात्रि॒ राजे॑व जोषसे।
असा॑म॒ सर्व॑वीरा॒ भवा॑म॒ सर्व॑वेदसो॒ व्यु॒च्छन्ती॒रनू॒षसः॑ ॥ ६॥

भा०—हे (विभावरि) तेजस्विनि ! (रात्रि) सुखदात्रि ! राजशक्ते ! तू (राजा इव) राजा के समान (नः) हमारे (स्तोमस्य) सामूहिक वीर्य और वीरसमूहों को (जोषसे) अपने प्रयोग में लाती है। इसलिये (व्युच्छन्ती उषसः अनु) निरन्तर प्रकट होने वाली उषाओं अर्थात् शत्रु-दाहक सेनाओं के रूप में हम लोग सदा (सर्व-वीराः) सर्व प्रकार से वीर (असाम) होकर रहें और (सर्व-वेदसः) समस्त ऐश्वर्यों से युक्त (भवाम) हों।

शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥७॥

भा०—हे राजशक्ते ! तू (शम्या ह नाम) शत्रुओं को शमन करने से 'शम्या' नाम (दधिषे) धारण करती है। (ये) जो पुरुष (मम) मेरे (धना) धनों को (दिप्सन्ति) बलात् छीन लेना चाहते हैं (रात्रि) उन दुष्टों को दण्ड देने हारी (असु-तपा) और शत्रुओं के प्राणों को संतप्त करने वाली होकर (इहि) तू मुझे प्राप्त हो, (यत्) जिससे (स्तेनः) चोर या लुटेरा पुरुष (न विद्यते) राष्ट्र में न रह जाय और (यत्) जिससे (पुनः) फिर दुबारा चोर (न विद्यते) न पैदा हो।

भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥८॥

भा०—हे (रात्रि) राजशक्ते ! तू (भद्रा असि) कल्याण और सुख को देने वाली है। तू (विष्टः) परसे हुए (चमसः न) थाल के समान अन्न से भरपूर है। तू (युवतिः) शक्तिशालिनी होकर (विश्वम्) समस्त (गोरूपम्) पृथ्वी का रूप (बिभर्षि) धारण करती है। (उशती) सबको वश करने हारी और (चक्षुष्मती) सब पर अपनी आंख रखने वाली, तथा (दिव्या) दिव्य गुण वाली होकर (त्वम्) तू (मे) मेरी (वपूंषि) प्रजाओं के शरीरों को (क्षाम्) और उनकी निवासभूत इस पृथिवी को (न प्रति अमुक्थाः) कभी त्याग मत कर।

यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (अद्य) आज (स्तेनः) चोर और डाकू, तथा (अघ-युः) हत्या करने वाला (रिपुः) शत्रु (आ अयति) आता है, (तस्य) उसके (प्रति-इत्य) प्रति आकर या उसे पहचान कर (रात्री) राजशक्ति उनकी (ग्रीवाः) गर्दनों को और (शिरः) शिरों को (प्र हनत्) तोड़ दे, कुचल दे।

प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥ १० ॥

भा०—वह राजशक्ति उस शत्रु के (पादौ प्र हनत्) दोनों पैर तोड़ डाले (यथा) जिससे वह (न आ-अयति) आगे न बढ़ सके। (हस्तौ प्र हनत) उसके दोनों हाथ तोड़ डाले (यथा) जिससे वह फिर (न अशिषत्) हिंसा या हत्या का कार्य न कर सके। (यः) जो (मलिम्लुः) प्रजा में मारामारी करने वाला, हत्यारा, चोर, डाकू हमारे (उप-आयति) समीप आवे (सः) वह (सम्-पिष्टः) खूब पीसा जाकर, खूब दण्डित होकर नाश कर दिया जाय। (अप-अयति) ऐसा नष्ट किया जाय कि (सु-अप-अयति) अच्छी प्रकार से नष्ट हो जावे और वह (शुष्के स्थाणौ) सूखे ठूंट पर या बल्ले टांग कर या उससे बांधकर (अप-अयति) मारा जाय ।

[५०] 'रात्रि' रूप राजशक्ति से दुष्ट दमन करने की प्रार्थना

गोपथभरद्वाजावृषी । रात्रिर्देवता । अनुष्टुभः सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ १ ॥

भा०—(अध) और हे (रात्रि) राजशक्ते ! तू (अहिम्) कुटिल-गामी अथवा खूनी पुरुष को (तृष्ट-धूमम्) प्यास लगाने वाले धूम से (कृणु) दण्डित कर और उसको (अशीर्षाणम्) शिर से रहित कर। (वृकस्य) जंगल में घेर कर मारने वाले डाकू, चोर लोगों को (अक्ष्यौ) दोनों आंखों को (निजह्याः) सर्वथा निकलवा डाल। (तेन) और उसी अपराध के कारण (तम्) उसको (द्रुपदे) वृक्ष के बने खूंटे के साथ बांधकर (जहि) दण्ड दे ।

ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ २ ॥

एक हृदय से (हृदयं परि) दूसरे हृदय के प्रति हुआ करता है। (अमीषाम्) इन प्रजाजनों का जो संकल्प है (माम्) मुझे वह (उप आ एतु) प्राप्त हो। अर्थात् हम सबके संकल्प परस्पर अनुकूल हों।

यत्कांम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥५॥

भा०—हे (काम) संकल्पमय प्रभो! हम (यत्) जिस पदार्थ की कामना करते हुए (ते) तेरी (इदं हविः) यह स्तुति या साधना (कृण्मसि) करते हैं, (नः) हमारा (तत् सर्वम्) वह सब (समृध्यताम्) खूब सफल हो। (अथ) और (एतस्य) इस (हविषः) स्तुति व साधना को तू (वीहि) स्वीकार कर। (स्वाहा) यह हमारी प्रार्थना स्वीकृत हो।

[५३] 'काल' परमेश्वर

भृगुर्ऋषिः। सर्वात्मकः कालो देवता। १—४ त्रिष्टुभः। ५ निचृत् पुरस्ताद् बृहती। दशर्चं सूक्तम् ॥

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१॥

भा०—(अश्व) जिस प्रकार घोड़ा रथ को खेंच ले जाता है उसी प्रकार (कालः) सबको खींच कर ले जा रहा है। (सप्त-रश्मिः) वह काल महत्, अहंकार, पञ्च मात्रा रूपी सात रासों वाला, (सहस्राक्षः) हजारों का क्षय करने वाला (भूरि रेताः) और बहुत बल से युक्त है। (तम्) उस पर (कवयः) क्रान्तदर्शी (विपश्चितः) तथा नाना कर्मों और ज्ञान का संचय करने हारे विद्वान् (आ रोहन्ति) चढ़ते हैं, उसको काबू कर लेते हैं। (तस्य) उसके ही ये (विश्वा भुवना) समस्त लोक (चक्राः) उसके महान् रथ में लगे चक्रों के समान गति करते हैं। इससे समस्त लोकों की वृत्ताकार गति और सबकी गोलाकार आकृति का भी वर्णन हो गया।

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥२॥

भा०—(एषः कालः) वह काल (सप्त) सात ग्रहरूपी या ऋतुरूपी (चक्रान्) चक्रों को (वहति) प्रेरित करता है। (यस्य) उसकी (सप्त नाभीः) सात नाभियां हैं। उसकी धुरा (अमृतम्) कभी नष्ट होने वाली नहीं है। (सः) वह सर्व संहारकारी (इमा) इन (विश्वा) समस्त (भुवनानि) भुवनों को (अञ्जत्) चलाता है। (ईयते) वह क्रीड़ा करता हुआ गति कर रहा है।

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥३॥

भा०—(काले अधि) काल में (पूर्णः) यह सम्पूर्ण (कुम्भः) आकाश-मय ब्रह्माण्ड (आहितः) रक्खा है। (तम्) उसको हम (सन्तः) सज्जन पुरुष (बहुधा) बहुत रूपों में (पश्यामः) देखते हैं। (सः) वह (इमा) इन (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवनों, लोकों में (प्रत्यङ्) व्यापक है। वह (परमे) सर्वोच्च (व्योमन्) आकाश में भी विद्यमान है। (तम्) उसको (कालम् आहुः) 'काल' नाम से विद्वान् लोग कहते हैं।

स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥४॥

भा०—(सः एव) वह काल ही (भुवनानि) समस्त लोकों को (सम् आ अभरत्) भली प्रकार पालन पोषण करता या उत्पन्न करता है और (सः एव) वह ही (भुवनानि) समस्त उत्पन्न लोकों में (परि ऐत्) व्यापक है। वह (एषाम्) इन लोकों का (पिता सन्) पिता होकर (पुत्रः) पुत्र भी (अभवत्) है। सूर्य चन्द्र आदि की गति से दिन, मास, ऋतु, पक्ष, संवत्सर आदि उत्पन्न होते हैं, इस नाते वह काल इन लोकों का 'पुत्र' भी है। (तस्मात् वै) निश्चय ही उस काल से (अन्यत्)

दूसरा (परम्) उत्कृष्ट (तेजः) सामर्थ्य और तेज (न अस्ति) नहीं है क्योंकि परमात्मा भी काल के अनुसार ही सर्जन और प्रलय करता है।

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥

भा०—(कालः) काल (अमूम्) उस (दिवम्) द्यौलोक और उसमें विद्यमान समस्त लोकों को (अजनयत्) उत्पन्न करता है। (इमाः पृथिवीः) इन पृथिवियों को (उत) भी (कालः) काल (अजनयत्) उत्पन्न करता है। (भूतम्) अतीत और (भव्यम् च) भविष्यत् में उत्पन्न होने वाला जगत् दोनों (काले ह) काल में ही विद्यमान रहते हैं। (इषितम्) और गतिमान् पदार्थ उसी काल द्वारा प्रेरित होकर (वि तिष्ठते) विविध दशाओं में स्थित हैं।

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥ ६ ॥

भा०—(कालः) काल (भूतिम्) समस्त जगत् की सत्ता को या समस्त जगत् की विभूति को (असृजत) बनाता है। (सूर्यः) सूर्य (काले) काल के अधीन होकर (तपति) तपता है (विश्वा भूतानि) समस्त प्राणीगण (काले ह) निश्चय से 'काल' के ही अधीन हैं। (चक्षुः) देखने वाला इन्द्रिय चक्षु भी उस (काले) काल के अधीन होकर (वि पश्यति) विविध पदार्थों को देखता है।

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥

भा०—(काले) काल में मनन क्रियाएं होती हैं। (काले) काल में (प्राणः) समष्टि प्राण विद्यमान हैं। (नाम) पदार्थों के नाम भी (काले) काल में ही (सम् आहितम्) विद्यमान हैं (आगतेन) अनुकूल रूप से आये हुए (कालेन) काल से ही (सर्वाः इमाः) ये समस्त (प्रजाः) प्रजाएं (नन्दन्ति) समृद्ध और आनन्द प्रसन्न होती हैं।

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥ ८ ॥

भा०—(काले) काल में ही (तपः) तप विद्यमान है। (काले) ज्येष्ठता तथा कनिष्ठता काल में आश्रित है। (ब्रह्म) वेदज्ञान या महान् ब्रह्माण्ड (काले) उस काल में ही (समाहितम्) विद्यमान है। (कालः) काल (ह) ही (सर्वस्य ईश्वरः) सबका मालिक है। (यः) जो 'काल' (प्रजापतेः) प्रजा के पालक राजाओं का भी (पिता आसीत्) पिता है।

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९ ॥

भा०—यह जगत् (तेन) उसने (इषितम्) चला रक्खा है, (तेन) उस द्वारा (जातम्) उत्पन्न हुआ है, (तस्मिन्) उस काल के आश्रय पर ही (प्रतिष्ठितम्) प्रतिष्ठित है। (कालः ह) काल ही निश्चय से (ब्रह्म) बृहत् स्वरूप होकर (परमेष्ठिनम्) परम सत्य पर आश्रित समस्त ब्रह्माण्ड को (बिभर्ति) धारण कर रहा है।

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥ १० ॥

भा०—(कालः) काल ही (प्रजाः असृजत) प्रजाओं का सर्जन करता है। (कालः) काल (अग्रे) सृष्टि के आदि में (प्रजापतिम्) प्रजा की पालक शक्तियों को (असृजत) उत्पन्न करता है। (स्वयंम्भूः) स्वयं अपनी शक्ति से विद्यमान, (कश्यपः) सबका द्रष्टा सूर्य (कालात्) काल से उत्पन्न हुआ और (तपः) सूर्यों में विद्यमान तपनशक्ति (कालात् अजायत) काल से उत्पन्न होती हैं।

[५४] कालरूप परम शक्ति

भृगुर्ऋषिः । कालो देवता । २ त्रिपदा गायत्री । ५ त्र्यवसाना षट्पदा विराड् अष्टिः । शेषा अनुष्टुभः । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भा०—हे संयमी पुरुष ! तू (यमस्य) सर्वनियन्ता प्रभु के (लोकात्) सहवास से (अधि आ बभूविथ) प्राणों पर अधिष्ठातारूप में प्रकट हुआ है। तू (धीरः) धीर होकर (प्रमदा) प्रसन्नता से (मर्त्यान्) सब मनुष्यों को (प्र युनक्षि) उत्तम मार्ग में लगा। तू विद्वान् (एकाकिना) अकेले रहने वाले प्रभु के साथ एक शरीर रथ द्वारा विचर रहा है। और उस प्राणदाता की गोद में रहकर दिव्य स्वप्नों का निर्माण करता है।

बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥ २ ॥

भा०—हे दिव्य आध्यात्मक स्वप्न ! मृत्यु की रात्रि से पूर्व किसी सौभाग्यशाली दिन में विश्व को चयन करने वाला प्रभु तेरा बन्धु होकर तुझे (अहनि) कृपा दृष्टि से देखता है (ततः) तब से हे स्वप्न तू (अधि आबभूविथ) शरीर में प्रकट होता है। तेरे उस स्वरूप को वैद्य नहीं समझ पाते।

बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन्।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वऽरानशानाः ॥३॥

भा०—(बृहद्-गावा) बड़ी गति देने वाला यह आध्यात्मिक स्वप्न (असुरेभ्यः अधि) प्राणमयी शक्तियों से हटकर (देवान्) दिव्य शक्तियों वालों को (महिमानम् इच्छन्) प्राप्त होता है और उनकी महिमा को बढ़ाता है। वे (त्रयस्त्रिंशासः) ३३ दिव्य शक्तियां इस (स्वप्नाय) दिव्य स्वप्न के प्रति (अधिपत्यम्) आत्मसमर्पण (आदधुः) कर देती हैं और (स्वः आनाशानः) स्वर्गीय सुख का भोग करने लगती हैं।

नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम्।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥ ४॥

भा०—(पितरः) पितृगण (उत) और (देवाः) देवगण भी (एतां

न विदुः) इस दिव्य स्वप्न के स्वरूप को नहीं जानते (येषाम्) जो कि जल्प वाद के बखेड़े में विचरा करते हैं। वरुण परमात्मा के अनुशासन में रहने वाले तेजस्वी गुरु लोग परम आप्त और संसार सागर से तरे हुए व्यक्ति में इस दिव्य-स्वप्न का आधान करते हैं। (आदित्यासः नरः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (वरुणेन अनुशिष्टाः) सर्वश्रेष्ठ परमात्मा से उपदेश प्राप्त करके (स्वप्नम्) आलस्य-प्रमादयुक्त स्वप्न को (आप्त्ये त्रिते) आप्तों के हितकारी त्रित, तीनों वेदों के ज्ञाता पुरुष पर, या आप्त = आत्मा के हितकारी (त्रित) ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन सब पर वश करने वाले प्राण में (आदधुः) धारण करते हैं। अर्थात् प्राण पर वश करने से स्वप्न वृत्ति पर भी वशीकार हो जाता हैं।

यस्य॑ क्रूरमभ॑जन्त दुष्कृतोऽस्व॑प्नेन सुकृत॑ः पुण्य॒मायु॑ः ।
स्वर्मदसि पर॒मेण॑ ब॒न्धुना॑ त॒प्यमा॑नस्य॒ मन॒सोऽधि॑ जज्ञिषे ॥५॥

भा०—(दुःकृतः) दुष्ट काम करने वाले पापभागी लोग (यस्य) स्वप्न के (क्रूरम्) क्रूर स्वरूप को अर्थात् प्राकृतिक स्वरूप को (अभजन्त) भोगते हैं और (सुकृतः) उत्तम काम करने वाले पुण्यात्मा लोग (अस्वप्नेन) ऐन्द्रियक स्वप्नों के त्याग द्वारा (पुण्यम् आयुः अभजन्त) पुण्य आयु प्राप्त करते हैं। हे दिव्य स्वप्न! तू (तप्यमानस्य मनसः) तपस्या करने वाले के मन से जन्म लेता है और परम बन्धु परमात्मा के साथ सुख में मस्त हो जाता है।

वि॒द्म ते॒ सर्वा॑ः परि॒जाः पु॒रस्ता॑द् वि॒द्म स्व॑प्न॒ यो अ॑धि॒पा इ॒हा ते॑ ।
य॒श॒स्विनो॑ नो॒ यश॑से॒ह पा॑ह्या॒राद् द्वि॒षेभि॒रप॑ याहि दू॒रम् ॥ ६ ॥

भा०—(स्वप्न) हे आध्यात्मिक स्वप्न! (ते) तेरी (सर्वाः) सब (परिजाः) साथ २ उत्पन्न होने वाली प्रवृत्तियों को हम (पुरस्तात्) पहले ही से (विद्म) जानते हैं। (यः) और जो (ते) तेरा (अधिपाः) अधिष्ठाता तुझे अपने वश में रखने वाला है उसको भी (विद्म) हम

जानते हैं। (इह) इस लोक में (नः) हम (यशस्विनः) यशस्वी पुरुषों का (यशसा) यश द्वारा (पाहि) पालन कर और (द्विषेभिः) द्वेष भावनाओं से तू परे रह।

[५७] आलस्य प्रमाद को दूर करने का उपाय

यम ऋषिः। दुःस्वप्ननाशनो देवता। १ अनुष्टुप्। २, ३ त्र्यवसाना चतुष्पदा त्रिष्टुप्। ४ उष्णिग्। बृहतीगर्भा विराड् शक्वरी च। ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा परशक्वराति जगती। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि॥ १॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (कलाम्) एक २ कला करके चन्द्र नामशेष हो जाता है और जिस प्रकार एक २ पैर रखते २ मार्ग तय हो जाता है और (यथा ऋणम्) जिस प्रकार थोड़ा २ करके ऋण (संनयन्ति) चुक जाता है, (एवा) उसी प्रकार हम आलस्य त्याग दें। आलस्य को अप्रिय पक्ष को जान कर (संनयामसि) उसे हम त्याग दें।

सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः।
समस्मासु यद् दुष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम॥ २॥

भा०—जैसे (राजानः) राजा लोग (सम् अगु) युद्धकाल में एक एक करके बहुत से एकत्र हो जाते हैं, जैसे (ऋणानि) ऋण जुड़ते २ (सम् अगुः) बहुत सा एकत्र हो जाता है, (कुष्ठाः) जैसे कुत्सित त्वचा के रोग जमा होते २ (सम् अगुः) एकत्र हो जाते हैं और जिस प्रकार चन्द्र में (कलाः) कलाएं जुड़ती २ (सम् अगुः) एकत्र हो जाती हैं, उसी प्रकार (यद्) जो (दुः-स्वप्न्यम्) दुःखदायी स्वप्न, निद्रा या आलस्य की मात्रा है वह भी क्रम से (अस्मासु) हममें (सम्) एकत्र होती जाती है। हम उस (दुःस्वप्न्यम्) दुःखदायी स्वप्न या आलस्य को (द्विषते) द्वेष पक्ष का जान कर उसे (निः सुवाम) त्याग दें।

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः ।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३ ॥

भा०—हे निद्रा प्रमाद ! तू (देवनाम्) विषयों में खेलने वाली इन्द्रियों की (पत्नीनाम्) शक्तियों या वृत्तियों (गर्भ [गर्भः]) उत्पन्न होता है और तू (यमस्य) बन्धनकारी प्रभाव का (कर[ण] उत्पन्न करने वाला है । हे स्वप्न ! (यः) जो तेरा रूप (भद्रः) कल्याण और सुखकारी है (सः) उस रूप में तू (मम) मुझे प्राप्त हो और (यः पापः) जो पाप-जनक रूप है (तत्) उसको (द्विषते) द्वेष पक्ष में हम रखते हैं । (प्र हिण्मः) परे कर दें । हे स्वप्न ! तू हमें प्राप्त न हो । (तृष्टानाम्) तू विषय-तृष्णालुओं को प्राप्त होता है, (कृष्ण-शकुनैः) और काले तथा शक्तिशाली पाप का (मुखम्) मुख अर्थात् प्रवर्त्तक है ।

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम् । अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप ॥ ४ ॥

भा०—हे आध्यात्मिक स्वप्न ! (तम्) उस (त्वा) तुझको हम (तथा) भली प्रकार (सं विद्म) जान गये हैं । इसलिये (अश्वः इव) जिस प्रकार घोड़ा (कायम्) अपने शरीर को कंपाकर धूल झाड़ देता है और (अश्वः इव) जिस प्रकार घोड़ा (नीनाहम्) अपने पर बंधी काठी आदि को कंपा कर गिरा देता है, उसी प्रकार तू उन दुर्भावों को हमसे दूर कर (वप) जो कि हमारे नहीं हैं, देवों को कष्ट देने वाले हैं और हिंसाकारी हैं ।

यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि ।
दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ ५ ॥

भा०—(यद्) जो (अस्मासु) हममें, (यत्) जो हमारे (गोषु) गौ आदि पशुओं या इन्द्रियों में और (यत् च नः गृहे) जो हमारे घर या देह में (दुःष्वप्न्यम्) दुःख पूर्वक शयन आदि का कष्ट है, (तत्) उसको (अनास्माकः) हमारा शत्रु (देव-पीयुः) जो कि विद्वानों का पीड़क (पियारुः) और हिंसक पुरुष है (निष्कम् इव) स्वर्ण के आभूषण के समान (प्रति मुञ्चताम्) धारण करे। हे स्वप्न! आलस्य! तू (अस्मा-कम्) हमारे (ततः परि) गृह आदि से (नवारत्नीन्) नौ हाथों परे (अप-मयाः) हट जा। हम अपने (दुःष्वप्न्यम्) दुःखदायी आलस्य, प्रमाद और दुःखपूर्वक निद्रा आदि को द्वेष पक्ष में स्थापित करते हैं।

[५८] दीर्घ और सुखी जीवन का उपाय

ब्रह्मा ऋषिः। मन्त्रोक्ता बहवो देवता उत यज्ञो देवता। १, ४, ६ त्रिष्टुभः। २ पुरोऽनुष्टुप्। ३ चतुष्पदा अतिशक्वरी। ५ भुरिक्। षड्चं सूक्तम्॥

घृतस्य॑ जू॒तिः सम॑ना सदे॑वा संवत्स॒रं ह॒विषा॑ व॒र्धय॑न्ती।
श्रोत्रं॒ चक्षुः॑ प्रा॒णोऽच्छि॑न्नो नो अ॒स्त्वच्छि॑न्ना व॒यमायु॑षो॒ वर्च॑सः॥१॥

भा०—(घृतस्य) तेजःस्वरूप परमेश्वर की (जूतिः) ज्योतिः (समना) ज्ञान से युक्त है। वह (स-देवा) सूर्य, अग्नि, वायु आदि देवों के सहित है, उनको अपने में धारण करने वाली है। (संवत्सरम्) वह ज्योति प्राणियों के निवास के एकमात्र आश्रय परमेश्वर को (हविषा) समस्त ज्ञानमय प्रपञ्च द्वारा (वर्धयन्ती) उसकी महिमा को बढ़ाती हुई सर्वत्र व्याप्त है। उसी की कृपा से (नः) हमारे (श्रोतम्) कान, (चक्षुः) आंखें और (प्राणः) प्राण (अच्छिन्नः अस्तु) कभी विनष्ट न हों और हम (आयुषः) दीर्घ आयु और (वर्चसः) तेज से (अच्छिन्नाः) रहित न हों।

(१) जूतिः—सर्वेषां गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात् जूतिशब्देन सर्वत्र प्रसृतं ज्ञानमुच्यते एतएव ऐतरेयकाः मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः सकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति। ऐ० आ० २।

६ । १ ॥ घृतस्य जूतिरिति परमात्मनः स्वरूपविषयं ज्ञानम् । इति सायणः ।

(२) 'घृतस्य' दीप्तस्य परमतेजसः, इति सायणः ।

उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे ।
वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधर्त्ता ॥२॥

भा०—(प्राणः) प्राण (अस्मान्) हमें (उप ह्वयताम्) धारण करे और (वयम्) हम (प्राणम्) उस प्राण को (हवामहे) धारण करें । (पृथिवी) माता (वर्चः) अग्नि को (जग्राह) धारण करती है । (अन्तरिक्षम् वर्चः) पिता तेज को धारण करता है । (सोमः बृहस्पतिः) शिष्य और आचार्य दोनों भी (वर्चः विधर्त्ता) तेज और ज्ञान को विशेष रूप से धारण करते हैं ।

वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम । यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥ ३ ॥

भा०—(पृथिवी) माता और पिता दोनों (वर्चसः) तेज को (संग्रहणी) उत्तम रीति से धारण किये (बभूवथुः) रहते हैं उसी प्रकार हम लोग (वर्च गृहीत्वा) तेज धारण करके (पृथिवीम् अनु संचरेम) पृथिवी पर विचरें । (गावः) गौएं जिस प्रकार (यशसम्) यशस्वी (गोपतिम्) गोपालक को (उपतिष्ठन्ति) प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार (आयतीः) आती हुई गौओं को और (यशः) यश को (गृहीत्वा) ग्रहण करके हम (पृथिवीम् अनु संचरेम) पृथिवी पर विचरें ।

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥४॥

भा०—हे मनुष्यो ! (व्रजं कृणुध्वम्) गौओं के रहने के लिये बड़ी २ गोशाला बनाओ । (सः हि) वह गोशाला निश्चय से (वः) तुम्हारा

(नृपाणः) पालना करने में समर्थ है और (बहुला) बहुत से (पृथूनि) बड़े २ (वर्मा) कवच (सीव्यध्वम्) सीयो। (ओयसीः) लोहे की (पुरः) दृढ़ नगरियां (अधृष्टाः) जिन पर शत्रु अपना बल न जमा सकें (कृणुध्वम्) बनाओ । (वः) तुम्हारा (चमसः) पात्र अर्थात् अन्न जल आदि के रखने का साधन (मा सुस्रोत्) नहीं चूए । (तम् दृहत) उसको खूब दृढ़ करो ।

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥

भा०—व्याख्या देखो [अथर्व० २ । ३५ । ५ ॥]

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥६॥

भा०—(देवानाम्) विद्वानों में से (ये) जो विद्वान् (ऋत्विजः) यज्ञसम्पादक पुरुष हैं और (ये च यज्ञियाः) जो यज्ञ में पूजा के योग्य हैं और (येभ्यः) जिनके लिये (भागधेयम्) विशेष अंश (हव्यम्) हवि रूप से (क्रियते) तैयार किया जाता है, वे (यावन्तः) जितने भी, (तविषाः) महान् , (देवाः) विद्वान् पुरुष हैं वे अपनी (पत्नीभिः सह) धर्मपत्नियों सहित (इमं यज्ञम् एत्य) इस यज्ञ में आकर (मादयन्ताम्) तृप्त हों, प्रसन्न हों ।

[५९] विद्वानों की सेवा और अनुसरण करने की आज्ञा

ब्रह्मा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ गायत्री । २, ३ त्रिष्टुभौ । तृचं सूक्तम् ॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥

भा०— हे परमेश्वर और ज्ञानी आचार्य ! (त्वम्) तू (व्रत-पाः) व्रतों को पालन करने वाला (असि) है और (मर्त्येषु) मरणधर्मा मनुष्यों में भी तू (देवः आ) उपास्य देव रूप से विख्यात है । (त्वम्) तू ही (यज्ञेषु ईडयः) यज्ञ में भी स्तुति किया जाता है ।

यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश २

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (वः विदुषां) आप लोगों के (व्रतानि) व्रतों और शुभकर्मों को (अविदुष्टरासः) सर्वथा न जानने वाले, उनसे बहुत ही अनभिज्ञ होकर (वयम्) हम लोग (यत्) जो कुछ भी (प्र मिनाम) त्रुटि कर दें उसको (अग्निः) विद्वान् (विश्वाद्) सब प्रकार से (आ पृणोतु) पूर्ण करे, हमारी त्रुटियों को दूर करे, (यः) जो विद्वान् के (सोमस्य) सर्वप्रेरक परमेश्वर का (विद्वान्) जानने हारा होकर (ब्राह्मणान्) ब्राह्मणों में (आविवेश) आदर पूर्वक विराजमान है ।

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ३

भा०—हम लोग (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों के (पन्थाम् आ अगन्म) मार्ग का अनुसरण करें और (यत्) जितना भी (अनु प्रवो-ढुम्) उनका अनुसरण करने में (शक्नवाम) समर्थ हो सकें (तत्) उतना अवश्य अनुसरण करें । (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर ही (विद्वान्) सब कुछ जानता है । (सः यजात) वह सब कुछ प्रदान करता है । (सः इत् होता) वह सबको देने वाला और सबकी भक्ति को स्वीकार करने वाला है । (सः) वह (अध्वरान्) समस्त हिंसारहित यज्ञों को और (सः) वही (ऋतून् कल्पयाति) ऋतुओं को उत्पन्न करता है ।

[६०] शरीर के अंगों में शक्तियों की याचना

ब्रह्मा ऋषिः । मन्त्रोक्ता वागादयो देवताः । १ पथ्या बृहती । २ ककुम्मती पुरउष्णिक् । द्वयृचं सूक्तम् ॥

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥

भा०—(मे आसन्) मेरे मुख में (वाक्) वाणी शक्ति रहे । (नसोः प्राणः) दोनों नासिकाओं में प्राण बराबर चलें। (अक्ष्णोः) दोनों आंखों में (चक्षुः) दर्शनशक्ति विद्यमान रहे । (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) श्रवणशक्ति विद्यमान रहे । (केशाः अपलिताः) मेरे केश कभी पलित अर्थात् श्वेत न हों। (दन्ताः अशोणाः) दांत मेरे न झड़ें (बाह्वोः) बाहुओं में मेरे (बहु बलम्) बहुत सा बल प्राप्त हो ।

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥ २ ॥

भा०—(ऊर्वोः) टांगों में (ओजः) बल प्राप्त हो, (जंघयोः जवः) जंघाओं में वेग हो, (पादयोः) पैरों में (प्रतिष्ठा) खड़े होने की शक्ति प्राप्त हो । (मे सर्वा [अङ्गानि]) मेरे सब अंग (अरिष्टानि) पीड़ा रहित हों और (आत्मा) मेरा समस्त देह और आत्मा (अनिभृष्टः) नीचे न गिरने वाला, एवं संताप से रहित हो ।

[६१] सुख, शक्ति की प्रार्थना

ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । विराट् पथ्या बृहती । एकर्चं सूक्तम् ॥

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (तनूः) शरीर (मे) मेरे (तन्वा) शरीरव्यापी बल के (सह इत्) साथ रहे । (अतः) इस शरीर से मैं (सर्वम् आयुः अशीय) सम्पूर्ण आयु का भोग करूं। हे ईश्वर ! तू (मे) मेरे शरीर को (स्योनम्) सुखपूर्वक (सीद) रख । (पुरुः) हे सबको पूर्ण करने वाला प्रभु ! तू (पवमानः) पवित्र करता हुआ (स्वर्गे) सुखमय लोक में मुझे (पृणस्व) पूर्ण व पालन कर ।

[६२] सर्वप्रिय होने की प्रार्थना

ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । अनुष्टुप् । एकर्चं सूक्तम् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (मा) मुझको (देवेषु प्रियं कृणु) ज्ञानप्रद पुरुषों के बीच में प्रिय बना । (राजसु मा प्रियं कृणु) राजाओं के बीच में मुझे प्रिय बना । (सर्वस्य पश्यतः) सबके देखते हुए (उत शूद्रे उत आर्ये) चाहे वे शूद्र हों, चाहे वे आर्य हों, सबके बीच में मुझे (प्रियं कृणु) सबका प्रिय बना दे ।

[६३] ज्ञान और आयु आदि सम्पदाओं की वृद्धि की याचना

ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । विराड् उपरिष्टाद् बृहती । एकर्चं सूक्तम् ॥

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥ १ ॥

भा०—(ब्रह्मणस्पते) हे वेदों और ब्रह्माण्ड के पालक प्रभो ! और हे वेद के पालक विद्वान् ! तू (उत् तिष्ठ) उठ, उदय हो । (देवान्) विद्वानों को (यज्ञेन) देव की उपासना से (बोधय) परिचित कर, सबको उपासना का उपदेश कर और (आयुः प्राणं प्रजां पशून कीर्तिं यजमान च) आयु, प्राण, प्रजा, पशुगण, कीर्ति और यजमान को भी (वर्धय) बढ़ा ।

[६४] आचार्य और परमेश्वर से ज्ञान और दीर्घायु की प्राप्ति

ब्रह्मा ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुभः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्नेः) ज्ञानवान् आचार्य ! (जातवेदसे) अति विद्वान् विद्वान् होने के लिये, अग्नि के प्रति काष्ठ के समान, (सम्-इधम्) भली प्रकार तेरी संगति से ज्ञान द्वारा प्रज्वलित होने वाले अपने आत्मा को

तेरे पास (अहार्षम्) मैं लाया हूँ (जातवेदाः) वेदों को जानने हारा विद्वान् तू (मे) मुझे (श्रत्-धाम्) श्रद्धा अर्थात् सत्य ज्ञान धारण करने का सामर्थ्य और (मेधाम्) पवित्र ज्ञान समझने और प्रकट करने वाली प्रतिभा शक्ति (प्र यच्छतु) प्रदान कर ।

इ॒ध्मेन॑ त्वा जातवेदः स॒मिधा॑ वर्धयामसि ।
तथा॒ त्वम॒स्मान् व॑र्धय प्र॒जया॑ च॒ धने॑न च ॥ २ ॥

भा०—(जात-वेदः) ज्ञानवन् गुरो ! (इध्मेन समिधा) जिस प्रकार अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने वाले काष्ठ द्वारा अग्नि की दीप्ति को बढ़ा दिया जाता है, उसी प्रकार हम (सम्-इधा) तेरी संगति लाभ करके ज्ञान द्वारा प्रदीप्त हुई आत्मा से (त्वा वर्धयामसि) तुझे बढ़ाते हैं, तेरे ही गौरव की वृद्धि करते हैं । (त्वम्) तू भी (अस्मान्) हमको (प्रजया) उत्तम सन्तान और (धनेन) धन से (वर्धय) बढ़ा ।

यद॑ग्ने॒ यानि॒ कानि॑ चि॒दा ते॒ दारू॑णि द॒ध्मसि॑ ।
सर्वं॒ तद॑स्तु मे शि॒वं तज्जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् परमेश्वर या आचार्य ! (ते) तेरे प्रति हम (यानि कानि चित्) जो कुछ भी, (दारूणि) अग्नि में काष्ठों के समान, पदार्थ या आदरपूर्वक स्तुतियां (आ दध्मसि) उपस्थित करते हैं, (तत्) उस सबको हे (यविष्ठ्य) पूज्यतम ! (जुषस्व) आप प्रेम से स्वीकार करो । (तत् सर्वम्) वह सब (मे) मुझे (शिवम् अस्तु) कल्याणकारी हो ।

ए॒तास्ते॑ अग्ने स॒मिध॒स्त्वमि॒द्धः स॒मिद् भ॑व ।
आयु॑र॒स्मासु॑ धेह्यमृत॒त्वमा॑चा॒र्या᳡य ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (ते) तेरे (एताः) ये सब (सम्-इधः) महान् तेज हैं । (त्वम्) तू (इद्धः) देदीप्यमान होकर (समिद् भव) हृदय में प्रकाशित हो । (अस्मासु आयुः धेहि) हमें दीर्घ आयु प्रदान कर और (आचार्याय अमृतत्वम्) आचार्य को मोक्ष प्रदान कर ।

[६५] उच्चपद प्राप्ति के साधन या उपदेश

ब्रह्मा ऋषिः । जातवेदाः सूर्यश्च देवते । जगती । एकर्चं सूक्तम् ॥

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् । अव तां जहि हरसा जातवेदोऽविभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य॥१

भा०—हे (जातवेदः) प्रज्ञावान्! ऐश्वर्यवान्! हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन्! तू (हरिः) अन्धकार को नाश करके (सु-पर्णाः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (अर्चिषा) अपनी ज्ञानमय दीप्ति से (दिवम् आरुहः) तेजोमय पद, मोक्ष, या ईश्वर को प्राप्त हो। उस समय (ये) जो भी (दिवम्) उस तेजोमय ब्रह्मपद को (उत्पतन्तम्) प्राप्त करते हुए (त्वा) तुझको (दिप्सन्ति) विनाश करते हों, तुझे अपने उत्तम मार्ग से भ्रष्ट करना चाहते हैं, तू (तान्) उनको (हरसा) अपने संहारकारी तेज से (अव जहि) विनष्ट कर डाल और (अविभ्यत्) निर्भय होकर (उग्रः) प्रचण्ड रहकर (अर्चिषा) अपने तेजोबल से (दिवम् आरोह) सूर्य जिस प्रकार अपने प्रचण्ड ताप सहित मध्य आकाश में चढ़ जाता है उसी प्रकार तू भी उस महान्, उच्च, परम तेजोमय ब्रह्मपद को प्राप्त हो।

इसी प्रकार राजा को भी यही उपदेश है—तू शत्रुओं का संहारक होने से 'हरि', उत्तम पालन शक्ति से युक्त होने से 'सुपर्ण' है। वह तू अपने तेज से (दिवम् आ रोह) सूय के समान उच्च पद को प्राप्त हो। जो तेरा नाश करना चाहते हैं, उनको अपने (हरसा) क्रोध से विनष्ट कर और तू स्वयं निर्भय, बलवान् होकर, अपने तेज से उच्च पद पर आरूढ़ हो।

[६६] दुष्ट दमन और प्रजा पालन

ब्रह्मा ऋषिः । जातवेदाः सूर्यः वज्रश्च देवताः । अतिजगती । एकर्चं सूक्तम् ॥

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति । तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १ ॥

भा०—(अयो:-जाला:) लोहे के जाल धारण करने वाले, (मायिन:) विद्या के जानने वाले (असुरा:) शक्तिशाली लोग, (अङ्गिन:) अङ्गों से युक्त होकर (अयस्मयै:) लोहे के बने (पाशै:) पाशों सहित (चरन्ति) विचरते हैं। हे (जातवेद:) राजन् ! (ते) तेरे (हरसा) तेजोमय बल से (तान् रन्धयामि) उनको वश करूं, भून डालूं और तू (सहस्र-ऋषि:) हजारों भालों या 'ऋष्टि' नामक घातक शस्त्रों से सुसज्जित होकर, (वज्र:) शत्रुओं के वर्जन करने में समर्थ, विद्युत् के समान बलशाली होकर, (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्र-मृणन्) विध्वंस करता हुआ (पाहि) हमारी रक्षा कर ।

[६७] दीर्घ जीवन की प्रार्थना

ब्रह्मा ऋषि: । सूर्यो देवता । प्राजापत्या गायत्र्य: । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

पश्येम शरद: शतम् ॥ १ ॥ जीवेम शरद: शतम् ॥ २ ॥ बुध्येम शरद: शतम् ॥ ३ ॥ रोहेम शरद: शतम् ॥ ४ ॥ पूषेम शरद: शतम् ॥ ५ ॥ भवेम शरद: शतम् ॥ ६ ॥ भूयेम शरद: शतम् ॥ ७ ॥ भूयसी: शरद: शतात् ॥ ८ ॥

भा०—हम (शरद: शतम्) सौ बरसों तक (पश्येम) देखें ॥१॥ सौ बरसों तक (जीवेम) जीवें ॥२॥ सौ बरसों तक (बुध्येम) ज्ञान प्राप्त करें ॥३॥ सौ बरसों तक (रोहेम) वृद्धि को प्राप्त हों ॥४॥ सौ बरसों तक (पूषेम) पुष्टि प्राप्त करें ॥५॥ सौ बरसों तक (भवेम) समर्थ होकर रहें ॥६॥ सौ बरसों तक (भूयेम) सत्तावान होकर रहें ॥७॥ (शतात्) सौ से भी (भूयसी: शरद:) बहुत अधिक वर्षों तक हम देखें, जीवें, समझें, बढ़ें, पुष्ट हों, समर्थ रहें और सत्तावान् बने रहें ॥८॥

[६८] वेदज्ञान-प्राप्ति का उपदेश

ब्रह्मा ऋषि: । कर्म देवता । अनुष्टुप् । एकर्चं सूक्तम् ॥

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥

भा०—(अव्यसः च) अव्यापक और (व्यचसः च) व्यापक के (बिलम्) मर्म या सूक्ष्मभेद को मैं (मायया) बुद्धि द्वारा (वि स्यामि) विवेचन करूं और (ताभ्याम्) उन व्यापक और अव्यापक दोनों प्रकार के पदार्थों को जानने के लिये (वेदम्) वेद को (उद्धृत्य) दृष्टान्त से लेकर (अथ) उसके बाद हम लोग (कर्माणि) उत्तम कर्मों का (कृण्महे) सम्पादन करें।

[६९] पूर्णायु प्राप्ति का उपदेश

ब्रह्मा ऋषिः । आपो देवताः । १ आसुरी अनुष्टुप् । २ साम्नी अनुष्टुप् । ३ आसुरी गायत्री । ४ साम्नी उष्णिक् । १-४ एकावसानाः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ।

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥ उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वं० ॥ २ ॥ संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वं० ॥ ३ ॥ जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (आपः) जलों के समान आप्तजनो ! आप (जीवाः स्थ) जीवन अर्थात् प्राण धारण कराने में समर्थ हो । (उप जीवाः स्थ) जीवन को और भी अधिक बढ़ाने में समर्थ हो। मैं (उप जीव्यासम्) और भी अधिक जीवन धारण करूं। आप (सम्-जीवाः स्थ) भली प्रकार जीवनप्रद हो । मैं (सं जीव्यासम्) उत्तम रीति से जीवन धारण करूं। (जीवलाः स्थ) तुम जीवनतत्व को प्राप्त करा देने वाले हो । मैं (जीव्या-सम्) जीता रहूँ और (सर्वम् आयुः जीव्यासम्) सम्पूर्ण आयु जीवित रहूँ ।

[७०] पूर्णायु प्राप्ति

ब्रह्मा ऋषिः । इन्द्रसूर्यादयो देवताः । गायत्री । एकर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! या वायो ! तू (जीव) हमें जीवन धारण करा । हे (सूर्य) सूर्य ! और हे (देवाः) पृथिवी, अग्नि, विद्युत् आदि पदार्थों ! आप सब भी (जीव) मुझे जीवन प्रदान करो।

(अहम्) मैं (जीव्यासम्) जीता रहूँ । (सर्वम् आयुः जीव्यासम्) और सम्पूर्ण आयु भर जीवन धारण करूं ।

[७१] वेदमाता की स्तुति, आयु आदि की प्राप्ति

ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री देवता । त्र्यवसाना पञ्चपदी अतिजगती । एकर्चं सूक्तम् ॥

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १ ॥

भा०—(द्विजानां पावमानी) ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य को जन्म और विद्याध्ययन से पवित्र करने वाली, (वरदा) उत्तम वरण करने योग्य माता या वेदमय ज्ञानों को भी उत्पन्न करने वाली परमेश्वरी शक्ति का (मया स्तुता) मैं गुणानुवाद करता हूँ । समस्त विद्वान्गण भी उसी का (प्र चोदयन्ताम्) भली प्रकार उपदेश करें । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मह्यम्) मुझे (आयुः) दीर्घ जीवन, (प्राणम्) प्राणशक्ति, (प्रजाम्) उत्तम सन्तान, (पशुम्) उत्तम पशु, (कीर्तिम्) कीर्ति और (द्रविणम्) धन-ऐश्वर्य (ब्रह्म-वर्चसम्) और ब्रह्मतेज इन सब का (दत्वा) उपदेश करके आप भी (ब्रह्म-लोकम्) उस महान् परमेश्वर पद को (व्रजत) प्राप्त होओ ।

[७२] परमात्मा का वर्णन

भृग्वंगिरा ब्रह्मा ऋषिः । परमात्मा देवता । त्रिष्टुप् । एकर्चं सूक्तम् ॥

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥ १ ॥

भा०—(यस्मात्) जिस (कोशात्) अक्षय कोश या ज्ञान के भण्डार परम प्रभु से हम लोग (वेदम्) वेद को लेते हैं (तस्मिन् अन्तः) पुनः उस ही के भीतर (एनम्) उसको फिर (अव दध्मः) धर देते हैं । हम उसके प्रति उस ज्ञान को भेंट कर देते हैं । (ब्रह्मणः) वेद

और परमेश्वर के जिस (वीर्येण) वीर्य से (कृतम्) समस्त कर्म किये जाते और (इष्टम्) यज्ञ, योग और उपासना किया जाता है, (तेन तपसा) उस तप से ही हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (इह) इस लोक में (मा) मेरी भी (अवत) रक्षा करो। इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

[तत्र अष्टादश सूक्तानि त्रिपञ्चाशद् ऋचः]

इत्येकोनविंशं काण्डं समाप्तम्

अथ विंशं काण्डम्

[१] राजा और परमेश्वर का वर्णन

ऋचा क्रमतो विश्वामित्रगोतमविरूपा ऋषयः। इन्द्रमरुदग्नयो देवताः। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर! (सुते सोमे) योगाभ्यास के अवसर पर (सोमे) ब्रह्मानन्द रस के (सुते) उत्पन्न होने पर (वृषभम्) सुखों की वर्षा करने वाले आनन्दघन (त्वा) तुझको हम अभ्यासी जन (हवामहे) पुकारते हैं। (सः) वह तू (अन्धसः) प्राण के पालक और धारण करने वाले (मधु) परमानन्द रस को (पाहि) रक्षा करता है।

राजा के पक्ष में—(सुते सोमे) राष्ट्र के बन जाने पर हे राजन् ! (वृषभं त्वा हवामहे) तुझ महाबलवान् को हम आदर से बुलाते हैं। वह तू (मध्वः अन्धसः) मधुर अन्न आदि भोग्य पदार्थों और प्राणधारी जीवों, प्रजाओं का पालन कर।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः।
स सुगोपातमो जनः ॥ २ ॥

भा०—(सः जनः) वह पुरुष (सु-गोपा-तमः) उत्तम रक्षक है (यस्य क्षये) जिसकी शरण में रहकर (दिवः) तेजोमय (वि-महसः) महान् सामर्थ्य वाले, (मरुतः) तथा शत्रुओं को मारने में समर्थ, वायुओं के समान तीव्र गति वाले सैनिक लोग (पाथ) राष्ट्र की रक्षा करते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—(मरुतः) जिस परमेश्वर के आश्रय में रहते हुए प्राणगण समस्त प्राणियों और लोकों की रक्षा करते हैं वह (जनः) सर्वोत्पादक परमेश्वर (सु-गोपा-तमः) सबसे उत्तम रक्षक पालक है।

उ॒क्षान्ना॑य व॒शान्ना॑य॒ सोम॑पृष्ठाय वे॒धसे॑। स्तोमै॑र्विधेमा॒ग्नये॑ ॥३॥

भा०—(उक्षान्नाय) जिसका अन्न तृप्त करने में और (वशान्नाय) सबको अपने वश करने में समर्थ है और (सोम-पृष्ठाय) शान्ति आदि गुण वाले विद्वान् जिसके पृष्ठ रूप हैं या जिसकी पीठ पर उसके प्रेरकरूप से हैं, ऐसे (वेधसे) राज्य के विधाता और (अग्नये) अग्नि के समान शत्रुतापक राजा की हम (स्तोमैः) सामर्थ्यों द्वारा (विधेम) सेवा करें।

ईश्वर पक्ष में—उक्षा अर्थात् सूर्य और वशा अर्थात् पृथिवी दोनों जिसके अन्न हैं, ज्ञान ही जिसका स्वरूप है, उस तेजोमय परमेश्वर की हम स्तुतियों द्वारा परिचर्या करें।

[२] परमेश्वर की उपासना

गृत्समदो मेधातिथिर्वा ऋषिः। मरुदिन्द्राग्निर्द्रविणोदा देवता। १,२ विराड् गायत्र्यौ। आर्च्युष्णिक्। ४ साम्नी त्रिष्टुप्। चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

म॒रुतः॑ पो॒त्रात् सु॒ष्टुभः॑ स्व॒र्का॑दृ॒तुना॒ सोमं॑ पिबतु ॥ १ ॥

भा०—(मरुतः) विद्वान् पुरुष, (पोत्रात्) पवित्र करने वाले (सुस्तुभः) और उत्तम रूप से स्तुति करने योग्य, (स्वर्कात्) तथा उत्तम अर्चनीय परमेश्वर से प्राप्त करके, (ऋतुना) ऋतु २ में, (सोमम्) ब्रह्मानन्दरस (पिबतु = पिबन्तु) का पान करें।

अ॒ग्निरा॑ग्नी॑ध्रात् सु॒ष्टुभः॑ स्व॒र्का॑दृ॒तुना॒ सोमं॑ पिबतु ॥ २ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजोमय विद्वान् पुरुष, (अग्नीध्रात्) अग्नि, विद्युत्, सूर्य आदि को धारण करने वाले या समस्त अग्नियों को प्रदीप्त करने वाले, (सु-स्तुभः) उत्तम स्तुति योग्य, (सु-अर्कात्) परम पूजनीय परमेश्वर से प्राप्त करके (ऋतुना) ऋतु २ में (सोमं पिबतु) ब्रह्मानन्दरस का पान करे।

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (ब्रह्मा) ब्रह्मज्ञानी पुरुष, वेद-प्रतिपादित (सु-स्तुभः) उत्तम स्तुति करने योग्य, (स्वर्कात्) तथा परम अर्चनीय (ब्राह्मणात्) परमेश्वर से प्राप्त करके (ऋतुना) ऋतु २ में (सोमं पिबतु) ब्रह्मानन्दरस का पान करे।

देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ४ ॥

भा०—(द्रविणोदाः) ज्ञान और धन का प्रदाता (देवः) विद्वान् पुरुष, (सु-स्तुभः सु-अर्कात्) उत्तम स्तुति योग्य परम पूजनीय, अर्चनीय, (पोत्रात्) परमपावन परमेश्वर से प्राप्त करके ऋतु २ में (सोमं पिबतु) ब्रह्मानन्द रस का पान करे।

[३] परमेश्वर और राजा का वर्णन

इरिम्बिठिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ॥

आ याहि सुषमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र, परम ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (ते) तेरे लिये ही (सोमम्) राष्ट्र का हम (सुषुम) सेवन करते हैं। तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो। तू (इमम्) इसकी (पिब) रक्षा कर। (इदम्) यह (मम) मेरा हृदय (बर्हिः) तेरा आसन है। इस पर (आ सदः) आ विराज। अथवा हे राजन्! (आ याहि) आ। तेरे लिये (सोमं सुषुम) राष्ट्र का

अभिषेक द्वारा प्रदान करते हैं। इसका (पिब) पालन कर। यह (बर्हिः सदः) बड़ा भारी सभा-भवन है।

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर (त्वा) ब्रह्म के साथ योग साधना से लगे हुए, (केशिनौ) प्रकाशमान तथा (हरी) हरणशील हमारे दो प्रकार के इन्द्रिय-घोड़े तेरा (वहताम्) वहन करते हैं। हे परमेश्वर आप (नः) हमारी (ब्रह्माणि) ब्रह्मविषयक स्तुतियों का (शृणु) श्रवण करो।

राजापक्ष में—ज्ञान प्रकाशक वेद के गद्य और पद्यरूपी दो घोड़े तेरे रथ को चलावें। तू हमारे मन्त्रों का श्रवण कर।

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—(वयम्) हम (सोमिनः) ज्ञान से सम्पन्न (ब्रह्माणः) ब्रह्म के ज्ञानी पुरुष, (युजा) योगसमाधि द्वारा, (त्वा) तुझ (सोमपाम्) ब्रह्मानन्द रस के पान करने हारे प्रभु को, (सुतावन्तः) ब्रह्मरस से सम्पन्न होकर, (हवामहे) बुलाते हैं।

[४] ईश्वर की उपासना

इरिम्बिठिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम् ॥

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप।
पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ १ ॥

भा०—हे इन्द्र! परमेश्वर! (सुतावतः) योगसमाधि द्वारा अध्यात्मज्ञान का प्रसव करने वाले (नः) हम लोगों को तू (आ याहि) साक्षात् प्राप्त हो। (अस्माकम्) हमारी (सु-स्तुतिः) उत्तम स्तुतियों को (उप) अति समीप होकर श्रवण कर। हे (सु-शिप्रिन्) उत्तम ज्ञानवान्! आप ही (अन्धसः) अमृतरस का (पिब) हमें पान करावें।

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु।
गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥

भा०—हे पुरुष ! (ते कुक्ष्योः) तेरी कोखों में इस अमृतरस का (आ सिञ्चामि) सेचन करता हूँ। वह (ते गात्रा) तेरे गात्रों में (अनु वि धावतु) व्याप्त हो जाय। (जिह्वया) जिह्वा द्वारा जैसे रस का आस्वादन किया जाता है वैसे ही तू (मधु) मधुर अमृत रस को (गृभाय) ग्रहण कर।

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे३ तव।
सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुष ! (सं-सु-दे) उत्तम दानशील (ते) तेरे लिये, (मधुमान्) मधुर गुणयुक्त यह (सोमः) आनन्दरस (स्वादुः) स्वादिष्ट हो और (तव तन्वे शम्) तेरे शरीर के लिये (ते हृदे) तथा हृदय के लिये (शम् अस्तु) शान्तिदायक हो।

[५] ईश्वर और राजा का वर्णन

इरिम्बिठिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः।
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥

भा०—हे (विचर्षणे) प्रजाओं को नाना प्रकार से देखने वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! (सवृतः सोमः जनीः इह अभि) वस्त्र पहिने पति अपनी पत्नी के पास जाता है उसी प्रकार (अयम्) यह (सोमः) तेरी सर्वोत्पादक शक्ति भी (त्वा उ) तुझे ही प्राप्त है।

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

भा०—उत्तम (सु-बाहुः) बाहुशाली (तुवि-ग्रीवा) दृढ़ गर्दन और विस्तीर्ण छाती वाला राजा अन्न से शक्ति पाकर जैसे शत्रुओं का (जिघ्नते) नाश करता है वैसे ही (इन्द्रः) परमेश्वर इसमें आध्यात्मिक (वृत्राणि) शत्रुओं का नाश करता है।

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा ।
वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों का नाश करने हारे परमेश्वर ! (ओजसा) पराक्रम से (विश्वस्य ईशानः) विश्व को अपने वश करने और उसको संचालन करने में समर्थ होकर (त्वं पुरः प्र इहि) तू ही सबसे आगे चल और (वृत्राणि) समस्त विघ्नों का (जहि) नाश कर ।

राजा या सेनापति राष्ट्र के विघ्नकारी लोगों का नाश करने हारा होने से 'वृत्रहा' है । वह अपने पराक्रम से समस्त राष्ट्र का स्वामी होकर सबसे आगे २ चले और बली शत्रु का नाश करे ।

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि ।
यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (दीर्घः अस्तु) तेरा अंकुश सबसे बड़ा है । (येन) उस द्वारा तू (सुन्वते) ऐश्वर्य सम्पादन करने वाले, (यजमानाय) यज्ञशील को (वसु प्रयच्छसि) नाना प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करता है ।

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) तेरा (अयम्) यह (नि-पूतः) अत्यन्त पवित्र (सोमः) सर्वोत्पादक वीर्य (बर्हिषि अधि) इस आकाश में, यज्ञ में सोम के समान, विद्यमान है । (ईम् एहि) इसको तू ही प्राप्त कर, (अस्य द्रव) इसमें व्याप्त हो, (पिब) तू ही इसको अपने में ग्रहण कर ।

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः ।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥

भा०—हे (शाचि-पूजन) शक्तिशाली पुरुषों से भी पूजने योग्य ! (शाचि-गो) हे शक्तिशाली पृथिवी आदि लोकों के स्वामिन् ! (अयं सुतः

यह उत्पादित संसार (ते रणाय) तेरे ही रमण करने के लिये हैं। इस-लिये हे (आखण्डल) खण्ड २ में भी व्यापक! तू ही (प्र हूयसे) सबसे अधिक स्तुति किया जाता है।

राजा के पक्ष में—हे (शाचिगो) शक्ति से गमन करने वाले! हे (शाचि-पूजन) शक्ति द्वारा पूजने के योग्य! यह राष्ट्र तेरे (रणाय) रमण करने के लिये है। हे (आखण्डल) शत्रुनाशक! तू (प्र हूयसे) भली प्रकार आदर पूर्वक स्तुति किया जाता है।

यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः।
न्यस्मिन् दध्र आ मनः॥ ७॥

भा०—(यः) जो (ते) तेरा (शृङ्गवृषः) लोकसंहारक और साथ ही सकल सुखों का वर्धक, (नपात्) अगम्य, (प्र-नपात्) तथा अति अधिक अगम्य, (कुण्ड-पाय्यः) दाहकारी तथा रक्षण करने वाला सामर्थ्य है। तू (मनः) अपना मानस व्यापार (अस्मिन्) इसमें ही (आ नि दध्रे) लगा रहा है। ईश्वर के संकल्प से ही जगत् का प्रलय और सर्ग का कार्य हो रहा है।

[६] राजा और परमेश्वर का वर्णन

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। नवर्चं सूक्तम्।

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे
स पाहि मध्वो अन्धसः॥ १॥

भा०—व्याख्या देखो अथर्व० २०।१।१॥

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत।
पिबा वृषस्व तातृपिम्॥ १२॥ २

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर! तू (क्रतु-विदम्) क्रिया और ज्ञान के प्राप्त कराने वाले अपने (सोमम्) उत्पादक सामर्थ्य को स्वयं (हर्य) चाह, स्वयं अपने वश कर और (तातृपिम्) सबको तृप्त करने हारे उस सामर्थ्य का तू (पिब) पानकर और (वृषस्व) उसका सर्वत्र सेचन कर।

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः ।
तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥

भा०—हे (स्तवान) प्रशंसा के भाजन ! हे (विश्पते) प्रजा के पालक (इन्द्र) परमेश्वर ! (नः) हमारे (धितावानम्) धन धान्य से समृद्ध अथवा हितकारी (यज्ञम्) यज्ञ को (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त देवों द्वारा (प्र तिर) बढ़ा

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।
क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! हे (सत्-पते) सज्जनों के प्रतिपालक ! (इमे) ये (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् (चन्द्रासः) चन्द्र के समान परम आह्लाद-जनक, (सुताः) समाधि के अंगों द्वारा निष्पन्न (सोमाः) ज्ञाननिष्ठ विद्वान् पुरुष, (तव क्षयम्) तेरी ही शरण में (प्र यन्ति) आते हैं ।

राजा के पक्ष में—चन्द्र के समान आल्हादकारी, (सोमाः) शासक राजा लोग तेरी शरण, तेरे राजभवन, सभाभवन में आते हैं ।

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।
तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (सुतम्) उत्पादित (सोमम्) तथा श्रेष्ठ सूर्य को (जठरे) सृष्टि को उत्पन्न करने के महान् कार्य में (दधिष्व) स्थापित करता है (द्युक्षासः) दीप्तिमान् (इन्दवः) समस्त लोक (तव) तेरे ही अधीन हैं ।

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥ ६ ॥

भा०—(गिर्वणः) हे वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य (सुतम्) साधनों से निष्पन्न हमारे इस आत्मा को (पाहि) स्वीकार कर । तू (मधोः) मधुर अमृतमय परमानन्द की (धाराभिः) धाराओं से (अज्यसे)

सर्वत्र प्रकाशमान है। हे परमेश्वर ! (यश:) यह तेजोमय विभूति (त्वादातम् इत्) तेरी ही प्रदान की हुई है।

राजा के पक्ष में—हे स्तुत्य राजन् ! हमारे उत्पादित इस अन्नादि पदार्थ का पालन कर। तू (मधोः धाराभिः अज्यसे) शत्रु को तपाने हारे बल की धारणा शक्तियों से प्रकाशित है। यह समस्त ऐश्वर्य तेरा ही दिया हुआ है।

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता।
पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥

भा०—(वनिनः) ईश्वर के भजन करने वाले पुरुष के (अक्षिता द्युम्नानि) समस्त अक्षय धन (इन्द्रम् अभि सचन्ते) उस परमेश्वर के ही भेंट जाते हैं और वह (सोमस्य) इस संसार को (पीत्वी) पान करके (ववृधे) स्वयं बढ़ा हुआ है, स्वयं सबसे महान् होकर रहता है।

राजा के पक्ष में—(वनिनः) धनाढ्यों के समस्त ऐश्वर्य उस राजा को ही प्राप्त हैं, वह राष्ट्र को स्वयं स्वीकार करके सबसे बढ़ा चढ़ा है।

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन्।
इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) आवरणकारी विघ्नों के नाशक प्रभो ! तू (नः) हमें (अर्वावतः) समीप के देश से और (परावतः च) दूर देश से भी (आ गहि) प्राप्त हो और (इमाः नः गिरः) हमारी इन वाणियों को (जुषस्व) स्वीकार कर।

राजा के पक्ष में—तू हम प्रजाजनों की प्रार्थनाओं को सुन। दूर और समीप जहां भी हो, वहां से हमारी रक्षार्थ हमें प्राप्त हो।

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे।
इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (परावतम्) दूर के देश और (अर्वावतं च) समीप के देश और (अन्तरा च) उन दोनों के बीच के देशों में भी (हूयसे) जब पुकारा जाता है, हे प्रभो ! तू (ततः) वहां से (इतः) यहां (आ गहि) हमें प्राप्त हो। ईश्वर सर्वत्र है, सर्वत्र उसका स्मरण करें और वह सर्वत्र ही प्राप्त होता है।

राजा के पक्ष में—दूर पास और बीच के देशों में भी तुझे पुकारें तो वहां ही प्रजा के दुःख शमनार्थ प्राप्त हो।

[७] परमेश्वर और राजा

१-३ सुकक्षः । ४ विश्वामित्रः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

उद् घेद॒भि श्रु॒तामघं वृष॒भं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्वी योगिन् ! तू (श्रतामघम्) प्रसिद्ध ऐश्वर्य वाले (वृषभम्) सब सुखों के वर्षक, (नर्य-अपसम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी कर्म या व्यापार करने वाले, (अस्तारम्) सबके प्रेरक उस परमेश्वर को (अभि) लक्ष्य करके (उद् एषि घ) निश्चय से उदित होता है।

नव॒ यो न॑व॒तिं पुरो॑ बि॒भेद॑ बा॒ह्वोजसा ।
अहिं च वृत्र॒हाव॑धीत् ॥ २ ॥
स न॒ इन्द्रः शि॒वः सखाश्वा॑व॒द् गोम॒द् यव॑मत् ।
उ॒रुधा॑रेव दोहते ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो अज्ञानावरण का नाश करने वाला, (बाहु-ओजसा) मानो अपने बाहुबल द्वारा (अहिम्) हृदय पर आवरण करने वाले अज्ञानावरण को (अवधीत्) विनष्ट करता है और (नव नवतिम्) ९९ (पुरः) देहों को भी (बिभेद) तोड़ डालता है, अर्थात् जो ९९ देह-बन्धनों से मुक्त करता है, (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (शिवः) कल्याणकारी,

(सखा) परम मित्र, (अश्वावत्) समस्त व्यापक गुणों से युक्त, (गोमत्) सूर्यादि लोकों से युक्त, (यवमत्) तथा प्रकृति के परमाणुओं का संयोग विभाग करने वाली शक्ति से युक्त परमेश्वर, (नः) हमें (उरु-धारा इव) बहुत सी दुग्ध धारा बहाने वाली कामधेनु के समान ही आनन्दरस एवं सुखों का (दोहते) प्रदान करता है। [२, ३]

राजा के पक्ष में—जो राजा नगर को घेरने वाले (अहिम्) तथा चारों तरफ फैले या सर्प के समान कुटिल शत्रु का नाश करता है और जो शत्रु के ९९ दुर्गों को भी तोड़ता है, वह 'इन्द्र' कहाने योग्य राजा हमारे लिये कल्याणकारी, मित्र, अश्वों, गौओं की सम्पत्ति से समृद्ध अन्नादि भोग्य पदार्थों से युक्त होकर, कामधेनु के समान सुख प्रदान करता है।

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ ४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अथर्व० २० । ६ । २ ॥

[८] परमेश्वर और राजा

क्रमशो भरद्वाजः कुत्सो विश्वामित्रश्च ऋषयः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभः । तृचं सूक्तम् ॥

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (प्रत्नथा) पूर्व के समान (एव) ही (पाहि) तू विश्व का पालन व धारण करता है। वह विश्व (त्वा मन्दतु) तुझे आनन्दित करता है। तू (ब्रह्म श्रुधि) वेदमन्त्रों का श्रवण करता है। (उत) और (गीर्भिः) स्तुतिवाणियों से (वावृधस्व) कीर्ति को प्राप्त होता है। तू (सूर्यं आविः कृणुहि) सूर्य को प्रकट करता है। तू (इषः) अन्नों को समृद्ध करता है। तू (शत्रून् जहि) हमारे मनोरथों का नाश करने वालों का विनाश कर, (गा अभि तृन्धि) और ज्ञानरश्मियों को प्रकट कर।

राजा के पक्ष में—राजा पूर्व के समान राष्ट्र का (पाहि) पालन करे। वह विज्ञानवान् पुरुषों की वाणियों को सुने और उनकी वाणियों से वृद्धि को प्राप्त हो। आदित्य ब्रह्मचारियों को प्रकट करे, शत्रुओं की (गाः) भूमियों को छीन ले।

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥२॥

भा०—हे परमेश्वर! (अर्वाङ् एहि) तू साक्षात् प्राप्त हो, (त्वा) तुझको (सोम कामम् आहुः) विद्वान् पुरुष 'सोम-काम' कहते हैं अर्थात् संसार में कामना, या संकल्प रूप से प्रेरक होकर तू सर्वत्र विद्यमान है। (अयं सुतः) यह तैयार किया हुआ संसार तेरे ही लिये है। (तस्य) उसको तू (मदाय) हर्ष के लिये (पिब) पान कर। (उरु-व्यचाः) तू सर्वव्यापक है। तू अपने ही (जठरे) उत्पादक सामर्थ्य में (आ वृषस्व) इसको समस्त रसों से पूर्ण कर और (हूयमानः) जब भी तुझे पुकारा जाय तभी (पिता इव) पिता के समान (नः) हमारी पुकार (शृणुहि) श्रवण कर।

राजा के पक्ष में—हे राजन्! तू हमारे पास आ। तुझे राष्ट्र की कामना वाला कहते हैं। तू इसका भोग कर। तू महान् सामर्थ्यवान् होकर अपने ही अधिकार में इसको पुष्ट कर और हम प्रजाओं की पुकार पिता के समान सुन।

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥३॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर का (कलशः) यह कलश (स्वाहा) उत्तम रीति से (आ पूर्णः) पूर्ण है। अर्थात् परमेश्वर की शक्ति से यह ब्रह्माण्ड पूर्ण है। (सेक्ता) प्यालों को भरने वाला जिस प्रकार उंडेल २ कर प्याले भरा करता है उसी प्रकार वह भी (पिबध्यै) आनन्दरस पान

करने के लिये (कोशं सिसिचे) इस भुवन-कोष को और अध्यात्म में हृदय को अपने आनन्दरस से (सिसिचे) सींचता है । (प्रियाः) उसके प्यारे (सोमासः) उपासकजन (मदाय) हर्ष आनन्द प्राप्त करने के लिये (इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (अभि प्रदक्षिणित्) चारों तरफ उसको घेरते हुए (सम् आववृत्रन्) एक साथ ही घेर कर बैठे हैं ।

राजा के पक्ष में—उसका राष्ट्ररूप कलश सदा पूर्ण रहे । वह प्रजा के उपभोग के लिये अपने कोश-खजाने भरा करे और प्रिय विद्वान् पुरुष या राजा लोग उसके दाहिनी तरफ से उस महान् सम्राट् को घेरकर बैठें ॥

[९] परमेश्वर और राजा

१, २ नोधाः, ३, ४ मेधातिथिर्ऋषिः । १, २ त्रिष्टुभौ ३, ४ प्रगाथः (विषमा बृहती सतो बृहती च) । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

तं वो॑ द॒स्ममृ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः ।
अ॒भि व॒त्सं न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ इन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे ॥ १ ॥

भा०—(स्व-सरेषु) दिनों की समाप्ति के अवसर पर (वत्सम् अभि) बछड़े को लक्ष्य करके (धेनवः न) जिस प्रकार गौवें हंभारती हैं, उसी प्रकार हम प्रेम से बद्ध होकर (धेनवः) उसका रसपान करने हारे उपासक लोग, (वत्सम् अभि) सबके भीतर वास करने वाले, (दस्मम्) दर्शनीय, (ऋति-सहम्) समस्त दुखों के नाशक, (अन्धसः) प्राण धारण करने वाले और (मन्दानम्) परम आनन्द प्राप्त कराने हारे (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् प्रभु की (गीर्भिः नवामहे) स्तुति-वाणियों से स्तुति करें ।

द्यु॒क्षं सु॒दानुं॒ तवि॑षीभि॒रावृ॑तं गि॒रिं न पु॑रु॒भोज॑सम् ।
क्षु॒मन्तं॒ वाजं॑ श॒तिनं॑ सह॒स्रिणं॑ म॒क्षू गोम॑न्तमीमहे ॥ २ ॥

भा०—(द्युक्षम्) दीप्तिमान् , (सु-दानम्) उत्तम २ पदार्थों के दाता, (गिरिं न) पर्वत के समान (पुरु-भोजसम्) कन्द मूल, फल आदि,

हिरण्य रत्न आदि नाना भोग्य पदार्थों को देने हारे, (तविषीभिः) बड़ी २ शक्तियों से (आवृतम्) घिरे हुए परमेश्वर से (वाजम्) ऐश्वर्य की (मक्षु) निरन्तर (ईमहे) याचना करते हैं। (क्षुमन्तम्) जो ऐश्वर्य कि अन्न सम्पत्ति से युक्त है (वाजम्) बल देने वाला है, (शतिनं, सहस्रिणम्) सैकड़ों और सहस्रों ऐश्वर्यों से युक्त है, (गोमन्तम्) तथा गौ आदि पशुओं से समृद्ध है।

तत् त्वा॑ यामि सु॒वीर्यं॒ तद् ब्रह्म॑ पू॒र्वचि॑त्तये।
येना॒ यति॑भ्यो॒ भृग॑वे॒ धने॑ हि॒ते येन॒ प्रस्क॑ण्व॒मावि॑थ ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (पूर्व-चित्तये) पूर्ण प्रज्ञान प्राप्त करने के लिये (त्वा) तुझ (तत् सुवीर्यम् ब्रह्म) बलशाली (ब्रह्म) महान् की (यामि) मैं उपासना करूं। (येन) जिससे (यतिभ्यः) तपस्वी पुरुषों को और (भृगवे) पापों को भूननेहारे पुरुष को तू (हिते) हितकर (धने) ऐश्वर्य में स्थापित करता है और (येन) जिससे (प्र-स्कण्वम्) परम मेधावी पुरुष की (आविथ) रक्षा करता है।

राजा के पक्ष में—(पूर्व-चित्तये) पूर्व निर्धारित परस्पर के समझौते के अनुसार हे राजन् ! मैं तुझसे उत्तम वीर्यजनक (ब्रह्म) बड़े भारी ऐश्वर्य की प्रार्थना करता हूँ, जिससे तू नियमों में बद्ध प्रजाओं और (भृगवे) ज्ञानवान् विद्वान् के निमित्त (हिते धने) वेतन रूप से बंधे धन में उनको सन्तुष्ट करता है और जिससे (प्र-स्कण्वम्) उत्तम २ ज्ञानी पुरुषों को भी (आविथ) अपने राष्ट्र में पालन करता है।

येना॑ समु॒द्रमसृ॑जो म॒हीर॒पस्तदि॑न्द्र॒ वृष्णि॑ ते॒ शवः॑।
स॒द्यः सो अ॑स्य महि॒मा न सं॒नशे॒ यं क्षो॒णीर॑नुचक्र॒दे ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (येन) जिस महान् सामर्थ्य से तू (समुद्रम् असृजः) समुद्र को उत्पन्न करता है और (महीः अपः) उत्तम अनन्त जलों को पैदा करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् प्रभो ! (ते) तेरा (तत्)

वह (वृष्णि) सकल सुखों का वर्धक, सबसे अधिक (शवः) बल है। हे पुरुषो! (अस्य) उस प्रभु की (सः महिमा) वह महिमा है जो (न संनशे) कभी पार नहीं की जा सकती, (यम्) तथा जिसको (क्षोणीः) जगत् के समस्त प्राणी (अनुचक्रदे) बराबर कहा करते हैं।

[१०] परमेश्वर की उपासना

मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रगाथः। द्व्यृचं सूक्तम्॥

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर! (सत्रा-जितः) सदाविजयी (धन-साः) ऐश्वर्यों के देने वाले, (अक्षित ऊतयः) अक्षय रक्षा करने में समर्थ, (वाजयन्तः) वीर्यशाली, (रथाः इव) महारथी लोग जिस प्रकार (उद् ईरते) उठ खड़े होते हैं, उसी प्रकार (त्ये) वे (मधुमत्-तमाः) अत्यन्त मधुर (स्तोमासः) स्तुतिमय (गिरः) वाणियें (उद् ईरते) हृदय से उठती हैं।

कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद् धीतमानशुः।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २॥

भा०—(कण्वाः इव) जिस प्रकार मेधावी पुरुष, (भृगवः) और मलों को भून डालने वाले, निष्पाप और जिस प्रकार (सूर्याः इव) सूर्य के समान ज्ञान-प्रकाश से युक्त विद्वान् पुरुष (धीतम्) ध्यान द्वारा उपासित (विश्वम्) विश्व के समस्त पदार्थों को (आनशुः) यथार्थ रूप से जान लेते हैं और वे ही (स्तोमेभि) उत्तम स्तुतियों द्वारा (इन्द्रम्) परमेश्वर की (महयन्तः) पूजा करते हुए उसका गुणगान करते हैं, (प्रिय-मेधासः) मेधा को प्रिय मानने वाले (आयवः) पुरुष भी उस परमेश्वर की (अस्वरन्) स्तुति करते एवं उसका उपदेश करते हैं।

'कण्वा कणनिमीलने, अस्मात् क्वन् प्रत्ययः : बाह्येन्द्रियों को निमीलित करके ध्यान करने वाले ध्यानी 'कण्व' हैं।

'भृगवः'—'भ्रस्ज पाके' इत्यतः उः, सम्प्रसारणं, सलोपश्च। अति परिपक्व ज्ञानवान्, अर्थात् अपने सुदीर्घ अनुभव से ज्ञान को परिपक्व करने वाले ज्ञानी 'भृगु' कहाते हैं।

'सूर्याः'—आदित्य के समान तेजस्वी, ज्ञान के भण्डार, आदित्य योगी 'सूर्य' कहाते हैं।

[११] परमेश्वर और राजा

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। एकादशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रः॑ पूर्भिदाति॑रद् दास॑मर्कैर्वि॒दद्व॑सु॒र्दय॑मानो॒ वि शत्रू॑न्।
ब्रह्म॑जूतस्त॒न्वा॑ वावृधा॒नो भूरि॑दात्र॒ आपृ॑ण॒द् रोद॑सी उ॒भे॥ १॥

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर (पूर्भिद्) इस देह पुरी को तोड़नेहारा अर्थात् मुक्तिप्रद, (अर्कैः) वेदमन्त्रों द्वारा (दासम्) अज्ञान के नाशक जीव को (आ अतिरत्) अधिक शक्तिमान् कर देता है और वही (विवद्-वसुः) ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारा प्रभु, (शत्रून्) आत्मा की शक्तियों का नाश करने वाले बाधक कारणों को (दयमानः) मारता हुआ (ब्रह्म-जूतः) महान् शक्ति से सम्पन्न, (तन्वा) अपनी विस्तृत शक्ति से (वावृ-धानः) अत्यन्त महान्, (भूरि-दात्रः) बहुत बड़ा दानी (उभे रोदसी आ अपृणाद्) आकाश और पृथ्वी को व्याप रहा है।

म॒खस्य॑ ते तवि॒षस्य॒ प्र जू॒तिमिय॑र्मि॒ वाच॑म॒मृता॑य॒ भूष॑न्।
इन्द्र॑ क्षिती॒नाम॑सि॒ मानु॑षीणां वि॒शां दैवी॑नामु॒त पू॑र्व॒यावा॑॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर (मानुषीणाम्) साधारण मनुष्यों, (क्षितीनाम्) प्रजाओं और (दैवीनाम्) सूर्य चन्द्रादि (विशाम्) प्रजाओं में (उत) भी (पूर्व-यावा) सबसे प्रथम सत् रूप में प्राप्त होने योग्य तू ही (असि) रहा है और होगा। (अमृताय) मोक्षपद के लिये (भूषन्) मैं योग्य होने की इच्छा करता हुआ, (मखस्य) पूजनीय (तविषस्य) और महान् (ते) तेरी (प्र-जूतिम्) वेगवती शक्ति को और (वाचम्) वेदज्ञानमयी वाणी को (इयर्मि) प्राप्त होता हूँ।

राजा के पक्ष में—तू समस्त साधारण और विशेष विद्वान्, दानशील प्रजाओं का (पूर्व-यावा) अग्रणी है। तुझ पूजनीय, महान्, बलशाली तथा शक्तिशाली की (वाचम्) आज्ञाओं का (अमृताय भूषन्) दीर्घ जीवन के प्राप्त करने के लिये मैं पालन करूं।

'मखः' 'मख मखि गत्यर्थौ (भ्वादी)। 'तविषस्य'-तवः बलं तद्वतः।

इन्द्रो॑ वृ॒त्रम॑वृणो॒च्छर्ध॑नीतिः॒ प्र मा॒यिना॑मभिना॒द् वर्प॑णीतिः।
अह॒न् व्यं॑समु॒शध॒ग् वने॑ष्वा॒विर्धेना॑ अकृणोद् रा॒म्याणा॑म् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) बली परमेश्वर (वृत्रम्) आवरणकारी अज्ञान को (आवृणोत्) दूर करता है और (वर्पणीतिः) रूप को प्राप्त कराने वाला होकर (मायिनाम्) प्राणों के बन्धन को (प्र अभिनात्) भली प्रकार नाश करता है। (वनेषु) जंगलों में (उशधग्) अग्नि जिस प्रकार जला कर भस्म कर देता है, वह परमेश्वर भी (वनेषु) भजन करने वाले परम भक्तों में (उशधग्) उनकी बुरी कामनाओं को भस्म करने वाला होकर (वि अंसम्) उनके पीड़ाजनक कष्टों को दूर करके उनको (अहन्) प्राप्त हो जाता है और तब (रम्याणाम्) ब्रह्म में रमण करने हारे तत्व ज्ञानियों की (धेनाः) स्तुतिमयी वाणियों को (आविः अकृणोत्) प्रकट करता है।

राजा के पक्ष में—(शर्धनीतिः) शत्रुहिंसक बल को प्रयोग करने वाला, (वृत्रम्) राष्ट्र घेरने वाले को छिन्न-भिन्न करे। (वर्पनीतिः) नाना रूपों के शस्त्रादि संचालन में चतुर होकर (मायिनाम् प्र अभिनात्) मायावी का नाश करे। अग्नि के समान शत्रुओं को (व्यंसम्) उनके कन्धे आदि या सेना के अंग काट २ कर (अहन्) मारे और तब (राम्याणां धेनाः) रमण करने योग्य प्रजाओं की हर्ष भरी वाणियों को प्रकट करे।

इन्द्रः॑ स्व॒र्षा ज॒नय॒न्नहा॑नि जि॒गायो॒शिग्भिः॒ पृत॑ना अभि॒ष्टिः।
प्रारो॑चय॒न्मन॑वे के॒तुमह्ना॒मवि॑न्द॒ज्ज्योति॑र्बृह॒ते रणा॑य ॥ ४ ॥

भा०—(स्वर्षाः) परम सुख का प्रदान करने वाला (इन्द्रः) परमेश्वर (अहानि जनयन्) दिनों को उत्पन्न करता हुआ, (अभिष्टिः) साक्षात् कामनामय होकर (उशिग्भिः) सर्व वशकारी सामर्थ्यों द्वारा (पृतनाः) प्रजाओं को (जिगाय) जीतता है। (मनवे) मननशील पुरुष के लिये (अह्नाम् केतुम्) तमोनाशक तेजों के ज्ञापक सूर्य को (प्र अरोचयत्) प्रदीप्त करता है और (बृहते रणाय) बड़े भारी रमणीय मोक्षसुख की प्राप्ति के लिये वह स्वयं (ज्योतिः) परम ज्योति को (अविन्दत्) धारण करता है।

राजा के पक्ष में—वह राजा (स्वर्षाः) उत्तम सुखों का दाता, (अभिष्टिः) सर्वत्र गतिशील होकर, (अहानि जनयन्) अहन्तव्य सेनाबलों को प्राप्त करके (उशिग्भिः) वशकारी सेनापतियों द्वारा सेनाओं को विजय करे, समस्त मनुष्यों को और समस्त सेनाओं के आज्ञापक सेनापति को सबसे उन्नत करे। बड़े रमणीय राष्ट्र के लिये (ज्योतिः अविन्दत्) धन को प्राप्त करे।

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रः) परमात्मा (नृवत्) महान् नेता के समान (नर्या) जीवों के बसने और कर्मफल भोगने योग्य (पुरूणि) लोकों को स्वयं (दधानः) धारण करता हुआ, (तुजः) वेगवती (बर्हणाः) महती शक्तियों में (आ विवेश) आविष्ट है और वह (जरित्रे) स्तुति करने हारे पुरुष की (इमाः धियः) नाना धारण शक्तियों को (अचेतयत्) चेतन करता है और (आसाम्) इनके (शुक्रम् वर्णम्) कान्तिमय शुद्ध स्वरूप को (प्र अतिरत्) बढ़ाता है।

राजा के पक्ष में—वह (तुजः) प्रजा के (नर्या) मानवसंघों या ऐश्वर्यों को धारण करता हुआ वृद्धिशील प्रजाओं में प्रविष्ट होता है। (जरित्रे)

विद्वान् पुरुषों को उनके (धियः) समस्त कर्म बतलाता है। (आसाम्) इन प्रजाओं के (शुक्रम् वर्णम्) शुद्ध निष्पाप स्वरूप को बढ़ाता है।

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

भा०—(अस्य महः इन्द्रस्य) इस महान् परमेश्वर के (पुरूणि) बहुत से (सुकृता) उत्तम रीति से रचे हुए (कर्म) कर्मों की विद्वान् लोग (पनयन्ति) स्तुति करते हैं। (वृजनेन) पाप से निवृत करने वाले श्रेयोमार्ग या ज्ञान से (वृजिनान्) वर्जन करने योग्य पापाचारियों को (सं पिपेष) वह विनाश कर देता है और (अभि भूत्योजाः) शत्रुनाशक सामर्थ्य से युक्त वह (मायाभिः) ज्ञानशक्तियों वा हिंसक शक्तियों से (दस्यून्) दुष्ट पुरुषों को (सं पिपेष) चूर्ण कर डालता है।

युधेन्द्रो मह्वा वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥

भा०—(सत्-पतिः) सत्पुरुषों का पालक, (चर्षणि-प्राः) मनुष्यों की कामनाएं पूर्ण करने में समर्थ (इन्द्रः) परमेश्वर, (युधा) युद्ध द्वारा जिस प्रकार राजा धन उत्पन्न करता है उसी प्रकार (युधा) अपने समस्त विश्व के प्रेरक अथवा दुष्टों को प्रहार करने वाले (मह्वा) महान् सामर्थ्य से (देवेभ्यः) विद्वानों, सत्पुरुषों के लिये (वरिवः चकार) सर्वोत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करता है। (विवस्वतः अस्य) विविध ऐश्वर्यों से सम्पन्न सूर्य के समान तेजस्वी, इसके (सदने) सुखरूप आश्रय में आये हुए (विप्राः) बुद्धिमान् (कवयः) क्रान्तदर्शी पुरुष (उक्थेभिः) नाना वेदमन्त्ररूप स्तुति वचनों से (तानि) उसके उन २ नाना कर्मों का (गृणन्ति) उपदेश करते हैं।

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (पृथिवीम्) पृथिवी (उत द्याम्) और आकाश को (ससान) धारण करता है, उस (सत्रा-साहम्) सबको सहन करने वाले, (वरेण्यम्) सबके वरण करने योग्य, (सहोः-दाम्) सबको बल देने वाले, (स्वः) तेजोमय सूर्य आदि लोक को और (देवाः च अपः) दिव्य गुण वाली क्रियाओं और प्रज्ञाओं को (ससवांसम्) धारण करने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को साक्षात् करके, (धीरणासः) ध्यानशील योगी पुरुष (अनु मदन्ति) उसके आनन्द-रस के साथ स्वयं भी आनन्द अनुभव करते हैं।

स॒सानात्याँ उ॒त सूर्यं॑ ससा॒नेन्द्रः॑ ससान पुरु॒भोज॑सं॒ गाम्।
हि॒र॒ण्यय॑मु॒त भोगं॑ ससान ह॒त्वी दस्यू॒न् प्रार्यं॒ वर्ण॑मावत् ॥ ९॥

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर हमको (अत्यान्) गतिशील अश्वों के समान इन्द्रियों का (ससान) प्रदान करता है। (उत) और (सूर्यं ससान) सूर्य के समान प्रकाश भी प्रदान करता है। वह (पुरु-भोजसं गाम्) नाना भोज्य पदार्थों से सम्पन्न गाय और पृथ्वी को भी (ससान) हमें प्रदान करता है। वह हमें (हिरण्ययम्) हित और रमणीय सुवर्ण आदि ऐश्वर्य और (भोगम्) भोग करने की शक्ति (ससान) प्रदान करता है। और (दस्यून् हत्वा) दुष्टपुरुषों को नाश करके (आर्यं वर्णम्) श्रेष्ठ वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि उत्तम कार्य करने वाले सच्चरित्र पुरुषों की (प्र अवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करता है।

राजा भी प्रजा को उत्तम घोड़े, उत्तम विद्वान्, भूमि हिरण्य, नाना भोग देता और भले आचार व्यवहार के आर्य पुरुषों की रक्षा करता है।

इन्द्र॒ ओष॑धीरसनो॒दहा॑नि॒ वन॒स्पतीँ॑रसनोद॒न्तरि॑क्षम्।
बि॒भेद॑ ब॒लं नु॑नु॒दे विवा॑चोऽथा॑भवद् दमि॒ताभिक्र॑तूनाम् ॥१०॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (ओषधीः असनोत्) धान, जौ आदि ओषधियां हमें प्रदान करता है। वह (अहानि असनोत्) हमें

प्रकाश वाले दिन प्रदान करता है। वह (वनस्पतीन् असनोत्) बड़े २ वृक्ष प्रदान करता है। वह हमें (अन्तरिक्षम् असनोत्) विहार करने के लिये अन्तरिक्ष प्रदान करता है। वह परमेश्वर (वलम्) आत्मा को घेर लेने वाले अन्धकार को (बिभेद) छिन्न भिन्न कर देता है। वह (विबाधः) विविध वेदवाणियों को हमारे प्रति (नुनुदे) प्रेरित करता है। वह (अभि-क्रतूनाम्) कर्मों और ज्ञानों को साक्षात् करने वाले पुरुषों का (दमिता अभवत्) दमनकारी है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥

भा०—(वाज-सातौ) वीर्य प्राप्त कराने वाले (अस्मिन् भरे) इस ब्रह्मोपासना के अवसर में, (शुनम्) सुखप्रद, (मघवानम्) सर्वैश्वर्यवान्, (नृ-तमम्) सर्वोत्तम नायक, (ऊतये) रक्षा के लिये भक्तों की प्रार्थनाओं को (शृण्वन्तम्) श्रवण करने वाले, (उग्रम्) भयंकर, (समत्सु) योग समाधि से उत्पन्न आनन्द-लाभ के अवसरों में (वृत्राणि) आत्मा का आवरण करने वाले अज्ञानों का (घ्नन्तम्) विनाश करने वाले, (धनानाम्) ऐश्वर्यों को (संजितम्) विजय करने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर की (हुवेम) हम स्तुति करें।

राजा के पक्ष में—(नृ-तमम्) सब पुरुषों में श्रेष्ठ, (शुनम्) अति शीघ्रकारी सेनापति को हम इस वीर्य लाभ कराने वाले (भरे) संग्राम में अपनी रक्षा के निमित्त (हुवेम) बुलावें।

[१२] परमेश्वर का वर्णन

१-६ वसिष्ठः। ७ अत्रिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (श्रवस्या) वेद ज्ञान से युक्त (ब्रह्माणि) वेद मन्त्रों का (उद् ऐरत) नित्य उच्चारण करो। हे (वसिष्ठ) ब्रह्म में उत्तम रीति से स्थित पुरुष ! तू (समर्ये) एकत्र सब पुरुषों के बीच में (महय) उसकी ही उपासना कर। (यः) जो कि (विश्वानि) समस्त पदार्थों को (शवसा) अपने बल से (आ ततान) रच कर विस्तृत करता है और (मे) मुझ (ईवतः) उपासक के समस्त (वचांसि) स्तुति वचनों को (उपश्रोता) श्रवण करता है।

अयांमि घोषं इन्द्र देवजांमिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवांचि।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू दिव्य वेदवाणी के घोष की न्याईं (अयामि) सबको संयम में रख रहा है। (विवाचि) विविध वाणियों से स्तुति करने योग्य (यत्) तुझमें, (शुरुधः) शीघ्र गतिशील प्राणों को रोकने हारे तपस्वी लोग, (इरज्यन्त) बड़ी स्पर्धा से सेवा में लग्न हो जाते हैं, (जनेषु) इन पुरुषों में से कोई भी पुरुष (स्वम् आयु) अपनी आयु को (नहि चिकिते) नहीं जानता कि कब वह मौत के मुंह में चला जाय, तो भी हे परमेश्वर ! तू (अस्मान्) हमें (तानि अंहांसि इत्) उन नाना प्रकार के पापों से अवश्य (अति पर्षि) पार कर देता है।

युजे रथं गवेषणं हरिंभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ॥ ३ ॥
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥

भा०—मैं साधक पुरुष, (हरिभ्याम्) हरणशील, प्राण और अपान द्वारा, (गवेषणं रथम्) इन्द्रियों को प्रेरण करने में समर्थ रसरूप आत्मा को (युजे) योग समाधि द्वारा समाहित करता हूँ। उसी (ब्रह्माणि जुजुषाणम्) वेदमन्त्रों को मुख्य तात्पर्य रूप से स्वयं ग्रहण करते हुए परमेश्वर की सभी विद्वान् पुरुष (उप अस्थुः) उपासना करते हैं। (स्यः) वही (इन्द्रः) परमेश्वर (वृत्राणि) आवरणकारी अज्ञानों को (अप्रति) सदा

के लिये (जघन्वान्) विनाश कर देने हारा है । वही (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (वि बाधिष्ट) विविध रूपों से थामे हुए है ।

आपश्चित् पिप्यु स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥

भा०—(चित् न) जिस प्रकार (स्तर्यः) गौवें (आपः) जलों को प्राप्त होकर (पिप्युः) वृद्धि को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) परमेश्वर! (गावः) वेद वाणियें (आपः चित) तुझको प्राप्त होती हैं, (जरितारः) और उपासक (ते) तेरे (ऋतम्) सत्यज्ञानस्वरूप को (नक्षन्) प्राप्त होते हैं। (वायुः न) वायु जिस प्रकार (नियुतः) समस्त वेगों को प्राप्त है उसी प्रकार तू भी (नियुतः) समस्त बलों को (याहि) प्राप्त है। (त्वं हि) तू ही (धीभिः) अपने कर्मों और ज्ञानों से (नः) हमें (वाजान्) अन्नों और बलों को (अच्छ वि दयसे) भली प्रकार विविध रूपों में प्रदान करता है।

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते मदाः) वे आनन्दरस, (शुष्मिणम्) सर्वशक्तिमान् तथा (तुवि-राधसम्) बहुत ऐश्वर्यवान् (त्वा) तुझको, (जरित्रे) उपासक के संतोष के लिये (मादयन्तु) पूर्ण कर रहे हैं। तू (देवत्रा) देवों के बीच (एकः) अकेला ही (मर्त्तान्) समस्त मरणधर्मा प्राणियों को (दयसे) रक्षा करता है। हे (शूर) सर्वशक्तिमन् ! तू (अस्मिन् सवने) इस संसार में (मादयस्व) सदा तृप्त रहने वाला है।

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

भा०—(वसिष्ठासः) उपासक ज्ञानी पुरुष, (वज्र-बाहुम्) ज्ञानवज्र

को अपने हाथ में लिये हुए (वृषणम्) सुखों के वर्षक (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अर्कैः) नाना स्तुतियों से (अर्चन्ति) अर्चना करते हैं। (सः) वह (स्तुतिः) स्तुति करने योग्य परमेश्वर (नः) हमें (वीरवत्) वीर पुत्रों से युक्त और (गोमत्) गौओं से युक्त ऐश्वर्य (धातु) प्रदान करे। हे पुरुषो ! (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (सदा) सदा (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों और उपायों द्वारा (पात) पालन करो।

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥७॥

भा०—(ऋजीषी) अर्जन करने योग्य धन-ऐश्वर्यों से सम्पन्न, (वज्री) पाप और अज्ञान का वर्जन करने वाला, (वृषभः) सुखों का वर्षक, (तुराषाट्) हिंसक शत्रुओं का विजेता, (शुष्मी) बलवान्, (राजा) सबका महाराज, (वृत्र-हा) आवरणकारी विघ्नों का नाशक (सोम-पावा) सोमरस के समान समस्त प्रेरक बल का स्वयं धारक, (हरिभ्याम्) अपने धारण और आकर्षण बलों से (युक्त्वा) समाधि द्वारा युक्त होकर (अर्वाङ्) साक्षात् (उप यासत्) हमें प्राप्त हो। (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (मध्यंदिने) दिन के मध्य भाग में (सवने) सूर्य के समान प्रखर कान्तिमान् होकर (मत्सत्) हमारे हृदयाकाश में भी प्रबल तेज से प्रकाशित हो।

[१३] राजा के राज्य की व्यवस्था

क्रमशः वामदेव गौतम कुत्स-विश्वामित्रा ऋषयः। १ इन्द्राबृहस्पती, २ मरुतः, ३-४ अग्नयश्च देवताः। १-३ जगत्यः। ४ त्रिष्टुप्। चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् १

भा०—हे (बृहस्पते) वेदवाणी के पालक, एवं बड़े भारी राष्ट्र के पालक राजन् ! और सेनापति ! आप दोनों (वृषण्वसू) ऐश्वर्यों का वर्षण

करने हारे हो। आप दोनों (अस्मिन् यज्ञे) राष्ट्र के व्यवस्था के कार्य में (मन्दसाना) अपने को परम प्रसन्न रखते हुए (सोमं पिबतम्) शासन या राज्यपद का उपभोग करो। (सु-आभुवः) उत्तम रीति से सब प्रकार से होने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्य (वां) तुम दोनों को (आ विशन्तु) प्राप्त हों। आप दोनों (अस्मे) हम राष्ट्रवासियों को (सर्व-वीरम्) समस्त वीर पुरुषों सहित (रयिम्) ऐश्वर्य का (नि यच्छताम्) प्रदान करो।

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥२

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान गति वाले या शत्रुओं को मारने में समर्थ वीर पुरुषो ! (वः) तुम लोगों को (रघुस्यदः) अति वेग वाले (सप्तयः) सर्पणशील अश्व (वहन्तु) सर्वत्र सवारी दें और (रघु-पत्वानः) वेग युक्त पहियों से दौड़ते हुए (बाहुभिः) अपनी बाहुओं से (प्र जिगात) अच्छी प्रकार विजय करो। आप लोग (बर्हिः) आसनों पर (सीदत) विराजें। (वः) आप लोगों के लिये (उरु सदः कृतम्) विशाल भवन बनाया जाय। आप लोग (मध्वः अन्धसः) मधुर अन्न आदि उपभोग्य पदार्थों से (मादयध्वम्) सदा तृप्ति लाभ करें।

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

भा०—(अर्हते) पूजनीय, (जात-वेदसे) वेदों के विद्वान् राजा के लिये, (रथम् इव) जिस प्रकार रथ को सजाया जाता है उसी प्रकार हम लोग (मनीषया) बुद्धि पूर्वक (इमम् स्तोमम्) इस स्तुतिसमूह को भी (सं महेम) भक्ति आदरपूर्वक सुसज्जित करें। (अस्य संसदि) इस विद्वान् और अग्रणी की राजसभा या सत्संग में (नः) हमारी (भद्रा) कल्याणमयी (प्र-मतिः) मननशक्ति हो और हे (अग्ने) अग्रणी राजन् !

(तव सख्ये) तेरे मित्रभाव में रहते हुए (वयम्) हम लोग (मा रिषाम) कभी पीड़ित न हों।

एभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी राजन्! (एभिः) इन वीर पुरुषों सहित तू (सरथम्) अपने रथ द्वारा (वा) और (नाना रथम्) वीरों के नाना रथों से युक्त होकर (अर्वाङ् याहि) आगे प्रयाण कर। तेरे (अश्वा) अश्वारोही गण (विभवः) विशेष शक्तिशाली हों। तू (त्रिंसतं त्रीन् च) ३३ (देवान्) विजिगीषु राजाओं को, उनकी (पत्नीवतः) पालन करने हारी सेना सहित या उनकी स्त्रियों सहित, (अनु-स्वधम्) उनके भरण पोषणोचित्त धन अन्न आदि के अनुसार, (वह) अपने साथ रख और उनको (मादयस्व) सुखी प्रसन्न रख। इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१४] राजा का वर्णन

सौभरिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रगाथः। चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः।
वाजे चित्रं हवामहे ॥ १॥

भा०—हे (अपूर्व्य) अपूर्व शक्ति वाले! (वयम्) हम (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले प्रजाजन (त्वाम् भरन्तः) तेरा अन्न आदि पदार्थों से भरण-पोषण करते हुए ही (चित्रम्) अति पूजनीय तुझको (कच्चित् स्थूरं न) बलवान् महापुरुष के समान (वाजे) संग्राम में (हवामहे) पुकारते हैं।

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥

भा०—हे राजन्! (नः) हममें से (यः) जो (धृषत्) शत्रुओं को धर्षण करने में समर्थ और (उग्रः) अति बलवान्, (युवा) सदा जवान,

वीर्यवान् है (सः) वह तू है। हम लोग (कर्मन्) प्रत्येक कर्म में (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (त्वा उप) तेरे ही शरण आते हैं। (सखायः) परस्पर समान आख्यान या नामरूप वाले, परस्पर के स्नेही हम हे (इन्द्र) राजन् ! (सानसिम्) सबको सब प्रकार के ऐश्वर्य, पदाधिकार और भूमि आदि का विभाग देने वाले (त्वाम् इत्) तुझको ही अपना (अवितारम्) रक्षक (ववृमहे) वरण करते हैं।

यो नं इदमिदं पुरा प्र वस्यं आनिनाय तमु व स्तुषे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (सखायः) समान नाम, यज्ञ, कीर्त्ति वाले, परस्पर स्नेही मित्रजनो ! (यः) जो (नः) हमें (इदम्-इदम्) यह नाना प्रकार के गौ, अश्व, सुवर्ण आदि (वस्यः) अति उत्तम जीवनोपयोगी ऐश्वर्य (पुरा) सबसे पहले (प्र अनिनाय) अच्छी प्रकार प्राप्त कराता है, (वः ऊतये) आप लोगों की रक्षा के लिये, उसही (इन्द्रम्) राजा की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ।

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥

भा०—(हर्यश्वम्) तेज अश्वों वाले, (सत्-पतिम्) सज्जनों के पालक, (सर्षणी-सहम्) सब मनुष्यों को वश करने में समर्थ पुरुष के गुण बतलाता हूँ। (सः हि स्म) या वह है (यः अमन्दत) जो सदा प्रसन्न और तृप्त रहता है। (सः) वह (गव्यम् अश्व्यम्) गौ और अश्व आदि (शतम्) सैकड़ों धन (नः) हम (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता लोग को (आ वयति) प्राप्त कराता है।

[१५] परमेश्वर का वर्णन

गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। षडृचं सूक्तम् ॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१॥

भा०—(मंहिष्ठाय) सबसे अधिक पूजनीय, (बृहते) सबसे बड़े, (सत्य-शुष्माय) सत्य के बल से युक्त, (तवसे) बलस्वरूप परमेश्वर के (बृहद् रये) बड़े भारी वेग के सम्बन्ध में (प्र भरे) उपदेश करता हूँ। (प्रवणे) नीचे की तरफ आते हुए (अपाम्) जलों के भारी बल के समान (यस्य) जिस परमेश्वर का (दुर्धरं राधः) दुर्धर बल, (विश्वायु) सब ओर (शवसे) बल-कार्य करने के लिये (अप आवृतम्) प्रकट होता है।

अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः २

भा०—(हविष्मत) ज्ञानी पुरुष के (सवना) जैसे यज्ञ आदि कर्म आप्त पुरुषों के आश्रय होते हैं, इसी प्रकार हे परमेश्वर! (विश्वम्) समस्त जगत् के कार्य अपने इष्ट प्रयोजन के लिये (ते अनु ह असत्) तुझ पर निर्भर हैं। परमेश्वर का (हर्यत वज्रः) सर्व-चूर्णकारी बल, (पर्वते न) पर्वत, दुर्ग आदि की रक्षा पर भी (न सम् अशीत) नहीं रुकता (हिरण्ययः) उसको भी तोड़ डालता है।

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुष (उषः न शुभ्रे अध्वरे) उषाकाल के समान तेजोमय तथा हिंसा से रहित परमेश्वर के आश्रय में वर्तमान तू (पनीयसे भीमाय अस्मै) इस स्तुतियोग्य, पराक्रमी परमेश्वर को (नमसा आ भर) हवि आदि सत्कार से पूर्ण कर। (यस्य धाम नाम इन्द्रियं श्रवसे) जिसका तेज, नमनकारी बल और ऐश्वर्य प्रसिद्ध है और (यस्य ज्योतिः हरितः च अयसे चकारि) जिसका प्रकाश मानो दूर २ दिशाओं तक फैलने के लिये उत्पन्न होता है।

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवन् ! हे (पुरुष्टुत) बहुत प्रकारों से वर्णित ! हे (प्रभूवसो) अति सामर्थ्यवान् सर्ववासी ! (ये) जो लोग (त्वा आरभ्य चरामसि) तुझको आरम्भ करके, तुझको मुखिया बनाकर विचरते हैं (ते) वे (इमे) ये (वयम्) हम (ते) तेरे ही उपासक हैं। हे (गिर्वणः) समस्त वाणियों के सेवन करने वाले ! (त्वद् अन्यः) तुझसे दूसरा कोई और (गिरः नहि सघत्) हमारी वाणियों को नहीं सहन करता, कोई नहीं प्राप्त करता । तू (क्षोणीः इव) पृथिवी के समान सहिष्णु होकर (नः) हमारे (तद्) नाना प्रकार के (वचः) वचनों का (प्रति हर्य) श्रवण करता है ।

भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (तव वीर्यम्) तेरा सामर्थ्य (भूरि) महान् है । (तव स्मसि) हम तेरे हैं । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्य स्तोतुः) इस स्तुतिशील विद्वान् पुरुष की (कामम्) अभिलाषा को (आ पृण) पूर्ण कर । (ते वीर्यम् अनु) तेरे ही बल पर (बृहती द्यौः) यह बड़ी भारी द्यौ (ममे) बनी है और (इयं च पृथिवी) यह पृथिवी भी (ते ओजसे) तेरे ही पराक्रम के आगे (ममे) झुकती है ।

राजा, विद्युत्, ईश्वर सबके पक्ष में समान है ।

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ६

भा०—हे ईश्वर ! तू अपने ज्ञानवज्र से (पर्वतम्) पर्वत के समान दृढ़ मूल वाले अज्ञान का नाश करता है । समस्त ज्ञानों को आत्मा में प्रेरित करता है । तू सब (सहः) बल को एकमात्र धारण करता है ।

[१६] परमेश्वर की उपासना और वेदवाणियों का प्रकाश और उपदेश

अथास्य ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । त्रिष्टुभः । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥ १ ॥

भा०—(उद-प्रुतः) जल से ऊपर उठकर उड़ने वाले, (रक्षमाणाः) अपनी जान बचाकर दौड़ते हुए (वयः न) पक्षी जिस प्रकार फड़ फड़ शब्द करते हुए उड़ते हैं और (वावदतः अभ्रियस्य इव घोषाः) निरन्तर गर्जना करते हुए मेघ जिस प्रकार ध्वनि करते हैं और (गिरिः-भ्रजः ऊर्मयः न) पर्वत से झरने वाली जलधाराएं जिस प्रकार ध्वनि करते हैं, उसी प्रकार (अर्काः) अर्चनशील विद्वान् पुरुष मिलकर वेदध्वनि करती हुए (मदन्तः) अति हृष्ट होकर (बृहस्पतिम्) वेद वाणी और महती शक्ति के पालक परमेश्वर की (अभि अनावन्) साक्षात् स्तुति करते हैं।

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २ ॥

भा०—(अङ्गिरसः) अङ्ग अर्थात् शरीर में रहने वाला प्राण, (गोभिः) देह में व्याप्त होकर, (भगः इव) अन्न के समान (अर्यमणम्) आत्मा को चलाता है, (दम्पती) परस्पर मैत्री वाले पतिपत्नी के समान वर्तमान अपान दो, आंख दो, नाक दो, कान दो, जिह्वा और रसना दो, गुदा और लिङ्ग दो इन सब युगलों को जीवित रखता है और सबको चलाता है जैसे कि सारथी घोड़े को।

साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३॥

भा०—(बृहस्पतिः) वेद वाणियों के पति परमेश्वर से वेदवाणियां इस प्रकार प्रकट होती हैं जिस प्रकार कि (पर्वतेभ्यः) पर्वतों से (गः

वितूर्या) जल धाराएं निकलती हैं और (गाः यवम् इव) स्थिर पृथिवी से जौ निकलते हैं। वे (गाः) वेद वाणियां उत्तम वाणी हैं, उनमें (प्रतिथिनी) अतिथि यज्ञ आदि का वर्णन है, अभीष्ट और स्पृहणीय हैं, उनमें उत्तम २ वर्णन हैं, उनका स्वरूप अदूषित है।

आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥४॥

भा०—(बृहस्पतिः) सूर्य जिस प्रकार (मधुना) जल से (आप्रुषायन्) भूमि को सींचता हुआ (ऋतस्य योनिम्) जल के आश्रय मेघ को नीचे (अव क्षिपन्) फेंकता है, (भूम्याः त्वचं विभेद) और भूमि की त्वचा को जल द्वारा भेद देता है, (मधुना) या जिस प्रकार सूर्य (द्यौः) आकाश से (उल्काम् इव) उल्का को फेंकता है, (ऋतस्य योनिम्) इसी प्रकार बृहस्पति परमेश्वर सत्य स्वरूप वेद का वाणियों को (अश्मनः) अपने व्यापक स्वरूप से (गाः उद्धरन्) प्रकट करता हुआ (मधुना) वेदभक्तों के अज्ञानावरण को छिन्न भिन्न कर देता है।

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत्।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥५॥

भा०—जिस प्रकार (वातः) प्रचण्ड वायु (उद्नः) जल के पृष्ठ से (शीपालम् इव आजत्) सैवाल को फाड़कर दूर कर देता है उसी प्रकार (बृहस्पतिः) बृहती वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर (अन्तरिक्षात्) हृदय के अन्तरिक्ष में से अज्ञानतम को वेद के प्रकाश से (तमः आजत्) दूर करता है और जिस प्रकार (वातः) वायु (वलस्य) आवरणकारी मेघ को (अनुमृश्या) छिन्न भिन्न करके (गाः आ चक्रे) सूर्य की किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक परमेश्वर (वलस्य) तामस आवरण को (अनुमृश्य) अपने ज्ञानबल से छिन्न भिन्न करके (गाः) वेद-वाणियों को (आ चक्रे) प्रकट करता है।

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः।
दुद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीरँकृणोदुस्रियाणाम् ॥६॥

भा०—(यदा) जब (पीयतः) विनाशकारी (वलस्य) और आवरणकारी तमस के (जसुम्) नाशकारी वल को (अग्नि-तपोभिः) अग्नि के समान प्रकाशमान (अर्कैः) वेदमन्त्रों के द्वारा (बृहस्पतिः) वेद का पति परमात्मा (भेत्) तोड़ डालता है, तब (न) जिस प्रकार (जिह्वा) जीभ (दद्भिः) दांतों द्वारा (परिविष्टम्) परोसे अन्न को (आदत्) ग्रस लेती है उसी प्रकार वह तामस बल का नाश कर देता है। तत्पश्चात् (उस्रियाणाम्) हृदय में उठने वाली वेदवाणियों के (निधीन्) छुपे ज्ञान-भण्डार को (आवि अकृणोत्) साक्षात् करा देता है।

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत्।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७॥

भा०—(यत्) जब (बृहस्पतिः) वेदज्ञ (गुहा-सदने) गुह्यहृदय में (आसां स्वरीणाम्) गूंजने वाली वेद-वाणियों के (तत्) उस परम (नाम) स्वरूप को (अमत) जान लेता है तब, (शकुनस्य आण्डा इव) अण्डों को (भित्त्वा) फोड़कर जिस प्रकार (गर्भम्) भीतर के गर्भ में स्थित बच्चे को पक्षिणी-माता बाहर निकाल लेती है उसी प्रकार वह विद्वान् स्वयं (पर्वतस्य) पूर्ण सामर्थ्य वाले परमेश्वर के भीतर (त्मना) विद्यमान वेदवाणियों को (उद् आजत्) प्राप्त कर लेता है।

कुरान में कुरान की आयतों को पर्वत की गुफा (लामहफूज़) में से प्राप्त करने का जो वर्णन है वह इसी की छाया है।

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥८॥

भा०—(दीने उदनि) थोड़े जल में (क्षियन्तम् मत्स्यं न) निवास

करने वाली मछली को जिस प्रकार लोग देख लेते हैं उसी प्रकार (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक विद्वान् पुरुष भी (अश्नाः) व्यापक परमात्मा द्वारा (अपिनद्धम्) ढके हुए (मधु) मधुर वेद को (परि अपश्यत्) सब प्रकार से साक्षात् करता है और जिस प्रकार (वृक्षात्) वृक्ष की लकड़ से (विकृत्य) औजारों से काट २ कर (चमसं न) कारीगर पात्र को (निः जभार) निकाल लेता है उसी प्रकार (बृहस्पतिः) वेदज्ञ विद्वान् (वि-रवेण) विशेष शब्द-विज्ञान (विकृत्य) वेदमन्त्रों की विविध व्याख्या करके (तत् मधु) उस परम ज्ञान को (निस् जभार) निकाल लेता है।

सोषामविन्दत् स स्वः१ सो अग्निं सो अर्केण वि ववाधे तमांसि।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह वेदज्ञ (उषाम्) अज्ञान का दाह कर देने वाली, प्रातःकाल की प्रभा के समान, ज्योति प्राप्त करता है। (सः स्वः) वह प्रकाशस्वरूप तथा सुखस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करता है। (सः) वह (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर का साक्षात् करता है। वह (अर्केण) वेदमन्त्रों द्वारा (तमांसि) अन्धकारों को (वि) विविध प्रकार से (ववाधे) विनष्ट करता है। वह (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक विद्वान (गोवपुषः) वेदवाणियों के शरीर (पर्वणः) के एक २ पर्व अर्थात् खण्ड से (मत्-जानं = मत-ज्ञानम्) आत्मज्ञान को (निः जभार) प्राप्त करता है। मज्जा = मत् + ज्ञान = आत्मज्ञान।

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥ १० ॥

भा०—(हिमा इव) हिम अर्थात् पाले से जिस प्रकार (वनानि पर्णा) वन और पत्र (मुषिता) नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार वेद के पति परमात्मा द्वारा (बृहस्पतिना) वेदवाणियों का परदा फाड़ कर उन्हें प्रकट कर दिया

जाता है (अनानुकृत्यम्) इस प्रकार बार २ न किया जा सकने वाला यह कर्म सृष्टि में (अपुनः चकार) बार २ नहीं किया जाता प्रत्युत एक ही बार किया जाता है, जब तक कि सूर्य और चन्द्रमा इस सृष्टि में रहते हैं। अर्थात् वेदों का प्रकाश सृष्टि में एक बार ही होता है, बार २ नहीं।

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन्।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ॥११॥

भा०—लोग (श्यावं अश्वं न) जिस प्रकार श्याम अश्व को (कृशनेभिः) सफेद आभूषणों द्वारा सजाएं उसी प्रकार (पितरः) संसार की पालक शक्तियों ने (द्याम्) आकाश को (नक्षत्रेभिः) नक्षत्रों द्वारा (अभि अपिंशन्) स्थान २ पर सुसज्जित किया है। वे (रात्र्यां तमः अदधुः) रात्रि में अन्धकार को स्थापित करती हैं और (अहन् ज्योतिः) दिन में सूर्य को। (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पति (अद्रिम्) अद्य अन्धकार को तोड़ता है और (गाः) वाणियों को (विदद्) प्राप्त करता है।

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो वेदपति (पूर्वीः) अनादि वेदवाणियों का (अनु) यथाक्रम (अनोनवीति) उपदेश करता है उस (अभ्रियाय) मेघ के समान सबको ज्ञान जल वितरण करने में समर्थ को (इदं नमः) हम (अकम) नमस्कार करें। (सः हि) वही (बृहस्पतिः) वेदवाणियों का पालक (गोभिः) गौओं, (अश्वैः) घोड़ों, (वीरेभिः) वीर पुरुषों और नेताओं (नृभिः) सहित हमें (वयः) ज्ञान, कर्म और आयु (धात्) धारण करावे।

[१७] परमेश्वरोपासना

१–११ कृष्ण ऋषिः। [ऋ० १२ वसिष्ठः]। इन्द्रो देवता। १–१० जगत्यः। ११, १२ त्रिष्टुभौ। द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१॥

भा०—(उशतीः) कामनायुक्त (जनयः) स्त्रियें (यथा) जिस प्रकार (शुन्ध्युम्) सुन्दर (मर्यं न) मनुष्य को (पतिम्) पतिरूप से प्राप्त करके (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (परिष्वजन्ते) आलिङ्गन करती हैं, उसी प्रकार (सध्रीचीः) एक ही साथ समान अर्थ को कहने वाली, (उशती) अभिलाषाओं वाली, (स्वः विदः) सुखमय परमात्मा को प्राप्त करने वाली (विश्वाः) समस्त (मे मतयः) मेरी ज्ञानमय वाणियें (मघवानम्) ऐश्वर्यवान् उस (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अनूषत) स्तुति करती हैं।

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते २

भा०—हे परमेश्वर ! (पुरुहूत) प्रजाओं द्वारा पुकारे गये ! (मे मनः) मेरा मन (त्वद्रिग्) तेरी तरफ जाकर फिर (न घ अप वेति) निश्चय ही तुझसे दूर नहीं जाता । (त्वे इत्) तुझमें ही (कामम्) वह कामनाओं और आशाओं को (शिश्रय) रख देता है । हे (दस्म) दर्शनीय ! (अधि बर्हिषि) आसन पर जिस प्रकार (राजा इव) राजा विराजता है उस प्रकार (अस्मिन् बर्हिष) इस महान् ब्रह्माण्ड में तू (अधि नि सदः) अधिष्ठाता रूप से विराजता है (अस्मिन् सोमे) इस सोमस्वरूप आत्मा में (ते) तेरा (अव-पानं सु अस्तु) ज्ञानरस प्राप्त हो ।

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ३

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर (अमतेः) दुर्मति (उत) और (क्षुधः) भूख का (विषूवृत्) सब प्रकार से नाश करने हारा है। (स इत्) वह ही (रायः) धनैश्वर्य का (ईशते) स्वामी है। (इमे सप्त) ये सात लोक

(तस्य) उस (शुष्मिणः) बलशाली, (वृषभस्य) तथा सुखों के वर्षक परमेश्वर की (इत्) ही (वयः) शक्ति का (वर्धन्ति) बखान करते हैं।

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४

भा०—वृक्ष पर जिस प्रकार पक्षी विराजते हैं, उसी प्रकार (इन्द्रम्) परमेश्वर में, (चमू-सदः) ब्रह्मास्वाद में निरत, (मन्दिनः) आनन्दरस से तृप्त, (सोमासः) सौम्य स्वभाव वाले मुक्त जीव आ विराजते हैं। (एषाम् अनीकं शवसा दविद्युतत्) इनका मुख ज्ञान से प्रकाशित होता है। वह परमेश्वर (मनवे) मननशील पुरुष को (आर्यम् ज्योतिः) सुख और सर्वश्रेष्ठ ज्योति (विदत्) प्रदान करता है।

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥५॥

भा०—(देवने) जूए में (श्वघ्नी) जिस प्रकार अपने भविष्य का नाश करने वाला जुआखोर (कृतं न) अपने संचित धन को (वि चिनोति) खो देता है उसी प्रकार (यत्) जब (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु (संवर्गम्) सबको अपने साथ मिलाये रखने वाले (सूर्यम्) सूर्य को (जयत्) अपने वश करता है (तत्) तब हे (मघवन्) परमेश्वर! (वीर्यम्) तेरे वीर्य को (न पुराणः) न कोई पुरातन (उत न नूतनः) और न कोई नवीन शक्ति ही (ते अनु शकत्) जीत सकती है।

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ६

भा०—(मघवा) वह परमेश्वर (विशं-विशं परि अशायत) प्रत्येक प्रजा में शयन कर रहा है। वह (वृषा) सुखों का वर्षक (जनानाम्) मनुष्यों की (धेनाः) स्तुतियों (अवचाकशत्) पर दृष्टि रखता है। (यस्य सवनेषु) जिस भक्त के युद्ध के अवसरों में (शक्रः) वह शक्तिशाली

परमेश्वर (रण्यति) रमण करता है (सः) वह (तीव्रैः सोमैः) तीव्र ज्ञानरसों द्वारा (पृतन्यतः) सेना द्वारा आक्रमण करने वाले भीतरी शत्रुओं पर विजय पाता है ।

आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्याइव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

भा०—(सिन्धुम् अभि) समुद्र के प्रति (आपः न) जिस प्रकार नदियां (समक्षरन्) बहती हैं और जिस प्रकार (ह्रदम्) ताल में (कुल्याः इव) जलधाराएं आकर पड़ती हैं, उसी प्रकार (यत्) जब (सोमासः) सौम्यस्वभाव वाले मुमुक्षु जीव (इन्द्रम् अभि सम् अक्षरन्) परमेश्वर की शरण आते हैं तब वे (विप्राः) मुमुक्षु (अस्य) इसकी (सादने) शरण में जाकर उसकी ही (महः) कीर्ति को (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं, जैसे (वृष्टिः) वर्षा (दिव्येन दानुना) आकाश से आये जल से (यवं न) जौ को बढ़ाया करती है ।

वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (क्रुद्धः वृषा न) गुस्से में आये हुए महावृषभ के समान अति वेगवान् होकर (रजःसु) लोकों पर शासन कर रहा है और (यः) जो (इमाः अपः) इन समस्त (अपः) प्रकृति की व्यापक शक्तियों को (अर्यपत्नीः अकृणोत्) अपनी पत्नियों के समान उत्पादक शक्तियां बना लेता है, (सः) वह (मघवा) परमैश्वर्यवान् (सुन्वते) स्तुति करने हारे, (मनवे) मननशील (हविष्मते) ज्ञानवान्, (जीर-दानवे) प्राणधारी जीव को (ज्योतिः) परम ज्योति (अविन्दत्) प्राप्त कराता है ।

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ९

भा०—(परशुः) परशु अर्थात् आत्मा पर अनात्म पदार्थों को काटने में समर्थ ज्ञानरूप वज्र (ज्योतिषा सह) अपने आत्मप्रकाश के साथ (उत् जायताम्) उदित हो और (ऋतस्य) सत्यज्ञान की (सु-दुघा) अच्छे प्रकार देने वाली 'ऋतम्भरा' नाम की प्रज्ञा (पुराणवत्) पुराण-पुरुष परमेश्वर के समान शुद्ध होकर (सह) उसके साथ (भूयाः-भूयात्) तन्मय होकर रहे और (अरुषः) दीप्तिमान्, (शुचिः) शुद्ध आत्मा (भानुना) भासमान ज्ञान के प्रकाश से (वि रोचताम्) विशेष रूप से चमके। (सत्-पतिः) वह सच्चा पति (स्वः न) आदित्य के समान (शुशुचीत) शुभ ज्ञान को और भी उज्ज्वल करे।

गोभि॑ष्टरेमाम॑तिं दुरेवां यवे॑न क्षुधं॑ पुरुहूत विश्वा॑म्।
वयं राज॑भिः प्रथमा धना॑न्यस्माके॑न वृजने॑ना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) प्रजाओं से आहूत परमेश्वर (वयम्) हम (गोभिः) गौओं और भूमियों द्वारा (दुरेवाम्) दुःखदायी (अमतिम्) दरिद्रता (तरेम) दूर करें और (गोभिः) वेद वाणियों द्वारा (अमतिम्) अज्ञान को (तरेम) पार करें। (यवेन) जौ द्वारा (विश्वां क्षुधम्) सब प्रकार की भूख को (तरेम) पार करें। (वयम्) हम (प्रथमाः) अति श्रेष्ठ होकर (अस्माकेन वृजनेन) अपनी सेना द्वारा पुष्ट होकर अपने (राजभिः) राजाओं सहित (धनानि जयेम) ऐश्वर्यों पर विजय करें।

बृह॒स्पति॑र्नः॒ परि॑ पातु प॒श्चादु॒तोत्त॑रस्मा॒दध॑रादघा॒योः।
इन्द्रः॑ पु॒रस्ता॑दु॒त म॑ध्य॒तो नः॒ सखा॒ सखि॑भ्यो॒ वरि॑वः कृणोतु ११

भा०—(बृहस्पतिः) महान् संसार का पालक (नः) हमें (पश्चात्) पीछे से, (उत उत्तरस्मात्) उत्तर से या दायें से या ऊपर से और (अधरात्) नीचे से (अघायोः) हम पर आघात करने की इच्छा करने वाले दुष्ट पुरुष से, (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे और हमारे बीच में से भी हम आघात करने वाले दुष्ट पुरुष से, (नः परि पातु) हमारी रक्षा

करे और वह (नः) हमारा (सखा) मित्र होकर हमारे (सखिभ्यः) स्नेही मित्रों को (वरिव) धन ऐश्वर्य (कृणोतु) प्रदान करे ।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२॥

भा०—हे (बृहस्पते) वेदवाणी के पालक ! और हे जीवात्मन् ! (युवम्) तुम दोनों (दिव्यस्य उत पार्थिवस्य) आकाश में विद्यमान और पृथिवी में विद्यमान (वस्वः) समस्त ऐश्वर्यों को (ईशाथे) वश कर रहे हो । आप दोनों (स्तुवते) स्तुतिशील ज्ञानवान् पुरुष को (रयिं धत्तम्) ऐश्वर्य प्रदान करो और हे विद्वान् पुरुषो ! आप (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी उपायों द्वारा (नः सदा पात) हमारी सदा रक्षा करें । इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[१८] परमेश्वर की स्तुति

१–३ काण्वो मेधातिथिरांगिरसः प्रियमेधश्च ऋषि । ४–६ वसिष्ठः ।
इन्द्रो देवता गायत्री । षडृचं सूक्तम् ॥

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (वयम् उ) हम (तदिदर्थाः) उस लोक और इस लोक अर्थात् ऐहिक और पारलौकिक प्रयोजनों की इच्छा करने वाले, (त्वा यन्तः) तुझे प्राप्त होने की इच्छा करते हुए तेरे (सखायः) मित्र (कण्वाः) ज्ञानी पुरुष, (त्वा) तेरी (उक्थेभिः) स्तुति-वचनों और वेद के सूक्तों द्वारा (जरन्ते) स्तुति करते हैं ।

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) पापों से निवृत्त करने वाले ज्ञानवज्र के धारक प्रभो ! (अपसः) कर्म के (नविष्टौ) प्रारम्भ में (अन्यत्) और कुछ भी मैं (न घ ईम् आ पपन) स्तुति नहीं करता, प्रत्युत (तव इत् उ) तेरी ही (स्तोमम्) स्तुति करना (चिकेत) जानता हूँ ।

इ॒च्छन्ति॑ दे॒वाः सु॒न्वन्तं॒ न स्वप्ना॑य स्पृहयन्ति।
यन्ति॑ प्र॒माद॒मत॑न्द्राः ॥ ३ ॥

भा०—(देवाः) दिव्यगुण वाले पुरुष (सुन्वन्तम्) काम करने हारे यत्नशील पुरुष को (इच्छन्ति) चाहते हैं। वे (स्वप्नाय) सोने वाले प्रमादी पुरुष से (न स्पृहयन्ति) प्रेम नहीं करते। (अतन्द्राः) आलस्य रहित पुरुष (प्रमादं यन्ति) प्रकृष्ट आनन्द को प्राप्त करते हैं।

व॒यमि॑न्द्र त्वा॒यवो॒ऽभि प्र णो॑नुमो वृषन्।
वि॒द्धी त्व१॒॑स्य नो॑ वसो ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर! हे (वृषन्) समस्त सुखों के वर्षक! हम (त्वायवः) तेरे ही प्राप्ति की अभिलाषा करते हुए तेरी (अभि प्र णोनुमः) साक्षात् स्तुति करते हैं। हे (वसो) समस्त संसार के बसाने वाले (नः अस्य तु) हमारी इस स्तुति को (विद्धी) तू जानता है।

मा नो॑ नि॒दे च॒ वक्त॑वे॒ऽर्यो र॑न्धी॒ररा॑व्णे।
त्वे अपि॒ क्रतु॒र्मम॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर! आप (अर्यः) स्वामी होकर (नः) हमें (निदे) निन्दक पुरुष के अधीन (मा रन्धीः) मत कर (अपि) और (अराव्णे) अदानशील कंजूस और (वक्तवे:) अपशब्द-भाषी पुरुष के वश में भी (मा रन्धीः) हमें मत कर। (अपि) और (मे) मेरा (क्रतुः) सब संकल्प और विचार (त्वे) आपही के लिये है।

त्वं वर्मा॑सि स॒प्रथः॑ पुरोयो॒धश्च॑ वृत्रहन्।
त्वया॒ प्रति॑ ब्रुवे यु॒जा ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) आवरक अन्धकार के नाशक परमेश्वर! (त्वं) तू (पुरः-योधः च) आगे बढ़कर प्रहार करने वाले योद्धा के समान हमारा विशाल (वर्म असि) कवच है। (त्वया युजा) तुझ साथी के बल द्वारा मैं अपने प्रतिद्वन्द्वी लोगों को (प्रति-ब्रुवे) उत्तर देने में समर्थ होऊं।

[१९] परमेश्वर और राजा की शरण प्राप्ति

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च ।
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वार्त्रहत्याय) वृत्र, नगरों को घेरने वाले शत्रुओं को हनन कर देने वाले और (पृतनासाह्याय च) संग्रामों और शत्रु सेनाओं को पराजय कर देने वाले (शवसे) बल के कारण ही हम प्रजाजन (त्वा) तेरे शरण (आ वर्तयामसि) आते हैं ।

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो ।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) सैकड़ों कर्मों वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वाघतः) स्तुति करने हारे भक्त जन (ते मनः उत चक्षुः) तेरे चित्त और दृष्टि को (अर्वाचीनं सु कृण्वन्तु) उत्तम रीति से अपने अभिमुख करें ।

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे ।
इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥

भा०—हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकड़ों बलों से युक्त ! और हे ऐश्वर्य-वन् ! (अभि-माति-षाह्ये) अभिमान आदि शत्रुओं के विजय करने के निमित्त हम (विश्वाभिः गीर्भिः) समस्त वाणियों से (नामानि) तेरे अनेक नामों का (ईमहे) मनन करते हैं ।

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि ।
इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥

भा०—(पुरु-स्तुतस्य) प्रजाओं द्वारा स्तुति किये जाने वाले, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्, (शतेन धामभिः) तथा धारण सामर्थ्यों द्वारा (चर्षणी-धृतः) मनुष्यों को धारण करने हारे प्रभु की हम (महयामसि) पूजा करें ।

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे ।
भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥

भा०—(वृत्राय हन्तवे) शत्रु के नाश करने के लिये और (भरेषु) देवासुर संग्रामों में (वाज-सातये) शक्ति प्राप्त करने के लिये (पुरु-हूतम्) प्रजाओं से स्तुति करने योग्य (उप ब्रुवे) परमेश्वर की प्रार्थना करें ।

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो ।
इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अनेक सामर्थ्यों वाले प्रभो ! (वृत्राय हन्तवे) वृत्र के नाश के लिये (त्वाम्) तुझसे हम (ईमहे) प्रार्थना करते हैं । तू (वाजेषु) संग्रामों में (सासहिः भव) शत्रुओं का सदा पराजय करने में समर्थ है ।

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च ।
इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

भा०—(द्युम्नेषु) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने में, (पृतनाज्ये) संग्रामों में विजय करने में, (पृत्सु तूर्षु) संग्राम में खड़ी शत्रु-सेनाओं के वध करने के उपायों में, (श्रवः सु च) यश के कार्यों में, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अभिमातिषु) अभिमानी शत्रुओं पर (साक्ष्व) विजयी हो ।

[२०] परमेश्वर से प्रार्थना और सेनापति और राजा के कर्त्तव्य

१--४ विश्वामित्रः । ५–७ गृत्समदः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! या हे सेनापते ! हे (शत-क्रतो) सैकड़ों बलों से युक्त ! तू, (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये, (शुष्मिन्तमम्) अधिक बलशाली, (जागृविम्) रक्षा के कार्य में सदा सावधान, (द्युम्निनं) यशस्वी, (सोमं) सबके प्रेरक शासक राजा की (पाहि) रक्षा कर ।

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) सैकड़ों सामर्थ्यों वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (पञ्चसु जनेषु) पांचों प्रकार के जनों में (या इन्द्रियाणि) तेरे जितने सामर्थ्य हैं (तानि) उन सब सामर्थ्यों को (आ वृणे) मैं स्वीकार करता हूँ, आदर भाव से देखता हूँ ।

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! तू (बृहत्-श्रवः) बड़े भारी ऐश्वर्य को (अगन्) प्राप्त है । तू (दुस्तरं द्युम्नं) अपार धन (दधिष्व) धारण कर । (ते शुष्मम्) तेरे बल को हम (उत् तिरामसि) खूब बढ़ावें ।

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ४ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) अभेद्य शक्ति वाले (इन्द्र) राजन् ! तू (नः) हमारे पास (अर्वावतः) समीप के (अथो) और (परावतः) दूर के देश से भी (आगहि) आ । हे (शक्र) शक्तिमान् ! (यः ते लोकः) तेरा जो भी स्थान हो (ततः उ) वहां से ही (इह) यहां (आ गहि) आ, हमें प्राप्त हो ।

इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अङ्ग) विद्वान् पुरुषो ! (इन्द्रः) राजा (महद् भयम्) बड़े भय का (अभि सत) पराभव करता है और उसको (अप चुच्यवत्) दूर करता है । (हि) क्योंकि (सः) वह (स्थिरः) स्थिर (विचर्षणिः) विश्व का या समस्त प्रजा का साक्षात् द्रष्टा अधिष्ठाता है ।

इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः च) राजा और परमेश्वर (नः) हमें (मृलयाति) सुखी करे। (नः पश्चात्) हमारे पीछे (अघम्) पाप या दुःख (न उ नशत्) न लगे। (नः पुरः) हमारे आगे सदा (भद्रं भवाति) कल्याण और सुख हो।

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥

भा०—(विचर्षणिः) प्रजाओं को विविध प्रकार से देखने हारा! और (शत्रून् जेता) शत्रुओं का विजेता (इन्द्रः) राजा (सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि) समस्त दिशाओं से हमें (अभयं करत्) अभय करे।

[२१] परमेश्वर और राजा

सव्य आंगिरस ऋषिः। इन्द्रो देवता। १–९ जगत्यः। १०, ११ त्रिष्टुभौ। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥

भा०—हम (महे) महान् परमेश्वर के लिये (वाचम् उ) प्रार्थना वाणी का (नि सु प्र भरामहे) नित्य प्रयोग करें। (विवस्वतः) ईश्वर की उपासना करने वाले के (सदने) गृह में (इन्द्राय गिरः) परमेश्वर के लिये वाणियां कही जाती हैं। (इव) वह परमेश्वर सोते हुए आलसी लोगों के (रत्नम्) रमण योग्य धन को (नू चित् हि) बहुत शीघ्र (अविदत्) हर लेता है। (द्रविणोदेषु) धनैश्वर्य के दाता पुरुषों के सम्बन्ध में (दुष्टुतिः) निन्दा वचन (न शस्यते) नहीं कहे जाते।

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर! तू (अश्वस्य दुरः) अश्वों, (गो-दुरः)

गौओं, (यवस्य) जौ आदि अन्नों का (हुरः) दाता है और (वसुनः) धन-ऐश्वर्य का (इनः-पति असि) स्वामी है । तू (शिक्षा-नरः) मनुष्यों को अभिमत दान देने हारा, (प्रदिवः) उत्कृष्ट व्यवहार वाला, (अकाम-कर्शनः) कामना या आशा का विघात न करने वाला और (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (सखा) सखा है (तत्) तेरी हम (इदम्) इस प्रकार (गृणीमसि) स्तुति करते हैं ।

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ३

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शचीवः) प्रज्ञावन् या हे शक्ति-मन् ! हे (पुरुकृत्) बहुत से धनों, जनों और लोकों के कर्त्ता ! हे (द्युमत्तम्) सबसे अधिक धनशालिन् ! (इदम्) यह सब (अभितः) सब ओर पसरा हुआ (वसु) ऐश्वर्य या बसा हुआ जगत् (तव इद्) तेरा ही (चेकिते) प्रतीत होता है । हे (अभि-भूते) चारों ओर की विभूति के स्वामिन् ! (अतः) तू हमें (संगृभ्य) ऐश्वर्य संग्रह करके (आ भर) प्रदान कर । (त्वायतः) तुझको चाहने वाले (जरितुः) तथा तेरी स्तुति करने वाले पुरुष की (कामम्) आशा को (मा ऊनयीः) कम न कर ।

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥

भा०—(सुमनाः) उत्तम चित्त वाला राजा (एभिः) इन (द्युभिः) तेजों (इन्दुभिः) धनादि ऐश्वर्यों, (गोभिः) गौ आदि पशुओं और (अश्विना) अश्व वाले सैन्य से, (अमतिम्) दारिद्र्य अदम्य शत्रु और अज्ञान को (निरुन्धानः) रोकता रहे । हम लोग (इन्द्रेण) ऐश्वर्य वाले राजा और (इन्दुभिः) युद्ध में द्रुतगति से जाने वाले वीरपुरुषों के द्वारा (दस्यु दरयन्तः) दस्यु को भयभीत करते हुए, परस्पर (युत-द्वेषसः) सब

द्वेषों से रहित होकर, (इषा) अन्न, बल और ज्ञान से (सं रभेमहि) एकत्र होकर रहें।

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! परमेश्वर! हम (राया) धन, (इषा) अन्न और बल (पुरु-चन्द्रैः) बहुत आह्लादक पदार्थों, (अभि-द्युभिः) कान्तियों (वाजेभिः) बलों और ऐश्वर्यों से (सं रभेमहि) युक्त हों। (वीरशुष्मया) वीर सैनिकों के बल वाली, (गो-अग्रया) गौ आदि पशुओं को मुख्य धन रूप से या उद्देश्य रूप से रखने वाली (अश्वावत्या) घोड़ों से युक्त, (देव्या) विजयशील, (प्रमत्या) तथा शत्रुओं का अच्छी प्रकार स्तम्भन करने में समर्थ सेना से (सं रभेमहि) युक्त हों।

ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६॥

भा०—हे (सत्-पते) सज्जनों के पालक! (ते मदाः) वे हर्षकारी, उत्साही वीर, (तानि वृष्ण्या) वे नाना बल और (ते सोमासः) वे नाना ऐश्वर्य (त्वा) तुझे (वृत्र-हत्येषु) विघ्नकारी दुष्टों के नाश के अवसरों में (अमदन्) उत्साहित करें। (यत्) जिससे तू (बर्हिष्मते) वृद्धिशील तथा (कारवे) क्रियाशील राजकर्त्ता के आगे आने वाले (दश सहस्राणि वृत्राणि) हजारों विघ्नों और विघ्नकारियों के सैन्यों को भी (अप्रति) बिना रुकावट के (नि बर्हयः) विनाश करने में समर्थ हो।

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ७

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! तू (धृष्णुया) शत्रु को धर्षण करने में समर्थ (युधा) अपनी प्रहार-शक्ति से (युधम्) शत्रु के प्रहार साधन को (घ इत्) निश्चय ही (उप एषि) प्राप्त होता है, उसको सहता और वश

करता है और (धृष्णुया) शत्रु को विजय करने में समर्थ (पुरा) अपने गद और (ओजसा) पराक्रम द्वारा (इदम्) सामने स्थित इस (पुरं) शत्रु के गद को (सं हंसि) अच्छी प्रकार नाश करता है और (परावति) दूर देश में भी (यद्) हे (इन्द्र) सेनापते ! (नम्या सख्या) शत्रु को दबा देने में समर्थ और अपने समक्ष विनीत, मित्रभूत राजा द्वारा (नमुचिं नाम मायिनम्) कभी जीता न छोड़ने योग्य मायावी शत्रु को (निबर्हय) तू सर्वथा नष्ट करता है ।

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥

भा०—हे इन्द्र ! (त्वम्) तू (अतिथिग्वस्य) अतिथि के प्रति गौ, भूमि आदि प्रदान करने वाले पुरुष के (वर्तनी) मार्ग में बाधक होने वाले, (करञ्जम्) कुत्सित स्वभाव वाले, (उत) और (पर्णयम्) गतिशील रथों से प्रयाण करने वाले शत्रु को भी (तेजिष्ठया) अपनी अति तेजस्विनी शक्ति से (वधीः) विनाश करता है । (त्वम्) तू (वङ्गृदस्य) मर्यादाओं के विनाशक शत्रु के (शता पुरः) सैकड़ों किलों को (अभिनत्) तोड़ । (ऋजिश्वना) सरल मार्ग से जाने वाले धर्मात्मा पुरुष द्वारा (परिसूताः) घेरे हुए (अनानुदः) कर प्रदान न करने वाले शत्रु के (शता) सैकड़ों (पुरः) किलों को (अभिनत्) तोड़ ।

त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥

भा०—हे सेनापते ! (त्वम् अबन्धुना) बन्धु और सहायक से रहित, (सु-श्रवसा) परन्तु उत्तम कीर्तिमान् धर्मात्मा राजा के साथ (उप जग्मुषः) युद्ध में लड़ने वाले (द्विः दश) बीसियों (जन-राज्ञः) जनराजाओं, एवं उनके (षष्टिं सहस्रा नवतिं नव) ६००९९ सैनिकों को भी (रथ्या चक्रेण) रथ के चक्र के समान बने दुर्गम चक्रव्यूह द्वारा (अवृणक्) वर्जन करने में समर्थ हो । ऐसा (श्रुतः) वेद से जाना जाता है ।

२० सेनानायकों के अधीन ३००९९ सैनिक एक रथचक्र बनाते हैं ।

त्वमा॑विथ सु॒श्रव॑सं॒ तवो॒तिभि॒स्तव॒ त्राम॑भिरिन्द्र॒ तूर्व॑याणम् ।
त्वम॑स्मै॒ कुत्स॑मतिथि॒ग्वमा॒युं म॒हे राज्ञे॒ यूने॑ अरन्धनायः ॥ १० ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वम्) तू (तव ऊतिभिः) अपने रक्षासाधनों द्वारा (सु-श्रवसम्) उत्तम कीर्ति से सम्पन्न पुरुष की (आविथ) रक्षा कर और (तव वामभिः) तू अपने त्राण करने वाले सामर्थ्यों द्वारा (तूर्व-याणम्) शीघ्रकारी यानों के स्वामी अथवा शीघ्र शत्रु पर चढ़ाई करने वाले जन की भी रक्षा कर । (त्वम्) तू (अस्मै) इस (महे) बड़े भारी (यूने) युवा (राज्ञे) राजा के लिये, (कुत्सम्) निन्दनीय और (अतिथिग्वम्) पूज्य पुरुषों के आदर करने हारे दोनों प्रकार के (आयुम्) पुरुषों को (अरन्धनायः) वश में कर ।

य उ॒दृची॑न्द्र दे॒वगो॑पाः॒ सखा॑यस्ते शि॒वत॑मा असा॑म ।
त्वां स्तो॑षाम॒ त्वया॑ सु॒वीरा॒ द्राघी॑य॒ आयुः॑ प्रत॒रं दधा॑नाः ॥११॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (ये) हम (देव-गोपाः) तुझ राजा द्वारा परिपालित होकर, (उदृचि) इस समस्त भूलोक के विजय करने पर, (ते) तेरे (सखायः) मित्र होकर (शिवतमाः असाम) सबसे अधिक कल्याणकारी हों । हम (त्वां स्तोषाम) तेरी स्तुति करें और (त्वया) तेरे साथ हम भी (सु-वीराः) उत्तमवीर होकर, (द्राघीयः) अति दीर्घ और (प्र तरम्) अति उत्कृष्ट (आयुः) जीवन को (दधानाः) धारण करने वाले हों । इति तृतीयेऽनुवाकः ॥ प्रथम पर्यायः ॥

[२२] राजा के कर्त्तव्य

१–३ त्रिशोकः काण्वः । ४–६ प्रियमेधः काण्वः । गायत्र्यः । षडृचं सूक्तम् ॥

अ॒भि त्वा॑ वृषभा सु॒ते सु॒तं सृ॑जामि पी॒तये॑ ।
तृ॒म्पा व्य॑श्नुही॒ मद॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (वृषभ) बलवन् ! तथा सुखों के वर्षक ! (सुते) अभिषिक्त हुए तेरे प्रति (सुतम्) राष्ट्र का आनन्दप्रद ऐश्वर्य में (अभि पीतये) पालन और उपभोग के लिये (सृजामि) प्रदान करता हूँ । तू (तृम्प) तृप्त हो और (मदन्) आनन्ददायी इस ऐश्वर्य को (वि अश्नुहि) प्राप्त कर ।

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! (मूराः) मूढ लोग (अविष्यवः) तेरे अधीन रक्षा चाहने का बहाना बनाने वाले (मा अदभन्) तेरा विनाश न करें । (उपहस्तानः) तेरा उपहास करने वाले तेरा (मा आदभन्) विनाश न करें । (ब्रह्म-द्विषः) वेद और वेदज्ञ विद्वानों के द्वेषी लोग तेरे ऐश्वर्य का (माकीं वनः) भोग न करें ।

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥[1]

भा०—हे राजन् ! (इह) इस राष्ट्र में (गो-परीणसा) पृथिवी के सभी राजा (महे राधसे) बड़े भारी धनैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझको (मन्दन्तु) प्रसन्न और तृप्त करें । (यथा) जिस प्रकार (गौरः) गौर नामक प्यासा मृग (सरः पिबति) तालाब पर पानी पीता है इसी प्रकार तू इस राष्ट्र के ऐश्वर्य रस का (पिब) पान कर ।

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे पुरुष ! तू (गिरा) अपनी वाणी से, (गोपतिम्) पृथ्वी के पालक, (सत्यस्य सूनुम्) सत्य व्यवहार के उत्पादक और (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा की ऐसी (अभि प्र अर्च) स्तुति कर, (यथा) जिस प्रकार (विदे) वह सर्वत्र जाना जाय ।

१—गोपरीणसा=गो + परि + इन + असुक् ।

आ हर्रयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
यत्राभि संनवामहे ॥ ५ ॥

भा०—(यत्र) जिस (बर्हिषि) वृद्धिशील राजपद पर हम तेरी (अभि संनवामहे) सब प्रकार से स्तुति करते हैं उसी पद पर, (अरुषीः) तेजोमय (हरयः) किरणें जिस प्रकार सूर्य के साथ संगत हैं उसी प्रकार, (अधि ससृज्रिरे) वेगवान् अश्वारोहीगण तुझसे सुसंगत हैं ।

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ६ ॥

भा०—(गावः आशिरम्) गौवें जिस प्रकार स्वामी के लिये दूध उत्पन्न करती हैं उसी प्रकार (वज्रिणे) वज्रधारी (इन्द्राय) राजा के लिये (गावः) भूमियें (मधु) अन्न (दुदुह्रे) उत्पन्न करती हैं । जिसे कि वह खजानों में जमा करता है ।

[२३] राजा के कर्त्तव्य

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । नवर्चं सूक्तम् ॥

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये ।
हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! हे (अद्रिवः) वज्रवन् ! (हुवानः) बुलाया गया तू (मद्र्यक्) मेरी ओर आ, (सोम-पीतये) और राष्ट्र-ऐश्वर्य की रक्षा के लिये (हरिभ्याम्) वेगवान् घोड़ों से (आ याहि) हमें प्राप्त हो ।

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (ऋत्वियः) विशेष काल में यज्ञ करने वाला (होता न) होता जिस प्रकार (सत्तः) आसन पर बैठता है उसी प्रकार तू भी अपने राज्यासन पर यथावसर विराजमान हो । (आनुषक्) जिससे राज्य की प्रजा (तिस्तिरे) विस्तृत हो । (प्रातः) प्रातःकाल (अद्रयः) न दीर्ण होने वाले वीरक्षत्रिय (अयुज्रन्) तेरा दर्शन किया करें ।

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोडाशम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (ब्रह्मवाहः) वेद के विद्वानों का धारण करने वाले ! तेरे लिये (इमा ब्रह्म) ये वेदानुकूल नाना कर्म (क्रियन्ते) किये जाते हैं। तू (बर्हिः आ सीद) उच्च आसन पर विराजमान हो । हे (शूर) शूरवीर ! तू (पुरोलाशम्) समक्ष स्थित राष्ट्र रूप 'पुरोडाश', अर्थात् पुरस्कृत ऐश्वर्य को (वीहि) स्वीकार कर ।

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् ।
उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वेदवाणियों के सेवन करने हारे विद्वान् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (वृत्रहन्) शत्रु और विघ्नों के विनाशक ! तू परम पूजनीय (नः) हमारे (एषु) इन (सवनेषु) कर्मों में और (उक्थेषु) वेद वचनों में, (स्तोमेषु) ज्ञानों और स्तुतियों में (ररन्धि) रमण कर ।

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥

भा०—समस्त (मतयः) मतिशील पुरुष, बछड़ों को (मातरः) गायों के समान (शवस्पतिम्) बलशाली राष्ट्रपति राजा को प्रेम व आदर से (रिहन्ति) छूते तथा उसके सत्ता का आस्वादन करते हैं ।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वामहे ।
न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥

भा०—(तन्वा) तू शरीर द्वारा कार्यों की (राधसे) महासिद्धि करने के लिये (अन्धसः) अन्न और जीवनोपयोगी भोग्य पदार्थों से (मन्दस्व) सदा तृप्त रह । तू (स्तोतारम्) यथार्थ ज्ञान-प्रवक्ता विद्वान् को (निदे) लोक निन्दा का पात्र (न करः) कभी न बनने दे ।

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ।
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! एवं राजन् ! (वयं त्वायवः) हम तुझे चाहते हुए, (हविष्मन्तः) ज्ञान एवं अन्नों से समृद्ध होकर, तेरी (जरामहे) स्तुति करते हैं, प्रार्थना करते हैं (उत) और हे (वसो) सब में व्यापक और सबको बसानेहारे ! (त्वम्) तू (अस्मयुः) हमें चाहने वाला है, तू हमें प्रेम कर ।

मारे अ॒स्मद् वि मु॑मुचो॒ हरि॑प्रिया॒र्वाङ् या॑हि ।
इन्द्र॑ स्वधावो॒ मत्स्वे॒ह ॥ ८ ॥

भा०—हे (हरिप्रिय) ज्ञानशील पुरुषों के प्रिय ! तू (अर्वाङ् याहि) साक्षात् दर्शन दे । हे परमेश्वर (अस्मद्) हमसे (आरे) दूर तू (मा वि मुमुचः) कभी न छूट । हे (स्वधावः) शरीरों को धारण करने वाले समष्टिचेतन्य के स्वामिन् ! एवं अन्न और बल के स्वामिन् ! तू (इह) हमारे इस हृदय-मन्दिर में एवं राष्ट्र में राजा के समान (मत्स्व) आनन्दयुक्त हो ।

अ॒र्वाञ्चं॑ त्वा सु॒खे रथे॒ वह॑तामिन्द्र के॒शिना॑ ।
घृ॒तस्नू॑ ब॒र्हिरा॒सदे॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (सुखे रथे) सुखकारी रथ में (त्वा) तुझको, (घृतस्नू) तेज और बल का प्रस्रवण करने वाले (केशिना) तथा लम्बे २ केशों या बालों से सजे दो घोड़े (बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र के ऊपर (आसदे) अधिष्ठातृ रूप से विराजने के लिये हमारे प्रति (वहताम्) वहन करें ।

[२४] राजा के कर्त्तव्य

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्र्यः । नवर्चं सूक्तम् ॥

उप॑ नः सु॒तमा ग॑हि॒ सोम॑मिन्द्र॒ गवा॑शिरम् ।
हरि॑भ्यां॒ यस्ते॑ अस्म॒युः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! तू (नः) हमारे (सुतम्) उत्पादित, (गवाशिरम्) पृथ्वी पर गौ आदि पशुओं पर आश्रित (सोमम्)

ऐश्वर्यमय राष्ट्र को (उप आ गहि) प्राप्त हो। (यः) जो (हरिभ्याम्) शत्रु राजा के ऐश्वर्य को हरण करने वाले तेरे बल और उत्साह से (अस्मनुः) हमें प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य है वह प्राप्त हो।

तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम्।
कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! तू (मदम्) उस तृप्तिकारक (ग्रावभिः) तथा ज्ञानोपदेशक विद्वानों द्वारा (सुतम्) उत्पादित महाराष्ट्र को (आगहि) प्राप्त कर। (अस्य कुवित् नु तृष्णवः) इससे बहुत अधिक लोग तृप्त होते हैं।

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः।
आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—(इत्था) सत्यस्वरूप (मम गिरः) मेरी वाणियां, (इतः) इधर से (इषिताः) प्रेरित होकर, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा को, (सोमपीतये) ऐश्वर्य प्राप्त करने और उपभोग करने के लिये (आवृते) तथा उसकी रक्षा करने के लिये (अच्छ अगुः) भली प्रकार प्राप्त होती हैं।

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे।
उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥

भा०—(सोमस्य पीतये) राष्ट्र या अन्न आदि ऐश्वर्य के पान या पालन और उपभोग के लिये, (स्तोमैः) स्तुति योग्य आदर-वचनों से हम (इह) राजा को यहां अपने घरों पर (हवामहे) बुलाते हैं, (उक्थेभिः) इन आदर वचनों द्वारा वह हमें (कुवित्) बहुत बार (आगमत्) प्राप्त हो।

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो।
जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (इमे) ये नाना प्रकार के (सोमाः) ऐश्वर्य (सुताः) उत्पन्न हैं। हे (शत-क्रतो) सैकड़ों शक्तियों और प्रजाओं

से युक्त! हे (वाजिनी-वसो) संग्रामकारिणी सेना को बसाने वाले! तू उनको, (जठरे) पेट में अन्न के समान, अपने वश में (दधिष्व) धारण कर।

विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! हम (त्वा) तुझको (वाजेषु) संग्रामों में (धनंजयम्) शत्रु के धन को जीतने हारा और (दधृषम्) शत्रु को परास्त करने हारा (हि) ही (विद्म) जानते हैं। हे (कवे) दीर्घदर्शिन्! (अध) और (ते) तेरे लिये (सुम्नम्) सुख शान्ति की (ईमहे) प्रार्थना करते हैं।

इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब।
आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! तू (गवाशिरम्) पृथ्वी और गौ आदि पशुओं के आश्रय पर आश्रित और (यवाशिरं च) यव आदि अन्न तथा शत्रुओं के नाशक सेनाबलों के आश्रय पर आश्रित (सुतम्) राष्ट्र का (वृषभिः) बलवान् पुरुष सहित, (आगत्या) आकर (पिब) पालन कर।

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये।
एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र! (स्वे ओक्ये) तेरे अपने ही निवासस्थान में (तुभ्य इत्) तेरे ही (पीतये) स्वीकार करने के लिये, (सोमं चोदामि) समस्त राष्ट्र को तुझे अर्पण करता हूँ। (एषः) वह (ते) तेरे (हृदि) हृदय में पिये शीतल जल के समान (रारन्तु) तुझे तृप्त करे।

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे।
कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥

भा०—(सुतस्य पीतये) ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये, (प्रत्नम् त्वा) पुरातन, पूजनीय तुझको, हम (अवस्यवः) अपनी रक्षा के इच्छुक (कुशिकासः) धनों के स्वामी, सर्दार लोग (हवामहे) बुलाते हैं।

वाग्मी, ऐश्वर्यवान्, धनी तेजवी, और ज्ञानी पुरुष 'कुशिक' कहाते हैं। निरु० २ । २५ ॥

[२५] राजा का कर्त्तव्य

१–६ गोतमो राहूगण ऋषिः । ७ अष्टको वैश्वामित्रः । १–६ जगत्यः । ७ त्रिष्टुप् । षडृचं सूक्तम् ॥

अश्वा॑वति प्रथ॒मो गोषु॑ गच्छति सुप्रा॒वीरि॑न्द्र॒ मर्त्य॒स्तवो॒तिभिः॑ ।
तमित् पृ॑णक्षि॒ वसु॑ना॒ भवी॑यसा॒ सिन्धु॒मापो॒ यथा॒भितो॒ विचे॑तसः १

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (तव ऊतिभिः) तेरे प्रस्तुत किये रक्षा-साधनों से, (सु-प्रावीः) मनुष्य उत्तम रीति से रक्षा करने में समर्थ होकर, (अश्वावंति) घोड़ों से युक्त संग्राम में (प्रथमः) सबसे प्रथम अग्रगण्य हो जाता है और (गोषु) गौ आदि पशुओं पर भी वह (प्रथमः) उत्कृष्ट स्वामी हो जाता है। (वि-चेतसः) विविध ज्ञानों से युक्त पुरुष (त्वा अभितः) तुझे ही सब ओर से इस प्रकार प्राप्त होते हैं (यथा) जैसे (आपः) जलधाराएं (सिन्धुम्) समुद्र को प्राप्त होती हैं। तू (तम् इत्) उस पुरुष को (भवीयसा वसुना) प्रभूत धनैश्वर्य से (पृणक्षि) संयुक्त करता है जो तेरी शरण आता है।

आपो॒ न दे॒वीरुप॑ यन्ति हो॒त्रिय॑म॒वः प॑श्यन्ति॒ वित॑तं॒ यथा॒ रजः॑ ।
प्रा॒चैर्दे॒वासः॒ प्र ण॑यन्ति देव॒युं ब्र॑ह्म॒प्रिय॑ं जोषयन्ते व॒रा इ॑व ॥ २ ॥

भा०—(देवीः आपः न) जल जिस प्रकार नीचे प्रदेश की ओर बह आते हैं इसी प्रकार (होत्रियम्) सबको रक्षा देने में समर्थ तुझको (देवीः आपः) दानशील आप्त प्रजाएं (उप यन्ति) प्राप्त होती हैं और (यथा रजः) जिस प्रकार आकाश में सूर्य के फैले प्रकाश को लोग देखते हैं उसी प्रकार लोग (विततं अवः) तेरे विस्तृत रक्षणसामर्थ्य को भी (पश्यन्ति) देखते हैं (देवासः) विद्वान् पुरुष (देवयुम्) विद्वानों के प्यारे तुझको (प्राचैः) उत्कृष्ट पद पर (प्रणयन्ति) प्राप्त कराते हैं। (वराः इव)

वर के सम्बन्धी जिस प्रकार अपने प्रिय वर को प्रीति से देखते हैं उसी प्रकार (ब्रह्मप्रियम्) वेद और वेदज्ञ विद्वानों के प्यारे तुझको (वराः) समस्त श्रेष्ठ पुरुष (जोषयन्ते) प्रेम से चाहते हैं।

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥

भा०—हे राजन् ! परमेश्वर ! (यतस्रुचा) वीर्य की रक्षा करने वाले, अथवा अपने प्राणों की रक्षा करने वाले (या) जो (मिथुनः) स्त्री पुरुष तेरी (सपर्यतः) पूजा सत्कार करते हैं तू (द्वयोः अधि) उन दोनों को (उक्थ्यम्) उपदेश करने योग्य ज्ञानमय (वचः) आज्ञा-वचन (अदधाः) प्रदान करता है। (ते व्रते) तेरी नियम-व्यवस्था में (असंयतः) नियम से न रहने वाला पुरुष (क्षेति) विनाश को प्राप्त होता है। (सुन्वते यजमानाय) तेरी आज्ञा पालन करने वाले, तेरे प्रति कर-प्रदान या मनोयोग देने वाले या तेरी उपासना, पूजा करने वाले पुरुष की (भद्रा) सुखदायिनी कल्याणी (शक्तिः) शक्ति (पुष्यति) पुष्ट होती है।

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥

भा०—मनुष्य जिस प्रकार (शम्या) शमी वृक्ष की लकड़ी द्वारा (इद्धाग्नयः) अग्नि प्रदीप्त करते हैं उसी प्रकार (ये) जो (सुकृत्यया) अपनी उत्तम धर्मानुकूल क्रिया द्वारा (इद्धाग्नयः) अपने अग्निहोत्रादि की अग्नियों को प्रज्वलित करते हैं वे (अंगिराः) ज्ञानवान् पुरुष (प्रथमम्) सबसे उत्कृष्ट (वयः) अन्न ज्ञान और बल को (दधिरे) धारण करते हैं। वे लोग (पणेः) व्यवहारशील लोगों के योग्य (सर्वं भोजनम्) समस्त भोगों को (सम् अविन्दन्त) प्राप्त करते हैं। वे (नरः) पुरुष ही (अश्वावन्तं गोमन्तं पशुम्) घोड़ों और गौओं से समृद्ध पशुधन को भी (सम् अविन्दन्त) प्राप्त करते हैं।

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥

भा०—(अथर्वा) प्रजाओं का अहिंसक राजा (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ होकर (यज्ञैः) परस्पर संगतिकारक श्रेष्ठ उपायों द्वारा (पथः) नाना उत्तम मार्गों को (तते) विस्तृत करता है। (ततः) तब वह (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी (व्रत-पाः) उत्तम नियमों का पालक (वेनः) कान्तिमान् (आ अजनि) हो जाता है। (उशनाः) वही कान्तिमान्, (काव्यः) क्रान्तदर्शी (गाः) वाणियों को कवि के समान, (गाः) प्राप्त होने वाली प्रजाओं को (आ आजत्) उत्तम मार्ग पर चलाता है। (यमस्य) उस नियन्ता राजा के (जातम्) उत्पन्न हुए (अमृतम्) अमृतस्वरूप राष्ट्रसुख को या अन्न को (सचा) हम सब एक साथ ही (यजामहे) प्राप्त करें।

बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ६

भा०—(यत्) जिस राज्य में (बर्हिः वा) धान्य (स्वपत्याय) उत्तम सन्तानों की पुष्टि के लिये (वृज्यते) प्रदान किया जाता है, (वा) और जहां (अर्कः) अर्चना करने वाला या पूज्य विद्वान् (दिवि) प्रतिदिन (श्लोकम्) वेदवाणी का (आघोषते) प्रचार करता है, (यत्र) और जिस राज्य में (कारुः) क्रियावान् (उक्थ्यः) तथा वेदों के सूक्तों का प्रवक्ता (ग्रावा) विवेकी पुरुष (वदति) धर्म का निर्णय करता है, (तस्य इत्) उसके ही (अभिपित्वेषु) प्रयत्नों में (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष भी (रण्यति) सुखी होता है।

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥७॥

भा०—(वृष्णः) समस्त सुखों के वर्षक और बलवान् परमेश्वर की (उग्राय) भयदायिनी (पीतिम्) आदानशक्ति और पालन शक्ति को, हे

(हर्यश्व) वेगवान् घोड़े से युक्त राजन्! (तुभ्यम्) तेरे प्रति (सुतस्य अर्थे) सुसम्पन्न राष्ट्र के प्राप्त करने के लिये (प्र इयर्मि) भली प्रकार प्रेरणा करता हूँ। हे (इन्द्र) राजन्! तू (इह) इस राष्ट्र में (धेनाभिः) सबको रस देने वाली वेदवाणियों द्वारा, (विश्वाभिः धीभिः) समस्त कार्यों और बुद्धियों द्वारा और (शच्या) महती शक्ति द्वारा (गृणानः) सबको सत्योपदेश देने हारा होकर (मादयस्व) सबको तृप्त एवं प्रसन्न कर। इति तृतीयोऽनुवाके। द्वितीय पर्यायः॥

[२६] राजा और ईश्वर का वर्णन

१-३ शुनःशेपः। ४-६ मधुछन्दा ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ १६ गायत्र्यः। षडृचं सूक्तम्॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये॥ १॥

भा०—(योगे-योगे) प्रत्येक संग्राम में (वाजे-वाजे) और प्रत्येक बल के कार्य में (सखायः) हम मित्र राजागण (ऊतये) रक्षा के लिये अति बलवान् तथा (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् तथा महान्-राजा को (हवामहे) पुकारते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—(योगे-योगे) प्रत्येक योग-समाधि में और (वाजे-वाजे) प्रत्येक ज्ञानकर्म में, हम अपनी रक्षा, ज्ञान, प्रीति, समृद्धि आदि के लिये परमात्मा की प्रार्थना करें।

आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः।
वाजेभिरुप नो हवम्॥ २॥

भा०—वह राजा (यदि श्रवत्) यदि हमारी प्रार्थना सुन ले तो (घ) निश्चय से अवश्य (सहस्रिणीभिः) सहस्रों पुरुषों व ऐश्वर्यों को अपने साथ लाने वाली (ऊतिभिः) रक्षाकारी सेनाओं के साथ (आ गमत्)

जाय और (वाजेभिः) अपने समस्त वीर्यों, बलों और अन्नों सहित (नः) हमारे (हवम्) यज्ञ या संग्राम के स्थल में (उप आ गमत्) प्राप्त हो।

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ३ ॥

भा०—(प्रत्नस्य ओकसः) पुरातन काल से आए राष्ट्र के (नरम्) सेनानायक, (तुवि-पतिम्) तथा बहुत से शत्रुओं का मुकाबला करने में समर्थ (यम्) जिस (ते) तुझको (पिता) पहिले मेरे पिता ने (हुवे) बुलाया था उस सेनापति को मैं भी (अनु हुवे) अपनी सहायता के लिये याद करता हूँ।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ४ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष, (ब्रध्नम्) राष्ट्र को उत्तम व्यवस्था में बांधने वाले, (अरुषम्) अग्नि के समान देदीप्यमान, (तस्थुषः) वृक्ष पर्वतादि पदार्थों के (परि) ऊपर (चरन्ताम्) वायु के समान बलपूर्वक विचरण करने वाले पुरुष को, राजपद पर (युञ्जन्ति) नियुक्त करते हैं। (दिवि) इसके स्वर्ग के समान उत्तम राज्य में (रोचना) नक्षत्रों के समान तेजस्वी प्रजागण (रोचन्ते) आनन्द पूर्वक निवास करते हैं।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ५ ॥

भा०—विद्वान् लोग (अस्य) इसके (रथे) रमण करने योग्य राष्ट्र में, (वि पक्षसा) विविध पक्षों या मन्तव्यों को स्वीकार करने वाले, तथा (काम्या) कान्तिमान् (हरी) उभयपक्ष के दो ऐसे प्रमुख नेता-विद्वानों को (युञ्जन्ति) नियुक्त करें जो (शोणा) बुद्धिमान् (धृष्णू) तथा पर-पक्ष को धर्षण करने में समर्थ और (नृ-वाहसा) अन्य विद्वान् पुरुषों को अपने पीछे चलाने में समर्थ हों।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मर्याः) मनुष्यो ! (अकेतवे) राजा अज्ञानी पुरुष को (केतुम् कृण्वन्) ज्ञान देता है और (अपेशसे) धनरहित पुरुष को (पेशः कृण्वन्) धन प्रदान करता है। हे राजन् (उषद्भिः) उषाकालों से प्रकाशित सूर्य के समान (सम् अजायथाः) तू शत्रु-संतापक होकर प्रकट होता है।

[२७] धनाढ्यों के प्रति राजा का कर्त्तव्य

गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौवृषी। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। षड्र्चं सूक्तम् ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! (यथा त्वम्) तेरे समान (यत्) जब (अहम्) मैं (वस्वः) ऐश्वर्य का (एक इत्) एक मात्र (ईशीय) स्वामी होऊं तब (गो-सखा) समस्त पृथ्वी का मित्र अथवा वाणी का विद्वान् पुरुष (मे स्तोता स्यात्) मुझे यथार्थ प्रवचन करने वाला हो।

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

भा०—(यद्) जब (अहम्) मैं (गोपतिः स्याम) भूमियों और गौवों का स्वामी हो जाऊं तो (अस्मै) मैं इस बुद्धिमान् विद्यार्थी को (शिक्षेयम्) शिक्षा दूं और हे (शचीपते) शक्ति के स्वामिन् ! (अस्मै दित्सेयम्) इसको मैं धन देने की भी इच्छा करूं।

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सुन्वते यजमानाय) यज्ञ करने वाले दानशील एवं ईश्वरोपासना करने वाले पुरुष के लिये, अथवा ज्ञान प्रदान करने वाले पुरुष के लिये (ते) तेरी (सूनृता) उत्तम, ज्ञानमयी वाणी ही

(धेनुः) कामधेनु के समान (पिप्युषी) पुष्ट करनेहारी होकर (गाम् अश्वम्) नाना गौ, भूमि और अश्व आदि धन को भी (दुहे) प्रदान करती है।

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।
यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (स्तुतः) स्तुति किया जाकर (मघम्) ऐश्वर्य (दित्ससि) प्रदान करना चाहता है, तब (ते) तेरे (राधसः) ऐश्वर्य या कार्य साधन के उपाय का कोई (देवः) दिव्य शक्ति भी (वर्ता) बाधक (न) नहीं है और (न मर्त्यः) न कोई मनुष्य ही तेरा बाधक होता है।

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥

भा०—(यज्ञः) व्यवस्थित राष्ट्र (इन्द्रम्) राजा को (अवर्धयत्) बढ़ाता है, (यद्) जब वह (दिवि) ज्ञानपूर्वक व्यवहार में (ओपशम्) सब प्रकार से स्थिति (चक्राणः) करता हुआ (भूमिम्) भूमि को (वि-अवर्तयत्) विविध उपायों से काम में लाता है।

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विश्वा) समस्त (धनानि) धनों को (जिग्युषः) विजय करने हारे और (वावृधानस्य ते) नित्य वृद्धिशील जो तू है (ऊतिम्) उससे रक्षा की (वयं) हम (वृणीमहे) प्रार्थना करते हैं।

[२८] राजा का कर्त्तव्य

गोसूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी । १, २ गायत्र्यौ । ३, ४ त्रिष्टुभौ । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) राजा (यद्) जब (वलम्) राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को (अभिनत्) तोड़ डालता है, तब (सोमस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य के (मदे) बल से, (रोचना अन्तरिक्षम्) रुचिकर प्रदेश को भी (वि अतिरत्) विशेष रूप से विस्तृत कर देता है।

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ २ ॥

भा०—राजा (वलम्) राष्ट्र के घेरने वाले को (अर्वाञ्चं नुनुदे) नीचे गिरा देता है (गुहाः सतीः) गुह्य स्थान में छुपी हुई (गाः आविः कृण्वन्) गौ और भूमियों को प्रकट करता हुआ (अंगिरोभ्यः) तेजस्वी पुरुषों को (उत् आजत्) प्रदान करता है। तथा परमेश्वर (वलम्) अन्तःकरण के आवारक तमस् को दूर करके, (गुहा) हृदय-गुहा में छुपी (गाः) ज्ञानरश्मियों या वेदवाणियों को, (अंगिरोभ्यः) ज्ञानी पुरुषों के लिये (आविः कृण्वन्) प्रकट करता हुआ उनको प्रदान करता है।

इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च।
स्थिराणि न पराणुदे ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रेण) परमेश्वर ने ही (दिवः) आकाश के (रोचना) उज्वल पिण्ड, ग्रह, नक्षत्र आदि (दृढानि) दृढ रूप से (दृंहितानि) व्यवस्थित कर दिये हैं। वे सब (न परा-नुदे) फिर शीघ्र नष्टभ्रष्ट न होने की रीति से ही (स्थिराणि) स्थिर हैं।

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते।
वि ते मदा अराजिषुः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (स्तोमः) तेरी स्तुतियों का समूह (अपाम् ऊर्मिः इव) समुद्र के तरङ्ग के समान (मदन् इव) मानो हर्ष से तरङ्गित सा होकर (अजिरायते) बड़े वेग से उमड़ा सा पड़ता है। (ते मदाः) तेरे आनन्द, प्रमोद और उत्साह के कार्य (विअराजिषुः) विविध रूपों में विराजते दीख रहे हैं।

[२९] राजा के कर्त्तव्य

ऋषिर्गृत्समदः । गायत्र्यः । इन्द्रः । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः ।
स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! प्रभो ! (त्वं हि) तू निश्चय से (स्तोम-वर्धनः) प्रजासमूहों को बढ़ाने वाला, अथवा स्तुतिसमूहों से हृदय में वृद्धि को प्राप्त होने वाला है। तू (उक्थ-वर्धनः असि) प्रशंसनीय गुणों को बढ़ाने वाला एवं वेद के सूक्तों से जानने योग्य है। (उत) और (स्तो-तृणाम) स्तुतिकर्त्ता एवं यथार्थ प्रवक्ता विद्वानों का (भद्र-कृत) कल्याणकारी है।

इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।
उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥

भा०—(सु-राधसम्) केशों वाले घोड़े उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (यज्ञम्) सुव्यवस्थित राष्ट्र जिस प्रकार (सोम-पेयाय) ऐश्वर्य के प्राप्त कराने के लिये समर्थ हो सके इस निमित्त (इन्द्रम् इत्) राजा को (उप वक्षत) हमें प्राप्त कराते हैं।

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जब (विश्वाः स्पृधः) समस्त शत्रुसेनाओं को (अजयः) विजय करो तब, (नमुचेः) जीता न छोड़ने लायक शत्रु के (शिरः) शिर को (अपाम्-फेनेन) जलों के फेनों के द्वारा अर्थात् आसानी से ही तू काट सकता है।

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः ।
अव दस्यूँरधूनुथाः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (मायाभिः) नाना निर्माण कौशलों से (उत्सिसृप्सतः) ऊपर चढ़ने की इच्छा करने वाले और (द्याम् आरुरुक्षतः)

आकाश में चढ़ने वाले (दस्यून्) नाशकारी शत्रुओं को तू (मायाभिः) नाना विज्ञान-कौशलों से (अव अधूनुथाः) निचे गिरा डाल।

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! तू (सोमपाः) राष्ट्र का पालक, (उत्तरः) शत्रु के बल से अधिक बलवान् (भवन्) होकर, (असुन्वाम्) कर प्रदान न करने वाली (संसदम्) संस्था को (विषूची) छिन्न भिन्न करके (वि अनाशयः) विनष्ट कर।

[३०] राजा के कर्त्तव्य

ऋषिर्वरुराङ्गिरसः सर्वहरिर्वा ऐन्द्रः। देवता हरिस्तुतिः। जगत्यः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम्।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥ १

भा०—(महे) बड़े भारी (विदथे) संग्राम में हे राजन्! (ते हरी) तेरे हरणशील अश्वों और उत्साह और पराक्रम की (प्र शंसिषम्) मैं प्रशंसा करूं और (वनुषः) शत्रु के नाशकारी (ते) तेरे (हर्यतम्) कमनीय (मदम्) आनन्द उत्सव का (प्र वन्वे) अच्छी प्रकार आनन्द लाभ करूं। (यः) जो (हरिभिः) ज्ञानवान् पुरुषों के साथ आकर (घृतं न) जल के समान शान्तिप्रद एवं घृत के समान पुष्टिप्रद सुन्दर अन्न आदि (चारु) भोग्य पदार्थ (आ सेचते) प्रदान करता है। (हरि-वर्पसम्) कमनीय शोभा से युक्त (त्वा) तुझे (गिरः) स्तुतियां (आ विशन्तु) प्राप्त हों।

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् (योनिम्) सबके आश्रयभूत, (हरिम्) दुःखों को हरण करने वाले, शूरवीर के (दिव्यं सदः यथा) दिव्य आश्रय-

गृह के समान (हरी हिन्वन्तः) उत्साह और बल को बढ़ाते हुए (अभि सम् अस्वरन्) साक्षात् उसकी स्तुति करते हैं और (धेनवः न) गौएं जिस प्रकार अपने स्वामी को तृप्त करती हैं उसी प्रकार (यम्) जिस इन्द्र को वे विद्वान् पुरुष (हरिभिः) मनोहर पदार्थों और वेगवान् सैनिकों से (आपृणन्ति) सब तरह पुष्ट और पालन करते हैं, (इन्द्राय) राजा के उस (हरिवन्तम्) सैनिकों से युक्त (शुष्मम्) बलवान् शत्रुओं के शोषक बल को आप लोग (अर्चत) बढ़ाओ।

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस राजा का (यः) जो (आयसः) लोहे का बना हुआ (हरितः) नीला (वज्रः) खड्ग है (सः) वह (निकामः) सर्वथा मनोहर (हरिः) शत्रुओं के प्राणहर होने से 'हरि' कहे जाने योग्य है। (गभस्त्योः) राजा उसको अपने हाथों में (आ) लेता है। इस राजा का (हरि-मन्यु-सायकः) शत्रु के मद का हरण करने वाला 'मन्यु' रूप बाण भी (द्युम्नी) अति तेजस्वी और (सु-शिप्रः) उत्तम वेग वाला है। (इन्द्रे) राजा के आश्रय (हरिता रूपा) शत्रु नाशक नाना पदार्थ भी (नि मिमिक्षिरे) सर्व प्रकार से बनाते हैं।

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥ ४ ॥

भा०—(दिवि) आकाश में (केतुः न) ध्वजा के समान वह (हर्यतः) कान्तिमान् राजा (अधि धायि) सबके ऊपर अधिष्ठाता रूप में स्थिर किया जाता है। (वज्रः) वह खड्ग को (रंह्या) बड़े वेग से (हरितः न) सूर्य के समान (वि व्यचत्) विविध दिशाओं में फैलाता है। (यः) जो (आयसः) लोहे का बना हुआ (हरि शिप्रः) इन्द्र का बलस्वरूप (अहिम्) सर्प के समान कुटिल पुरुष को (तुदद्) व्यथित करता हुआ,

(हरिम्भरः) हरणशील वीर पुरुषों को पुष्ट करने वाला, (सहस्र-शोकाः) सहस्रों को संतापकारी एवं सहस्रों दीप्तियों से युक्त (अभवत्) हो जाता है।

त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य१मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥

भा०—हे (हरि-केश) रश्मिरूप केशों से युक्त, हे (इन्द्र) राजन्! (पूर्वेभिः) पूर्व के (यज्वभिः) यज्ञ के करने वाले, देवोपासक विद्वान् पुरुषों से (उपस्तुतः) स्तुति किया जाकर (त्वं-त्वम्) तू ही तू (अहर्यथाः) सर्वत्र दिखाई देता है। (त्वं हर्यसि) तू सबको प्रीतिकर है। हे (हरिजात) वेगवान् वीर पुरुषों में सर्वप्रसिद्ध! (विश्वम् उक्थम्) समस्त प्रशंसनीय (हर्यतम्) रुचिकर (असामि) सम्पूर्ण (राधः) ऐश्वर्य (तव) तेरा ही है।

[३१] राजा के कर्त्तव्य

वरुराङ्गिरसः सर्वहरिर्वा ऐन्द्र ऋषिः। हरिस्तुतिर्देवता। जगत्यः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥ १ ॥

भा०—(ता) वे दोनों (हर्यता) कमनीय (हरी) तथा हरणशील, अश्वों के समान, उत्साह और पराक्रम एवं दो प्रधान पुरुष, (वज्रिणम्) वज्र को धारण करने वाले (मन्दिनम्) और अति प्रसन्न एवं अन्यों को संतुष्ट रखने वाले (स्तोभ्यम्) स्तुतियोग्य (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (रथे) रथ के समान रमण साधन इस राष्ट्र में (मदे) आनन्द लाभ के लिये (वहतः) धारण करते हैं। (अस्मै) इस (हर्यते) कमनीय गुणों से युक्त (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य युक्त राजा को (सोमाः हरयः) सौम्य गुण वाले, उत्तम पुरुष, या अधीनस्थ माण्डलिक जन (पुरूणि) बहुत से (सवनानि) ऐश्वर्य (दधन्विरे) प्रदान करते हैं।

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥२॥

भा०—(हरयः) वीर राजागण (कामाय) कमनीय राजा के लिये (अरम्) पर्याप्त ([सवनानि] दधन्विरे) ऐश्वर्यों को लाकर देते हैं और (हरयः) वे वीरजन (स्थिराय) सुदृढ़ सम्राट् के (तुरा हरी) वेगवान् अश्वों या उत्साह, पराक्रम को (हिन्वन्) युद्ध में उत्तेजित करते हैं। (यः) जो (अर्वद्भिः) अश्वों और (हरिभिः) वीर योद्धाओं से (जोषम्) तुष्टि को (ईयते) प्राप्त होता है (सः) वह राजा ही (अस्य) इस राष्ट्र के (हरिवन्तम्) वीर योद्धाओं से सुसज्जित, (कामम्) सुन्दर अभिलाषा करने योग्य राजपद को (आनशे) भोग करता है।

हरि॑श्मशारु॒र्हरि॑केश आय॒सस्तु॑र॒स्पेये॒ यो ह॑रि॒पा अव॑र्धत।
अर्व॑द्भि॒र्यो हरि॑भिर्वा॒जिनी॑वसु॒रति॒ विश्वा॑ दुरि॒ता पारि॑षद्धरी॑ ॥३॥

भा०—(हरि-श्मशारुः) पीतवर्ण की श्मश्रुओं और (हरि-केशः) दीप्तिमान् केशों वाला, (आयसः) लोहे का मानो बना हुआ, (यः) जो (हरि-पाः) वीरसैनिकों का पति होकर, (तुरः-पेये, वाजपेये) वेगवान् साधनों द्वारा राष्ट्र के पालनकार्य में (अवर्धत) शक्तिशाली हो जाता है, वह (वाजिनी-वसुः) बलवती सेनाओं को बसाने हारा, (अर्वद्भिः) वेगवान् (हरिभिः) अश्वारोहियों द्वारा (हरी) अपने उत्साह और पराक्रम से (विश्वा दुरिता) समस्त विपत्तियों को (अति पारिषत्) पार कर जाता है।

स्रु॒वेव॒ यस्य॒ हरि॑णी विपे॒ततुः॒ शिप्रे॒ वाजा॑य हरि॑णी॒ दवि॑ध्वतः।
प्र यत् कृ॒ते च॑म॒से मर्मृ॑ज॒द्धरी॑ पी॒त्वा मद॑स्य हर्य॒तस्यान्ध॑सः ॥४॥

भा०—(यस्य) जिसके (शिप्रे) शीघ्र गतिशील (हरिणी) दोनों बाजू की सेनाएं (वाजाय) संग्राम कार्य के लिये (स्रुवा इव) श्रवणशील दो धाराओं के समान या दो हाथों के समान या यज्ञ के दो स्रुवों के समान (विपेततुः) विशेष रूप से या विविध प्रकारों से गति करती हैं और (हरिणी) वे दोनों सेनाएं (वाजाय दविध्वतः) संग्राम के लिये ही आगे बढ़ती हैं। (यद्) जब (कृते चमसे) अन्नादि से सजाये हुए पात्र में

(मदस्य) तृप्तिकारी (हर्यतः) मनोहर (अन्धसः) अन्न रस का (पीत्वा) पान करके जिस प्रकार पुरुष (हरि ममृंजत्) आगे बढ़ने वाली बाहुओं पर हाथ फेरता है उसी प्रकार वह सेनापति (मदस्य) तृप्तिकारी (हर्यतस्य) तेजोमय (अन्धसः) राष्ट्र को भोग कर (हरी ममृंजत्) अपने उत्साह और पराक्रम को बलवान् करता है।

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत्।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥५॥

भा०—(अत्यः वाजं न) जिस प्रकार अश्व संग्राम को जाता है उसी प्रकार (हरिवान्) वीरयोद्धाओं से युक्त सेनापति (हर्यतस्य) कान्तिमान् राजा के और (पस्त्योः) स्त्री पुरुषों के (सद्म) आश्रय और शरण भूत राष्ट्र को (अचिक्रदत्) प्राप्त होता है। (ओजसा) पराक्रम से ही (मही धिषणा) बड़ी भारी सेना या भूमि (चित् हि) भी उसको (अहर्यत्) अपना स्वामी बनाना चाहती है। हे पृथिवि ! तू (हर्यतः चित्) उस कमनीय राजा के ही निमित्त (बृहत् वयः) बड़ी भारी अन्नादि भोग्य सामग्री (आ दधिषे) प्रदान करती है।

[३२] परमेश्वर की स्तुति

बरुराङ्गिरसः सर्वहरिर्वैन्द्रः। हरिस्तुतिः। १ जगती। २, ३ त्रिष्टुभौ।
तृचं सूक्तम् ॥

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम्।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (आ हर्यमाणः) व्यापता हुआ तू (नव्यं-नव्यम्) सदा नये से नये (प्रियम्) अतिप्रिय (मन्म) मनन करने योग्य गुण को (हर्यसि नु) प्रकट करता है। हे (असुर) बलवन् ! (सूर्याय) सूर्य के समान तेजस्वी (हरये) ज्ञानी पुरुष के लिये (गोः) वेदवाणी के (हर्यतम्)

कमनीय (पस्त्यम्) आश्रय ज्ञाननिधि को (प्र आविः कृधि) अच्छी प्रकार प्रकट कर ।

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥२॥

भा०—हे परमेश्वर ! (जनानाम्) जनों के बीच में (प्रयुजः) योगसमाधि करने हारे योगीजन, (हरिशिप्रम्) दुःखों के विनाशक (हर्यन्तम्) अति कमनीय (त्वा) तुझको (रथे) आनन्दरस रूप में (आ वहन्तु) साक्षात् प्राप्त करें । हे प्रभो ! तू (प्रतिभृतस्य) भेट किये (मध्वः) अमृत (यथा) के समान (हर्यन्) कामना करता हुआ, (सधमादे) एक संग आनन्द लाभ करने के अवसर में, (दशोणिम्) दशों इन्द्रिय या प्राणों से युक्त (यज्ञम्) यज्ञरूप आत्मा को (पिब) स्वीकार कर, अपना अर्थात् जिस प्रकार पूज्य अतिथि प्रेमपूर्वक भेट किये मधुपर्क को खाता है इसी प्रकार वह परमेश्वर हमारे दशप्राणों से युक्त इसे समर्पित आत्मा को अपने आश्रय में लीन करे ।

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥ ३ ॥

भा०—हे (हरिवः) हरणशील प्रलयकारिणी शक्तियों से सम्पन्न ! तू (पूर्वेषां सुतानाम्) पूर्व उत्पन्न किये समस्त जगतों को और पूर्व काल में ज्ञानसम्पन्न जीवात्माओं को (अपाः) अपनी शरण ले चुका है, अपने में प्रलीन कर चुका है । (इदं सवनम्) यह इस प्रकार का स्वीकार करना (ते केवलम्) केवल तुम्हें ही शोभा देता है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (मधुमन्तं सोमम्) ब्रह्मानन्द रस वाले ब्रह्मवित् जीव को (ममद्धि) तू स्वीकार कर । (सत्रा) एक साथ ही (वृषं) उस सुख के वर्षक योगी आत्मा को (जठरे) अपने भीतर (आ वृषस्व) ले ।

भा०—(श्रवस्या) अन्न, यश की प्राप्ति के लिये जिस प्रकार (सस्निम् इव) अश्व को रथ में जोड़ा जाता है उसी प्रकार (इन्द्राय अर्कम्) इन्द्र के लिये अर्चनाकारी मन्त्र को मैं (जुह्वा) वाणी (सम्-अञ्जे) द्वारा प्रकट करता हूँ और (वीरम्) वीर, (दान-ओकसम्) दान के एकमात्र आश्रय, (गूर्त-श्रवसम्) प्रशस्त कीर्तिमान्, (पुरां दर्माणम्) आत्मा के बन्धन रूप कोशों को तोड़ने वाले परमेश्वर (वन्दध्यै) स्तुति करने के लिये, मैं उसी (इन्द्राय अर्कं सम् अञ्जे) प्रभु की स्तुति को प्रकट करता हूँ।

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥

भा०—(अस्मा इद् उ) इस परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये (त्वष्टा) योगी, (सु-अपस्तमम्) उत्तम कर्मों से युक्त, (स्वर्यम्) सुख प्राप्त कराने वाले, (स्वर्यं वज्रम्) ज्ञानवज्र को (रणाय) मोक्षसुख में रमण करने के लिये (तक्षत) तैयार करता है। (कियेधाः) नाना योग भूमियों को क्रमण करता हुआ, (ईशानः) उनको अपने वश करने में समर्थ योगी (येन) जिस (तुजता) अज्ञान-नाशक (वज्रेण) ज्ञानवज्र द्वारा (वृत्रस्य) आवरणशील अज्ञान का नाश करता हुआ (मर्म) उसके रहस्य (विदत्) को प्राप्त करता है।

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ७

भा०—(अस्य मातुः इत् उ) इस सृष्टि के निर्माता का ही (महः) वह महान् कर्म है कि वह (सवनेषु) ईश्वरीय सृष्टि, उत्पत्ति, संहार आदि कार्यों में, (पितुम्) पालन करने योग्य संसार को, (चारु-अन्ना) उत्तम उत्तम अन्न के समान (सद्यः) निरन्तर (पपिवान्) खाता रहता है। वह (विष्णुः) व्यापक (सहीयान्) वशकर्त्ता, (पचतम्) अपनी आत्मा

को साधना द्वारा पकाने वाले मुमुक्षु को (मुषायत्) अचानक ले जाता है और (अद्रिम्) शासनरूप वज्र का (अस्ता) प्रक्षेप्ता वह परमेश्वर (तिरः) अपने पास आये (वराहम्) श्रेष्ठ ज्ञान से पूर्ण, स्तुतिशील, धर्ममेघ रूप सुसमाहित आत्मा को (विध्यत्) विद्ध करता है, उसे अपने प्रेम में वश करता है।

अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८॥

भा०—(अहि-हत्ये) अज्ञान के नाश के लिये (देवपत्नीः) परमेश्वर की पालक शक्तियां और (ग्नाः) ज्ञान योग्य स्तुतिवाणियां (अस्मै इन्द्राय इत् उ) इस परमेश्वर के ही (अर्कम्) अर्चनीय स्वरूप को (ऊवुः) अपने भीतर धारण करती हैं । (उर्वी) विशाल (द्यावापृथिवी) द्यौ और पृथिवी दोनों को वह (परि जभ्रे) सब प्रकार से व्याप्त है और (ते) वे दोनों (अस्य महिमानम्) इसके महान् सामर्थ्य को (न परि स्तः) सीमित नहीं कर सकतीं।

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥

भा०—(अस्य इत् इव) इस परमेश्वर का ही (महित्वम्) महान् सामर्थ्य (दिवः प्र रिरिचे) महान् आकाश से भी कहीं बढ़ कर है। (पृथिव्याः) वह पृथिवी से और (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से भी (परि) परे (प्र रिरिचे) गया हुआ है। (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (स्वरिः) उत्तम शक्तिशाली स्वामी, (अमत्रः) अपरिमित करने में (विश्व-गूर्त्तः) और सबसे वन्दनीय होकर वह (दमे) दमन करने योग्य काम आदि शत्रु के साथ (रणाय) संग्राम के लिये (आ ववक्षे) सब शक्तियों को धारण करता है।

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥

भा०—(अस्य इत् एव) इसके ही (शवसा) बल-पराक्रम से (शुषन्तम्) सूखते हुए (वृत्रम्) अज्ञानरूप वृत को, (वज्रेण) ज्ञानवज्र से (इन्द्रः) वह स्वयं ऐश्वर्यवान् (विवृश्चत्) नाना प्रकार से नष्ट करता है। (श्रवः) वह परमेश्वर (गाः न) सूर्य की रश्मियों के समान (अवनीः) पालन करने वाली श्रेष्ठ भूमियों का (अमुञ्चत्) दान करता है और वह (सचेताः) प्रेमयुक्त होकर (दावने) दानशील पुरुष को (श्रवः) अन्न, ख्याति और ज्ञान (अभि अमुञ्चत्) सब प्रकार से देता है।

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत्।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥

भा०—(अस्य इत्) इस परमेश्वर के ही (त्वेषसा) दीप्तियुक्त प्रखर तेज से, (सिन्धवः) बहने वाले जल (रन्त) नाना प्रकार की क्रीड़ाएं करते हैं। (यत्) वह ही उनको (वज्रेण) अपने बल से (सीम्) सब प्रकार से (परि अयच्छत्) नियम में बांधता है। वह ही (ईशान-कृत्) ऐश्वर्ययुक्त सूर्य, वायु, विद्युत् आदि पदार्थों का रचयिता होकर, (दाशुषे) दानशील पुरुष को स्वयं (दशस्यन्) बहुत ऐश्वर्य प्रदान करता है। (गाधं कः) वह परमेश्वर (तुर्वणिः) अति शीघ्र सबको प्राप्त होने हारा होकर (तुर्वीतये) शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होने वाले साधक पुरुष को (गाधं कः) अपना ज्ञानैश्वर्य प्रदान करता है।

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (ईशानः) सबका स्वामी, (तूतुजानः) सबको तीव्र गति देने हारा और (कियेधाः) न मालूम कितने बल, पराक्रम और ऐश्वर्य को धारण करने हारा है। तू ही (अस्मै वृत्राय)

इस आवरणकारी जगत् के मूल कारण रूप वृत्र पर (वज्रम्) उसके निवारक वज्र का (प्र भर) प्रयोग करता है। हे परमात्मन् ! तू (अर्णो वरध्यै) आप्तजनों को ज्ञान प्राप्त कराने के लिये, (अर्णांसि इष्यन्) ज्ञानसुखों को प्राप्त कराना चाहता हुआ, अपने (तिरश्चा) तीर्णतम परम पद तक पहुँचाने वाले ज्ञानवज्र से (गोः पर्व न) वेदवाणी के एक एक पोरू को (वि रद) विविध रूप से खोल देता है।

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥

भा०—(युधे) निज के भीतरी शत्रुओं से संग्राम करने के लिये (आयुधानि इष्णानः) उपायों को करता हुआ, (शत्रून् ऋधायमाणः निरिणाति) आत्मा के बल को काटने वाले काम, क्रोध आदि को विनाश करता हुआ, साधक आगे बढ़ता है। तब वह इस परमेश्वर के ही पूर्व किये सृष्टि रचना आदि कर्मों की स्तुति करे। क्योंकि वह ही (उक्थैः नव्य) स्तुति-वचनों से स्तुति के योग्य है।

अस्येदु भिया गिरयश्च दृढा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥१४॥

भा०—(अस्य इत् उ भिया) इसके ही भय से (गिरयः च दृढाः) समस्त पर्वत दृढ़ होकर बैठे हैं। (अस्य जनुषः च भिया) इस सर्वोत्पादक परमेश्वर के ही बल से (द्यावा च भूमा) आकाश और भूमि दोनों लोक (तुजेते) चल रहे हैं, कांपते हैं। (वेनस्य) इसी ज्ञानवान् मेधावी, कान्तिमान् परमेश्वर से (ओणिम्) रक्षा की (उप उ जोगुवानः) प्रार्थना करता हुआ (नोधाः) स्तुतिशील पुरुष, (सद्यः वीर्याय भुवत्) शीघ्र ही वीरकर्म करने के लिये हो जाता है।

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥

भा०—(एषाम्) इन पदार्थों में से (त्यत्) वही पदार्थ (अस्मै इत् उ) इस परमेश्वर के प्रति (अनु दायि) समर्पित किया जाता है (यत्) जिसको कि (एकः) एकमात्र (भूरेः) भारी ऐश्वर्य का (ईशानः) स्वामी वह परमेश्वर (वन्ने) स्वीकार करता है। (इन्द्रः) वह परमेश्वर (सौवश्व्ये) उत्तम किरणों से युक्त (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पद प्राप्त करने के निमित्त (पस्पृधानम्) स्पर्धा करते हुए (सुष्विम्) उत्तम यत्नशील (एतशम्) आवागमनकारी जीवात्मा की (प्र आवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करता है।

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

भा०—हे (हारियोजन) ज्ञानी पुरुषों से योग द्वारा साक्षात् करने योग्य (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते एव) तेरे ही लिये (गोतमासः) वेदवाणी में निष्ठ विद्वान् पुरुष (सु-वृक्ति) उत्तम हृदयकारी (ब्रह्माणि) वेद मन्त्रों और ब्रह्मज्ञान के वचनों का (अक्रन्) उच्चारण करते हैं। (एषु) उनमें तू (विश्व-पेशसं धियम्) नाना मनोहर स्वरूप वाली धारणावती बुद्धि को (धाः) प्रदान करता है। वह परमेश्वर (प्रातः) प्रातःकाल (मक्षू) शीघ्र (आजगम्यात्) उपासना करने योग्य है।

[३६] ईश्वर-स्तुति

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् १

भा०—जो परमेश्वर (एक इत्) एकमात्र (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के लिये (हव्यः) स्तुति करने योग्य है, (तम् इन्द्रम्) उस परमात्मा को (आभिः गीर्भिः) इन वाणियों से (अभि अर्च) साक्षात् स्तुति करता हूँ। (यः) जो (वृषभः) सुखों की वर्षा करने हारा और वृषभ के समान

(वृष्ण्यावान्) बलवीर्यों से युक्त, (सत्यः) सत्यस्वरूप, (सत्वा) सत् पदार्थों का स्वामी, (सहस्वान्) परमशक्तिमान्, (पुरु-मायः) पूर्ण ज्ञानवान्, एवं (पुरु-मायः) अनेक निर्माणकारिणी शक्तियों से युक्त (पत्यते) जाना जाता है।

तमु॒ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरो॒ नव॑ग्वाः स॒प्त विप्रा॑सो अ॒भि वा॒जय॑न्तः।
न॒क्ष॒द्दा॒भं तत॑रिं पर्वते॒ष्ठामद्रो॑घवाचं म॒तिभिः॒ शवि॑ष्ठम् ॥ २ ॥

भा०—(नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व पालक, (नवग्वाः) नव स्तुति-वाणियों को उच्चारण करने वाले, (सप्त) सातों प्राण जिस प्रकार आत्मा की उपासना करते हैं उसी प्रकार उनके समान परमात्मा की उपासना करने वाले, (विप्रासः) तथा परम मेधावी, (तम् उ अभि वाजयन्तः) उसी का ही साक्षात् ज्ञान लाभ करते हुए स्तुति किया करते हैं। वे (नक्षद् दाभम्) दोषों और शत्रुओं के नाशक, (ततुरिम्) दुःखों से तारने हारे, (पर्वतेष्ठाम्) सर्वोच्च, (अद्रोघ-वाचम्) द्रोहरहित आज्ञा के देने वाले, (शविष्ठम्) अति बलशाली उस परमेश्वर को (मतिभिः) मनन योग्य स्तुतियों द्वारा मनन करते या प्राप्त होते हैं।

तमी॑मह॒ इन्द्र॑मस्य रा॒यः पु॑रु॒वीर॑स्य नृ॒वतः॑ पुरु॒क्षोः।
यो अस्कृ॑धोयुर॒जरः॒ स्व॑र्वा॒न् तमा भ॑र हरिवो माद॒यध्यै॑ ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अस्कृधोयुः) अविनाशी, (अजरः) अजर, (स्ववान्) तथा सुख का स्वामी है, हे (हरिवः) शक्तियों के स्वामिन्! तू (मादयध्यै) समस्त जीवों को तृप्त करने के लिये (आ भर) उसको हमें प्राप्त करा। हम लोग (पुरु-वीरस्य) बहुत से वीर पुरुषों से युक्त, (नृवतः) मनुष्य सेवकों से युक्त, (पुरु-क्षोः) बहुत सी अन्न समृद्धि से युक्त (रायः) ऐश्वर्यों की (तम् इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर से (ईमहे) याचना करते हैं।

तन्नो॒ वि वो॑चो॒ यदि॑ ते पु॒रा चि॑ज्जरि॒तार॑ आन॒शुः सु॒म्नमि॑न्द्र।
कस्ते॑ भा॒गः किं वयो॑ दुध्र खिद्वः॒ पुरु॑हूत पुरूवसोऽसुर॒घ्नः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (पुरु-हूत) बहुतसी प्रजाओं से रक्षकरूप में बुलाये जाने योग्य ! हे (पुरु-वसो) बहुत ऐश्वर्यों से युक्त ! एवं बहुत से लोकों में बसने और बहुतों को बसाने में समर्थ ! हे (खिद्रः) शत्रुओं के खेदजनक, (यदि) जिस प्रकार से (पुरा चित्) पहले भी (जरितारः) तेरे स्तुतिकर्त्ता (ते सुम्नम्) तेरे सुखकारी ऐश्वर्य को (आनशुः) प्राप्त करते थे। (नः) हमें भी (तत् वि वोचः) उसका विशेष रूप से उपदेश कर कि (असुरघ्नः) असुरों का विनाश करने वाला जो तू है उसका वह (कः भागः) कौनसा ऐश्वर्य था और (किं वयः) कौनसा उपादेय अन्न या बल था।

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥

भा०—(यस्य) जिस पुरुष की (वेपी) क्रिया शक्ति से युक्त (वक्वरी) तथा ज्ञानोपदेश करने वाली (गीः) वाणी, (रथेष्ठाम् इन्द्रम्) ज्ञान वज्र को हाथ में लिये तथा परमानन्द रस में स्थित उस ऐश्वर्यवान् आत्मा के विषय में (पृच्छन्ती) प्रश्न करती हुई, (तुवि-ग्राभम्) बहुत से लोकों का वशीकर्त्ता, (तुवि-कूर्मिम्) विश्वकर्मा, (रभोदाम्) बलप्रद, ज्ञानप्रद परमेश्वर की (गातुम्) स्तुति करना (इषे) चाहती है, वही पुरुष (तुम्रम्) उस सर्वव्यापक को (अच्छ) भली प्रकार (नक्षते) प्राप्त कराता है।

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन।
अच्युता चिद् वीडिता स्वोजो रुजो वि दृढा धृषता विरप्शिन् ६

भा०—हे (स्वतवः) स्वयं बलस्वरूप परमेश्वर ! (अया) इस (मायया) प्रकृति की शक्ति से (ह) ही (आवृधानम्) बढ़ाने वाले (त्यम्) उस अज्ञानावरण को, (मनोजुवा) मन से प्राप्त होने योग्य (पर्वतेन) पालनकारी ज्ञानवज्र द्वारा (वि रुजः) विविध प्रकार से नष्ट कर। हे महान् ! (स्वोजः) उत्तम बलशालिन् तू (अच्युता) न च्युत होने वाली,

(वीळिता) बल वाली (दृढा) दृढ़ अज्ञान की सेनाओं को (धृषता) धर्षण करने वाले बल से (वि रुजः) विनाश कर ।

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥

भा०—(वः) हे मनुष्यो ! आप लोग (तम्) उस (शविष्ठम्) अति शक्तिशाली (प्रत्नम्) पुराण पुरुष को (प्रत्नवत्) पुरातन विद्वानों के समान ही (नव्यस्या धिया) उत्तम २ स्तुतियों से (परि तंसयध्यै) अलंकृत करने का यत्न करो । (सः) वह (सु-ब्रह्मा) उत्तम पद तक पहुँचाने में समर्थ एवं समस्त उत्तम पद और पदार्थों को धारण करने वाला, (इन्द्रः) महान् ऐश्वर्य युक्त परमेश्वर, (अनिमानः) अनन्त बलशाली होकर (विश्वानि) समस्त (दुर्गहाणि) दुर्गम संकटों से (अति वक्षत्) पार कर देता है ।

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृषन्) सुखों के वर्षण करने हारे तू ! तू (द्रुह्वणे जनाय) द्रोहशील पुरुष के सन्ताप के लिये (पार्थिवानि दिव्यानि अन्तरिक्षा) पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष के पदार्थों को (आ दीपय) खूब अच्छी प्रकार प्रज्वलित कर । (तान्) उन द्रोही पुरुषों को (शोचिषा) ज्वालामय तेज से (विश्वतः तप) सब ओर से संतप्त कर । (ब्रह्म-द्विषे) ब्रह्मज्ञानी पुरुषों के शत्रुओं के नाश के लिये (क्षाम् अपः च) पृथिवी और जलों को भी (शोचय) तपा ।

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अजुर्य) अविनाशिन् ! परमेश्वर ! तू (दिव्यस्य जनस्य) दिव्य मनुष्यों और (पार्थिस्य) पृथिवी पर उत्पन्न (जगत्) प्राणी संसार का

(राजा भुवः) राजा है। हे (त्वेष-संदृक्) उज्ज्वल दृष्टि वाले प्रभो ! तू (दक्षिणे-हस्ते) दायें या चतुर हाथ में (वज्रं धिष्व) वज्र को धारण कर। (विश्वाः मायाः) तू समस्त प्रज्ञाओं को (वि दयसे) विविध प्रकार से धारण करता है। अथवा (विश्वाः मायाः) समस्त छलों का (वि दयसे) विविध प्रकार से नाश करता है।

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (शत्रु-तुर्याय) शत्रु के नाश के लिये, (अमृध्राम्) अविनाशी (बृहतीम्) बड़ी भारी (संयतम्) सुसंयत (सु-अस्तिं) उत्तम स्थिति हमारे लिये तैयार कर। (यया) जिससे हे (वज्रिन्) शक्तिधर ! तू (दासानि) विनाशकारी तथा (वृत्रा) विघ्नकारी पुरुषों को (आर्याणि करः) आर्य बनाता है और जिससे (नाहुषाणि सुतुका करः) मनुष्य प्रजाओं को उत्तम पुत्र पौत्र सहित बनाता है।

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारे जाने योग्य ! हे (वेधः) सर्व-विधातः ! हे (प्र-यज्यो) सर्वोच्च प्रभो ! तू (विश्व-वाराभिः) सब कष्टों को वारण करने वाली (नि-युद्भिः) युद्धकारिणी शक्तियों से (आगहि) हमें प्राप्त हो। (याः) जिनको (अदेवः) अदानशील और तेजोहीन पुरुष कभी (न वरते) नहीं रख सकता और (देवः) इन्द्रियक्रीड़ा का व्यसनी पुरुष भी (न वरते) नहीं रखता, (आभिः) उन शक्तियों सहित तू (तूयम्) शीघ्र ही (मद्र्यद्रिक्) मेरी ओर कृपादृष्टि करता हुआ (आ याहि) आजा।

[३७] राजा के कर्त्तव्य और परमात्मा के गुण

वसिष्ठ ऋषिः। त्रिष्टुभः। इन्द्रो देवता। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! तू वह है (यः) जो कि (तिग्मशृङ्गः वृषभः न) तीक्ष्ण सींगों वाले बैल के समान (भीमः) अति भयंकर (एकः) अकेला ही (विश्वाः कृष्टीः) समस्त मनुष्यों को, (प्र च्यावयति) मार गिराता और मार भगाता है, (यः) और जो (शश्वतः अदाशुषः) कभी न देने वाले कंजूस पुरुष के (गयस्य वेदः) घर का धन (सुष्वितराय) उत्तमदाता को (प्र यन्तासि) प्रदान करता है।

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम्) तू (तन्वा) अपने विस्तृत बल से या स्वयं (सुश्रूषमाणः) सेवा करता हुआ, (समर्ये) संग्राम में और यज्ञ में, (त्यत्) समय २ पर विशेष २ (कुत्सम्) शत्रुनाशकारी साधन वा सैन्यबल को (आ अवः) सब प्रकार से प्रयुक्त करता है। (यत्) जब कि तू (अस्मै) इस (दासम्) प्रजा के नाशक (शुष्णम्) प्रजा के शोषक और (कु-यवम्) कुत्सित संगति वाले पुरुष को, (अस्मै) इस (आर्जुनेयाय) अर्जुनी अर्थात् पृथ्वी के हितकारी प्रजागण के लिये (शिक्षन्) दण्डित करता हुआ उसको (अरन्धयः) वश करता है।

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥३॥

भा०—हे (धृष्णो) शत्रुओं के धर्षण करने में समर्थ! ऐश्वर्यवन् प्रभो! तू (धृषता) अपने धर्षण सामर्थ्य या शत्रुनाशक वज्र से (विश्वाभिः ऊतिभिः) तथा अपनी रक्षाकारी सेनाओं से, (सु-दासम्) कल्याण कारक दानशील तथा (वीतहव्यम्) पवित्र अन्न प्राप्त कराने वाले पुरुष की (प्र अवः) उत्तम रीति से रक्षा करता है और (क्षेत्र-साता) क्षेत्र की प्राप्ति के

लिये, (वृत्र-हत्येषु) विघ्नकारी पुरुषों के विनाश करने के कार्यों में (पूरुम्) प्रजा के पालक, (पौरु-कुत्सिम्) बहुत से शत्रुनाशक शस्त्रों को धारण करने वाले, (त्रस-दस्युम्) चोर डाकुओं में त्रास उत्पन्न करने वाले वीरपुरुषों की भी (प्र अवः) अच्छी प्रकार रक्षा करता है।

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥

भा०—हे (नृमणः) पुरुषों द्वारा मनन करने योग्य प्रभो! हे (हर्यश्व) वेगवती महान् शक्तियों में व्यापक! (देव-वीतौ) विद्वानों के संगम के अवसर में (भूरीणि) बहुत से (वृत्राणि) विघ्नों का (हंसि) विनाश करता है। तू (दस्युम्) प्रजा के नाशक चोर डाकू (चुमुरिम्) प्रजा के धन को हड़प जाने वाले, (धुनिम्) प्रजा को त्रास देने वाले पुरुषों को सर्वथा दबा देने के लिये (सु-हन्तु) अच्छे प्रकार मार और उन्हें (नि अस्वापयः) सर्वथा सुला दे।

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वज्र-हस्त) ज्ञानरूप वज्र को हाथ में धारण करने हारे! (तव) तेरे (तानि) वे (च्यौत्नानि) शत्रुओं को पद-दलित करने वाले बल हैं, (यत्) जिससे तू (नव नवतिं च पुरः) ९९, अनेकों पुरों के नाश करने में (सद्यः) शीघ्र ही सफल होता है और (शत-तमा) फिर सौवें। (निवेशने) आश्रयस्थान में (अविवेषीः) प्राप्त हो जाता है और (वृत्रम्) ज्ञान के आवरणकारी (नमुचिम्) अमोच्य, अनादि वासनाबन्धनों का (अहन्) विनाश करता है।

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (रात-हव्याय) अन्नादि भोग्य पदार्थों के त्यागी (दाशुषे) दानशील, (सु-दासे) कल्याणमय दातव्य पदार्थों के स्वामी पुरुष के लिये (ते) तेरे (सना) अनादि सिद्ध (ता) वे २ अनेक (भोजनानि) भोग योग्य पदार्थ हैं । हे (पुरु-शाक) बहुत शक्तियों के स्वामिन् ! (ते वृष्णे) तुझ बलवान् को प्राप्त करने के लिये (वृषणा) बलवान् (हरी) प्राण और अपान को (युनज्मि) योग द्वारा वश करता हूँ और (ब्रह्माणि) हम लोग ब्रह्मविषयक ज्ञान, कर्म और (वाजम्) वीर्य को (व्यन्तु) प्राप्त करें।

मा ते अस्यां संहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसावन्) शक्तिशालिन् ! हे (हरितः) ज्ञानवन् ! (ते पिरिष्टौ) तेरी सेवा या आज्ञा पालन के कार्य में (परादै) उचित कर्त्तव्य का परित्याग करके हम (अघाय) अपराध के भागी (मा भूम) न हों। तू (नः) हमारी (अवृकेभिः) भेड़ियों के स्वभाव से रहित, सौम्य और ईमानदार (वरुथैः) सेना-बलों द्वारा (त्रायस्व) रक्षा कर। हे राजन् ! हम (सूरिषु) विद्वानों के बीच में रहते हुए (तव) तेरे (प्रियासः) प्रिय होकर (स्याम) रहें।

प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (ते अभिष्टौ) तेरी ही इच्छा की अनुकूलता में हम (ते प्रियासः सखायः नरः) तेरे प्रिय मित्रजन तेरी (शरणे) शरण में रहकर (मदेम) आनन्दप्रसन्न रहें। तू (तुर्वशम्) हिंसकों को वश करने में समर्थ (याद्वम्) प्रयत्नशील पुरुष को उसके कर्त्तव्य में सुशीक्षित करे, (अतिथिग्वाय) और अतिथि की सेवा करने वाले के लिये (शंस्यम्) प्रशंसनीय लाभ प्रदान कर।

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युकथशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (ते अभिष्टौ) तेरी इच्छा और शासन में रहते हुए, (उक्थ-शासः) ज्ञानवाणियों का उपदेश करने वाले (नरः) नेता लोग, (सद्यः चित्) सदा ही (उक्था) ज्ञानों का (शंसन्ति) उपदेश करते हैं। (ते हवेभिः) तेरी आज्ञाओं के अनुसार (ये) जो विद्वान् पुरुष (पणीन्) असुरों का (अदाशन्) वध करते हैं, उन हम लोगों को तू स्वीकार कर, ताकि तेरे अभीष्ट उस कार्य में वे योग दे सकें।

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् १०

भा०—हे (नृतम) उत्तम नायक ! (तुभ्यम्) तेरे निमित्त (एते नरां स्तोमाः) ये नेताओं या प्रजाओं के समूह (अस्मद्र्यञ्चः) हमारे सन्मुख (मघानि ददतः) नाना ऐश्वर्यों का प्रदान करते हैं। हे इन्द्र ! (वृत्रहत्ये) शत्रु के नाश करने में तू (तेषां शिवः) उनका कल्याणकारी (सखा) मित्र (भूः) हो और तू (शूरः) शूरवीर होकर (नृणाम्) नेताओं और प्रजाओं का (अविता च भूः) रक्षक हो।

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वावावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (शूर) शूरवीर राजन् ! (ऊती) रक्षा के लिये (स्तवमानः) हमसे स्तुति किया गया तू, (ब्रह्मजूतः) अन्नों तथा बड़े प्रबल अन्नों द्वारा समृद्ध होकर, (तन्वा) अपने शरीर अथवा विस्तृत शक्ति से (वावृधस्व) वृद्धि को प्राप्त कर। (नः) हमें (वाजान्) बल, अन्न और (स्तीन्) पुत्रपौत्र आदि (उप मिमीहि) प्रदान कर। हे राज-पुरुषो ! (यूयम्) आप लोग (सदा) सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम साधनों और अन्नों से (नः पात) हमारी रक्षा करें। इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[३८] ईश्वर स्तुति प्रार्थना

१-३, ४-६ इरिम्बिठिः काण्वः। मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता गायत्र्यः॥ षडृचं सूक्तम्॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
एदं बर्हिः सदो मम॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (आ याहि) तू आ। (ते हि सुषमा) तेरे लिये ही हम समाधिरस को तैयार करते हैं। (इमं सोमं पिब) इसका रसपान या पालन कर। (इदं मम बर्हिः) यह आसन के समान मेरा हृदय है इस पर (आ सदाः) आकर विराजमान हो।

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।
उप ब्रह्माणि नः शृणु॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (ब्रह्म-युजा) परब्रह्म के साथ योग द्वारा युक्त होने वाले (केशिना हरी) केशों वाले घोड़े के समान प्राण और अपान (त्वा वहताम्) तुझे प्राप्त हों। तू (नः) हमारे (ब्रह्माणि) ब्रह्मज्ञान विषयक वेदमन्त्रों का (शृणु) श्रवण कर।

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः।
सुतावन्तो हवामहे॥ ३॥

भा०—(वयम् ब्रह्माणः) वेद और ब्रह्मतत्व के जाननेहारे, (सोमिनः) ब्रह्मरस को प्राप्त करने वाले और (सुतावन्तः) प्राप्त समाधि-रस से सम्पन्न होकर (सोम-पाम्) हम लोग, हे आत्मन्! योगाभ्यास द्वारा ब्रह्मरस का पान या पालन करने वाला जो तू है उसकी (हवामहे) स्तुति करते हैं।

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत॥ ४॥

भा०—हे (गाथिनः) ब्रह्म-स्तुतियों का गान करने हारे! और हे (अर्किणः) अर्चनाशील विद्वान् पुरुषों! आप लोग (इन्द्रम् इत्) ऐश्वर्यवान् आत्मा को ही (अर्केभिः) स्तुतिवचनों से (बृहत् अनूषत) महान् बतलाते हो। उसी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् आत्मा की (वाणीः) वेदवाणियां भी (अनूषत) स्तुति करती हैं।

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रः इत्) ऐश्वर्यवान् आत्मा (वचोः-युजा) वाणी या वाक् शक्ति से बन्धे हुए (हर्योः) हरणशील प्राण और अपान के (आ संमिश्लः) खूब रल-मिलकर व्याप्त है। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आत्मा (वज्री) ज्ञान और वैराग्य रूपी वज्र से युक्त होकर (हिरण्ययः) अति अधिक रमणीय स्वरूप वाला हो जाता है।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर (दीर्घाय) सुदूर देश तक (चक्षसे) देखने के लिये (सूर्यम्) सूर्य को (दिवि आरोहयत्) आकाश में बहुत ऊंचे स्थापित करता है और वही (गोभिः) अपनी किरणों से (अद्रिम्) मेघ को (वि ऐरयत्) विविध प्रकार से चलाता है।

अध्यात्म में—(इन्द्रः) ज्ञानी आत्मा दीर्घदृष्टि को प्राप्त करने के लिये (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी प्राण को (दिवि) मूर्धास्थान में चढ़ा लेता है और वह (गोभिः) प्राणों के बल से, (अद्रिम्) न विदीर्ण होने वाले अविनाशी आत्मा को (वि ऐरयत्) विशेष रूप से आगे बढ़ाता है।

[३९] ईश्वर और राजा

१ मधुच्छन्दाः। २-५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ऋषी। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥

भा०—(वः जनेभ्यः) तुम प्रजाजनों के लिये (विश्वतः परि) सबसे ऊपर विद्यमान, राजा के समान सर्वहितकारी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की हम (परि हवामहे) स्तुति करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वही (केवलः) एकमात्र सुखस्वरूप (अस्माकम् अस्तु) हमारा सर्वस्व आश्रय हो।

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्रः) जब ऐश्वर्यवान् राजा (वलम्) नगर रोधने वाले शत्रु को छिन्न-भिन्न करता है तब वह (सोमस्य मदे रोचना) राष्ट्र की समृद्धि के हर्ष में तृप्त होकर तथा अति कान्तिमान् होकर (अन्तरिक्षम्) शत्रु और अपने बीच के समस्त राजगण को (वि अतिरत्) विविध उपायों से पराजित करता है।

अध्यात्म में—(इन्द्रः यत् वलम् अभिनत्) ज्ञानी आत्मा जब आवरणकारी अज्ञानरूप तम का नाश करता है, तब (सोमस्य मदे रोचना) ब्रह्मरस के हर्ष से अति उज्ज्वल होकर (अन्तरिक्षम्) अपने अन्तःकरण को (वि अतिरत्) विविध रूप से वश करता है।

उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर (अङ्गिरेभ्यः) ज्ञानवान् पुरुषों के लिये, (गुहा सतीः) अन्तःकरण में विद्यमान (गाः) वेदवाणियों को (उत् आवि कृण्वन्) ऊपर प्रकट करता हुआ (वलम्) अन्तःकरण को घेरने वाले अज्ञान को (अर्वाञ्चं नुनुदे) नीचे गिरा देता है।

इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि च।
स्थिराणि न पराणुदे ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रेण) परमेश्वर ने (दिवः) आकाश के (रोचना) प्रकाशमान सूर्य (दृढानि) दृढ़, अभेद्य बनाये और (दृंहितानि च) उनको दृढ़ता से स्थापित किया है। वे (न पराणुदे) फिर न परे हटने के लिये ही (स्थिराणि) स्थिर किये गये हैं। राज-पक्ष में—(इन्द्रेण दिवः रोचना) राजा अपने उत्तम राज्य के उच्च कोटि पर विराजमान पदाधिकारियों को मजबूत बनाता और स्थिर नियत करता है। (न पराणुदे) शत्रुओं से पराजित न होने के लिये वह उनको स्थिर नियत करता है।

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते।
वि ते मदा अराजिषुः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो! (स्तोमः) तेरा स्तुतिसमूह (अपाम् ऊर्मिः इव) आनन्द देता हुआ जलों के तरङ्ग के समान (अजिरायते) वेग से बराबर बढ़ा करता है। (ते मदाः) तेरे हर्ष या आनन्द तरङ्ग (वि अराजिषुः) विविध रूपों में प्रकट होते हैं।

[४०] आत्मा और राजा

मधुछन्दा ऋषिः। मरुतो इन्द्रश्च देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥

भा०—हे वीर पुरुष! (अबिभ्युषा) निर्भीक (इन्द्रेण) राजा के साथ (सं-जग्मानः) संगत होकर तू (सं दृक्षसे हि) बड़ा अच्छा दिखाई देता है। तुम दोनों (समान-वर्चसा) एक समान तेजस्वी होकर (मन्दू) अति आनन्द देने वाले हो।

अध्यात्म में—हे जीव! तू (अबिभ्युषा) अभय परमेश्वर के साथ (संजग्मानः सं दृक्षसे हि) संगत होकर बड़ा अच्छा प्रतीत होता है। तुम दोनों जीव और परमेश्वर समान तेजस्वी होकर (मन्दू) अन्तःकरण को तृप्त करने वाले हो।

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ २ ॥

भा०—(सहस्वत्) अति बलशाली (मखः) राष्ट्रयज्ञ, (इन्द्रस्य काम्यैः) इन्द्र को अति प्रिय लगने वाले, (नवद्यैः) अनिन्द्य, (अभिद्युभिः) तेजस्वी (गणैः) गणों सहित विराजमान (इन्द्रस्य) इन्द्र की (अर्चति) स्तुति करता है ।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥

भा०—(आत्) देह से मुक्त हो जाने के पश्चात् (अह) भी (स्वधाम्) आत्माएं अपनी धारित प्रवृत्ति या इच्छा के (अनु) अनुसार (यज्ञियम्) अपने कर्मानुरूप (नाम) स्वरूप को (दधानाः) धारण करते हुए, (पुनः) फिर भी (गर्भत्वम्) गर्भ को (एरिरे) प्राप्त होते हैं । पुनः जन्म लेते हैं ।

[४१] आत्मा

गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) आत्मा (दधीचः) ध्यान द्वारा प्राप्तव्य प्रभु की (अस्थभिः) तमोनाशक शक्तियों द्वारा, (अप्रतिष्कुतः) किसी से पराजित न होकर, नव नवतीः = ९ × ९० = ८१० (वृत्राणि) ज्ञान के आवरणकारी विघ्नों का (जघान) नाश करता है ।

आत्मा की शक्ति प्राकृतिक तीन गुणों के भेद से तीन प्रकार की । त्रिकाल भेद से ९ प्रकार की । प्रभाव, मन्त्र, उत्साह इन तीन शक्ति भेद से २७ प्रकार की । पुनः सत्व, रजस्, तमस्, इन तीनों के सम विषम भेद से ८१ प्रकार की, दश दिशा भेद से ८१० प्रकार की हो जाती है । इतनी शक्तियों से आत्मा इतनी ही व्युत्थान इन्द्रियों का नाश करता है ।

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।
तद् विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥

भा०—(अश्वस्य) व्यापक आत्मा का (यत्) जो (शिरः) शिर के समान मुख्य अंश (पर्वतेषु) पर्व वाले, या पोल वाले शरीर या मेरु-दण्ड में (अप-श्रितम्) अज्ञानियों की दृष्टि से बहुत दूर अज्ञात रूप में स्थित है, उसको (इच्छन्) प्राप्त करना चाहता हुआ ध्यानयोगी पुरुष (तत्) उसको (शर्यणावति) शर्यणा अर्थात् चेतना से सम्पन्न अपने हृदय या मस्तक भाग में ही ध्यान योग से (विदत्) प्राप्त करता है ।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (अत्र) इस (चन्द्रमसः गृहे) चन्द्रमा के लोक में (त्वष्टुः) उत्पादक सूर्य के (गोः) प्रकाश-किरण का (अपीच्यम्) गया हुआ अंश ही (नाम) विद्यमान है, उसी प्रकार (चन्द्रमसः गृहे) आल्हादजनक सोमचक्र में भी (त्वष्टुः) अज्ञान के नाशक आत्मा रूप सूर्य के (गोः) प्रकाश का (अपीच्यं नाम) स्वरूप प्राप्त है (इत्था) इस प्रकार (अत्र) इस विषय में विद्वान्‌गण (अमन्वत) जानते, मानते हैं ।

[४२] ईश्वर, राजा और आत्मा

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ॥

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् ।
इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥ १ ॥

भा०—(अष्टापदीम्) आठ पदों वाली और (नवस्रक्तिम्) नव प्रकार की रचना वाली, (ऋत-स्पृशम्) सत्य का ज्ञान कराने वाली, (तन्वम्) विस्तृत (वाचम्) वाणी का मैं (इन्द्रात्) ज्ञानैश्वर्यवान् गुरु और परमेश्वर से (परि ममे) पूर्णतया ज्ञान करता हूँ ।

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् ।
इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (यद्) जब तू (दस्यु-हा) दुष्ट पुरुषों का नाश कर रहा (अभवः) होता है, तो (उभे रोदसी) दोनों लोक, (ऋक्षमाणम् त्वा अनु) शत्रु का कर्षण, विनाश या उन्मूलन करते हुए तेरे अनुकूल होकर, (अकृषेताम्) सदा सामर्थ्यवान् बने रहते हैं ।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः ।
सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (सुतम्) तैयार किये हुए रस को (पीत्वी) पान करके कोई वीरपुरुष (उत्तिष्ठन्) उठता हुआ (शिप्रे अवेपयः) अपनी दोनों दाढ़ तृप्त होकर हिलाता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) राजन् ! तू (चमू) अपनी और शत्रु की दो सेनाओं के बीच संग्राम द्वारा, (सुतम्) प्राप्त किये हुए (सोमम्) ऐश्वर्यप्रद राष्ट्र या राजपद को (पीत्वी) प्राप्त करके, (शिप्रे) अपनी बलशाली सेनाओं को (ओजसा) अपने बल पराक्रम से उठता हुआ (अवेपयः) कंपा ।

आत्मा के पक्ष में—(चमू) प्राण और अपान दोनों के बीच में (सुतम्) ध्यान योग से प्राप्त (सोमम्) ब्रह्मरस का पान करके, हे आत्मन् ! (ओजसा उत् तिष्ठन्) अपने ज्ञानबल से मुक्तिमार्ग में उठता हुआ (शिप्रे अवेपयः) बाह्य और आभ्यान्तर कर्मबन्धनों को कंपाकर झाड़ देता है ।

[४३] परमेश्वर से अभिलाषा योग्य ऐश्वर्य की याचना

त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ॥

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (विश्वा द्विषः) समस्त द्वेष युक्त शत्रुओं को (अप भिन्धि) दूर ही से भेद डाल । उनमें भेद नीति का प्रयोग कर । और (बाधः) बाधा या पीड़ा पहुँचाने वाली (मृधः) संग्रामकारी सेनाओं

का (परि जहि) सब प्रकार से विनाश कर और (स्पार्हम्) अभिलाषा करने योग्य (तत् वसु) उस नाना ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त करा।

यद् वीळाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम्।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो ऐश्वर्य (वीळौ) वीर्यवान् बलवान् पुरुष में, (यत् स्थिरे) और जो ऐश्वर्य स्थिर रहने वाले में और (यत्) जो ज्ञान-ऐश्वर्य (पर्शाने) विवेकशील विद्वान् में (पराभृतम्) दूर २ देशों से ला ला कर संचित होता है, (तत्) वह नाना प्रकार का (स्पार्हं वसु) अभिलाषा योग्य ऐश्वर्य हमें (आ भर) प्राप्त करा।

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रभो ! (यस्य) जिस (ते दत्तस्य) तेरे दिये दान को (विश्वमानुषः) सब मननशील मनुष्य (वेदति) जानते और प्राप्त करते हैं (तत्) उस (स्पार्हं वसु) अभिलाषा योग्य ऐश्वर्य को (आ भर) हमें प्राप्त करा।

[४४] सम्राट्

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम् ॥

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः।
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वानो ! (चर्षणीनाम् सम्राजम्) समस्त मनुष्यों में (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (नव्यम्) स्तुति योग्य, (नरम्) सबके नेता, (नृ-षाहम्) सब मनुष्यों को अपने बल से विजय करने वाले, (मंहिष्ठम्) सबसे महान् सम्राट की (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (प्र स्तोत) उत्तम रीति से स्तुति करो या उसको (नृषाहं मंहिष्ठं नव्यं इन्द्रम्) सब मनुष्यों के ऊपर सम्राट् रूप से प्रस्तुत करो।

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥

भा०—(समुद्रे) समुद्र में (अपाम्) जलों का (अवः न) जिस प्रकार प्रवाह आता है उसी प्रकार (यस्मिन्) जिस परमेश्वर में (विश्वानि) समस्त (श्रवस्या) कीर्तिजनक (उक्थानि) वचन (रण्यन्ति) लगते हैं, ठीक उपयुक्त होते हैं।

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् ।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—(तम्) उस (ज्येष्ठ-राजम्) बड़े महाराज, (भरे कृत्नुम्) संग्राम में शत्रुओं के नाशकारी, (महः वाजिनम्) बड़े भारी बलवान्, ऐश्वर्यवान् को, (सनिभ्यः) बड़े दानों के लिये (सु-स्तुत्या) उत्तम स्तुति द्वारा (आ विवासे) सेवा करता हूँ। उसका गुण गान करता हूँ।

[४५] आत्मा परमात्मा

देवरातः शुनःशेष ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ॥

अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

भा०—(अयम् उ ते) यह साधक आत्मा तेरा ही है। (कपोतः इव) जिस प्रकार कबूतर (गर्भधिम्) गर्भ धारण करने में समर्थ कपोती को (सम् अतति) प्रेम से प्राप्त होता है उसी प्रकार हे इन्द्र ! तेरी शक्ति को अपने भीतर धारण करने वाले को तू (सम अतसि) भली प्रकार प्राप्त हो। (तत् चित्) उसी प्रकार (नः वचः) हमारे वचनों को भी (ओहसे) तू प्राप्त हो, उसका प्रेमपूर्वक श्रवण कर।

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥

भा०—हे (राधानां पते) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे (वीर) वीर !

(ते) तेरा (स्तोत्रम्) स्वरूप स्तुति करने योग्य है, तेरी प्रिय सत्य वेदवाणी विविध प्रकार की ऐश्वर्य-सम्पदा है ।

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों से युक्त ! तू (अस्मिन् वाजे) इस संग्राम, या बलयुक्त कार्य में (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि विराजमान होकर (तिष्ठ) रह। हम दोनों गुरु-शिष्य और स्त्री-पुरुष और प्रजा-राजा (अन्येषु) सब कार्यों में (सं ब्रवावहै) परस्पर मिलकर एक दूसरे को उपदेश करें।

[४६] आत्मा और राजा।

इरिम्बिठि ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ॥

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्त्तारं ज्योतिः समत्सु ।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १ ॥

भा०—(वस्यः) ऐश्वर्य को (अच्छ) प्राप्त करने के लिये, (प्र-णेतारम्) उत्तम नायक, (समत्सु) संग्रामों और आनन्दोत्सवों में (ज्योतिः कर्त्तारम्) ज्ञानप्रकाश और तेज के दिखाने वाले, (युधा) युद्ध द्वारा (अमित्रान्) शत्रुओं को (सासह्वांसम्) पराजय करने हारे पुरुष को हम (अच्छ) प्राप्त करें।

अध्यात्म में—(वस्यः) देह में बसने वाले, प्राप्त वस्तुओं में सबसे श्रेष्ठ 'वसीयस' मुख्य प्राण का प्रणेता आत्मा है, जो समाधिरस के अवसरों पर परम अभ्यन्तर ज्योति को उत्पन्न करता है, (युधा) विपक्ष भावना द्वारा रागद्वेषादि शत्रुओं को पराजित करता है, उसको (अच्छ) साक्षात् करो।

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ २ ॥

भा०—(पप्रिः) समस्त मनोरथों और समस्त जगत् को पूर्ण करने वाला एवं स्वयं पूर्ण सर्वव्यापक परमेश्वर, (पुरुहूतः) जोकि प्रजाओं

द्वारा याद किये जाने योग्य वह (नावा) जैसे केवट नाव से नदी को पार करता उसी प्रकार (स्वस्ति) सुखपूर्वक (विश्वाः द्विषः) समस्त शत्रुओं से (अति पारयाति) हमें पार करे ।

स त्वं न॑ इन्द्र॒ वाजे॑भिर्दश॒स्या च॑ गातु॒या च॑ ।
अच्छा॑ च नः सु॒म्नं ने॑षि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (नः) हमारी (वाजेभिः) पराक्रमों, वीर्यों और ऐश्वर्यों द्वारा (दशस्य च) रक्षा कर और (नः) हमें (गातुया च) उत्तम मार्ग से (सुम्नम्) उत्तम धन, सुख, (अच्छ नेषि च) प्राप्त करने के लिये आगे ले चल, मार्ग दर्शा ।

[४७] ईश्वर

१–३ सुकक्षः । ४–६, १०–१२ मधुच्छन्दाः । ७–९ इरिम्बिठिः । १३–२१ प्रस्कण्वः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । एकविंशत्यृचं सुक्तम् ॥

तमिन्द्रं॑ वाजयामसि म॒हे वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे ।
स वृषा॑ वृष॒भो भु॑वत् ।

भा०—हम (महे वृत्राय) बड़े भारी आवरणकारी अज्ञान रूप शत्रु के (हन्तवे) नाश करने के लिये (तम् इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान् समस्त जगत् के द्रष्टा, अथवा साक्षात् दर्शन देने वाले के (वाजयामसि) बल को बढ़ावें । (सः) वह (वृषा) समस्त सुखों का वर्षण करने वाला, बलवान्, (वृषभः) वृषभ के समान सबका भार उठाने वाला, (भुवत्) सर्वत्र विद्यमान है ।

इन्द्रः॒ स दाम॑ने कृ॒त ओजि॑ष्ठः॒ स मदे॑ हि॒तः ।
द्यु॒म्नी श्लो॒की स सो॒म्यः ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्रः सः) ऐश्वर्यवान्, साक्षात् दर्शनीय परमेश्वर ही (दामने) समस्त पदार्थों के दान देने के लिये (कृतः) बना है । (सः) वह (मदे) परमानन्द रस में (हितः) विद्यमान है । (ओजिष्ठः) सबसे बड़ा

शक्तिशाली है। (सः) वह (द्युम्नी) ऐश्वर्य वाला, (श्लोकी) कीर्तिमान्, (सोम्यः) तथा सर्वानन्द रसमय है।

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ३ ॥

भा०—(वज्रः न) बिजुली की कड़क के समान अति भयंकर, (संभृतः) समस्त ऐश्वर्यों और शक्तियों से सम्पन्न, (स-बलः) बलवान्, (अनपच्युतः) कभी पराजित न होने वाला, (अस्तृतः) कभी न मारा जाने वाला, नित्य, अविनाशी, (ऋष्वः) सब शत्रुओं का नाशक होकर (ववक्षे) जगत् और राष्ट्र के भार को धारण करता है—ऐसा वेदवाणी द्वारा कहा गया है।

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥ इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥ इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

भा०—(४-७) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २० । ३८ । ४—६ ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥ आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥ ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ९ ॥

भा०—(७-९) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २० । ३ । १-३ तथा २० । ३८ । १-३ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १० ॥ युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ११ ॥ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ १२ ॥

भा०—(१०–१२) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २० । २६ । ४–५ ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १३ ॥ अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ १४ ॥ अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १५ ॥

भा०—(१३–१५) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० १३ । २ । १६–२४ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमा भासि रोचन ॥ १६ ॥

भा०—हे (सूर्य) सबके प्रेरक और उत्पादक प्रभो ! तू (तरणिः) सबको पार तराने वाला, (विश्व-दर्शतः) विश्व का द्रष्टा और (ज्योतिष्कृत् असि) भीतर भी प्रकाश करने हारा और समस्त सूर्यादि ज्योतियों का उत्पादक (असि) है । हे (रोचन) प्रकाशस्वरूप ! तू (विश्वम् आ भासि) समस्त विश्व को प्रकाशित करता है ।

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ १७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! आप (देवानां विशः) विद्वानों, सूर्यादि लोकों, एवं उत्तम गुणों वाली प्रजाओं के (प्रत्यङ्) प्रति और (मानुषीः विशः प्रत्यङ्) मननशील प्रजाओं के प्रति और (विश्वं प्रत्यङ्) समस्त संसार के प्रति साक्षात् (दृशे) दर्शन देने के लिये (स्वः) सुख स्वरूप होकर (उदेषि) प्रकट होते हो ।

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ १८ ॥

भा०—हे (पावक) परम पावन अग्नि के समान सबके शोधक ! हे (वरुण) सर्वदुःखवारक ! (येन) जिस (चक्षसा) दयामय चक्षु से (त्वं) तू

(जनान् भुरण्यन्तम् अनु) समस्त प्राणियों के पालक पुरुष को (पश्यसि) देखता है, उसी दयादृष्टि से हमें भी देख।

वि द्यामे॑षि रज॑स्पृ॒थ्वह॒र्मिमा॑नो अ॒क्तुभिः॑।
पश्य॒ञ्जन्मा॑नि सूर्य ॥ १९ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (अक्तुभिः) प्रलयकाल रूप रात्रियों से (अहः) ब्राह्म दिन, सर्गकाल को (मिमानः) मापता या परिमित करता हुआ, (द्याम्) इस विशाल द्युलोक को और (पृथु रजः) विशाल अन्तरिक्ष को भी (वि एषि) विविध सृष्टियों से व्यापता है और (जन्मानि) उत्पन्न लोकों को और अपने ही बनाये नाना सर्गों को भी (पश्यन्) देखता है।

स॒प्त त्वा॑ ह॒रितो॒ रथे॒ वह॑न्ति देव सूर्य।
शो॒चिष्के॑शं विचक्षण॒म् ॥ २० ॥

भा०—हे (देव) सर्वद्रष्टः देव ! हे (सूर्य) सर्वप्रेरक, सर्वनियन्त ! परमेश्वर ! (रथे) देह में आत्मा को जिस प्रकार सात प्राण जुड़कर उसको उठाते हैं उसी प्रकार तुझे भी (सप्त हरितः) सात अर्थात् ५ भूत और महत्तत्व, अहंकार ये शक्तियां, (शोचिष्केशं) देदीप्यमान किरणों वाले, (विचक्षणम्) विशेष रूप से जगत् के प्राण स्वरूप को (रथे) रमण योग्य विश्व में (वहन्ति) वहन करते हैं, धारण करते हैं।

अयु॑क्त स॒प्त शु॒न्ध्युवः॒ सूरो॒ रथ॑स्य न॒प्त्यः॑।
ताभि॑र्याति॒ स्वयु॑क्तिभिः ॥ २१ ॥

भा०—(सूरः) सबका प्रेरक परमेश्वर ! (रथस्य) इस रथ स्वरूप, परम रमणीय, भूतों के रमण कराने वाले ब्रह्माण्ड को (नप्त्यः) कभी नष्ट न होने देने वाली, (शुन्ध्युवः) उसकी प्रवर्त्तक, उसमें गति देने वाली, चलाने वाली (सप्त) सात शक्तियों को (अयुक्त) विश्व में प्रयुक्त करता है और (स्व-युक्तिभिः) अपनी ही योजना रूप (ताभिः) उन शक्तियों से

(याति) स्वयं सर्वत्र गति करता है, विश्व को चलाता और विश्व में व्यापता है।

[४८] ईश्वरोपासना

खिलं सूक्तम्। १-२ इन्द्रः। ४-६ सार्पराज्ञी ऋषिका। सूर्यो देवता। गायत्र्यः। षड़ृचं सूक्तम्॥

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः।
अभि वत्सं न धेनवः॥ १॥

भा०—हे परमेश्वर! (धेनवः) गौएं (वत्सम् अभि न) जिस प्रकार अपने प्रिय बच्छे के प्रति वेग से दौड़ती हुई आती हैं उसी प्रकार (आचरण्यवः) सदाचार का उपदेश देने वाली (गिरः) वेदवाणियां, (सिञ्चन्तीः) ज्ञान-रस का प्रवाह बहाती हुईं, (त्वा अभि) कान्तिवाले तुझको प्राप्त होती हैं।

ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः।
जातं जात्रीर्यथा हृदा॥ २॥

भा०—(ताः) वे वेदवाणियां (वर्चसा) अपने ज्ञानरूप तेज से (प्रियः) पूर्ण अर्थ का प्रकाश करने हारी, (शुभ्रियः) पदार्थ का भासन कराने वाली, (हृदा) अपने मर्मार्थ से (अर्षन्ति) उस परमेश्वर को ऐसे पकड़ती हैं, जैसे (जात्रीः) जनने वाली माताएं (जातम्) अपने पुत्र को (हृदा) अपने हृदय से (अर्षन्ति) चिपटा लेती हैं।

वज्रापवसाध्यः कीर्तिम्रियमाणमावहन्।
मह्यमायुर्घृतं पयः॥ ३॥

भा०—(वज्र-आपव साध्यः ?) जो वज्र रूप जल से साधने योग्य प्राणगण (कीर्तिः) और कीर्ति (म्रियमाणम्) मरते हुए पुरुष को भी (आयुः आवहन्) दीर्घायु प्राप्त कराती , वे ही (मह्यम्) मुझे (आयुः घृतम् पयः) दीर्घजीवन, घृत, तेज और पुष्टिकारक अन्न (आवहन्) प्राप्त करावें।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४॥
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥५॥
त्रिंशद् धाम वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥ ६ ॥

भा०—(४–६) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्ववेद काण्ड ६ । ३१ । १–३ ॥

[४९] ईश्वरोपासना

खिलं सूक्तम् । [४–५ नोधाः । ६–६ मेध्यातिथिः ।] इन्द्रो देवता । १–३ गायत्र्यः । ४–७ प्रागाथं छन्दः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः ।
सं देवा अमदन् वृषा ॥ १ ॥

भा०—(शक्राः) शक्तिशाली योगीजन (यत्) जब (वाचम्) वेदवाणी का (आरुहन्) आश्रय लेते हैं, हे ज्ञानी पुरुषो ! तब २ आप लोग (अन्तरिक्षम्) भीतरी आत्मा को ही (सिषासथः) प्राप्त होते हो । तब (देवाः) प्राणगण और (वृषा) सुखों का वर्धक भीतरी बलवान् आत्मा दोनों (सम् आमदन्) एक साथ आनन्द, प्रसन्न एवं तृप्त होते हैं ।

शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥२॥

भा०—हे योगिन् आत्मसाधक ! तू (शक्रः) शक्तिशाली आत्मा होकर, (अधृष्टाय) कभी भी धर्षण न किये जाने वाले अच्युत पद के प्राप्त करने के लिये, (उरु वाचः) विशाल वेदवाणी के प्रवर्त्तक गुरु की या परमगुरु परमेश्वर की (वाचम्) वाणी को (अधृष्णुहि) धारण कर । तू (मंहिष्ठः) पूज्यतम, महान् होकर (दिवि) तेजोमय मोक्ष में (आ मदः) आनन्दमय होकर विराज !

शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति ।
विमदन् बर्हिरासरन् ॥ ३ ॥

भा०—हे योगिन् ! तू (शक्रः) शक्तिमान् होकर (वाचम् अधृष्णुहि) वेदवाणी को धारण कर। क्योंकि बलवान् पुरुष ही (धामधर्मन्) प्रत्येक तेजोमय पद पर और प्रत्येक धर्म या कर्त्तव्य में (वि राजति) विविध प्रकार से शोभा पाता है। वही (विमदन्) विविध प्रकार से आनन्द प्रसन्न होकर (बर्हिः) विस्तृत ब्रह्ममय मोक्षधाम को (आ सरन्) प्राप्त होता है।

तं वो॑ दस्ममृ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः। अ॒भि व॒त्सं न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ इन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे ॥ ४ ॥ द्यु॒क्षं सु॒दानुं॒ तवि॑षीभि॒रावृ॑तं गि॒रिं न पु॑रु॒भोज॑सम्। क्षु॒मन्तं॒ वाजं॑ श॒तिनं॑ सह॒स्रिणं॑ म॒क्षू गोम॑न्तमीमहे ॥ ५ ॥

तत् त्वा॑ यामि सु॒वीर्यं॒ तद् ब्रह्म॑ पू॒र्वचि॑त्तये। येना॒ यति॑भ्यो॒ भृग॑वे॒ धने॑ हि॒ते येन॒ प्रस्क॑ण्व॒माविथ ॥ ६ ॥ येना॑ समु॒द्रमसृ॑जो म॒हीर॒पस्तदि॑न्द्र॒ वृष्णि॑ ते॒ शवः॑। स॒द्यः सो अ॑स्य महि॒मा न सं॒नशे॒ यं क्षो॒णीर॑नुचक्र॒दे ॥ ७ ॥

भा०—(४-७) इन चार मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्ववेद काण्ड २० । ९ । १-४ ॥

[५०] ईश्वरोपासना

मेध्यातिथिः काण्वः ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रागाथम् (विषमा बृहती समा सता बृहती) द्वयृचं सूक्तम् ॥

कन्न॒व्यो॑ अत॒सीनां॑ तु॒रो गृ॑णीत॒ मर्त्यः॑।
न॒ही न्व॑स्य महि॒मान॑मिन्द्रि॒यं स्व॑र्गृ॒णन्त॑ आन॒शुः ॥ १ ॥

भा०—(अतसीनाम्) वेग से गति करने वाली शक्तियों को (तुरः) गति देने वाले सर्वशक्तिमान् उस परमेश्वर का (नव्यः मर्त्यः) उसके बाद अभी का पैदा हुआ नया मनुष्य (कत् गृणीत) क्या वर्णन करे ? (अस्य महिमानम्) इसके बड़े भारी सामर्थ्य (इन्द्रियम्) और ऐश्वर्य

को (गृणन्तः) स्तुति करते हुए ज्ञानी लोग (स्वः नहि आनशुः) क्या सुखमय मोक्ष का लाभ नहीं करते हैं ? अपितु करते ही हैं ।

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ २ ॥

भा०—हे (देवते) देवते ! (ऋतयन्तः) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा करने वाले जिज्ञासु पुरुष (कत् उ स्तुवन्तः) तेरी क्यों कर स्तुति कर सकते हैं ? और (कः) कौन (विप्रः) मेधावी (ऋषिः) मन्त्रद्रष्टा पुरुष (कत् ओहते) तेरी क्या तर्कना करता है ? हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! (सुन्वतः) तेरा स्मरण करने हारे पुरुष की (हवम्) पुकार को तू (कदा) कब सुनता और (स्तुवतः) स्तुति करते हुए पुरुष के पास तू (कत् उ) कब (आगमः) प्राप्त हो जाता है ? यह सब रहस्य हम नहीं कह सकते ।

[५१] ईश्वरोपासना, आत्मदर्शन

१–२ प्रस्कण्वः काण्वः ऋषिः १–४ पुष्टिगुः काण्वः । प्रागाथाम् (विषमा बृहती समा सतो बृहती) । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुष ! (सु-राधसम्) उत्तम ऐश्वर्यसम्पन्न उस (इन्द्रम्) आत्मा को तू (अभि प्र वः) सब प्रकार से वरण कर और (यथा विदे) जिस प्रकार तू उसे जान पावे उसी प्रकार से उसकी (अभि प्र अर्च) भली प्रकार उपासना कर । (यः) जो (मघवा) ऐश्वर्यवान् (पुरु-वसुः) समस्त लोकों, देहों और इन्द्रियों में वास करने वाला (जरितृभ्यः) स्तोता पुरुषों को (सहस्रेण इव) मानो हजारों प्रकारों से (शिक्षति) दान करता है ।

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

भा०—वह इन्द्र (शतानीक इव) सैंकड़ों सेनाओं के पति के समान (प्र जिगाति) सबको विजय करता है और (धृष्णुया) अपनी धर्षणकारिणी शक्ति से (दाशुषे) दानशील पुरुष के (वृत्राणि) विघ्नों का (हन्ति) विनाश करता है। (गिरेः रसाः इव) पर्वत से जिस प्रकार जलों के स्रोत बहते हैं उसी प्रकार (पुरुभोजसः) बहुत से भोग्य ऐश्वर्यों से समृद्ध (अस्य) इसके (दत्राणि) नाना प्रदत्त पदार्थ ही (पिन्विरे) प्रजाओं को तृप्त करते हैं।

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ ३ ॥

भा०—(श्रुतम्) वेद आदि मन्त्रों द्वारा श्रवण करने योग्य, (सुराधसम्) उत्तम रीति से योगादि द्वारा आराधना करने योग्य, (शक्रम्) शक्तिमान् परमेश्वर की, (अभिष्टये) अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये, (प्र सु अर्च) खूब अच्छी प्रकार अर्चना कर। (यः) जो (सुन्वते) योगादि द्वारा ज्ञान प्राप्त करने वाले (स्तुवते) तथा वेदवाणी द्वारा गुणानुवाद करने वाले को (काम्यं) अभिलाषा योग्य (वसु) ऐश्वर्य (सहस्रेण इव) हजारों प्रकार से (मंहते) प्रदान करता है।

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥४॥

भा०—(अस्य इन्द्रस्य) इस परमेश्वर के (शतानीकाः हेतयः) सैंकड़ों ओर को जाने वाले अस्त्र-शस्त्र (दुस्तराः) अजेय हैं और (इन्द्रस्य) इस महान् ऐश्वर्यवान् की (महीः) बड़ी २ (समिषः) प्रेरक शक्तियां भी हैं। (यद् ईम्) जिसकी (सुताः) नाना उत्पन्न पदार्थ (अमन्दिषुः) स्तुति गा रहे हैं, वह (भुज्मा गिरिः न) भोग्य पदार्थों से सम्पन्न पर्वत या मेघ के समान (मघवत्सु) ऐश्वर्यवानों को तृप्त कर रहा है।

[५२] ईश्वर स्तुति

मेध्यातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहत्यः तृचं सूक्तम् ॥

व॒यं घ॑ त्वा सु॒ताव॑न्त॒ आपो॒ न वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
प॒वित्र॑स्य प्र॒स्रव॑णेषु वृत्रह॒न् परि॑ स्तो॒तार॑ आसते ॥ १ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) आवरणकारी अन्धकार के नाशक ! (पवित्रस्य) पावन जल के (प्र-स्रवणेषु) झरनों के तटों पर (स्तोतारः) तेरे स्तुति कर्त्ता लोग (परि आसते) विराजते हैं । (आपः न) घास आदि से रहित स्वच्छ जल जिस प्रकार (वृक्त-वर्हिषः) किलें आदि को घेरा डाल कर स्थित होते हैं उसी प्रकार (वृक्तः वर्हिषः) पुत्रों वाले इस गृहस्थी का तेरी स्तुति के लिये एक घेरा डाल कर बैठते हैं ।

स्वर॑न्ति त्वा सु॒ते नरो॒ वसो॑ निरे॒क उ॒क्थिनः॑ ।
क॒दा सु॒तं तृ॑षा॒ण ओक॒ आ ग॑म॒ इन्द्र॑ स्व॒ब्दीव॒ वंस॑गः ॥२॥

भा०—हे (वसो) सर्वव्यापक ! सब संसार के बसाने वाले ! (एके उक्थिनः) कुछ एक ज्ञानवान् (नरः) पुरुष (सुते) उत्पन्न इस संसार में (त्वा निः स्वरन्ती) तेरी स्तुति उपासना करते हैं । (तृषाणः) पिपासाकुल पुरुष जिस प्रकार (ओकः आगमः) जल के स्थान पर आ जाता है उसी प्रकार तू भी (वंसगः स्वब्दी इव) उत्तम जल देने वाले मेघ के समान (कदा) कब हमें (आगमः) प्राप्त होगा ।

कण्वे॑भिर्धृष्ण॒वा धृ॒षद्वाजं॑ दर्षि सह॒स्रिण॑म् ।
पि॒शङ्ग॑रूपं मघवन् विचर्षणे म॒क्षू गोम॑न्तमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (वि-चर्षणे) समस्त जगत् के द्रष्टः ! हे (धृष्णो) सबको वश करने हारे ! आप (कण्वेभिः) मेधावी पुरुषों द्वारा (धृषक्) धर्षण करने वाले (सहस्रिणम्) सहस्रों प्रकार के (वाजम्) ऐश्वर्य या बल का (आ दर्षि) प्रदान करते हैं । हम (मक्षू) निरन्तर (पिशङ्ग-रूपम्) पीत वर्ण के, तथा (गोमन्तम्) गौ आदि पशुओं से युक्त ऐश्वर्य की (ईमहे) याचना करते हैं ।

अध्यात्म में—हम (गोमन्तं पिशङ्ग रूपम् ईमहे) वाणी से युक्त अथवा प्राणों से युक्त तेजोमय-आत्मा का साक्षात् करना चाहते हैं ।

[५३] ईश्वर-दर्शन

मेधातिथिः काण्व ऋषिः इन्द्रो देवता । बृहत्यः तृचं सूक्तम् ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ १ ॥

भा०—(सुते) उत्पन्न जगत् में (सचा) एक ही साथ या दिव्य पदार्थों के साथ (ईम्) इस विश्व का (पिबन्तम्) पान या अपने में आदान करते हुए को (कः वेद) कौन जानता है ? और कौन जानता है कि (कद् वयः दधे) वह कितना आयु या कितना जीवन सामर्थ्य धारण करता है । (अयं) यह (यः) जो (शिप्री) ज्ञानवान् और बलवान् होकर, (अन्धसः) अमृत से (मन्दानः) सदा तृप्त और अन्यों को भी तृप्त करने में समर्थ होकर, (ओजसा) अपने बल पराक्रम से सेनापति जिस प्रकार (पुरः वि-भिनत्ति) शत्रु दुर्गों को तोड़ डालता है उसी प्रकार अपने ज्ञान बल से (पुरः) भक्तों की देह-पुरियों का नाश करता है, उनको मुक्त करता है ।

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ २ ॥

भा०—(मृगः वारणः न) वनैला हाथी (दाना) मद जलों के कारण (पुरुत्र) बहुत से स्थलों पर (चरथं दधे) विचरण करता है, उसी प्रकार यह जीव (दाना) अपने शुभाशुभ कर्मों द्वारा (पुरुत्र चरथं दधे) बहुत से शरीरों में विचरण करता है । हे आत्मन् ! (त्वा) तुझको (नकिः) कोई भी नहीं (नियमत्) बांध सकता । (सुते) सोमरूप ब्रह्मरस के निमित्त (आ गमः) तू प्राप्त हो और (ओजसा महान्) बलवीर्य से महान् होकर (चरसि) विचरण कर ।

य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥

भा०—(यदि) जब भी (मघवा) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (स्तोतुः हवम्) स्तुति करने हारे उपासक की पुकार को (शृणवन्) सुन लेता है, तब (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् (न योषति) उससे जुदा नहीं रहता, प्रत्युत (आगमत्) उसे प्राप्त हो जाता है, उसे मिल जाता है। वह परमेश्वर (उग्रः सन्) बलवान् होकर (अ-नि-स्तृतः) नित्य, अविनाशी, (स्थिरः) सदा ध्रुव, (रणाय संस्कृतः) योगिजनों के रमण के लिये सदा तत्पर रहता है।

[५४] ईश्वर गुणगान

रेभ ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ अतिजगती। २, ३ उपरिष्टाद् बृहत्यौ तृचं सूक्तम् ॥

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

भा०—(विश्वाः पृतनाः) समस्त कामादि (अभि-भूतरं) शत्रुओं का पराभव करने वाले, (क्रत्वा) कर्म और ज्ञान से (वरे) वरण करने योग्य कार्य में (वरिष्ठम्) सबसे अधिक श्रेष्ठ, (आमुरिम्) कामादि के नाशक उग्र (ओजिष्ठम्) सबसे अधिक पराक्रमी, (तवसम्) महान्, (तरस्विनम्) अति वेगवान्, (नरम्) संसार के नेता को (सजूः) भक्तजन प्रेम से मिलकर, (राजसे) प्रकाश करने के लिये (जजनुः ततक्षुः च) प्रकट करते हैं।

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ २ ॥

भा०—(यद्) जब भी, (वृधे) वृद्धि के लिये (धृतव्रतः) व्रतों को धारण करने वाला परमेश्वर, (ओजसा) अपने पराक्रम (ऊतिभिः) तथा रक्षा साधनों के साथ (सम्) संगत होता है, तभी (रेभासः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् लोग (सोमस्य पीतये) अमृतरस का पान करने के लिये, (स्वः पतिम्) सुखों के स्वामी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का (सम् अस्वरन्) एकत्र होकर स्तुतिगान करते हैं।

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ ३ ॥

भा०—(विप्राः) विद्वान् लोग (अभिस्वरा = अभिस्वरम्) ज्ञानोपदेश के साथ विद्यमान, (नेमिम्) संसार को घेरने वाले, (मेषम्) सूर्य के समान सबमें चेतना के दाता परमेश्वर को, (चक्षसा) अपने ज्ञान दर्शन से (नमन्ति) नमस्कार करते हैं । हे मनुष्यो ! (वः) आप लोग (कर्णे अद्रुहः अपि) गुरु के उपदेशश्रवण में परस्पर द्रोह न करते हुए, (सु-दीतयः) उत्तम दीप्तिमान् (तरस्विनः) तथा अप्रमादी होकर, (ऋक्भिः) वेदमन्त्रों द्वारा (सम् नमन्ति) अच्छी प्रकार विनयशील होकर उसकी स्तुति करो ।

[५५] ईश्वर से ऐश्वर्य की याचना

रेभ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ अतिजगती । २, ३ बृहत्यौ । तृचं सूक्तम् ॥

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १ ॥

भा०—मैं (मघवानम्) सम्पत्तियों से समृद्ध, (सत्रा) एक ही साथ (शवांसि) समस्त बलों को (दधानम्) धारण करने हारे, (अप्रतिष्कुतं) अद्वितीय शक्तिशाली, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का (जोहवीमि) स्मरण करता हूँ । वह (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (मंहिष्ठः) अति पूजनीय, (यज्ञियः च) यज्ञ में सदा पूजनीय (आ ववर्त्तत्) सर्वत्र व्याप्त है । वह (नः) हमारे (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (वज्री) समस्त कष्टों के वारण करने में समर्थ (विश्वा सु-पथा) समस्त उत्तम मार्ग हमारे लिये (कृणोतु) बनावे ।

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (स्ववाम्) आनन्द से युक्त तू (याः भुजः) जिन भोग्य सम्पदाओं को (असुरेभ्यः) प्राणवान् जन्तुओं को (आहरः) प्रदान करता है, (मघवन्) उन ऐश्वर्य सम्पदाओं से (अस्य) इस अपने साक्षात् स्वरूप के (स्तोतारम् इत्) स्तुतिकर्त्ता साधक को (वर्धय) बढ़ा और (ये च) जो भी (त्वे) तेरे निमित्त (वृक्तबर्हिषः) धान्य के समान काट देने योग्य देहबन्धनों को काट चुके हों उनको भी बढ़ा।

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम्।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यजमाने सुन्वति) यज्ञ करने हारे पुरुष के यज्ञ करते समय और (तस्मिन्) उसमें (दक्षिणावति) दक्षिणा प्रदान करते समय, (तम्) उसको तू (अव्ययम्) अक्षय (भागम्) ऐश्वर्य (गाम् अश्वम्) तथा गौ और अश्व आदि ऐश्वर्य (धेहि) प्रदान करता है, (यम्) जिसको कि (त्वम्) तू (दधिषे) धारण करता है। उस ऐश्वर्य को (पणौ) कुव्यसनी, स्वार्थी पुरुष के हाथ (मा धेहि) प्रदान मत कर।

[५६] दानशील ईश्वर

गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । पथ्या पंक्तयः । षडृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥

भा०—(वृत्रहा) काम क्रोध आदि विघ्नकारी अन्तःशत्रुओं को नाश करने वाला (इन्द्रः) परमेश्वर अपने (शवसे मदाय) बल और सुखदायक आनन्द के कारण (वावृधे) सबसे बड़ा है। (महत्सु आजिषु) बड़े २ संग्रामों में (उत ईम् अर्भे) और छोटे २ कार्य में भी (तम् इत्) हम उस परमेश्वर को (हवामहे) याद करते हैं। (सः) वह (वाजेषु) वीर्य और बल के कार्यों में (नः) हमारी (प्र अविषत्) खूब रक्षा करता है।

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु २

भा०—हे (वीर) वीर्यवन् ! तू (सेन्यः असि) स्वामी सहित वीरगणों का हितकारी है । तू (भूरि पराददिः) बहुत दान देने वाला है । तू (दभ्रस्य) अति स्वल्प को (चित्) भी (वृधः असि) बढ़ाने हारा है । तू (सुन्वते यजमानाय) ब्रह्मोपासना करने वाले आत्मसमर्पक यजमान को (भूरि वसु) बहुतसा धन (शिक्षति) प्रदान करता है ।

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ३

भा०—(यद्) जब (आजयः) देवासुर संग्राम (उदीरते) उठ खड़े होते हैं तब (धृष्णवे) पराजय करने हारे को ही (धना) नाना ऐश्वर्य (धीयते) प्रदान किये जाते हैं। हे योगिन् ! तू (मदच्युतौ) हर्षवर्षण करने वाले (हरी) हरणशील प्राण और अपान दोनों को (युक्ष्व) योगविधि से वश कर । हे योगिन् ! तू (कं-हनः) 'क' अर्थात् सुखस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो । हे योगिन् ! (वसौ) वसु रूप आत्मा में (कं) सुखस्वरूप परमेश्वर को धारण कर और हे (इन्द्र) परमात्मन् ! (वसौ) शरीर में बसी आत्मशक्ति में (अस्मान् दधः) हमें तू स्थापित कर ।

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥४॥

भा०—हे इन्द्र ! (मदे-मदे) प्रत्येक प्रकार के हर्ष के अवसर पर तू (ऋजु-क्रतुः) सरल क्रिया से सम्पन्न होकर (नः) हमें (गवाम्) गौ आदि पशुओं के (यूथा) समूहों को (ददिः) प्रदान करता है । तू (पुरु शता) सैकड़ों पालक ऐश्वर्यों को (सं गृभाय) संग्रह कर । (उभया हस्त्या) दोनों हाथों से भर भर कर (वसु शिशीहि) हमें ऐश्वर्य प्रदान कर । (रायः आ भर) हमें नाना धन-सम्पदाएं प्राप्त करा ।

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥५॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! तू (सुते) उत्पन्न जगत् में (शवसे) अपने बल और (राधसे) ऐश्वर्य के कारण (सचा) सबको एक काल में या नित्य ही (मादयस्व) आनन्द से तृप्त और हर्षित करने में समर्थ हो। (त्वा) तुझ (पुरु-वसुम्) बड़े ऐश्वर्यों के स्वामी को हम (विद्म हि) भली प्रकार प्राप्त करें। (कामान्) कामनाओं को (त्वा उप समृज्महे) तेरे ही पर छोड़ते हैं। (अथ नः) और अब हमारा तू ही (अविता भव) रक्षक हो।

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) तेरे उत्पन्न किये हुए (एते) ये (जन्तवः) जन्तु या उत्पन्न पदार्थ (विश्वम् वार्यम्) समस्त अभिलाषा योग्य ऐश्वर्य को (पुष्यन्ति) पुष्ट करते हैं। हे परमेश्वर! राजन् ! तू (अर्यः) सबका स्वामी होकर (जनानाम् अन्तः ख्यः हि) मनुष्यों के भीतर को भी देखता है और (अदाशुषाम्) अदानशील कृपणों के भी (वेदः) धन को तू (ख्यः) देखता है। तू (नः तेषां वेदः आभर) उनके समस्त धनैश्वर्य हमें प्राप्त करा।

[५७] ईश्वर स्तुति

१–३ मधुच्छन्दा ऋषिः। ४–७ विश्वामित्रः। ८–१० गृत्समदः। इन्द्रो देवता। १–१० गायत्र्यः। शेषाः ११-१६ पंथ्या पंक्तयः। षोडशर्चं सूक्तम् ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

भा०—(द्यवि-द्यवि) प्रतिदिन (गो-दुहे) गौ को दोहने वाले के लिये जिस प्रकार (सु-दुघाम् इव) उत्तम रीति से दुग्धादि रस प्रदान करने वाली गौ की (जुहूमसि) स्तुति करते हैं उसी प्रकार (ऊतये) रक्षा के

लिये हम (सु-रूप कृत्नुम्) उत्तम २ पदार्थों को रचने या रूपवान् करने वाले परमेश्वर की (जुहूमसि) स्तुति करते हैं।

उप॑ नः॒ सव॑ना ग॑हि॒ सोम॑स्य सोमपाः पिब ।
गो॒दा इद् रे॒वतो॒ मदः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे इन्द्र ! तू (नः) हमारी (सवना) उपासनाओं में (उप-आगहि) प्राप्त हो। तू (सोमस्य) जगत् के बीच में (सोम-पाः) ऐश्वर्य का पालक होकर उसका (पिब) पान कर, भोग कर। (रेवतः) ऐश्वर्य-वान् आत्मा को (मदः) परम आनन्दप्रद होकर उसको (गो-दाः) इन्द्रियसामर्थ्य और उत्तम भूमि तथा पशु आदि का प्रदान कर।

अथा॑ ते॒ अन्त॑मानां वि॒द्याम॑ सुमती॒नाम् ।
मा नो॒ अति॑ ख्य॒ आ ग॑हि ॥ ३ ॥

भा०—(अथ) और (ते) तेरे (अन्तमानाम्) अति समीप प्राप्त हुए (सुमतीनाम्) उत्तम मननशील विद्वानों के संग से (ते विद्याम) हम तेरे स्वरूप का ज्ञान करें। तू (नः) हमें (आगहि) प्राप्त हो। तू (नः) हमें (मा अति ख्यः) कभी मत भूल।

शु॒ष्मिन्त॑मं न ऊ॒तये॑ द्यु॒म्निनं॑ पाहि॒ जागृ॑विम् ।
इन्द्र॒ सोमं॑ शतक्रतो ॥ ४ ॥

इ॒न्द्रि॒याणि॑ शतक्रतो॒ या ते॒ जने॑षु प॒ञ्चसु॑ ।
इन्द्र॒ तानि॑ त॒ आ वृ॑णे ॥ ५ ॥

अग॑न्निन्द्र॒ श्रवो॑ बृ॒हद् द्यु॒म्नं द॑धिष्व दु॒ष्टर॑म् ।
उत् ते॒ शुष्मं॑ तिरामसि ॥ ६ ॥

अ॒र्वा॒वतो॑ न॒ आ ग॑ह्य॒थो॑ शक्र परा॒वतः॑ ।
उ॒ लो॒को यस्ते॑ अद्रिव॒ इन्द्रे॒ह तत॒ आ ग॑हि ॥ ७ ॥

इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ८ ॥

इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ९ ॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ १० ॥

भा०—(४-१०) इन सात मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व २० । २० । १-७ ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥११॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ १२ ॥

य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ १३ ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १४ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥१५॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ १६ ॥

भा०—(११-१३) इन तीन मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २० । ५३ । १—३ ॥

(१४—१) इन तीन मन्त्रों की व्याख्या देखो का० । ५२ । १—३ ॥

[५८] ईश्वरस्तुति

१, २ नृमेध । ३, ४ जमदग्निर्भार्गवः । १, २ इन्द्रः । ३, ४ सूर्यश्च देवते । प्रगाथः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ १ ॥

भा०—(सूर्यम् इव) जिस प्रकार किरणें या ग्रह, उपग्रह सूर्य का आश्रय लेते हैं और उसके प्रकाश का उपभोग करते हैं उसी प्रकार परमेश्वर का (श्रायन्तः) आश्रय लेते हुए हे मनुष्यो ! आप लोग (इन्द्रस्य इत्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के ही (विश्वा वसूनि) समस्त ऐश्वर्यों और लोकों का (भक्षत) भोग करो और हम सब लोग (जाते) उत्पन्न हुए, (जनमाने) और भविष्य में उत्पन्न होने वाले इस जगत् में (ओजसा) अपने पराक्रम, बल वीर्य के अनुसार, (भागं न) अपने भाग अर्थात् प्राप्त किये ऐश्वर्य के अनुसार (प्रतिदीधिम) प्रत्येक वस्तु धारण कर रक्खें।

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (अनर्श-रातिम्) सात्विक दान वाले (वसु-दाम) परमेश्वर की (उप स्तुति) स्तुति कर । (इन्द्रस्य रातयः) ईश्वर के समस्त दान (भद्राः) कल्याण और सुख के जनक हैं । (सः) वह परमेश्वर (अस्य विधतः) अपनी स्तुति करने वाले भक्त के (कामम्) मनोरथ का (न रोषति) बात नहीं करता और (दानाय) दान देने के लिये ही (मनः) अपने भक्त के चित्त को (चोदयन्) सन्मार्ग में प्रेरित करता रहता है।

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ३ ॥

भा०—हे (सूर्य) सबके उत्पादक और प्रेरक परमेश्वर ! तू (बट्) सचमुच (महान् असि) महान् है। हे (आदित्य) सबको अपने भीतर समाने हारे ! (बट महान् असि) तू सचमुच महान् है। (सतः ते) सत् स्वरूप जो तू है उसकी (महः महिमा) बड़ी महिमा (पनस्यते) गाई जाती है। (अद्धा) निश्चय, हे (देव) उपास्य देव ! तू (महान् असि) महान् है।

बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (सूर्य) सबके प्रेरक परमेश्वर ! तू (श्रवसा) कीर्ति से (बट्) सत्य ही (महान् असि) सबसे बड़ा है। (सत्रा) निश्चय से हे (देव) देदीप्यमान ! तू (महान् असि) सबसे बड़ा है। तू (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (देवानाम्) समस्त दिव्य शक्तियों में प्राण शक्ति देने वाला है। (पुरोहितः) तथा सबसे पूर्व विद्यमान और सब कार्यों में सर्वोपरि साक्षी रूप है। तू (विभु) सर्वत्र व्यापक है और (अदाभ्यम्) अविनाशी (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है।

[५९] ईश्वरार्चना

१, २ मेध्यातिथिः। ३, ४ वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रागाथम् [बृहती, सती बृहती]। चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ॥ १ ॥
कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥

भा०—(१-२) इन दो मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्ववेद का० २० । सू० १० । १, २ ॥

उदिन्न्वस्य रिच्यतेऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ ३ ॥

भा०—(जिग्युषः धनं न) विजयशील राजा का धन जिस प्रकार बराबर बढ़ा करता है उसी प्रकार (अस्य) इस परमेश्वर का (अंशः इत) सामर्थ्य और ऐश्वर्य (उद् रिच्यते नु) बढ़ता चला जाता है । (यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर (हरिवान्) हरणशील इन्द्रियों पर विजय करने वाले योगी के समान समस्त लोकों व शक्तियों पर वश करने वाला है (तम्) उसको (रिपः) पाप (न दभन्ति) नहीं सताते । वह परमेश्वर (सोमिनि) आत्मा के वशीयता या ब्रह्मानन्दरसपान करने वाले योगी में (दक्षं दधाति) बल प्रदान करता है ।

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (यज्ञियेषु) परस्पर संगति से होने वाली राज्यव्यवस्था, सभा, समिति, सत्संगों में (अखर्वम्) अति विनयपूर्वक (सु-धितम्) उत्तम रूप से विचारित, (सु-पेशसम्) सुन्दर, (मन्त्रम्) परस्पर का विचार, मन्त्र और वेदमन्त्र को (दधात) धारण करो, प्रयोग करो । (पूर्वीः चन) पूर्व से ही किये गये (प्रसितयः) उत्तम राज्यप्रबन्ध, व्यवस्था या धर्म-मर्यादाएं भी (तं तरन्ति) उसको कष्टों से पार करती हैं (यः) जो (कर्मणा) कर्म से (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् प्रभु के अधीन होकर (भुवत्) रहता है ।

[६०] ईश्वर और राजा का वर्णन

१-३ सुतकक्षः सुकक्षो वा ऋषिः । ४-६ मधुच्छन्दा ऋषिः । गायत्र्यः ।
षड्टचं सूक्तम् ॥

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥

भा०—(वीरयुः एव हि असि) हे राजन्! प्रभो! तू वीर पुरुषों को प्राप्त होने हारा, उनका हितैषी है। तू (शूरः उत स्थिरः एव असि) निश्चय शूरवीर और स्थिर रहने वाला, धैर्यवान् है। (ते मनः) तेरा मन (राध्यम् एव) आराधना करने योग्य है।

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवीमघ) बड़े ऐश्वर्य के स्वामिन्! (विश्वेभिः धातृभिः) समस्त पालन करने वाले धाता, धारक, प्रभु, स्वामी, पोषक, विधाताओं, राजाओं ने तेरे (रातिः एव) दिये दान को ही (धायि) धारण किया है। (अधा चित्) और इसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (मे सचा) मेरे भी साथ तू रह और मुझे धन ऐश्वर्य प्रदान कर।

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! हे प्रभो! (ब्रह्मा इव) यज्ञ में ब्रह्मा के समान और निष्ठा में ब्रह्मज्ञानी के समान हे (वाजानां पते) ऐश्वर्यों के स्वामिन्! तू (तन्द्रयुः) आलस्य युक्त (मा उ सु भुवः) कभी मत हो। (गोमतः सुतस्य) गौ आदि पशुओं से सम्पन्न ऐश्वर्य के द्वारा स्वयं (मत्स्व) तृप्त हो।

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥

भा०—(पक्वा शाखा न) पकी हुई शाखा जिस प्रकार मनुष्य को फूल फल देती है उसी प्रकार (अस्य) इस परमेश्वर की (सूनृता) शुभ, सत्यमयी, ज्ञानमयी और पूजनीय वाणी परमेश्वर को आत्मसमर्पण करने वाले अभ्यासी के लिये (विरप्शी) विविध फल देने वाली (एव) होती है।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥

भा०—(ते) तेरी (विभूतयः एव हि) विभूतियें ही हे (इन्द्र) राजन् ! प्रभो ! (मावते) मेरे जैसे (दाशुषे) दानशील के लिये (सद्यः चित्) सदा के लिये (ऊतयः सन्ति) रक्षा रूप से हो जाती हैं ।

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥

भा०—(अस्य) इसके (एव) ही (स्तोमः) स्तुतिसमूह और (उक्थं च) वेदज्ञान (काम्या शंस्या) स्तुति करने योग्य एवं उत्तम हैं । वे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् योगी आत्मा के (सोम पीतये) अध्यात्म ब्रह्मरस-आस्वाद के लिये होते हैं ।

[६१] पूर्णानन्द परमेश्वर की स्तुति

गोसूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी । इन्द्रो देवता । उष्णिहः । षडृचं सूक्तम् ॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हम लोग (ते) तेरे (तम्) उस प्रसिद्ध, (वृषणम्) सुखों के वर्षक, (पृत्सु) मनुष्यों और संग्रामों में (सासहिम्) शत्रुओं के पराजय करने वाले, (हरि-श्रियम्) वेगवती शक्तियों के आश्रयभूत, (लोक-कृत्नुम्) लोगों की रचना करने वाले (मदम्) परमानन्द रूप का (गृणीमसि) वर्णन करते हैं ।

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥

भा०—(येन) जिस प्रकाश से तू (आयवे) साधारण मनुष्य और (मनवे) ज्ञानशील पुरुष को (ज्योतींषि) नाना ज्योतिर्मय सूर्य, विद्युत, अग्नि आदि (विवेदिथ) प्रदान करता है, उससे ही तू (मन्दानः) सदा तृप्त

एवं पूर्ण आनन्दमय होकर, (अस्य बर्हिषः) इस महान् ब्रह्माण्ड के बीच में, आसन पर राजा के समान, (विराजसि) शोभायमान होता है।

तदुद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥

भा०—(अद्यचित्) आज तक भी (उक्थिनः) स्तुतिकर्त्ता पुरुष (पूर्वथा) पूर्व के समान ही (तत्) तेरे स्वरूप का (अनु स्तवन्ति) बराबर वर्णन करते हैं। तू सुखों की वर्षा करने वाले जीवात्मा की पत्नी-रूप प्राणशक्तियों पर प्रतिदिन विजय प्राप्त कर।

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (पुरुहूतम्) सबसे स्तुति करने योग्य, (पुरुस्तुतम्) बहुत विद्वानों से वर्णित, (तम् उ) उस परमेश्वर की ही (अभि प्र गायत) साक्षात्, अच्छी प्रकार स्तुति करो। हे विद्वान् लोगो! (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (तविषम्) महान् शक्तिशाली (इन्द्रम्) परमेश्वर की (आ विवासत) स्तुति करो, अर्चना करो।

यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी।
गिरीरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ५ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥

भा०—(द्वि-बर्हसः) दो महान् शक्तियों वाले (यस्य) जिसका (बृहत् सहः) बड़ा भारी बल (वृषत्वना) अपने वर्षण व आकर्षण बल से (रोदसी) द्यौ और पृथिवी को, (गिरीन् अज्रान्) मेघों और पर्वतों को, (अपः स्वः) जलों, समुद्र और आकाश को भी (दाधार) धारण करता है, (सः) वह तू (पुरु-स्तुतः) बहुतसी प्रजाओं द्वारा स्तुति करने योग्य (एकः) अकेला ही (राजसि) राजा के समान सर्वोपरि है। क्योंकि तू

(वृत्राणि) समस्त विघ्नों का (जिससे) विनाश करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू ही (जैत्रा श्रवस्यः) विजयशील कीर्तिजनक ऐश्वर्यों को (यन्तवे) प्रदान करने में समर्थ है।

[६२] ईश्वर का स्तवन

नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिहः । षड्ऋचं सूक्तम् ॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः। वाजे चित्रं हवामहे ॥१॥ उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्। त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥ यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ।३। हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत। आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥

भा०—(१-४) इन चार मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्ववेद का० २० । १४ । १-४ ॥

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (विप्राय) मेधावी, जगत् को विशेष बल और विविध पदार्थों से पूर्ण करने वाले, (बृहते) महान्, (धर्म-कृते) जगत् के धारण करने योग्य प्रबन्ध को करने वाले, (विपश्चिते) समस्त ज्ञानों और कर्मों को जानने वाले, (पनस्यवे) स्तुति के योग्य, (इन्द्राय) परम ऐश्वर्यवान् एवं ज्ञानदृष्टि से, समाधि द्वारा साक्षात् दर्शनीय परमेश्वर के (बृहत् साम) महत्व सूचक 'बृहत्' नामक स्तुतिगान का (गायत) गायन करो।

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वम् अभि-भूः असि) तू सब संसार में व्यापक और उसका वश करने वाला है। (त्वम्) तू (सूर्यम्) सूर्य को (आरोचयः) प्रकाशित करता है। तू (विश्व-कर्मा) समस्त जगत् का रचने हारा एवं जगत् के समस्त कार्यों का कर्त्ता और (विश्व-देवः) समस्त संसार का उपास्यदेव, सबका द्रष्टा और (महान् असि) सबसे बड़ा है।

विभ्राजं ज्योतिषा स्व१ रगच्छो रोचनं दिवः।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (ज्योतिषा) सूर्य आदि प्रकाशमान लोकों की ज्योति से (विभ्राजन्) विशेष रूप से चमकता हुआ, (दिवः रोचनम्) कान्तिमान् सूर्य और द्यौलोक को प्रकाशित करने वाले (स्वः) महान् तेज को (अगच्छः) प्राप्त है।। (देवाः) विद्वान् (ते सख्याय) तेरे मित्रभाव के लिये (येमिरे) यत्न करते हैं।

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ८ ॥ यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी। गिरीरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ९ ॥ स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे। इन्द्र जैत्रा श्रवस्याच यन्तवे ॥ १० ॥

भा०—(८—१०) इन तीन मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० का० २० । सू० ६१ । ४-६ ॥

[६३] राजा और ईश्वर

१-३ प्र० द्वि० भुवनः आप्त्यः साधनो वा भौवनः । ३ तृ० च० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ४-६ गोतमः । ७-९ पर्वत ऋषिः । इन्द्रो देवता । ७ त्रिष्टुप् । शिष्टा उष्णिहः । नवर्चं सूक्तम् ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः च) सेनापति और (विश्वे च देवाः) समस्त विद्वान्-गण और विजीगीषु वीरपुरुष हम सब मिलकर (इमा भुवनानि) इन लोकों को (सीषधाम कम्) अपने वश करें। (इन्द्र) राजा (आदित्यैः सह) १२ मासों या उनके समान नाना प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न राष्ट्र में १२ विभागों, या आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों के साथ मिलकर (नः) हमारे (यज्ञम्) राष्ट्र को, (नः तन्वे च) हमारे शरीर को और (नः प्रजां च) हमारी प्रजा को भी (चीक्लृपाति) शक्ति सम्पन्न करें।

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥२॥

भा०—(यत्) जब (देवाः) विजयी वीरपुरुष अपने (देवत्वम्) विजयी-स्वभाव की रक्षा करते हुए, (असुरान्) दुष्ट पुरुषों को (हत्वाय) मारकर (आयन्) लौट आवें, तब (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् या शत्रुओं का नाश करने वाला राजा, (स-गणः) अपने सैनिकगण के साथ, (आदित्यैः) सूर्य के समान तेजस्वी और (मरुद्भिः) वायु के समान तीव्रगति वाले वीरपुरुषों के साथ मिलकर, (अस्माकम्) हम प्रजाओं के (तनूनाम्) शरीरों का (अविता भूतु) रक्षक हो।

प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् लोग (प्रत्यञ्चम्) शत्रुओं पर चढ़ाई करने में समर्थ (अर्कम्) स्तुति योग्य पुरुष को (शचीभिः) शक्तिशाली सेनाओं (अनयन्) से युक्त करते हैं, (आत् इत्) और तदनन्तर (इषिराम्) सर्वप्रेरक, (स्वधाम्) अपने राष्ट्र के ऐश्वर्य को धारण करने वाली शक्ति को (परि अपश्यन्) साक्षात् करते हैं। (अया) इस राज्य की शक्ति से प्रेरित होकर हम लोग (देव-हितम्) विजय चाहने वाले वीरों एवं राजा के हितकारी (वाजम्) बल को (सनेम) प्राप्त करें और (सु-

(वीराः) उत्तम वीरों और पुत्रों वाले होकर (शतं हिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न एवं तृप्त रहें।

परमात्मा और आत्मा के पक्ष में—(अर्कम्) अर्चनीय उपास्य आत्मा को आत्मज्ञानी लोग (शचीभिः) यज्ञ और कर्म द्वारा साक्षात् करते हैं और उस सर्व प्रेरक, तथा शरीर और ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली आत्मशक्ति को ही (परि अपश्यन्) सर्वत्र विद्यमान पाते हैं। उस शक्ति से ही हम (देव-हितम्) विद्वानों और प्राणों के हितकारी (वाजम्) अन्न का हम (सनेम्) भोग करें और सौ वर्षों तक पुत्रादि सहित हर्षित रहें।

य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥

भा०—(अङ्ग) हे विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो (एकः इत्) अकेला ही (दाशुषे मर्ताय) दानशील आत्मसमर्पक पुरुष को (वसु विदयते) ऐश्वर्य विविध रूपों में प्रदान करता है, वह ही (अप्रतिष्कुतः) विपत्तियों से कभी पराजित न होने वाला, अप्रतिहत सामर्थ्यवान, अथवा कभी याचक को न नकराने वाला (ईशानः) सर्वेश्वर (इन्द्रः) इन्द्र है।

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥

भा०—(अङ्ग) हे विद्वान् पुरुषो ! (अराधसम्) कृपण, अदानशील पुरुष को (इन्द्रः) वह परमेश्वर न जाने, (कदा) कब (पदाक्षुम्पम् इव) पैर से खुम्बी की तरह (स्फुरत्) ठुकरा दे और (नः गिरः) हमारी वाणियों को वह (कदा) कब (शुश्रवद्) सुन ले।

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥

भा०—(अङ्ग) हे प्रजागण! अथवा अन्तरात्मन्! (यः चित् हि) जो भी (सुतावान्) उत्पन्न पदार्थों या ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर (बहुभ्यः) बहुत से जनों के हित के लिये (त्वा) तेरी (आविवासति) सेवा करता है, (तत्) वह (इन्द्रः) शत्रुनाशक होकर (उग्रम्) भयंकर (शवः) बल को (पृत्यते) प्राप्त होता है।

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति।
येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान्! हे (शविष्ठ) सबसे अधिक बलशालिन्! (येन) जिस बल से तू (अत्रिणम्) प्रजा को खा जाने वाले दुष्ट पुरुषों को (निहंसि) निग्रह करके दण्ड देता है और (यः मदः) जो सबको प्रसन्नता और हर्ष देने वाला, (सोम-पातमः) सोम नाम राजा के पद या राष्ट्र को अच्छी प्रकार पालन करने में समर्थ होकर (चेतति) सब प्रजाओं को चेताता या ज्ञानवान् करता है, (तः ईमहे) हम उसी बल को चाहते हैं।

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम्।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ ८ ॥

भा०—हे परमेश्वर! (येन) जिस बल से तू (दशग्वम्) दश गमनशील प्राणों या इन्द्रियों से युक्त, (अध्रिगुम्) तथा अस्थिरगति वाले नाशवान् शरीर को (वेपयन्तम्) सञ्चालित करने वाले (स्वः-नरम्) तथा सुख के नेता सूर्य की (आविथ) रक्षा करता है और (येन) जिससे (समुद्रम्) महान् आकाश और समुद्र की (आविथ) रक्षा करता है, हम तो (तम् ईमहे) उस बल की याचना करते हैं।

येन सिन्धुं महीरपो रथाँइव प्रचोदयः।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

भा०—हे ईश्वर! (येन) जिस बल से तू (सिन्धुम्) समुद्र के

प्रति (महीः अपः) बहने वाली बड़ी २ जल की नदियों को, (रथान् इव) रथों को महारथी के समान, अपनी आज्ञा से (ऋतस्य) सत्य नियम के (पन्थां यातवे) मार्ग पर ठीक प्रकार से चलने के लिये (प्रचोदयः) प्रेरित करता है, (तम् ईमहे) हम उसी बल की याचना करते हैं।

[६४] ईश्वर

१–३ नृमेधः । ४–६ गोसूक्त्यश्वसुक्तिनो । इन्द्रो देवता । उष्णिहः । षडर्चं सूक्तम् ॥

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः ।
गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (नः) हमारा (प्रियः) प्रिय, (सत्राजित्) सदा विजयशील एवं एक ही साथ सबको विजय करने में समर्थ और (अगोह्यः) सबके गोचर, कभी छिप कर न रहने वाला होकर (नः) हमें (आ गधि) प्राप्त हो। तू (गिरिः न) पर्वत के समान (विश्वतः) सब प्रकार से (पृथुः) विस्तृत (दिवः पतिः) तथा सूर्य और आकाश का पालक है।

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

भा०—हे (सत्य) सत्यस्वरूप ! तू (सोम-पाः) संसार या परमैश्वर्य का पालन करने हारा होकर (उभे रोदसी) दोनों लोकों को (अभि बभूथ) वश करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सुन्वतः वृधः) भजन करने वाले उपासक को बढ़ाने वाला और (दिवः पतिः) द्युलोक का भी पालक (असि) है।

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (शश्वतीनाम्) अनादिकाल से चली आई इन (पुराम् दर्ता असि) देहरूप नगरियों को तोड़ने वाला, देह-बन्धनों का

नाशक, मुक्ति दाता है। (दस्योः) क्षयकारी अज्ञान का नाशक (मनोः) ज्ञान का वर्धक और आत्म-प्रकाश का पालक है।

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) यज्ञ के सम्पादक, उपासक ! (अन्धसः) मधुर प्राण और आत्मा को (मदिन्तरम्) अति अधिक आनन्दप्रद (आ सिञ्च इत् उ) आन्तर रस को तू प्रवाहित कर। (हि) क्योंकि (एव) इस प्रकार ही (सदावृधः) नित्य वृद्धिशील (वीरः) वीर्यवान् व्यक्ति (स्तवते) हमें उपदेश देता है।

इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम्।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! हे (हरीणां स्थातः) गतिमान् लोकों के बीच में संस्थापक! अथवा (हरीणाम्) नाशवान् पदार्थों के बीच में सदा स्थिर ! (ते) तेरी (पूर्व्य-स्तुतिम्) पूर्ण स्तुति को (शवसा) बल द्वारा (नकिः उत् आनंश) कोई भी अभी तक प्राप्त नहीं कर सका और (न भन्दना) न उस तेरी कीर्ति को अपने कल्याणकारक और सुखदायक व्यवहार से ही लांघ सका है।

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों के (वाजानाम्) ऐश्वर्यों, बलों, सेनाओं और अन्नादि समृद्धियों के (पतिम्) पालक और (अप्रायुभिः) निरन्तर किये जाने वाले (यज्ञेभिः) उपासना के कर्मों से (वावृधेन्यम्) नित्य बढ़ने वाले (तम्) उस परमेश्वर को (श्रवस्यवः) यश, ज्ञान और अन्न समृद्धि के इच्छुक हम लोग (अहूमहि) स्मरण करते हैं।

[६५] परमेश्वर

विश्वमनाः वैयश्व ऋषिः। इन्द्रो देवता। उष्णिक्:। तृचं सूक्तम् ॥

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! (आ इत नु) आओ, (या) जो (एक इत्) अकेला ही (विश्वाः) समस्त (कृष्टीः) आकर्षण शक्ति से बद्ध लोकों के (अभि अस्ति) ऊपर वश कर रहा है, उस (स्तोम्यम्) स्तुतियोग्य (नरम्) सबके नेता, सबके सञ्चालक (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें।

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः।
घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥

भा०—हे मित्रो ! आप लोग (गविषे) वेदवाणियों को प्रेरणा करने वाले और (अगो-रुधाय) अपनी ज्ञानकिरणों को न रोक रखने वाले, (द्युक्षाय) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की स्तुति के लिये, (घृतात् स्वादीयः) घृत से भी अधिक स्निग्ध और (मधुनः च स्वादीयः) मधु से भी मधुर (दस्म्यम्) दर्शनीय (वचः) वचन का (वोचत) उच्चारण करो।

यस्यामितानि वीर्याः न राधः पर्येतवे।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥

भा०—हे मित्रो ! (यस्य) जिसके (वीर्या) वीर्य, पराक्रम और बल के व्यापार (अमितानि) असंख्य एवं मापे नहीं जा सकते और (राधः) जिसका ऐश्वर्य भी (परि एतवे न) पार नहीं किया जा सकता और जिसकी (दक्षिणा) दानशीलता भी (ज्योतिः न) सूर्य के प्रकाश के समान (विश्वम् अभि अस्ति) समस्त विश्व से भी ऊपर, सबसे बढ़कर है, तुम उसकी स्तुति मधुर और स्नेहमय वचनों से करो।

[६६]

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ।
अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुष ! तू (व्यश्ववत्) विनीत अश्व वाले पुरुष के समान अपनी इन्द्रियों पर विजयशील होकर, (अनूर्मिम्) अविक्षुब्ध गम्भीर, (यमम्) सर्व नियन्ता, (वाजिनम्) ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् (दाशुषे) दानशील (अर्यः गयम्) शत्रु के लिये भी गृह के समान आश्रयरूप (इन्द्रम्) तथा तमोनाशक परमेश्वर की (स्तुहि) स्तुति कर ।

प्रजा वा अरीः । श० ३ । ९ । ४ । ४१ ॥ अरिः अरिः स्वामी ।

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २ ॥

भा०—(नूनम्) निश्चय से, हे (वैयश्व) विनत इन्द्रियरूप अश्वों वाले ! जितेन्द्रिय पुरुष ! तू (दशमम्) ५ ज्ञानेन्द्रियों, मन, बुद्धि, महत्तत्व और प्रकृति इन ९ शक्तियों से परे जो दसवीं शक्ति परमात्मा है उसकी, (नवम्) तथा जो सदा स्तुति योग्य (सुविद्वांसम्) उत्तम ज्ञानवान्, (चरणीनाम्) और सदाचारी साधकों के लिये (चर्कृत्यम्) सदा उपासना करने योग्य परमेश्वर है (उप स्तुहि) उसकी स्तुति किया कर ।

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥

भा० —हे (वज्र-हस्त) ज्ञानवज्र को हाथ में लेने हारे ! तू (निर्ऋतीनाम्) नीचे ले जाने वाली कुप्रवृत्तियों के (परि-वृजम्) वर्जन के उपाय को (अहरहः) प्रतिदिन उसी प्रकार (वेत्थ) जान और प्राप्त कर, जिस

प्रकार (शुन्ध्युः) शोध लगाने वाला, या विपत्तियों का शोधन करने वाला प्रतिदिन (परिपदाम् इव) आ पड़ने वाली विपत्तियों की खोज लगाता है। इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[६७] ईश्वर और राजा

१–३ परुच्छेप ऋषिः। ४–७ गृत्समदः। देवता–१ इन्द्रः। २ मरुतः। ३ अग्निः। १–३ अत्यष्टयः। ४–७ जगत्यः। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः। सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः। सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (सुन्वन्) तेरी उपासना करता हुआ पुरुष ही (क्षयम्) निवास योग्य उत्तम गृह और लोक को (वनोति) प्राप्त करता है। (सुन्वानः हि) तेरी उपासना करने वाला पुरुष ही (परीणसः) चारों तरफ नाक वाले अर्थात् अति सावधान या चारों ओर से लगे हुए (द्विषः) शत्रुओं को (अवयजति) नाश करता है और साथ ही (देवानाम् द्विषः) विद्वान् पुरुषों के शत्रुओं को भी (अव यजति) नीचे गिराता है। (सुन्वानः इत्) उपासना करने वाला पुरुष ही (वाजी) ज्ञानवान् होकर (अवृतः) विघ्नों और बाधाओं से न घिरकर (सहस्रा) हजारों ऐश्वर्यों को (सिषासति) निरन्तर प्राप्त करता है। (इन्द्रः) परमेश्वर (सुन्वानाय) उपासक को (आभुवं रयिम्) सब प्रकार के सुखों को उत्पन्न करने वाले ऐश्वर्य (ददाति) प्रदान करता है और (आभुवम्) पुनः २ आने वाले या अन्त तक रहने वाले, अक्षय (रयिम्) बल वीर्य (ददाति) प्रदान करता है।

राजा के पक्ष में—(सुन्वन्) राज्याभिषेक करने वाला प्रजाजन (क्षयं वनोति) निवास योग्य शरण प्राप्त करता है, अपने शत्रु और विद्वानों के शत्रुओं को दबाता है। (अवृतः) स्वयं शत्रुओं से न घिरकर, (वाजी)

अश्वारोही होकर सहस्रों ऐश्वर्य प्राप्त करता है। राजा ऐसे अभिषेक करने वाले प्रजाजन को अक्षय (रयिम्) ऐश्वर्य का भी प्रदान करता है।

'परीणसः'—उपसर्गाच्चे (पा० १। ५। ४। ९९) ति नासिकाया नसादेशः। परितो नासिका येषां ते परीणसः अतिसावधानाः। कुक्कुरवद्दिष्टानिष्टवस्त्वाघ्राणपराः।

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः। यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्। अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ २॥

भा०—हे (मरुतः) प्राणगण! वा हे विद्वानो! (वः) तुम्हारे (तानि सना पौंस्या मो सु अभि भूवन्) वे सनातन आत्मसम्बन्धी बलकर्म नष्ट न हों। अर्थात् इन्द्रियों के सामर्थ्य बने रहें। (अस्मत् द्युम्नानि मोत जारिषुः) तेजोमय ज्ञान हमसे न छूटें, वे भी बने रहें। (उत) और चाहे (पुरा) ये देह (अस्मत्) हमसे (जारिषुः) छूट जायं पर (यद्) जो (वः) तुम लोगों के बीच (नव्यम्) सदा स्तुत्य सदा नवीन (अमर्त्यम्) अमर, (चित्रम्) चित्स्वरूप में रमण करने वाला आत्मा (घोषात्) कहा जाता है, (यत् च दुस्तरम्) और जिसको अज्ञानी पा नहीं सकते और (यत् च दुस्तरम्) जिसको प्रलोभन जीत नहीं सकते उस ईश्वरीय बल को (अस्मासु दिधृत) हमारे में धारण कराओ।

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ३॥

भा०—मैं (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को (दास्वन्तम्) दान देने वाला, (होतारम्) सब कुछ स्वीकार करने वाला, (वसुम्) सबमें बसने और सबको बसाने वाला और (सहसः) अपने बल और शक्ति

कारण (सुनुम्) सबका प्रेरक, (जात-वेदसम्) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाला और (विप्रं न) विविध विद्याओं से पूर्ण मेधावी विद्वान् के समान (जात-वेदसम्) ऐश्वर्यों और वेदविद्याओं को प्रकट करने वाला (मन्ये) मानता और जानता हूँ (यः) जो कि (ऊर्ध्वया) सर्वोत्कृष्ट तथा (देवाच्या) दिव्य पदार्थों में प्रकट होने वाले (कृपा) सामर्थ्य द्वारा (स्वध्वरः) उत्तम प्रजापालन रूप यज्ञ करने हारा, (देवः) सबका द्रष्टा और सबका प्रकाशक है और जो (आजुह्वानस्य) आहुति किये गये (सर्पिषः) द्रवीभूत (घृतस्य) घी के कारण उत्पन्न (विभ्राष्टिम् अनु) अग्नि की देदीप्यमान ज्वाला के समान चमक से चमकता है।

इसी प्रकार राजा—शत्रुतापक होने से 'अग्नि', राज्य स्वीकार करने से 'होता', दानशील होने से 'दाश्वान्', प्रजा को बसाने वाला होने से 'वसु', ऐश्वर्यवान् होने से 'जातवेदा' है। वह विजिगीषु विद्वानों के भीतर विद्यमान सर्वोच्च शक्ति से (सु-अध्वरः) उत्तम राष्ट्रपालन रूप यज्ञ करता है। घृत के तेज से देदीप्यमान अग्नि के समान स्वयं दीप्ति से चमकता है।

यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत। आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ ४ ॥

भा०—(नरः) हे नेताओ ! हे (भरतस्य सूनवः) भरण पोषण करने वाले महान् परमेश्वर के पुत्रों के समान योगि जनो ! आप लोग (यज्ञैः संमिश्लाः) उपासना के उचित कर्मानुष्ठानों से युक्त होकर, (पृषतीभिः ऋष्टिभिः) आत्मा को पूर्ण करने वाली शक्तियों सहित (यामन्) उस प्राप्तव्य परम परमेश्वर के आश्रय में (शुभ्रासः) निष्पाप कर्मों का आचरण करते हुए, (उत) और (अञ्जिषु) ज्ञान के प्रकाश करने वाले कार्यों में (बर्हिः आसद्य) उस महान् ब्रह्म में स्थित होकर, (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी (पोत्राद्) पालनकर्त्ता परमेश्वर से (आ) प्राप्त करके (सोमम्) ब्रह्मानन्द रस का (आ पिबत) निरन्तर पान करो।

राजा के पक्ष में—हे (दिवः नरः) ज्ञान वाली राजसभा के नेता पुरुषो ! आप लोग (यज्ञैः संमिश्लाः) आदर सत्कारों से युक्त, (यामन्) रथों पर (पृषतीभिः) हृष्ट पुष्ट घोड़ियों, अश्वों और (ऋष्टिभिः) हिंसाकारी हथियारों से (शुभ्रासः) सुशोभित और (अञ्जिषु प्रियाः) आभूषणों द्वारा मनोहर होकर, (बर्हिः आसद्य) आसनों पर बैठकर, (पोत्रात्) पवित्र कर्त्तव्य से (सोमं आ पिबत) ऐश्वर्य या राष्ट्र का भोग करो।

आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु। प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृष्णुहि ॥ ५ ॥

भा०—हे (विप्र) विविध विद्याओं में पूर्ण परमेश्वर ! तू (इह) इस जगत् में (देवान्) विद्वानों और सूर्यादि लोकों को (आ वक्षि) धारण करता है और (यक्षि च) परस्पर संगत करता है। हे (होतः) सबके स्वीकार करने हारे ! तू (त्रिषु योनिषु) तीनों लोकों में (नि सद) व्याप्त है। तू (प्रति वीहि) प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त है। (प्रस्थितं सोम्यं मधु) जीवों के हितकारी ज्ञान को (पिब) उन्हें पान करा। (आग्नीध्रात्) अग्नि को धारण करने वाले सूर्यादि लोक से प्राप्त (तव भागस्य) तथा भजन करने योग्य तेज से तू (तृष्णुहि) समस्त संसार को तृप्त कर।

राजा के पक्ष में— हे विविध ऐश्वर्यों से राष्ट्र को पूर्ण करने वाले विप्र ! तू (देवान् आ वक्षि) विजयी पुरुषों का धारण कर, (यक्षि) उनको वेतनादि दे। (त्रिषु योनिषु) सिंहासन, शासकवर्ग और प्रजावर्ग तीनों पर विराज अथवा स्वराष्ट्र, परराष्ट्र और उदासीनराष्ट्र पर विराज। उपस्थित (सोम्यं मधु) राष्ट्रमय मधु, भोग्य पदार्थ या बल को प्राप्त कर, उसका भोग कर और अपने (आग्नीध्रात्) तेज धारण करने वाले राजपद से प्राप्त स्वराष्ट्र द्वारा तृप्त हो।

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः। तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥ ६

भा०—हे राजन् ! (एषः स्यः) यह राष्ट्र का अधिकार तेरी बाहुओं के आश्रय में रखा गया है, जैसे कि द्युलोक में सूर्य को रखा है, यह राष्ट्र धनशक्ति को बढ़ाने वाला, बल तथा ओज रूप है। यह (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (सुतः) अभिषेक द्वारा प्रदान किया है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (आ-भृतः) सब प्रकार से सुरक्षित एवं तुझे प्राप्त कराया गया है। (त्वम्) तू (अस्य) इसमें से (ब्राह्मणात्) वेदोपदिष्ट भाग लेकर उस द्वारा (तृपत्) तृप्त, सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर इसका (आ पिब) भोग कर।

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो दुदिर्यो नाम पत्यते। अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ७ ॥

भा०—(यम् उ) जिसको (पूर्वम्) मैं पहले इस मुख्य पद पर (आहुवे) बुलाता हूँ (तम्) उसको ही मैं (इदम् हुवे) इस बात का उपदेश करता हूँ कि (यः नाम) जो भी (पत्यते) ऐश्वर्यवान् होता है (सः इत् उ) वह ही निश्चय से (हव्यः) स्तुतियोग्य और (ददिः) दानशील होता है। हे (द्रविणोदः) ऐश्वर्य के दाता तू ऋतु २ के अनुसार (अध्वर्युभिः) राष्ट्र के पालनरूपयज्ञ के कर्त्ता विद्वान् शासकों द्वारा (प्रस्थितम्) प्रस्तुत किये (सोम्यं मधु) राजपद के योग्य, मधुर ऐश्वर्य को (पोत्रात्) पवित्र पालनकर्म से प्राप्त कर और (सोमं पिब) राष्ट्र-ऐश्वर्य का भोग कर।

[६८] परमात्मा, विद्वान्, राजा

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

उप॑ नः सव॑ना ग॑हि सोम॑स्य सोमपाः पिब।
गो॒दा इद् रे॒वतो॒ मदः॑ ॥ २ ॥
अथा॑ ते अन्त॑मानां वि॒द्याम॑ सुम॒तीना॑म्।
मा नो॒ अति॑ ख्य॒ आ ग॑हि ॥ ३ ॥
परे॑हि॒ विग्र॒मस्तृ॑त॒मिन्द्रं॑ पृच्छा वि॒पश्चि॑तम्।
यस्ते॒ सखि॑भ्य॒ आ वर॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् (यः) जो (ते सखिभ्यः) तेरे स्नेही मित्रों को (वरम्) श्रेष्ठधन (आ) प्रदान करता है उस (अस्तृतम्) अखण्ड, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (विप्रम्) विविध विद्याओं का उपदेश करने वाले और (विपश्चितम्) ज्ञानों और कर्मों के जानने हारे विद्वान् को (परा इहि) प्राप्त हो और उससे (पृच्छ) प्रश्न करके ज्ञान प्राप्त कर।

उ॒त ब्रु॑वन्तु नो॒ निदो॒ निर॒न्यत॑श्चिदारत।
दधा॑ना॒ इन्द्र॒ इद् दुवः॑ ॥ ५ ॥

भा०—(निदः) निन्दक पुरुष (निः आरत) दूर चले जांय और (अन्यतः चित्) अन्य स्थानों से भी वे (निर् आरत) परे हों। (उत) और (इन्द्रे इत्) परमेश्वर और आचार्य के अधीन (दुवः) सेवा भक्ति और व्रत (दधानाः) धारण करते हुए विद्वान्जन (नः) हमें (ब्रुवन्तु) उपदेश करें।

उ॒त नः॑ सु॒भगाँ॑ अ॒रिर्वो॒चेयु॑र्दस्म कृ॒ष्टयः॑।
स्यामेदिन्द्र॑स्य॒ शर्म॑णि ॥ ६ ॥

भा०—हे (दस्म) शत्रुओं के नाशक अथवा हे दर्शनीयतम प्रभो ! (अरिः उत) शत्रुगण और (कृष्टयः) साधारण मनुष्य भी (नः) हमें (सुभगान्) उत्तम ऐश्वर्यवान् (वोचेयुः) कहें। हम (इन्द्रस्य) ज्ञानप्रद गुरु और शत्रुनाशक राजा के (शर्मणि) शरण या सुखमय आश्रय में (स्याम इत्) सदा रहें।

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।
पतयन्मन्दयत् सखम् ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे आचार्य ! (आशवे) ज्ञानोपदेश ग्रहण करने में तीव्र (ईम्) इस शिष्य को, (आशुम्) व्यापक, (यज्ञ-श्रियम्) यज्ञ की शोभा बढ़ाने वाला, (नृ-मादनम्) मनुष्यों के सुखकारी, (पतयत्-मन्दयत्-सखम्) ऐश्वर्यदायक मित्रों को प्रसन्न करने वाला ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा।

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) सैकड़ों कर्म और प्रजाओं से युक्त राजन् ! विद्वन् ! तू (अस्य) इस राष्ट्र के ऐश्वर्य को (पीत्वा) प्राप्त करके (वृत्राणाम्) विघ्नकारी एवं नगररोधक शत्रुओं को (घनः) मारने में समर्थ (अभवः) हो जाता है। (वाजेषु) संग्रामों में (वाजिनम्) अन्न, बल और वेगवान् अश्वारोही दल की (प्र अवः) उत्तम रीति से रक्षा कर।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) सैकड़ों कर्मों, बलों से युक्त ! ऐश्वर्यवन् ! (धनानां सातये) ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये, (तम्) उस जगत् प्रसिद्ध (त्वा) तुझ (वाजिनम्) बलवान् पुरुष को हम लोग, (वाजेषु) बलों से करने योग्य कार्यों के अवसरों पर, (वाजयामः) प्राप्त होते हैं।

यो रायो३ वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो (रायः) ऐश्वर्य का (अवनिः) पृथ्वी के समान आश्रय और रक्षा करने हारा है और (महान्) बड़ा भारी, (सुन्वतः) उपासना करने वाले भक्त का (सु-पारः) उत्तम पालक एवं (सखा) मित्र है, (तस्मै) उस (इन्द्राय गायत) ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति गान करो।

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखाय स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥

भा०—हे (स्तोम-वाहसः) स्तुतिसमूहों को, वेद मन्त्रों को धारण करने वाले विद्वान् पुरुषो ! हे (सखायः) मित्र जनो ! (आ एत उ तु) आओ और (आ निषीदत) आसनों पर बैठो और (इन्द्रम् अभि) ऐश्वर्यवान् प्रभु को लक्ष्य करके (प्र गायत) उत्तम २ स्तुति गान करो ।

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ १२ ॥

भा०—(सुते सोमे) राष्ट्र के व्यवस्थित और राजा के अभिषिक्त हो जाने पर, (पुरूणाम्) बहुत सी प्रजाओं में (पुरु-तमम्) सबसे श्रेष्ठ पालक और (वार्याणाम्) अभिलाषा के योग्य ऐश्वर्यों के (ईशानम्) स्वामी (इन्द्रम्) परमेश्वर की (सचा) एकत्र होकर स्तुति करो ।

[६९] राजा, सेनापति, परमेश्वर

ऋष्यादि पूर्ववत् । गायत्र्यः । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥

भा०—(सः घ) वह परमेश्वर (नः योगे) हमारे अप्राप्त पुरुषार्थ के प्राप्त करने में (आ भुवत्) सहायक हो । अथवा (सः घ नः) वह हमारे (योगे) चित्त के एकाग्र कर लेने पर समाधि दशा में (आ भुवत्) प्रकट होता है (सः राये) ऐश्वर्यवृद्धि के लिये वही (आ भुवत्) समर्थ है । (सः पुरन्ध्याम्) वह बहुत से शास्त्रों को धारण करने वाली बुद्धि में प्रकट होता है । (सः) वह (नः) हमें (वाजेभिः) बल, वीर्य एवं ऐश्वर्यों सहित (आ गमत्) प्राप्त हो ।

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २ ॥

भा०—(संस्थे) भली प्रकार हृदय में स्थित हो जाने पर (यस्य हरी) जिसके दुःखहारी प्राण और अपान के सामने (शत्रवः) आत्मा के बल के नाशक विषयगण, (समत्सु) समाधि के रस प्राप्ति के अवसरों पर (न वृण्वते) आत्मा को नहीं घेरते, (तस्मै) उस (इन्द्राय) आत्मा और परमेश्वर के गुणों का (गायत) गान करो।

सुतपान्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ३ ॥

भा०—(इह) ये (शुचयः) निर्मल, (सुताः) परमात्मा के पुत्र के समान (सोमासः) ज्ञानी पुरुष, (दध्याशिरः) ध्यानयोग से अपनी देह को शीर्ण करने में समर्थ होकर, (सुत-पाव्ने) ज्ञान-निष्णात उपासकों की पुत्र के समान पालना करने वाले परमेश्वर को (वीतये) प्राप्त करने के लिये (यन्ति) मोक्षमार्ग का अनुसरण करते हैं।

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! पुत्र के समान उपासकों को (पीतये) अपनी गोद में लीन कर देने के लिये तू सदा ही (वृद्धः अजायथाः) महान् है, क्योंकि (ज्यैष्ठ्याय) तू सबसे ज्येष्ठ है।

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ५ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य (इन्द्र) परमेश्वर ! (आशवः) वेगवान् सूर्यादि लोक (सोमासः) और विद्याओं में व्याप्त ज्ञानी पुरुष (त्वा आविशन्तु) तुझको ही प्राप्त होते हैं और (ते) तुझ (प्रचेतसे) प्रकृष्ट ज्ञानवान् के अधीन होकर ही (शम्) कल्याणकारी और शक्तिदायक (सन्तु) होते हैं।

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (स्तोमाः) वेदमन्त्रसमूह (त्वाम् अवीवृधन्) तुझे बढ़ाते हैं, (उक्था) सूक्त भी हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्मों और प्रज्ञानों वाले ! (त्वाम्) तुझको ही बढ़ाते हैं। (नः गिरः) हमारी वाणियां भी (त्वा वर्धन्तु) तुझे ही बढ़ावें ।

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् ।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मिन्) जिस परमेश्वर में (विश्वानि) समस्त (पौंस्या) पराक्रम एवं पुरुष के उपयोगी समस्त पदार्थ विद्यमान हैं वह (इन्द्रः) परमेश्वर, (अक्षित-ऊतिः) अक्षय शक्ति वाला होकर हमें (सहस्रिणम् वाजम्) हजारों सुखों के देने वाला ऐश्वर्य (सनेत्) प्रदान करे । इसी प्रकार वह राजा अक्षय पालनशक्ति से युक्त होकर, सहस्रों ऐश्वर्य देने में समर्थ (वाजं सनेत्) संग्राम करे, जिसमें (विश्वानि पौंस्या) समस्त पौरुष बल हैं ।

मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) स्तुति योग्य (इन्द्र) परमेश्वर ! एवं राजन् ! (मर्ताः) मनुष्य (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों के प्रति (मा अभि द्रुहन्) द्रोह न करें, घात प्रतिघात न करें । तू (ईशानः) स्वामी होकर (वधम्) हम पर उठने वाले शस्त्र या हत्यारे पुरुष को (यवय) दूर कर ।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ९ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ १० ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ११ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ १२ ॥

भा०—(९-११) इन तीन मन्त्रों की व्याख्या देखो कां २० । २४ । ४-६ ।। और १२वें मन्त्र की व्याख्या देखो कां० २०।४०। ३ ॥

[७०] राजा, परमेश्वर

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्रिया अनु ।। १ ।।

भा०—(अनु अविन्दः) वह परमेश्वर (आ-रुजत्नुभिः) सब प्रकार के दुःखों का नाश करने वाले, (वह्निभिः) ज्ञान के नेता विद्वान् पुरुषों द्वारा, या शरीर का वहन करने वाले प्राणों द्वारा (वीळु चित्) बल-पूर्वक (गुहा) हृदयाकाश में (उस्रियाः) अपने ज्ञानप्रकाशों को फैलाकर (अनु अविन्दः) सबको व्याप्त करता है । अथवा (उस्रियाः) मोक्ष मार्ग में सर्पण करने वाले मुमुक्षु आत्माओं को (अनु) उन पर अनुग्रह करके अपने पास ले लेता है ।

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद् वसुं गिरः ।
महामनूषत श्रुतम् ॥ २ ॥

भा०—(देवयन्तः) उपास्यदेव परमेश्वर की उपासना करने हारे (गिरः) विद्वान् पुरुष (यथा) जिस प्रकार से (मतिम्) मनन करने योग्य, (वसुम्) सबके बसाने वाले और सबमें बसने वाले, (श्रुतम्) सबसे श्रवण करने योग्य, जगत्प्रसिद्ध, (महाम्) महान् परमेश्वर को (अच्छ) साक्षात् (विदद्) जानते हैं उसी प्रकार (ते) वे उसकी (अनूषत) स्तुति किया करते हैं ।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ३ ॥

भा०—वायु के समान तीव्र वेगवान् सैन्यगण ! (अबिभ्युषा) भय रहित बल से युक्त होकर, (इन्द्रेण) राजा या सेनापति के साथ (संजग्मानः) संगति लाभ करता हुआ (सं दृक्षसे) भला प्रतीत होता है। (हि) क्योंकि दोनों (समान-वर्चसा) समान तेज को धारण करने हारे होकर (मन्दू) परस्पर सन्तोषदायक होते हैं। ईश्वर पक्ष में—प्राणाभ्यासी योगी (अबिभ्युषा) अभय चित्त से संगत होकर परमेश्वर के साथ अपने को मिला पाता है। वे दोनों समान तेज के, आनन्दमय होकर एक दूसरे को आनन्दित करते हैं।

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ४ ॥

भा०—(मखः) यज्ञ, (अभिद्युभिः) उज्ज्वल, (अनवद्यैः) अनिन्दनीय, (काम्यैः) कामना योग्य (गणैः) प्राय गण, या विद्वान् पुरुषों द्वारा (सहस्वत् इन्द्रस्य अर्चति) शक्तिमान् परमेश्वर की पूजा करता है। अर्थात् यज्ञ में विद्वान्गण परमेश्वर की ही उपासना करते हैं।

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
सम॑स्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ५ ॥

भा०—हे (परिज्मन्) सर्वव्यापक तू (अतः) इस अन्तरिक्ष से मेघ या वायु के समान, (दिवः) आकाश से सूर्य के समान, (वा) और (रोचनाद्) रुचिकर आदित्य से प्रकाश के समान (आगहि) हमें प्राप्त हो। (अस्मिन्) इस तुझमें ही (गिरः) समस्त वेदवाणियें (सम् ऋञ्जते) संगत होती हैं।

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु से (सातिम्) धनैश्वर्य के दान का (ईमहे) याचना करते हैं। वह हमें (इतः वा) इस (पार्थिवात्) पृथिवीलोक से, (दिवः वा) या आकाश से, या (महः वा

रजसः) महान् अन्तरिक्षलोक से नाना ऐश्वर्य और भोग्य पदार्थों का प्रदान करे।

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।

इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ७ ॥

भा०—(गाथिनः) उद्गाता लोग (बृहत्) बृहत् आदि साम गायन द्वारा (इन्द्रम् इत् अनूषत) उस परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं। (अर्किणः) अर्चना करने वाले विद्वान् पुरुष (अर्केभिः) ऋग्वेद के मन्त्रों द्वारा (इन्द्रम् इत् अनूषत) परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं। (वाणीः) यजुर्वेद की गद्यमय वाणियें भी (इन्द्रम् अनूषत) परमेश्वर की ही स्तुति करती हैं।

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा।

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रः इत्) परमेश्वर ही (हर्योः) अपने में नित्य विद्यमान (हर्योः सचा) हरण और आहरण अर्थात् उत्पत्ति और विनाश नामक दो शक्तियों के साथ (आ संमिश्लः) सब प्रकार से रचा मिचा है, सधे घोड़े जैसे सारथि के वचन से ही ठीक मार्ग पर चलते हैं उसी प्रकार वे दोनों शक्तियां भी (वचः-युजा) प्रभु के कथन के अनुसार प्रयुक्त हो रही हैं। (इन्द्रः) वह परमेश्वर (हिरण्ययः) सुवर्ण के समान कान्तिमान् और मनोहर होकर भी (वज्री) कठोर वज्र रूप शासन को धारण करता है।

राजा के पक्ष में—(वचः-युजा हर्योः सचा संमिश्लः) वह आज्ञाकारी दो वेगवान् घोड़ों से युक्त है। खड्गधर और सुवर्णवान् अर्थात् शासनधर और कोषवान् है।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि।

वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह परमेश्वर (दीर्घाय चक्षसे) दूर तक देखने के लिये (दिवि) आकाश में (सूर्यम् आरोहयत्) सूर्य को स्थापित करता

है और वह सूर्य (गोभिः) किरणों से या गमनशील वायुओं से (अद्रिम्) मेघ को भी (वि ऐरयत्) विविध दिशाओं में प्रेरित करता है।

राजा या सेनापति के पक्ष में—वह (दीर्घाय चक्षसे) दीर्घ दृष्टि से दूर तक के भविष्य को देखने के लिए, (दिवि) विद्वानों की राजसभा में सबसे ऊपर, (सूर्यम्) आकाश में सूर्य के समान, तेजस्वी ज्ञानप्रकाशक विद्वान् को प्रधान पद पर स्थापित करता है। वह (गोभिः) ज्ञानवाणियों से (अद्रिम्) अखण्डशासन या अभेद्य बल को (वि ऐरयत्) विविध प्रकार से प्रेरित करता है और उसका विविध रूप में उपयोग करता है।

इन्द्र॒ वाजे॑षु नोऽव स॒हस्र॑प्रधनेषु च ।
उ॒ग्र उ॒ग्राभि॑रू॒तिभिः॑ ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (सहस्र-प्रधनेषु) हज़ारों प्रकारों के उत्कृष्टधनों को प्रदान करने वाले महायुद्धों में (वाजेषु च) और बलपूर्वक करने योग्य उद्योगों में, (उग्रः) अतिभयकारी बलवान् होकर, अपने (उग्राभिः) उग्र (ऊतिभिः) रक्षाकारी साधनों से (अव) हमारी रक्षा कर।

इन्द्रं॑ व॒यं म॑हाध॒न इन्द्र॒मर्भे॑ हवामहे ।
यु॒जं वृ॒त्रेषु॑ व॒ज्रिण॑म् ॥ ११ ॥

भा०—(महाधने) बड़े धन के देने या व्यय करा देने वाले महासंग्राम में, (वयम्) हम लोग (वृत्रेषु) विघ्नकारी शत्रुओं पर सदा वज्र प्रहार करने वाले और (युजम्) हमारे सदा सहायक (इन्द्रम् हवामहे) परमेश्वर को याद करते हैं और (अर्भे) छोटे से युद्ध में भी (इन्द्रम् हवामहे) उस परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं।

परमेश्वर भक्त का सदा सहायक होने से उसका 'युज्' अर्थात् सदा का सहयोगी है और बाधक तामस आवरणों पर ज्ञान-वज्र का प्रहार करके उसे काटता है इससे वह 'वज्री' है।

स नो॑ वृषन्न॒मुं च॒रुं सत्रा॑दाव॒न्नपा॑ वृधि ।
अ॒स्मभ्य॒मप्र॑तिष्कुतः ॥ १२ ॥

भा०—हे (वृषन्) सुखों के वर्षण करने हारे! (सत्रादावन्) समस्त अभिलाषा योग्य फलों को एक साथ देने में समर्थ! (सः) वह तू (नः) हमारे (अमुम्) परोक्ष में विद्यमान (चरुम्) भोग योग्य, कर्मफल को (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (अपा वृधि) खोल दे, प्रकट कर। तू (अप्रतिष्कुतः) कभी याचक को उलटा फेरने वाला, प्रत्याख्यान करने वाला नहीं है।

राजा के पक्ष में—हे (सत्रादावन्) विद्यमान समस्त शत्रुओं को एक ही समय काट देने में समर्थ! तू (अमुं चरुम्) उस प्रतिकूल विचरणशील शत्रु को दूर कर। तू (अप्रतिष्कुतः) कभी युद्ध में किसी से भी विचलित या पराजित नहीं होता।

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

भा०—(तुञ्जे-तुञ्जे) प्रत्येक दान के प्राप्त होने के अवसर पर दाता के प्रति कहे जाने योग्य (यः) जो (उत्तरे) उत्कृष्ट अर्थात् (स्तोमाः) स्तुति वचन हैं, वे सब उस (वज्रिणः) बलवान् (इन्द्रस्य) परमेश्वर के ही हैं। (अस्य) इसके लिये (सुस्तुतिम्) और किसी उत्तम स्तुति को (न विन्धे) प्राप्त नहीं करता हूँ।

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ १४ ॥

भा०—(वंसगः) उत्तम गति वाला, (वृषा) हृष्टपुष्ट बैल जिस प्रकार (यूथेव) गोयूथ में शोभा देता है और (ओजसा) अपने बल से (कृष्टीः) कृषि कर्म में सहायता देता है, उसी प्रकार वह परमेश्वर (वंसगः) सेवन योग्य समस्त पदार्थों और लोकों में व्यापक होकर (वृषा) समस्त सुखों का वर्षक होकर, (कृष्टीः) आकर्षण गुण से बद्ध इन लोकों को (ओजसा) अपने बल से (इयर्ति) चला रहा है। वह (अप्रतिष्कुतः) किसी से विचलित न होकर स्वयं (ईशानः) समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी है।

राजा के पक्ष में—गोयूथ में वृषभ के समान अपने (ओजसा) पराक्रम से (कृष्टीः) प्रजाओं को (इयर्ति) अपने वश करता है और (अप्रतिष्कुतः) किसी से पराजित न होने वाला स्वयं राष्ट्रपति होता है।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति ।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ १५ ॥

भा०—(यः) जो (एकः) अकेला (वसूनाम्) अपने भीतर बसने वाले लोकों और (चर्षणीनाम्) समस्त प्रजाओं को (इरज्यति) अपने वश करता है, वह ही (पञ्च-क्षितीनाम्) पांचों क्षितियों या पांचों भूतों को (इन्द्रः) धारण करने हारा है।

राजा के पक्ष में—जो अकेला समस्त राष्ट्रवासी प्रजाओं को वश करता है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांचों प्रजाओं का (इन्द्रः) स्वामी है।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १६ ॥

भा०—(विश्वतः जनेभ्यः) समस्त जनों के (परि) ऊपर विद्यमान उस (इन्द्रम्) परमेश्वर की हम (हवामहे) स्तुति करते हैं। वह (केवलः) अद्वितीय परमेश्वर ही (अस्माकम्) हमारा और (वः) तुम्हारा सहायक है। राजा भी सबके ऊपर विद्यमान होकर अकेला ही सबका हितकारी है।

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! हे राजन् ! तू (स-जित्वानम्) जयशील (सदा-सहम्) और सदा शत्रुओं के आक्रमण को सह सकने में समर्थ, (सानसिम्) तथा समस्त योग्य पदार्थों के देने वाले (वर्षिष्ठम्) बड़े भारी (रयिम्) ऐश्वर्य को (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (आ भर) प्राप्त करा।

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै ।
त्वोतासो न्यर्वता ॥ १८ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (येन) जिस (त्वोतासः) तेरे द्वारा सुरक्षित होकर, (मुष्टि-हत्यया) चित्तवृत्ति को विषयों में हर ले जाने वाली या आत्मा के स्वरूप का विस्मरण करा देने वाली तामस तृष्णा को मार कर, (वृत्रा) अन्तःकरण को आ घेरने वाले, योग-सुख के बाधक विघ्नों का (नि रुणधामहै) सर्वथा निरोध करें और (अर्वता) ज्ञान से इसको (नि रुणधामहै) निरुद्ध करें ।

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृधः ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वोतासः) तेरे से सुरक्षित होकर, (वयम्) हम (घना) अज्ञानावरण के नाश करने में समर्थ होकर, धर्ममेघ स्वरूप होकर अपनी चित्तभूमि में आनन्द-रस वर्षाते हुए, (वज्रम् आ ददीमहि) ज्ञानरूप वज्र को ग्रहण करें और (युधि) देवासुर-संग्राम में (स्पृधः) चित्त पर स्पर्धा से वश करने वाले प्रलोभनों का (सं जयेम) भली प्रकार विजय करें ।

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ २० ॥

भा०—(त्वया युजा) योगसमाधि द्वारा तेरी सहायता प्राप्त हो जाने पर (वयम्) हम (अस्तृभिः) अहिंस्य (शूरेभिः) गतिशील प्राणों के द्वारा, (पृतन्यतः) आक्रमण करने वाले कामादि शत्रुओं को (सासह्याम) वश करें ।

[७१] परमेश्वर

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥

भा०—(प्रथिना) विस्तार से जिस प्रकार (द्यौः न) वह आकाश महान् है, उसी प्रकार वह (इन्द्रः) स्वामी भी (महान्) बड़ा और (परः च) सबसे परे है। (वज्रिणे) उस वज्रधर परम शक्तिमान् की ही यह (महित्वम्) समस्त महिमा (अस्तु) है, उसी का बड़ा भारी (शवः) बल है। राजा भी महान् और सर्वोत्कृष्ट हो।

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ ३ ॥

भा०—(य) जो पुरुष (समोहे व) संग्राम में (आशत) लगे रहते हैं और जो (नरः) लोग (स्तोकस्य) पुत्रादि सन्तान की (सनितौ) प्राप्ति में व्यग्र हैं, (वा) और जो (विप्रासः) मेधावी लोग (धियायवः) सदा अपनी बड़ी धारणाशील बुद्धि को प्राप्त करना चाहते हैं, वे तीनों प्रकार के विजयार्थी, पुत्रार्थी और ज्ञानार्थी सब, हे इन्द्र ! तेरी ही स्तुति करते हैं।

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते।
उर्वीरापो न काकुदः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (कुक्षिः) समस्त शक्तियों को अपने कोख में रखने वाला, (सोम-पातमः) संसार के ऐश्वर्यों का सबसे बड़ा पालक होकर (समुद्र इव) समुद्र के समान अगाध भण्डार है, (काकुदः) वह सबसे श्रेष्ठ है। (आपः उर्वीः न) जल जिस प्रकार भूमियों को सींचते हैं उसी प्रकार वह परमेश्वर समस्त प्राणियों और लोकों को (पिन्वते) अन्न जल और जीवन से सींचता है।

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही।
पक्का शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥

भा०—(विरप्शी) विविध विद्याओं का उपदेश करने वाली परमेश्वर की वाणी, (मही) जो कि पूजनीय, (गोमती) तथा वेदवाणियों के रूप वाली है, (दाशुषे) आत्मसमर्पण करने वाले के लिये (एवा हि) निश्चय ही

ऐसी (सूनृता) उत्तम और सत्य ज्ञान से पूर्ण है कि जिस प्रकार उसके लिये (पक्वा शाखा न) पकी और फलों से लदी शाखा हो।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! राजन् ! (ते) तेरी (एव) ऐसी २ अलौकिक (विभूतयः) विभूतियां और विविध ऐश्वर्य और (एव ऊतयः) ऐसी ही तेरी पालन शक्तियें (मावते) मेरे जैसे (दाशुषे) दानशील पुरुष के लिये (सद्यः सिद्) सदा ही (सन्ति) विद्यमान हैं।

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥

भा०—(एव हि) निश्चय ही (सोम-पीतये) जगत् रूप सोम को अपने भीतर ले लेने हारे (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु की (स्तोमः) स्तुति और उसके (उक्थं च) गुण कहने वाले ऋग् गण (काम्या) कामना करने और (शंस्या) सदा मुख से उच्चारण करने और कीर्त्तन करने योग्य हैं।

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (इहि) आ, प्रकट हो। तू (विश्वेभिः) समस्त (सोम-पर्वभिः) जगत् के समस्त अवयवों (अन्धसः) द्वारा समस्त पृथिवी आदि लोकों को (मत्सि) हर्षयुक्त करता है। तू (ओजसा) अपने बल-पराक्रम से ही (महान्) बड़ा भारी (अभिष्ठिः) सबको सब प्रकार से चलानेहारा है।

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (सुते) उत्पन्न हुए इस संसार में (एनम्) इस (मन्दिम्) हर्ष के आश्रय (चक्रिम्) क्रियाशील जीवात्मा को,

(मन्दिने) आनन्द के उत्पादक (विश्वानि) समस्त लोकों के (चक्रये) बनाने वाले (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (आ सृजत) समर्पण करो ।

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे ।
सचैषु सवनेष्वा ॥ ९ ॥

भा०—हे (विश्व-चर्षणे) समस्त जगत् के द्रष्टा परमेश्वर ! हे (सु शिप्र) उत्तम ज्ञानस्वरूप ! तू (मन्दिभिः स्तोमेभिः) हृदय को आनन्दित करने वाली स्तुतियों से (आ मत्स्व) खूब प्रसन्न हो और (एषु सवनेषु) इन यज्ञों में (सचा) लगे हुए हम लोगों को भी (आ मत्स्व) आनन्दित कर ।

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत ।
अजोषा वृषभं पतिम् ॥ १० ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (ते) तेरे निमित्त मैं (गिरः) वेदवाणियों का (असृग्रम्) विविध प्रकार से प्रयोग और वर्णन करता हूँ । वेद-वाणियें (वृषभम्) सुखों के वर्षक, (पतिम्) सबके पालक (त्वाम् प्रति) तेरे ही प्रति (उद् अहासत) जाती हैं, लगती हैं, उसी के प्रति (अजोषाः) अपना अभिप्राय प्रकट करती हैं ।

सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् ।
असदित् ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (अर्वाग्) हमारे प्रति (चित्रम्) संग्रह करने योग्य अद्भुत, (वरेण्यम्) वरण करने योग्य, उस (राधः) आराध्य अर्थात् अभीष्ट ज्ञान और ऐश्वर्य को (सं चोदय) प्रेरित कर, जो (ते) तेरा (विभु) व्यापक (प्रभु इत्) तथा शक्तिशाली (असत्) है ।

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः ।
तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ १२ ॥

भा०—हे (तुवि-द्युम्न) बहुत ऐश्वर्यवन् ! (इन्द्र) परमेश्वर ! राजन् ! तू (यशस्वतः) हम यशस्वी (रभस्वतः) उद्योगशीलों (राये) को ऐश्वर्य प्राप्ति

करने के लिये (तत्र) उस २ अवसर में (सु चोदय) उत्तम रीति से प्रेरित कर।

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्।
विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! राजन् ! तू (अस्मे) हमें (गोमत्) गौ आदि पशुओं से समृद्ध, (वाजवत्) ऐश्वर्ययुक्त, (बृहत्) बड़ा भारी, (पृथु) विस्तृत (श्रवः) अन्न और यश (सं धेहि) प्रदान कर और (अक्षितम्) अक्षय (विश्वायुः) पूर्ण आयु (धेहि) प्रदान कर।

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्।
इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! हे बाधक शत्रुओं के निवारक राजन् ! तू (अस्मे) हमें (बृहत् श्रवः) बड़ा यश और (सहस्र-सातमम्) सहस्रों भोगों को देने वाला (द्युम्नम्) ऐश्वर्य (धेहि) प्रदान कर और (ताः) वे (रथिनीः) रथों से युक्त (इषः) सेनाएं प्रदान कर।

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्।
होम गन्तारमूतये ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (वसोः) पृथिवी में और देह में बसने वाले जीवों की (ऊतये) रक्षा के लिये, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् तथा बाधक शत्रुओं के नाशक, (वसुपतिम्) समस्त लोकों और प्राणियों के पालक, (ऋग्मियम्) वेदमन्त्रों के कर्त्ता, (गन्तारम्) तथा सर्वव्यापक का (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (गृणन्तः) गुण वर्णन करते हुए (होम) उस का स्मरण करते हैं।

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १६ ॥

भा०—(बृहतः बृहत् अरिः इत्) बड़े से बड़ा धन का स्वामी भी (सुते-सुते) प्रत्येक पदार्थ में (नि-ओकसे) गुप्तरूप से निवास करने वाले (इन्द्राय) परमेश्वर के (शूषम् अर्चति) बल की अर्चना करता है।

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

[७२] परमेश्वर और राजा

परुच्छेप ऋषिः । इन्द्रो देवता अत्यष्टयः । तृचं सूक्तम् ॥

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् । तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि । इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (विश्वेषु सवनेषु) समस्त पूजा और अर्चना के अवसरों में, (वृष-मण्यवः) सुखों की वर्षा करने वाले तुझको मानने वाले और (पृथक्) अपने लिये अलग अलग (स्वः) सुख (सनिष्यवः) प्राप्त करने की इच्छा करते हुए (आयवः) हम मनुष्य, एक (समानम्) तथा सर्वत्र समान भाव से वर्तमान (पृथक्) जो तू है उसकी अलग २ ही (तुञ्जते) स्तुति करते हैं। हम लोग (त्वा) तुझको (नावं न) नाव के समान (पर्षणिम्) पार लगा देने वाला और (शूषस्य) समस्त शक्ति के (धुरि) केन्द्र में प्रवर्त्तक रूप से स्थित (धीमहि) ध्यान करते, मानते हैं और (यज्ञैः) उपासना-अनुष्ठानों द्वारा (इन्द्रं न) ऐश्वर्यवान् महाराजा के समान (चितयन्तः) जानते हुए (आयवः) मनुष्य लोग तुझ (इन्द्रम्) परमेश्वर को (स्तोमेभिः) स्तुतियों से (आयवः) प्राप्त होते हैं।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि । आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् २

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (अवस्यवः) अपनी तृप्ति और रक्षा चाहने वाले (मिथुनाः) स्त्री पुरुष (गव्यस्य व्रजस्य साता) गवादि पशुओं

के लाभ के लिये और वेदवाणियों से उत्पन्न ज्ञेय ज्ञान को प्राप्त करने के लिये, (निः सृजः) समस्त भोग्य पदार्थों को तुझ पर ही न्योछावर करते हैं। वे फिर (सक्षन्तः) तेरे में रमण करते हुए (निः-सृजः) समस्त कर्मवासना और समस्त फलाशा में त्यागी हो जाते हैं। (यत्) और जब (स्वःयन्ता) सुखों को प्राप्त होते हुए और (गव्यन्ता) गो समूह या वाणि-समूह को चाहते हुए या इन्द्रियों को दमन करते हुए (द्वा जना) दोनों जनों को तू (समूहसि) अपनी शरण में भली प्रकार ले लेता है, तब हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (वृषणम्) सुखों के वर्षक, (सचाभुवम्) और अन्तरात्मा के साथ अनुभव होने वाले (वज्रम्) बन्धन को काटने में समर्थ वज्र को (आविष्करिक्रत्) प्रकट करता है।

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः। यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि। आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ३ ॥

भा०—(उतो) वह परमेश्वर (अस्य उषसः) इस प्रभातकाल में (अर्कस्य जुषेत) हमारी स्तुति को स्वीकार करे। हमारे (हवीमभिः) स्तुतिसहित (हविषः) श्रद्धाभाव को (बोधि) जाने। वह (हवीमभिः) स्तुति द्वारा ही (स्वः-साता) सुख प्रदान करने हारा है। हे परमेश्वर हमारे काम क्रोधादि को विनाश करने के लिये तू (चिकेतसि) हमें ज्ञान प्रदान कर। (अस्य नवीयसः मन्म आ श्रुधि) इस नवीन स्तुतिकर्त्ता की स्तुति को श्रवण कर।

[७३] परमेश्वर और राजा

१-३ वसिष्ठः। ४-६ वसुक्र ऋषिः। इन्द्रो देवता—४-५ जगत्यौ। ६ अभिसारिणी। शषा विराजः ॥ षड्टृचं सूक्तम् ॥

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि। त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ १ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशकारिन् ! (इमा सवना) ये समस्त यज्ञ-अनुष्ठान (तुभ्यम्) तेरे ही लिये हैं । (वर्धना) तेरी महिमा बढ़ाने वाले (विश्वा ब्रह्माणि) समस्त वेद मन्त्रों को मैं (कृणोमि) प्रकट करता हूँ । (त्वम्) तू (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (हव्यः) स्तुति करने योग्य है । तू (विश्वधाः असि) विश्व को धारण करने वाला है ।

राजा के पक्ष में—(इमा सवना तुभ्य इत्) ये ऐश्वर्य तेरे ही हैं । (वर्धना ब्रह्माणि) तेरी वृद्धि के लिये ये वेदमन्त्र उच्चारण करता हूँ । तू (नृभिः हव्यः) नेता पुरुषों द्वारा स्तुत्य और (विश्व-धाः असि) समस्त राष्ट्र को धारण, पालन करने में समर्थ है ।

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ २ ॥

भा०—हे (दस्म) दर्शनीय परमेश्वर ! और हे शत्रुओं के नाशक ! राजन् ! (मन्यमानस्य ते) मान करने योग्य तेरी (महिमानम्) महिमा को (नू चित् नु) क्या किसी प्रकार भी कोई (उत् अश्नुवन्ति) पार कर सकते हैं ? (न ते वीर्यम् उत् अश्नुवन्ति) न कोई तेरे बल को पार कर सकते हैं और (न ते राधः) न तेरे ऐश्वर्य को पार कर सकते हैं ।

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) तुम लोग (महे) उस महान् (महि-वृधे) बड़े ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले, (प्र-चेतसे) उत्कृष्ट ज्ञानवान् परमेश्वर के लिये (प्र भरध्वम्) उत्तम विचारों का मनन करो और (सु-मतिम्) शुभ बुद्धि या स्तुति (प्र कृणुध्वम्) करो । हे परमेश्वर ! तू (चर्षणि-प्राः) मनुष्यों को समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारा होकर, (विशः) प्रजाओं को (पूर्वीः) ज्ञान और बल में पूर्ण (प्र चर) कर ।

राजा के पक्ष में—हे मनुष्यो ! तुम (महिवृधे महे) बड़े २ शत्रुओं को गिराने वाले बड़े राजा के लिये (प्र भरध्वम्) भेंटें लाओ । उसके

प्रति (सुमतिं प्र कृणुध्वम्) उत्तम चित्त बनाये रखो। हे राजन्! तू (चर्षणि-प्राः) प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करने वाला होकर (विशः) प्रजाओं को (पूर्वीः प्र चर) धन, बल आयुष्य में खूब पूर्ण कर।

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥४॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर के (यम्) जिस (रथम्) आनन्द-प्रद रस को, (सूरिभिः) विद्वानों द्वारा (हरी) हरणशील ज्ञान और कर्म दोनों (वहतः) प्राप्त कराते हैं और (यदा) जब (हिरण्यम्) आत्मा हितकारी और रमणीय (वज्रम्) ज्ञानरूप वज्र को प्रकट कर लेता है (अथ) तब, (सन-श्रुतः) सदाकाल से विख्यात (दीर्घ-श्रवसः) और अति अधिक कीर्त्ति वाले (वाजस्य) ज्ञान और ऐश्वर्य का (पतिः) स्वामी, (इन्द्रः) परमेश्वर उस रस में (आ तिष्ठति) व्याप्त रहता है।

राजा के पक्ष में—(यं रथं) रथ के समान जिस सुन्दर राष्ट्र को (हरी) दो अश्वों के समान राजा और मन्त्री, सभापति और महामात्य (सूरिभिः) विद्वान् सभासदों के साथ मिल कर धारण करते हैं और जब (वज्रम्) बलशाली दण्ड-विधान को भी (हिरण्यम्) सुवर्ण वा रजत के बने राजदण्ड के समान प्रजा के हित और सुख के लिये धारण करते हैं तब समझो कि (दीर्घ-श्रवसः) अति यश वाले (वाजस्य) बल-ऐश्वर्य का (पतिः) पालक (सन-श्रुतः) तथा सदा से विख्यात (मघवा) राजा (आ तिष्ठति) राज्य पर शासन करता है।

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५ ॥

भा०—(चित् नु) जिस प्रकार (वृष्टिः) जलवृष्टि (हरितः) हरे वृक्षों को (अभि प्रुष्णुते) सींचती है, इसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ज्ञानी पुरुष (स्वा सचा) अपने पर आश्रित (यूथ्या) समूहों में बसने वाले प्राणियों को (श्मश्रूणि) अपने शरीर में स्थित मोंछ के बालों के समान (अभि

मृण्णुते) नाना ऐश्वर्यों और स्नेहों से सेंचता है। तब वह (सुक्षयं अव वेति) उत्तम निवास या लोक को प्राप्त होता है और (सुते) उत्पन्न हुए इस संसार में (मधु वेति) मधुर ब्रह्मानन्द का भोग करता है। अपने साथ लगे सांसारिक दुःख बन्धनों को वह ऐसे (उत् धूनोति) झाड़ फेंकता है (यथा) जिस प्रकार (वातः वानम्) प्रबल वायु वन को कंपा डालता है और पतझड़ कर डालता है।

राजा के पक्ष में—(चित् नु वृष्टिः हरिता) वृष्टि जिस प्रकार हरे वृक्षों को सींचती है उसी प्रकार वह राजा (स्वा यूथ्या) अपने संघ के लोगों को (अभि मृण्णुते) ऐश्वर्य और स्नेह से बढ़ाता है। वह (सुक्षयं अव वेति) उत्तम गृह, राजमहल में रहता है। (सुते) राज्याभिषेक हो जाने पर वह (मधु) मधुर राष्ट्र का भोग करता है (वातः यथा वनम्) वायु जिस प्रकार वन को वेग से तोड़ फोड़ डालता और कंपा डालता है उसी प्रकार वह प्रचण्ड होकर (वनम्) शत्रुओं के सेना-समूह को (उद् धूनोति) कंपा डालता है।

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥ ६॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (वाचा) उपदेशमयी वेदवाणी द्वारा (विवाचः) विपरीत वाणी बोलने वाले और (मृध्रः वाचः) दिल दुखाने वाली वाणी को बोलने वाले पुरुषों का और (पुरु) बहुत से (सहस्रा) हज़ारों (अशिवा) अमंगलजनक कर्मों का (जघान) नाश करता है और (यः) जो (पिता इव) पिता के समान (तविषीम्) बड़ी भारी शक्ति और (शवः) बल को (वावृधे) बढ़ाता है, (तत् तत् इद्) उस उस नाना प्रकार के अकथनीय (अस्य) इस परम गुरु परमेश्वर के (पौंस्यम्) बल वीर्य के कार्यों का (गृणीमसि) हम वर्णन या स्तुति करें।

राजा के पक्ष में—(यः) जो (वाचा) अपनी आज्ञामात्र से, (वि-

वाचः) विपरीत बोलने वाले (मृध्र-वाचः) हिंसा या युद्ध की वाणियों के कहने वाले शत्रु हैं उनको और (पुरु सहस्रा अशिवा) हजारों अमंगल-जनक कष्टदायी दुःखों का (जघान) नाश करता है, और जो पिता के समान प्रजा की शक्ति बढ़ाता है, उनके उन नाना (पौंस्यम्) पराक्रम के कर्मों का हम वर्णन करें ।

[७४] राष्ट्र-रक्षक राजा के कर्त्तव्य

शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । पंक्तिः । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ताइव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१॥

भा०—हे (सत्य) सत्यस्वरूप ! हे (सोमपाः) उत्पन्न संसार के रक्षक परमेश्वर ! (यत् चित् हि) जिन २ कार्यों में हम (अनाशस्ताः इव स्मसि) प्रशंसा के योग्य न हों, हे (इन्द्र) परमेश्वर ! हे (तुवीमघ) बहुत बड़े ऐश्वर्य वाले ! (यः) हमें उन २ (गोषु अश्वेषु) गौ आदि पशु और अश्व आदि सेना के साधनों में और (सहस्रेषु) हज़ारों (शुभ्रिषु) शोभाजनक धनैश्वर्यों में (आ शंसय) उत्तम प्रशंसा योग्य बना ।

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना । आ तू० ॥ २ ॥

भा०—हे (वाजानां पते) ऐश्वर्यों और वीर्यों के स्वामिन् ! हे (शचिवः) शक्तियों वाले ! (तव) तेरे (दंसना) दर्शनीय अलौकिक कर्म हैं । (इन्द्र तुवीमघ गोषु अश्वेषु सहस्रेषु शुभ्रिषु नः आशंसय) हे ऐश्वर्यवन् ! बहुत धनों के स्वामिन् ! तू हजारों ज्ञानवाणियों, भूमियों, गौओं और अश्वों, वेगवान् साधनों और शोभाकारी ऐश्वर्यों में हमें कीर्तिमान् कर ।

राजा के पक्ष में—(शिप्रिन्) बलवान् ! (शचीवः) प्रजा और सेना के स्वामिन् ! (वाजानां पते) अन्नों, संग्रामों और ऐश्वर्यों के पालक ! (तव दंसना) तेरे नाना दर्शनीय कर्म हैं । आ तू न० इत्यादि पूर्ववत् ।

नि ष्वा॑पया मिथू॒दृशा॑ स॒स्ताम॒बु॑ध्यमाने । आ तू० ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) अविद्या निद्रा आदि दोष निवारक ! तू (मिथूदृशा) विषयाशक्ति से एक दूसरे को देखने वाले स्त्री पुरुषों को (निःस्वापय) सर्वथा अचेत कर दे । वे दोनों (अबुध्यमाने) ज्ञानहीन होकर (सस्ताम्) सो जायं । अर्थात् विषयाशक्ति से रहित, तपस्वी, व्रती पुरुषों को प्रबुद्ध कर और वे ज्ञानवान् होकर जागते रहें । (आ तू न० इत्यादि) पूर्ववत् ।

स॒सन्तु॒ त्या अरा॑तयो॒ बोध॑न्तु शूर रा॒तयः॑ । आ तू० ॥ ४ ॥

भा०—(त्याः) वे (अरातयः) दान न देने वाले (ससन्तु) सो जायं और हे (शूर) शूरवीर ! (रातयः) दानशील पुरुष (बोधन्तु) ज्ञानवान् होकर सदा धर्म-कार्यों में सावधान होकर रहें (आ तू न० इत्यादि) पूर्ववत् ।

समि॑न्द्र गर्द॒भं मृ॑ण नु॒वन्तं॑ पा॒पया॑मु॒या । आ तू० ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! न्यायाधीश ! (गर्दभम्) गर्दभ के समान कठोरभाषी, एवं गर्धा = तृष्णा से व्याप्त लोभी (अमुया) और नाना प्रकार की (पापया) पापपूर्ण रीति-नीति से (नुवन्तम्) बोलने-चालने वाले पुरुष को (सं मृण) अच्छी प्रकार विनष्ट कर और (नः) हमें (शुभ्रिषु) शुभ आचरण द्वारा न्यायपूर्वक प्राप्त गौ अश्वादि धनों में प्रसिद्ध कर । (आ तू न०) इत्यादि पूर्ववत् ।

'गर्दभः'— गर्द शब्दे इत्यतोरभच् । गर्धया धनतृष्णाया भातीति वा, गरेण विषेण दभ्नाति हिनस्तीति वा ।

पता॑ति कुण्डृ॒णाच्या॑ दू॒रं वातो॒ व॒नादधि॑ । आ तू० ॥ ६ ॥

भा०—(कुण्डृणाच्या) दाह करने वाली चाल करने वाला (वातः) वायु जिस प्रकार (वनात् अधि) वन से (दूरं पताति) दूर ही रहे तो ठीक है, उसी प्रकार (कुण्डृणाच्या) दाहकारी प्रवृति वाला कुटिल पुरुष भी

प्रजागण से (दूरं पताति) दूर ही दूर रहे तो अच्छा है। (आ तू न० इत्यादि) पूर्ववत्।

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम्।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! राजन् ! तू (सर्वं) सब (परिक्रोशम्) निन्दा करने वाले पुरुषों को (जहि) मार, दण्ड दे और (कृकदाश्वम्) हमारे ऊपर हिंसाकारी अथवा कृकलास, उल्लू या गिरगट के समान धूर्त्त, छली, कपटी पुरुषों का (जंभय) विनाश कर। (आ तू न० इत्यादि) पूर्ववत्।

'कृकदाश्वम्'—कृका हिंसा, तां दाशति प्रयच्छतीति कृकदाशुः तम् ॥

[७५] राजा और आत्मा का अभ्युदय

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि। आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो कां० २०। ७२। २ ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः। शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते। महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) कर्मबन्धनों के तोड़ने हारे आत्मन् ! (पूरवः) आत्मशक्ति को पूर्ण करने वाले इन्द्रियगण (ते) तेरे (अस्य वीर्यस्य) इस वीर्य के विषय में (विदुः) जानते हैं (यत्) जिससे तू (शारदीः) शरद् अर्थात् वर्षों द्वारा मापी जाने वाली (पुरः) इन देहरूप पुरियों को

(अवातिरः) ज्ञानवज्र से खण्डित करता है और समस्त विरुद्ध बाधाओं को (सासहानः) सहन करता हुआ (शारदीः पुरः) वर्षरूप गद्दियों को (अवातिरः) पार कर जाता है। हे (शवसस्पते) शक्तिशालिन्! तू (अयज्युम्) संगरहित (मर्त्यम्) मरणशील (तम्) इस देह पर (शासः) शासन करता है और (इमाः अपः) इन नाना प्रज्ञानों और (इमाः अपः) इन नाना कर्मों को (मन्दसानः) हर्षपूर्वक करता हुआ, (महीम् पृथिवीम्) बड़ी भारी पृथिवी को (अमुष्णाः) मोह लेता है।

राजा के पक्ष में—हे (इन्द्र) राजन्! (पूरवः) पुरवासी जन! (ते अस्य वीर्यस्य विदुः) तेरे इस सामर्थ्य को जानते हैं जिनके बल पर तू (सासहानः) शत्रुओं को पराजित करता हुआ उनका (अवातिरः) नाश करता है। (शारदीः पुरः) शरत्-काल के युद्धयात्रा काल में खड़ी की गई (पुरः) शत्रु की गढ़ियों को (अवातिरः) नष्ट करता है। हे (शवसस्पते) बल के स्वामिन्! (अयज्युम्) तुझसे सन्धि न करने वाले, कर न देने वाले शत्रु (मर्त्यं) को (शासः) शासन करता, दण्ड देता है। (इमाः अपः) इन जलों को जिस प्रकार सूर्य शरत्काल में स्वच्छ कर देता है इसी प्रकार (इमाः अपः) इन प्राप्त प्रजाओं को (मन्दसानः) सदा प्रसन्न करता हुआ (महीम् पृथिवीम्) बड़ी भारी पृथिवी को (अमुष्णाः) शत्रुओं के हाथों से छीन कर अपने हाथ में कर लेता है।

आदित् ते॑ अ॒स्य वी॒र्य॑स्य चर्किर॒न्मदे॑षु वृषन्नु॒शिजो॒ यदावि॑थ सखीय॒तो यदावि॑थ। च॒कर्थ॑ का॒रमे॑भ्य॒: पृत॑नासु॒ प्रव॑न्तवे। ते॑ अ॒न्याम॑न्यां न॒द्यं॑ सनिष्ण॒त श्र॑व॒स्यन्त॑: सनिष्णत ॥ ३ ॥

भा०—(आत् इत्) इसके बाद (ते) वे योगीजन (अस्य वीर्यस्य) तेरे इस सामर्थ्य को (चर्किरन्) चारों तरफ फैलाते हैं। (यत्) जिससे हे (वृषन्) हृदयों में आनन्दरस के वर्षक! तू (मदेषु) आनन्दावसरों में (उशिजः) तुझे चाहने वालों को (आविथ) तू प्राप्त होता है और तुझे

सखा बनाने के इच्छुक पुरुषों को (आविथ) तू प्राप्त होता है । तू (एभ्यः) उन साधकों के लिये (पृतनासु) देवासुर संग्रामों में (प्रवन्तवे) उत्कृष्ट पद प्राप्त करने के लिये (कारम्) क्रियासामर्थ्य (चकर्थ) प्रदान करता है और (ते) वे (अन्यास् अन्याम्) एक से एक अगली (नद्यं) नदी या समृद्ध आत्मदशा को (सनिष्णत) प्राप्त करते हैं और तेरी कीर्त्ति का गान करते हैं।

राजा के पक्ष में—(यत्) जिस बल से हे (इन्द्र) राजन् ! (मदेषु) संग्राम के अवसरों में (उशिजः) तू अपने अभिलाषुक और (सखीयतः) मित्रता के इच्छुक पुरुषों की (आविथ) रक्षा करता है, वे (ते अस्य वीर्यस्य चकिरन्) तेरे इस सामर्थ्य को चारों ओर फैलाते हैं । तू (एभ्यः प्रवन्तवे) उन वीरों के भोग के लिये (पृतनासु) संग्रामों और सेनाओं में भी (कारं चकर्थ) यत्न करता है और (ते) वे वीरगण (अन्याम् अन्याम्) एक से एक आगे आती नदी को (सनिष्णतः) पार करते हुए जाते हैं । वे (श्रवस्यन्तः) यश के अभिलाषी (सनिष्णतः) आगे ही बढ़ते हुए देशों को प्राप्त करते जाते हैं ।

[७६] आत्मा

वसुक्र ऐन्द्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभः । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

वने॒ न वा॒यो न्य॑धायि चा॒कञ्छुचि॑र्वां॒ स्तोमो॑ भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः॑ पुरु॒दिने॑षु॒ होता॑ नृ॒णां नर्यो॒ नृत॑मः क्ष॒पावा॑न् ॥ १ ॥

भा०—हे (भुरणौ) शरीर के पालन पोषण करने वाले प्राण और उदान ! (यः) जो (स्तोमः) प्राणों का गण (वने) सबका भोग करने वाले आत्मा में (न्यधायि) निहित है वह इन्द्रियगण (शुचिः) अत्यन्त विशुद्ध रूप से (चाकन् न) मानो तुम्हारी कामना करता हुआ सा (वां अजीगः) तुम दोनों को ही प्राप्त होता है। (यस्य) प्राणगण को आत्मा (पुरु दिनेषु) बहुत दिनों तक (होता) स्वयं धारण करता है, (नृतमः) वह शरीर की

नेता रूप प्राणगणों का नेता है और (क्षपावान्) समस्त रजोविकारों के नाश करने वाली चितिशक्ति का स्वामी है ।

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥२

भा०—हे आत्मन् ! (नृणाम् नृतमस्य) शरीर के नेतारूप प्राणगण के बीच तू नेता है । (ते) तेरी (अस्याः) इस (उषसः) पापदाहक ज्योतिष्मती प्रज्ञा और (अपरस्याः) दूसरी ब्रह्मविषयक या अनन्तर-भाविनी धर्ममेघदशा के (नृतौ) प्राप्त हो जाने पर हम (प्र स्याम) उत्तम ज्ञानवान् हो जायं । तू ही (कुत्सेन) बन्धन काटने वाले ज्ञान के बल से स्वयं (रथः) रसस्वरूप होकर (ससवान्) उस रस का भोक्ता (असत्) हो जाता है (त्रि-शोकः) वाणी, मन और प्राण इन त्रिविध तेजों से युक्त होकर तू (शतम्) सैंकड़ों (अनु आवहन्) नरों को धारण पोषण करता है ।

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ३

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (ते) तेरा (कः) यह कौनसा रमणीय (मदः) हर्ष और आनन्द (भूत्) है जिसका कि वर्णन नहीं किया जा सकता । तू (उग्रः) अति बलवान् होकर हमारे (दुरः) द्वारों के समान (गिरः) उत्तम वाणियों को (अभि वि धाव) लक्ष्य करके विविध रूपों से प्राप्त हो । हे आत्मन् !(कद्) तू कब (वाहः) प्रवाह स्वरूप महासिन्धु के समान होकर (अर्वाक्) साक्षात् होगा और कब (मनीषा) समस्त अर्थों को साक्षात् करने वाली परमप्रज्ञा रूप होकर तू (मा उप) मुझे प्राप्त होगा और कब (त्वा उपमम्) तेरे समीप होकर मैं (अन्नैः) भोग किये जाकर भी क्षीण न होने वाले तेरे अक्षय सुखों के सहित (राधः) परम ऐश्वर्य को (आ शक्याम्) प्राप्त करूंगा ।

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (उ) बतला तू (कत्) कब (द्युम्नम्) अपने ऐश्वर्य का प्रदान (करसे) करता है और हे आत्मन्! (नॄन्) मनुष्यों को और (नॄन्) शरीर के नेता प्राणगण को तू (कया धिया) किस धारणशक्ति और किस बुद्धि या किस प्रकार की क्रिया से (त्वावतः) अपने जैसा (करसे) कर लेता है? और बतला तू (कत्) कब (नः) हमें (आगन्) प्राप्त होता है? तू (मित्रः) सबका स्नेही (सत्यः) स्वयं सत्यस्वरूप (उरु-गायः) महान् स्तुति का पात्र है। (यत्) जब तेरी (मनीषाः) बुद्धियां (समस्य) समस्त प्राणों के (अन्ने) अक्षय ऐश्वर्य के निमित्त (असन्) होती हैं तभी तू सबके (भृत्यैः) भरण पोषण के भी समर्थ होता है।

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५ ॥

भा०—हे (तुविजात) बहुत से देहों में प्रादुर्भूत! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! आत्मन्! (जनिधाः इव) पत्नियों के धारण करने वाले पति लोग जिस प्रकार (कामं ग्मन्) अभिलाषा को पूर्ण करते हैं, उसी प्रकार (ये) जो (अस्य) इस आत्मा के (कामम्) कामना योग्य (अर्थम्) पुरुषार्थ के समान ही (पारम्) परमपद को (ग्मन्) प्राप्त करते हैं, (ये नरः) और जो लोग (अन्नैः) अन्नादि अक्षय भोगों या सुखों को प्राप्त करते हुए उनके साथ (पूर्वीः) अभिप्राय या तत्वज्ञान से पूर्ण (गिरः) वाणियों को (प्रति शिक्षन्ति) प्रदान करते हैं, उनको तू (सूरः अर्थं न) सूर्य के समान सब पदार्थों का प्रकाशक होकर (प्रेरय) उत्कृष्ट मार्ग पर चला।

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (ते) तुझ (मात्रे) प्रमाता अर्थात् ज्ञान-कर्त्ता के लिए (मज्मना) तेरे बल से और (काव्येन) तेरी क्रांतदर्शी प्रज्ञा के यत्न से (पूर्वी द्यौः) द्यौ (पृथिवी) और पृथिवी ये दोनों (सुमिते) उत्तम रीति से जाने जावें। (वराय) वरण करने योग्य (ते) जो तू है उसके (स्वाद्मन्) सुखपूर्वक भोजन के लिये (घृतवन्तः) घृत, दूध आदि पुष्टिकारक (सुतासः) पदार्थ और (पीतये) पान करने के लिये (मधूनि) मधुर पदार्थ (भवन्तु) हों।

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥

भा०—(अस्मै इन्द्राय) इस आत्मा के लिए योगी लोग (मध्वः) मधुर ब्रह्मानन्द रस का (आ असिचन्) भरा पात्र आसेचन करते हैं, उपस्थित करते हैं (हि) क्योंकि (सः) वह आत्मा (सत्य-राधाः) सत्य-स्वरूप ऐश्वर्य का स्वामी है। (सः) वह (नर्यः) समस्त नरों का हित-कारी (वरिमन्) विशाल ब्रह्म के आश्रय पर (वावृधे) बढ़ता है। (क्रत्वा) और कर्म, सामर्थ्य तथा प्रज्ञा के बल से और (पौंस्यैः च) पौरुष के कार्यों से (पृथिव्या आ अभि वावृधे) पृथिवी को पूर्ण करके सर्वत्र वृद्धि को प्राप्त होता है।

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८॥

भा०—(इन्द्र) आत्मा (सु-ओजाः) उत्तम ओजस्वी होकर (पृतनाः) समस्त मनुष्यों के भीतर (वि आनट्) विविध रूपों में व्यापक है। (पूर्वीः) पूर्ण सामर्थ्य वाली उत्कृष्ट कोटि की प्रजाएं सदा से (अस्मै सख्याय) इसके मैत्रीभाव को प्राप्त करने के लिये (आ यतन्ते) यत्न करती रही हैं। हे मेरे आत्मन्! (पृतनासु रथं न) सेनाओं के बीच जिस प्रकार महारथी रथ पर सवार होता है उसी प्रकार तू भी (पृतनासु) समस्त

मनुष्यों के बीच (रथम् आ तिष्ठ) देह में स्थित है, (यम्) जिस देह को तू (भद्रया) सुखप्रद, कल्याणकारिणी (सु-मत्या) उत्तम मनःशक्ति या बुद्धि द्वारा (चोदयासे) प्रेरित करता है।

[७७] परमेश्वर, आचार्य

वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभः। अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥

भा०—(सत्यः) सत्यस्वरूप, (ऋजीषी) ऋजु अर्थात् धर्ममार्ग में सबको प्रेरणा करने वाला, (मघवान्) ऐश्वर्यवान्, परमेश्वर और आचार्य (आ यातु) हमें प्राप्त हो। (अस्य) इसके (हरयः) गुण वर्णन करने वाले शिष्यगण (नः) हमारे (उप आ द्रवन्तु) समीप आवें (तस्मै इत्) उसके लिये ही हम (सु-दक्षम्) उत्तम बलकारी (अन्धः) अन्न आदि पदार्थों को (सुषुम) उत्पन्न करते हैं। वह ही (गृणानः) उत्तम उपदेश करता हुआ (अभिपित्वं करते) हमें अभिमत फल प्राप्त कराता है।

राजा के पक्ष में—सत्य और न्याय प्रिय होने से वह राजा 'सत्य' है, ऐश्वर्यवान् होने से 'मघवा' है। धर्म और सदाचार मार्ग पर प्रजाओं के संचालन से 'ऋजीषी' है। उसके (हरयः) घुड़सवार या संदेशहर हमें प्राप्त हों। उसके लिये हम पृथ्वी पर अन्न आदि ऐश्वर्य उत्पन्न करें। वह (इह) इस राष्ट्र में (गृणानः) उत्तम शिक्षा देता हुआ हमारा (अभिपित्वं करते) साक्षात् पालन पोषण करे।

अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्ट वासनाओं के दमन करने में शूरवीर परमेश्वर ! तू (अध्वनः अन्ते न) मार्ग के समाप्त हो जाने पर जिस प्रकार रथ से घोड़ों को मुक्त कर दिया जाता है उसी प्रकार (नः) हमारे (अस्मिन्)

इस (सवने) जन्म में ही (अध्वनः अन्ते) इस जीवनमार्ग के समाप्त हो जाने पर (मन्दध्यै) मोक्ष-आनन्द को प्राप्त करने के लिये (नः) हमें (अवश्य) मुक्त कर, इस प्रकार (वेधाः) विद्वान् पुरुष (उशनाः इव) कामनावान् पुरुष के समान होकर ही (चिकितुषे) भव-व्याधि के निवारक (असुर्याय) तथा प्राणियों के हितकारी परमेश्वर को (मन्म) मनन योग्य (उक्थम्) स्तुति (शंसाति) कहता है ।

कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३॥

भा०—(यत्) जब (विदथानि) ज्ञान विभूतियों को (साधन्) साधता हुआ, (वृषा) एवं हृदय में आनन्द-रस का वर्षण करने हारा आत्मा, (निण्यम्) भीतर छुपे (सेकम्) आनन्दरस प्रवाह का (विपिपानः) विशेष रूप से पान करता हुआ, (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (अर्चात्) परब्रह्म की उपासना करता है, तब (दिवः) प्रकाशमय परमेश्वर के अनुग्रह से (सप्त कारून्) सात क्रियाशील प्राणों को (इत्था) सत्य रूप से (अजीजनत्) प्रकट करता है और (अह्ना) दिन के समय जिस प्रकार सूर्य की सात किरण समस्त पदार्थों का ज्ञान कराते हैं उसी प्रकार प्रबुद्ध आत्मा के सात मुख्य प्राण (वयुना गृणन्तः) नाना ज्ञानों का वर्णन करते हुए (अह्ना चित्) प्रकाश ही प्रकाश (चक्रुः) कर देते हैं ।

स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥

भा०—वह (नृतमः) नरोत्तम आत्मा, (यत्) जो (अर्कैः) कि अर्चनाओं द्वारा (वेदिम्) ज्ञान कराने वाली चित्तभूमि को, (सुदृशीकम्) और सुन्दर (स्वः) परमसुखमय, (महि ज्योतिः) उस महान् ज्योति को (चकार) प्रकट करता है, (यद् वस्तोः) जिस परब्रह्म की ज्योति में समस्त सूर्य, चन्द्र, तारे आदि (रुरुचुः) प्रकाशमान हो रहे हैं, वह ही

(अभिष्टौ) अभीष्ट प्राप्ति के लिये (विचक्षे) तथा विशेष ज्ञानदर्शन कराने के लिये, (नृभ्यः) मनुष्यों के कल्याण के लिये उन पर छाये (अन्धा तमांसि) घोर अन्धकारों को (दुधिता) विनष्ट (चकार) करता है।

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५॥

भा०—(ऋचूईषीः ऋजु ईषी) ऋगादि मन्त्रों से स्तुत्य, अथवा ऋजुमार्ग पर ले चलनेहारा (इन्द्रः) परमेश्वर (अमितम्) अपार (ववक्षे) धारण सामर्थ्य वाला है। वह (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (रोदसी) द्यौ और पृथिवी (उभे) दोनों को (आ पप्रौ) पूर्ण कर रहा है। (यः) जो वह (विश्वा भुवना) समस्त लोकों को (अभि बभूव) व्याप्त है और सबको वश कर रहा है तो भी (अस्य महिमा) इसका महान् सामर्थ्य (अतः चित् वि रेचि) इससे भी कहीं अधिक बड़ा है।

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः॥६॥

भा०—(शक्रः) शक्तिशाली (विद्वान्) ज्ञानवान् आत्मा (निकामैः) कामना से रहित (सखिभिः) तथा मित्रभूत चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा (विश्वानि) समस्त (नर्याणि) मनुष्यों के हितकारी (अपः) ज्ञानों और कर्मों को (रिरेच) उन पर न्योछावर करता है और (ये) जो विद्वान् योगीजन (वचोभिः) अपनी स्तुतियों द्वारा (अश्मानम्) पर्वत के समान अभेद्य और मेघ के समान रसवर्षक आत्मा को (बिभिदुः) भेदते हैं। वे (उशिजः) परमपद के आकांक्षी होकर (गोमन्तं व्रजम्) इन्द्रियों के समूह को (विवव्रुः) विशेष रूप से संयम करके रोक लेने में समर्थ होते हैं।

अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७॥

भा०—हे (धृष्णा) अन्तःशत्रुओं के धर्षणशील (शूर) शूरवीर आत्मन् ! (ते) तेरा (वज्रम्) ज्ञानसामर्थ्य (अपः वव्रिवांसम्) ज्ञानों के आवरण करने वाले (वज्रम्) तामस अज्ञान को (परा अहन्) विनष्ट करता है और (पृथिवी) पृथिवी (सचेताः) तेरे बल से चेतनावती होकर तुझे (प्र आवत्) प्राप्त होती है । तू (शवसा) अपने बल से (पतिः भवन्) सबका पालक होकर (समुद्रियाणि) समस्त पदार्थों के उत्पादक परमेश्वर सम्बन्धी (अर्णांसि) ज्ञानों और बलों को (प्र ऐनोः) उत्तम रीति से सब पर प्रकट करता है ।

अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥

भा०—(पुरु-हूत) हे समस्त प्रजाओं से पुकारे गये विश्वात्मन् ! (यत्) जब तू (अपः) ज्ञानों और कर्मों के प्रकट करने के लिये (अद्रिम्) अखण्ड आत्मा के आवरण को (दर्दः) विदीर्ण करता है, तब (सरमा) व्यापक ज्ञानशक्ति (ते) तेरे (पूर्व्यम्) पूर्ण एवं पूर्व के सनातन रूप को (आविः भुवत्) प्रकट करती है । (सः) वह तू परमेश्वर (नः) हमें (भूरिम् वाजं) बहुतसा ऐश्वर्य, बल एवं ज्ञान (नेता) प्राप्त कराने वाला होकर, (अंगिरोभिः) अंग अर्थात् देह में रसरूप से विद्यमान प्राणों द्वारा अथवा (अंगिरोभिः) ज्ञानी पुरुषों द्वारा (गृणानः) स्तुति को प्राप्त होता हुआ, (गोत्रा) ज्ञान की रश्मियों को रोकने वाले बाधक आवरणों का (रुजन्) नाश करता हुआ, (आ दर्षि) स्वयं प्रकट होता है ।

[७८] राजा और परमेश्वर

शंयुर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ॥

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद् गवे न शाकिने ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोग (सुते) राज्याभिषेक हो

जाने पर (सचा) सब मिलकर, (सत्वने) वीर्यवान्, (शाकिने) शक्तिशाली, (गवे न) वृषभ के समान राज्यधुरा को उठाने में समर्थ, (पुरु-हूताय) अधिकाधिक जीवों से स्मरण करने योग्य राजा के लिये, (यद्) जो (शम्) सुख एवं कल्याणकर हो (तद् गाय) उसका उपदेश करो।

अध्यात्म में—(गवे न शाकिने) वृषभ के समान शक्तिशाली आत्मा के विषय में आप लोग (गाय) उपदेश करो, जो (शंम्) शान्ति प्रदान करे।

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २ ॥

भा०—(यत् सीम्) जब वह हमारी (गिरः) स्तुतियों का (उप-अवत्) श्रवण कर लेता है, तब (वसुः) सब प्राणियों में बसा, सबको बसाने वाला वह परमेश्वर (गोमतः) वाणियों और गौओं से युक्त (वाजस्य) ऐश्वर्य और ज्ञान के (दानं) दान को (न घ नियमते) नहीं रोक लेता।

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥

भा०—(दस्यु-हा) राजा के समान दुष्टों का विनाशक परमेश्वर, (कुवित्सस्य) बहुत से भोग्य पदार्थों के भोक्ता जीव को, (गोमन्तम्) ज्ञानवाणियों से युक्त (व्रजम्) प्राप्य परमपद को (प्र अगमत्) प्राप्त कराता है। वह (नः) हमें (शचीभिः) अपनी ज्ञान-शक्तियों से उस परमपद के द्वार को (अप वरत्) खोल दे।

[७९] परमेश्वर

वसिष्ठः शक्तिर्वा ऋषिः । प्रगाथः (बृहतीसतोबृहत्यौ) । द्व्यृचं सूक्तम् ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो कां० १८ । ३ । ६७ ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो॒ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (नः) हमें (अज्ञाताः) अनजाने, (वृजनाः) वर्जन योग्य पाप और (दुराध्यः) दुःखदायी मानस चिन्ताएं, (अशिवासः) अमङ्गलकारी भाव (अव क्रमुः) न दबावें । हे (शूर) शूर ! (त्वया) तेरे बल से (वयम्) हम (प्र-वतः) प्रकर्ष को प्राप्त (शश्वतीः अपः) नित्य बहने वाली नदियों के समान (शश्वती अपः) चिरकाल से लगे कर्मबन्धनों को (अति तरामसि) पार कर जांय ।

[८०] परमेश्वर

शंयुर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रगाथः (बृहतीसतोबृहत्यौ) । द्वयृचं सूक्तम् ॥

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (नः) हमें (ओजिष्ठम्) सबसे अधिक पराक्रम से युक्त, (ज्येष्ठम्) सबसे श्रेष्ठ, (पपुरि) पालन करने वाला और पूर्ण (आ भर) यश प्राप्त करा, हे अद्भुत ! हे (वज्र-हस्त) वज्र या बल को हाथ में धारण करने वाले ! हे (सु-शिप्र) उत्तम बल और ज्ञानवान् ! तू (येन) जिस यश द्वारा कि (इमे) इन (उभे रोदसी) दोनों लोकों को (आ प्राः) पूर्ण कर रहा है ।

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! (देवेषु) विजयशील पुरुषों में से (उग्रम्) अधिक बलवान् और (चर्षणी-सहम्) समस्त लोकों को अपने बल से वश करनेहारे (त्वाम्) तुझको हम (अवसे) रक्षा के लिये (हूमहे) बुलाते हैं । तू (विश्वा) समस्त (पिब्दना) गुप्त शब्द करने वाले

गुप्त पुरुषों को (विथुरा) पीड़ित (सुकृधि) कर और हे (वसो) सबको वास देनेहारे ! तू (अमित्रान्) शत्रुओं को (सु-सहान्) सुख से पराजय करने योग्य (कृधि) कर।

[८१] परमेश्वर की महिमा

पुरुहन्मा ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रगाथः (बृहतीसतोबृहत्यौ) द्वयृचं सूक्तम् ॥

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (यद्) यदि (ते) तेरे लिये (शतं द्यावः) सैकड़ों द्यौलोक और (उ ते शतं भूमिः) सैकड़ों भूमियें भी (स्युः) हों और हे (वज्रिन्) शक्तिमन् ! (सहस्रं सूर्याः) हज़ारों सूर्य और (सहस्रं जातम्) हज़ारों उत्पन्न संसार और (सहस्रं रोदसी) हज़ारों ज़मीन आस्मान हों तो भी वे (त्वां न अनु अष्ट) तुझे व्याप नहीं सकते, तेरी बराबरी नहीं कर सकते।

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २ ॥

भा०—हे (वृषन्) समस्त सुखों के वर्षक ! हे (शविष्ठ) सबसे अधिक शक्तिशालिन् ! तू (महिना) बड़े भारी (शवसा) बल से (विश्वा) समस्त (वृष्ण्या) बल के कार्यों को (आ पप्राथ) सब दिशाओं में फैला रहा है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (वज्रिन्) बलवन् ! (गोमति व्रजे) इन्द्रियों से युक्त इस गोष्ठ रूप देह में, (चित्राभिः) आश्चर्यजनक (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से (अस्मान् अव) हमारी रक्षा कर।

[८२] परमेश्वर और उपासक

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहत्यौ। द्वयृचं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (यत्) यदि (यावतः त्वम्) जितने धन का तू स्वामी है, (तावद्) उतने धन का (अहम्) मैं (ईशीय) स्वामी हो जाऊं तो मैं (स्तोतारम् इत्) विद्वान् जन का ही (दिधिषेय) धारण पोषण करूं। हे (रदायसो) ऐश्वर्य के दातः ! मैं (पापत्वाय) पाप कार्य के लिये कभी (न रासीय) दान न दूं।

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ २ ॥

भा०—परमेश्वर कहता है। (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (कुहचित् विदे) कहीं भी विद्यमान (महयते) उपासना करने वाले सत्पुरुष को मैं (रायः) धनों (आशिक्षयेम् इत्) का प्रदान करता ही हूँ। भक्त कहता है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (त्वद् अन्यत्) तुझसे दूसरा (नः) हमारा (आप्यम् न हि अस्ति) बन्धु नहीं है और (त्वद् अन्यः) तुझसे दूसरा (वस्यः) श्रेष्ठ हमारा (पिता चन न हि अस्ति) पिता भी नहीं है।

[८३] राजा

शंयु ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ बृहती । २ पंक्तिः । द्व्यृचं सूक्तम् ॥

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (त्रि-धातु) तीन धातुओं से बना, (त्रि-वरूथम्) तीन घेरों वाला (स्वस्तिमत्) कल्याणवान् (छर्दिः) छत या सुखों से युक्त (शरणम्) गृह (मघवद्भ्यः) धनाढ्य पुरुषों और (महाम्) मुझको भी (यच्छ) प्रदान कर और (एभ्यः) इनसे (दिद्युम्) देदीप्यमान शस्त्र या क्रोध आदि को (यवय) दूर कर।

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (ये) जो पुरुष (गव्यता मनसा) भूमि और गौ आदि पशु लेने की इच्छा वाले मन से (शत्रुम्) शत्रु को (आदभुः) मारने में समर्थ हैं और जो (धृष्णुया) शत्रु को धर्षण करने वाली शक्ति से (अभि-प्र-घ्नन्ति) मार डालते हैं, ऐसे पुरुषों के होते हुए हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे (गिर्वणः) स्तुत्य! (इन्द्र) हे शत्रुनाशक! तू (तनूपाः) हमारे शरीरों का रक्षक होकर (नः अन्तमः) हमारा अति समीपतम मित्र होकर (भव) रह।

[८४] परमेश्वर

मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम्॥

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।
अण्वीभिस्तना पूतासः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर! हे (चित्रभानो) आश्चर्यजनक दीप्तियों वाले! (इमे सुताः) ये उत्पन्न पदार्थ और ज्ञानरस से अभिषिक्त शुद्ध आत्मा (त्वायवः) तेरी चाहना करने हारे हैं। तू (आ याहि) साक्षात् दर्शन दे। ये सब (अण्वीभिः) सूक्ष्म योग-क्रियाओं से (तना) नित्य (पूतासः) पवित्र हैं।

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
उप ब्रह्माणि वाघतः॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर तू (धिया इषितः) उत्तम ज्ञानवाली बुद्धि और उत्तम कर्म से प्राप्त होने योग्य और (विप्र-जूतः) विद्वानों द्वारा जाना और अर्चना किया जाता है। तू (वाघतः) उपासक पुरुषों और (ब्रह्माणि उप) ब्रह्मज्ञानी पुरुषों को या ब्रह्मवेद के वचनों को (आ याहि) प्राप्त हो अर्थात् वेदोक्त गुणों सहित प्रकट हो।

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।
सुते दधिष्व नश्चनः॥ ३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (तूतुजानः) अति वेगवान् होकर (ब्रह्माणि उप) वेदस्तुतियों को (आ याहि) प्राप्त हो । हे (हरिवः) वेगवान् सूर्यादि लोक के स्वामिन् ! उत्पन्न संसार में (नः) हमें (चनः) अन्न आदि भोग्य पदार्थ (दधिष्व) प्रदान कर ।

[८५] परमेश्वर

मेधातिथिमध्यातिथि ऋषि । इन्द्रो देवता । प्रगाथः (१, ३ बृहती २, ४ सतो बृहती) । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे (सखायः) मित्रजनो ! (अन्यत्) और किसी की (मा चित् वि शंसत) विविध रूपों से स्तुति न करो और इस प्रकार (मा रिषण्यत) नष्ट न होओ । (सुते) उत्पन्न संसार में (इन्द्रम् इत्) ऐश्वर्यवान्, (वृषणम् महान्) समस्त सुखों के वर्षक परमेश्वर की (सचा) एकत्र मिलकर (स्तोत) स्तुति करो और (मुहुः) बार २ (उक्था च) स्तुतियां (शंसत) कहो ।

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोऽभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥

भा०—(अवक्रक्षिणम्) सबको अपने अधीन रखकर अपने प्रति आकर्षण करने वाले, (वृषभम्) सुखों के वर्षक, (अजुरम्) जरारहित, (यथा गां न) सूर्य और महावृषभ के समान (चर्षणी-सहम्) समस्त लोगों को विजय करने वाले, (विद्वेषणम्) विरुद्ध आचारी पुरुषों के द्वेषी, (संवनना) सज्जन पुरुषों के सेवनीय, (उभयं-करम्) निग्रह और अनुग्रह, दण्ड और कृपा दोनों के करने में समर्थ, (मंहिष्ठम्) अति पूजनीय एवं अति दानशील, (उभयाविनम्) शत्रु और मित्र दोनों की रक्षा करनेहारे

और स्थावर जंगम सबके रक्षक उस परमेश्वर की (मुहुः स्तोत शंसत च) वार २ स्तुति, प्रशंसा करो ।

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (यत् चित् हि) यद्यपि (इमे जनाः) ये समस्त लोग (त्वा) तू (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये ही (नाना) तेरी भिन्न २ उपायों से (हन्वते) स्तुति करते हैं, तो भी (अस्माकम्) हमारा (इदं ब्रह्म) यह वेद स्तुति वचन (ते) तेरे गुणों को (विश्वा अहा च) सब दिनों (वर्धनम्) बढ़ाने वाला (भूतु) रहे ।

वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) परमेश्वर ! (विपश्चितः) कर्मों और ज्ञानों के ज्ञाता, (अर्यः) आगे बढ़ने वाले, (जनानां विपः) जनों के बीच मेधावी पुरुष (वि तर्तूर्यन्ते) विशेष रूप से पार हो जाते हैं । परमेश्वर ! तू (पुरुरूपम् वाजं) विविध प्रकार का रुचिकर अन्न और बल (आ भर) हमें प्राप्त करा और (ऊतये) रक्षा के लिये (नेदिष्ठम्) अति समीप (उप क्रमस्व) रह ।

[८६] आत्मा

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । एकर्चं सूक्तम् ॥

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् आत्मन् ! मैं (सधमादे) साथ २ आनन्द अनुभव करने की समाहित दशा में, (आशू) वेगवान् (ब्रह्मयुजा) ब्रह्म के साथ युक्त होने वाले (ते) तेरी (हरी) दुःखों के विनाशक, (सखाया)

एक दूसरे के मित्ररूप (हरी) शरीर के धारक, प्राण और अपान दोनों को (ब्रह्मणा) परम ब्रह्म के साथ (युनज्मि) योग-अभ्यास द्वारा समाहित करता हूँ। हे (इन्द्र) आत्मन्! तू (सुखम्) सुखपूर्वक (स्थिरम्) स्थिर रूप से (रथम्) विद्यमान इस देह को (अधितिष्ठन्) वश करता हुआ, (प्रजानन्) उत्कृष्ट ज्ञान सम्पादन करके, (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर, (सोमम्) प्रेरक परमेश्वर या ब्रह्मरस को (उप याहि) प्राप्त कर।

[८७] राजा, आत्मा

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१॥

भा०—राजा के पक्ष में—हे (अध्वर्यवः) हिंसारहित राष्ट्र यज्ञ के सम्पादन करने हारे पुरुषो! आप लोग (क्षितीनां वृषभाय) प्रजाओं के प्रति सुखों के वर्षण करने वाले राजा के लिये, (अरुणम्) रुचिकर, (दुग्धम्) दुग्ध के समान पुष्टिप्रद अथवा पृथ्वीरूप धेनु से दोहन किये गये (अंशुम्) राजोचित अंश को (जुहोतन) प्रदान करो। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (गौरात्) वाणियों में रमण करने वाले विद्वान् से भी अधिक (वेदीयान्) ज्ञानवान् होकर, (अव-पानं सुत-सोमम्) अधीन रखकर पालन करने योग्य तथा अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्रपति के पद की (इच्छन्) अभिलाषा करता हुआ, (विश्वा-अहा) सब दिनों प्रजा में विचरता है।

आत्मा के पक्ष में—हे (अध्वर्यवः) अहिंसित जीवनयज्ञ के करने हारे योगिजनो! तुम (क्षितीनां वृषभाय) देह में निवास करने वाले प्राणगणों में जीवनरस के वर्षण करने वाले आत्मा के लिये, (अरुणम्) अति प्रकाश युक्त (दुग्धम्) तथा सार रूप से प्राप्त (अंशुम्) व्यापक प्राण की (जुहोतन) आहुति दो। वह (इन्द्रः) आत्मा (गौरात्) इन्द्रियों में

रमणशील प्राण से भी अधिक (वेदीयान्) बलशाली होकर (अव-पानम्) भीतर ही पान करने योग्य (सुत-सोमम्) ब्रह्मरस को (इच्छन्) चाहता हुआ (विश्वाहा इत्) सदा ही (याति) प्राप्त है ।

यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! तू (प्रदिवि) उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप पर-ब्रह्म में आश्रित (चारु) अति उत्तम (यत्) जिस (अन्नम्) अक्षय रस को (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दधिषे) धारण करता है, (अस्य) उस साक्षात् प्राप्त रस के (पीतिम् इत्) पान को ही नित्य (वक्षि) चाहता है । (उत हृदा, उत मनसा) हृदय और मन से (जुषाणः) चाहता हुआ और सेवन करता हुआ हे तू (प्रस्थितान्) इन आगे रक्खे (सोमान्) ब्रह्मानन्द रसों का (पाहि) पान कर ।

राजा के पक्ष में—(प्रदिवि) उत्कृष्ट राजसभा के अधीन (यत चारु अन्नं दधिषे) जिस उत्तम भोग्यराष्ट्र को, तू धारण करता है और (दिवेदिवे अस्य पीतिम् = वृद्धिम् वक्षि) दिनोंदिन उसकी वृद्धि चाहता है, (उत हृदा उत मनसा जुषाणः उशन्) हृदय और मन से प्रेम करता हुआ (अस्य) इस राष्ट्र के उच्च पदों पर स्थित (सोमान्) शासक अधिकारियों और विद्वानों की (पाहि) रक्षा कर ।

'पीतिम्'—ओप्यायी वृद्धौ—प्याय: पीभाव: ॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥

भा०—राजा के पक्ष में—हे (इन्द्र) राजन् ! तू (जज्ञानः) राजा बनते ही (सहसे) अपने शत्रुपराजयकारी बल से (सोमं) राष्ट्र का (पपाथ) पालन करता है। (ते माता) तेरी माता, तुझे राजा बनाने वाली राजसभा एवं यह पृथ्वी (ते महिमानम्) तेरे महान् सामर्थ्य को (प्र

उवाच) सर्वोत्तम कहती है । तू (उरु अन्तरिक्षम्) विशाल अन्तरिक्ष को (आ पप्राथ) पूर्ण करता अर्थात् अन्तरिक्ष के समान प्रजाओं का रक्षक और उन पर जलादि वर्षण के समान सुखों का वर्षण करके स्वयं मानो अन्तरिक्ष पद को (आ पप्राथ) प्राप्त करता है और (युधा) युद्ध द्वारा (देवेभ्यः) सेना-पुरुषों और विद्वानों के लिये (वरिवः) धनैश्वर्यवान् को भी (चकर्थ) उत्पन्न करता है ।

अध्यात्म पक्ष में—(जज्ञानः सोमं सहसे पप्राथ) ज्ञानसम्पादन करता हुआ अपने आत्मिकबल से योगी ब्रह्मरस का पान करता है । हे आत्मन् ! (माता) ज्ञानी पुरुष (ते महिमानम् प्र उवाच) तेरे महान् सामर्थ्य का वर्णन करता है। (उरु अन्तरिक्षम्) विशाल हृदयाकाश को तू (पप्राथ) पूर्ण करता, (देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) और प्राणों को भी बल प्रदान करता है ।

यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् । यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ४

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (यद्) जब तू (महतः मन्यमानान्) बड़े अभिमान करने वालों को (योधय) हमारे से लड़ाता है तब (शाशदानान्) हमारे पक्ष वालों को काटने वाले (तान्) उन शत्रुओं को हम (बाहुभिः) अपनी बाहुओं से ही (साक्षाम) पराजित करें । (यद् वा) और जब भी (नृभिः) उत्तम नेताओं से (वृतः) परिवृत होकर तू स्वयं (अभि युध्याः) शत्रु के मुकाबले पर लड़े तब (त्वया) तेरे द्वारा हम (सौश्रवसम्) उत्तम यश प्राप्त कराने वाले (आजिम्) युद्ध का (जयेम) विजय करें ।

परमेश्वर पक्ष में—जब भी परमेश्वर हमें बड़े कामादि शत्रुओं से युद्ध का अवसर दे हम उनको अपने बाहुबल से पराजित करें और हे (इन्द्र) परमात्मन् ! तू (नृभिः) अपनी नेतृशक्तियों से (अभि युध्याः)

उनका नाश कर। हम तेरी सहायता से उत्तम यश वाले संग्राम का विजय करें।

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रस्य) वीर राजा के (प्रथमा कृतानि) पहले किये हुए श्रेष्ठ कार्यों का (प्र वोचम्) मैं वर्णन करूं। (या) और जिन (नूतना) नवीन कर्मों को (मघवा चकार) वह ऐश्वर्यवान् करता है उनका भी मैं (प्र वोचम्) कथन करूं। (यद्) जब वह (अदेवीः) अदेव कोटि के लोगों की (मायाः) छल कपट की क्रियाओं को (आ असहिष्ट इत्) सब प्रकार से विजय कर लेता है तब (सोमः) उत्तम ऐश्वर्य को देने वाला राष्ट्र (अस्य) केवल इसके ही वश से (अभवत्) रहता है।

परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर के पूर्वकल्पों में किये और इस कल्प में किये जगत्सर्गों के विषय में मैं वर्णन करूं। (यद) जब वह (अदेवीः) प्रकाशरहित (मायाः) प्रकृति से उत्पन्न विकृतिसृष्टियों को (असहिष्ट) अपने वश किये रहता है तब जानो कि (सोमः केवलः) समस्त जगत् ही (अस्य) उसके वश में (अभवत्) है।

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (इदम्) यह (अभितः) राष्ट्र में विचरने वाला (विश्वं पशव्यम्) समस्त पशुसमूह (यत्) जिसको तू (सूर्यस्य) सूर्य के (चक्षसा) प्रकाश से (पश्यसि) देखता है (इदं तव) तेरा ही है। तू (गवां गोपतिः एकः असि) समस्त भूमियों का एकमात्र पालक है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (प्रयतस्य) उत्कृष्ट नियन्ता रूप (ते) तेरे ही (वस्वः) ऐश्वर्य का हम (भक्षीमहि) भोग करें।

ईश्वर पक्ष में—(इन्द्रम्) यह (अभितः) सब ओर फैला (पशव्यम्) दोपायों चौपायों का हितकारी (विश्वम्) समस्त संसार (यत्) जिसको (सूर्यस्य चक्षसा पश्यसि) सूर्य के प्रकाश से तू प्रकाशित करता, मानो देखता ही है, वह (तव) तेरा ही है। (गवाम्) समस्त प्राणियों और भूमियों का पालक तू ही 'गोपति' है। (प्रयतस्य) उत्तम नियन्ता जो तू है उसके (वस्वः) ऐश्वर्य का हम (भक्षीमहि) भोग करते हैं।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

भा०—हे (बृहस्पते) महान् राष्ट्र के स्वामिन्! एवं बृहती वेदवाणी के पालक विद्वान्! (युवम्) तुम दोनों (दिव्यस्य) दिव्य ज्ञानरूप (उत) और (पार्थिवस्य) पृथिवी सम्बन्धी (वस्व) ऐश्वर्य के (ईशाथे) स्वामी हो। आप दोनों (स्तुवते कीरये चिद्) स्तुति करने हारे विद्वान् पुरुष को (रयिम् धत्तम्) ऐश्वर्य प्रदान करो और (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (सदा नः पात) सदा हमारी रक्षा करो।

व्याख्या देखो अथर्व० का० २० । १७ । १२ ॥

[८८] परमेश्वर, सेनापति, राजा

वामदेव ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । त्रिष्टुभः । षड्टचं सूक्तम् ॥

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (बृहस्पतिः) वेदवाणी और महान् ब्रह्माण्ड का पालक है और (त्रि-सधस्थः) तीनों लोकों में स्थित होकर (रवेण) अपने शासन से (सहसा) बल पूर्वक (ज्मः) पृथिवी के (अन्तान्) दशों दिशाओं के दूरस्थ प्रदेशों को (वि) विविध प्रकार (तस्तम्भ) थामता है, (प्रत्नासः ऋषभः) पूर्व के मन्त्रद्रष्टा (विप्राः) तथा विविध ज्ञानों से पूर्ण

मेधावी लोग (मन्द्रजिह्वम्) आनन्दजनक वचन वाले उस परमेश्वर का (दीध्यानाः) ध्यान करते हुए (पुरः दधिरे) उसे अपने आगे उपास्य-रूप से, साक्षीरूप या अध्यक्षरूप से स्थापित करते हैं।

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़ी शक्ति, वाणी, राष्ट्र और ब्रह्माण्ड के पालक विद्वन् ! सेनापते ! राजन् ! एवं परमात्मन् ! (धुनेतयः) शत्रुओं को कंपा देने वाली चढ़ाई करने वाले तथा (सु-प्रकेतम्) उत्कृष्ट ज्ञानवान् तुझको (मदन्तः) हर्ष देने वाली (ये) जो (नः) हम, (अभि ततस्रे) तेरी साक्षात् स्तुति करते हैं, (अस्य) उनके, (पृषन्तम्) नाना फलों के देने वाले, (सृप्रम्) विस्तृत, (अदब्धम्) अहिंसित, (ऊर्वम्) तथा महान् (योनिम्) आश्रय स्थान राष्ट्र की (रक्षतात्) रक्षा कर।

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३॥

भा०—हे (बृहस्पते) परमेश्वर ! (या) जो (परमा) सर्वोत्कृष्ट (परावत्) तथा परमज्ञान की रक्षा करने वाली वेदवाणी है और (अतः) इससे (आ) साक्षात् ज्ञान कराने हारे जो (ऋत-स्पृशः) सत्य तत्व को पहुँचने वाले विद्वान् पुरुष (ते आ) तेरे चारों ओर (निः षेदुः) विराजमान हैं (खाताः अवताः) वे खने हुए कुओं के समान रस से भरे हुए और (अद्रि-दुग्धाः) मेघों या पर्वतों से प्राप्त मधुर रस को धारण करने वाले जलाशय या झरने के समान होकर (अभितः) सर्वत्र (मध्वः) उस मधुर ब्रह्मानन्द रस की (विरप्शम्) महान् राशि को (श्चोतन्ति) झरते, उपदेश करते और वर्षण करते हैं।

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥ ४ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) वेदवाणी का स्वामी, परमेश्वर, (प्रथमं जायमानः) सबसे प्रथम सृष्टि को प्रकट करता हुआ, (महः ज्योतिषः) महान् ज्ञानप्रकाश के (परमे) सर्वोत्कृष्ट (व्योमन्) स्थान वेद में (सप्त आस्यः) सात छन्दों रूप सात मुख वाला होकर, (तुवि-जातः) तथा बहुत प्रकार से प्रकट होकर अपने (रवेण) उपदेश से (सप्त-रश्मिः) सात रश्मियों वाले सूर्य के समान (तमांसि) अज्ञानमय दुःखान्धकारों का (वि अधमत्) विविध उपायों से नाश करता है।

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन बलं रुरोज फलिगं रवेण।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत्॥ ५॥

भा०—(सः) वह (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक (सु-स्तुभा) उत्तम रीति से स्तुति करने वाले (ऋक्वता) मन्त्रों से युक्त (गणेन) विद्वद्-गण द्वारा और (रवेण) वेदोपदेश के बल द्वारा (फलिगम्) फल्गु अर्थात् निःसार तथा घेरने वाले कामादि शत्रुगण को (रुरोज) तोड़ डालता है और वह ही (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ (वावशतीः) हम्भारव करने वाली (हव्य-सूदः) तथा घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों को प्रदान करने वाली (उस्रियः) गौओं के समान, ज्ञानरस से पूर्ण (वावशतीः) नित्य उपदेशमय शब्द करती हुई (हव्य-सूदः) ग्राह्य ज्ञान को झरती हुई (उस्रियाः) वेदवाणियों को (उत् आजत्) प्रकट करता है।

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ६॥

भा०—(एवा) इस उक्त प्रकार के ज्ञानवान्, (पित्रे) सबके पालक, (विश्व-देवाय) दिव्य शक्तियों के आश्रय, (वृष्णे) अति बलवान् पुरुष को हम (यज्ञैः) सत्संगों द्वारा (नमसा) आदर पूर्वक नमस्कार और (हविर्भिः) अन्नों द्वारा (विधेम) सेवा करें। हे (बृहस्पते) विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! (वयम्) हम (सु-प्रजाः) उत्तम प्रजा वाले (वीरवन्तः) वीर पुरुषों और पुत्रों से युक्त और (रयीणाम्) ऐश्वर्यों के (पतयः) पति (स्याम) हों।

[८९] राजा परमेश्वर

कृष्ण ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१॥

भा०—(लायम्) हृदय को लगने वाले बाण को (अस्यन्) फेंकता हुआ (अस्ता इव) धनुर्धर जिस अच्छे प्रकार से अपने निशाने पर बाण फेंकता है और जिस प्रकार (भूषन् इव) सुभूषित करने वाला पुरुष रत्नों को जड़ता है, उसी प्रकार हे आत्मन् ! तू भी (अस्मै) इस परमेश्वर को लक्ष्य करके (स्तोमम्) स्तुति समूह को (सु भर = प्र हर) आदर से प्रस्तुत कर और सूक्तरत्नों से उसे अलंकृत कर। हे (विप्राः) वाणी के कारण मेधावी विद्वान् पुरुषो ! तुम लोग (अर्यः) अपने स्वामी परमेश्वर की (वाचम्) वाणी को (तरत) अभ्यास द्वारा पार करो । हे (जरितः) स्तुतिशील विद्वन् ! तू (इन्द्रम्) अपने आत्मा को (सोमे नि रमय) परमेश्वर में आल्हादित कर ।

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥

भा०—हे (जरितः) स्तुतिशील विद्वन् ! (दोहेन) दुग्धदोहन के निमित्त जिस प्रकार (गाम्) गौ को प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार आन्तरिक्ष रस प्राप्त करने के लिये (गाम्) आत्मा को (उप शिक्ष) प्राप्त कर । (जारम्) देह और इन्द्रियों को कालवश जीर्ण कर देने वाले तथा (इन्द्रम्) साक्षात् प्रत्यक्ष होने वाले भोक्ता (सखायम्) आत्मा को (प्र बोधय) ज्ञानवान् कर और (वसुना पूर्णम्) धन से भरे (कोशम्) खजाने की न्याई वर्तमान उस शूरवीर इन्द्र को धन देने के लिये झुको ।

किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (त्वा) तुझको लोग (भोजम्) सबका पालक (किम् आहुः) क्यों कहते हैं ? मैं (त्वा) तुझको (शिशयम्) अति सूक्ष्म रूप से विद्यमान (शृणोमि) सुनता हूँ । तू (मा) मुझको भी (शिशयम्) सूक्ष्म बुद्धियुक्त कर जिससे (मम) मेरी (धीः) धारणावती बुद्धि (अप्नस्वती) श्रेष्ठ कर्म वाली (अस्तु) हो । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! (वसुविदं भगम्) ऐश्वर्यप्रद, सेवन योग्य ऐश्वर्य (आ भर) हमें प्राप्त करा ।

त्वां जना॑ ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं॑ कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (जनाः) लोग (मम-सत्येषु) मेरा पक्ष सच्चा, मेरा पक्ष सच्चा है इस प्रकार अपने पक्ष को दृढ़ करने के कलहों में भी (त्वां वि ह्वयन्ते) तुझे विविध नामों से याद किया करते हैं और (समीके) संग्राम में (सं-तस्थानाः) अच्छी प्रकार स्थित होकर युद्ध करने वाले भी (वि ह्वयन्ते) विविध प्रकारों से तुझे पुकारते हैं । पर तू (अत्र) इस लोक में (यः) जो (हविष्मान) सत्य ज्ञानवान् है उसी को अपना (युजम्) साथी (कृणुते) बनाता है और तू (शूरः) शूर होकर (आ-सुन्वता) सवन या चिन्तन करने वाले के साथ (सख्यं वष्टि) मित्रता करना चाहता है ।

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥

भा०—(यः प्रयस्वान्) जो प्रयासी परिश्रमी साधक (अस्मै) इस आत्मा को (तीव्रान् सोमान्) अति हर्षकर ब्रह्मरसों से स्नान कराता है, उसके ही (सु-तुकान्) विनाशकारी काम, क्रोधादि भीतरी शत्रुओं को वह (नि युवति) दूर करता है, (वृत्रम्) आवरक अज्ञान को (नि हन्ति) निर्मूल करता है । (प्रातः-अह्नः) दिन के प्रातःकाल के समान अज्ञान का नाश करता है ।

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ६

भा०—(यस्मिन् इन्द्रे) जिस ऐश्वर्यवान् राजा या परमेश्वर के निमित्त (वयम्) हम (शंसम्) स्तुति (दधिम) धारण करते हैं और (यः) जो (मघवा) ऐश्वर्यवान् (अस्मै) हमारी (कामम्) अभिलाषा को (शिश्राय) आश्रय देता है, (अस्य शत्रुः) उसका शत्रु (आरात् चित् सन्) दूर रहता हुआ (भयताम्) भय ही करे और (अस्मै) उसके आगे (जन्या) युद्ध सम्बन्धी (द्युम्ना) यश और ऐश्वर्य (नि नमन्ताम्) प्राप्त हों ।

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! आत्मन् ! (यः) जो तेरा (शम्बः) शत्रु-शमन करने का (उग्रः) बल है, हे (पुरुहूत) बहुतों से स्तुति किये हुए ! तू (तेन) उस बल द्वारा (शत्रुम्) शत्रु को (आरात् दूरम्) दूर से (अप बाधस्व) पीड़ित कर । (अस्मै) हमें (यवमत्) अन्न और (गोमत्) पशुओं से सम्पन्न ऐश्वर्य (धेहि) प्रदान कर और (जरित्रे) विद्वान् स्तुति-कर्त्ता पुरुष के लिये (वाजरत्नाम्) वीर्य और ज्ञान से अति रमणीय (धियम्) धारणशक्ति, बुद्धि और क्रियाशक्ति (कृधि) उत्पन्न कर ।

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८॥

भा०—(यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् आत्मा के (अन्तः) भीतर (वृष-सवासः) बलवान् प्राणों द्वारा उत्पन्न, (बहुलान्तासः) प्रभूत बल और सत्यज्ञान को धारण करने वाले (तीव्राः) अति प्रबल स्वरूप में (सोमाः) ब्रह्मानन्दरस (प्र अग्मन्) प्राप्त होते हैं, वह (मघवा) ऐश्वर्य-वान् आत्मा (दामानम्) रसों के देने वाले उसको (न अह) कुछ भी नहीं

(नि यंसत्) देता, परन्तु वह प्रभु (सुन्वते) अपने उपासक को तो (भूरि) बहुतसा (वामम्) सुन्दर ऐश्वर्य (नि वहति) प्रदान करता है।

उत प्रहामतिदीवा जयाति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजाति स्वधाभिः ॥९॥

भा०—यह आत्मा (अति-दीवा) अति देदीप्त होकर, (श्वघ्नी) कुत्ते के समान विषय-तृष्णालु इन्द्रिय और मन को मारकर, उनको वश करके, (काले) यथावसर (कृतम्) अपने किये कर्मफल और सदाचार को (विचिनोति) विशेषरूप से संग्रह कर लेता है और (प्रहाम्) विघ्नकारी उपद्रव पर (जयाति) विजय कर लेता है। (यः) जो पुरुष (देव-कामः) विद्वानों की कामना करता हुआ उनके निमित्त (धनम्) धन को (न रुणद्धि) नहीं रोकता। (तम्) उसको (इत्) ही वह (स्वधाभिः) अन्नों सहित (रायः) ऐश्वर्य (सं सृजति) प्रदान करता है। कां० ७।५०।६॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीवः कृणोतु ॥११॥

भा०—(१०, ११) इन दोनों की व्याख्या देखो का० २०।१७। १०, ११ तथा का० ७।५०।७॥ देखो ऋ० १०।४२।१–११॥

[९०] राष्ट्रपालक, ईश्वर और विद्वान्

भरद्वाज ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। त्रिष्टुभः। तृचं सूक्तम्॥

यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान्।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१॥

भा०—(यः) जो (बृहस्पतिः) वेदवाणी और ब्रह्माण्ड का पालक, (अद्रि-भित्) अद्रि अर्थात् न दीर्ण होने वाले जन्ममरण के बन्धन या

अज्ञान का नाशक है, (ऋतावा) जल से पूर्ण (आङ्गिरसः) तथा अंग २ में व्यापक प्राण के समान लोकों में रस या परम बल रूप से विद्यमान है, (हविष्मान्) शक्तिशाली है, (द्वि-बर्हज्मा) पृथिवी और आकाश दोनों में व्यापक है, (प्राघर्मसत्) सर्वोत्कृष्ट तेजः स्वरूप में विद्यमान है, (पिता) सबके पालक मेघ के समान (वृषभः) सुखों का वर्षक है (नः) वह हमें (रोदसी) सर्वत्र विश्व में (आ रोरवीति) ज्ञान का उपदेश करता है।

जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥२॥

भा०—(यः) जो (बृहस्पतिः) जो जगत् का पालक परमेश्वर, (ईवते) आने वाले (जनाय) मनुष्यों के लिये (देवहूतौ) प्राणायतन देह में (लोकं चकार) उत्पन्न हुए जीवों का निवासस्थान बनाता है और (यः) जो (वृत्राणि) आवरणकारी अज्ञानों का (घ्नन्) नाश करता हुआ (पुरः) देहबन्धनों को (वि दर्दरीति) विविध उपायों से तोड़ता है, वह (शत्रून्) कामादि शत्रुओं पर (जयन्) विजय करता हुआ और (अमित्रान्) मित्रों से विपरीत शत्रुपक्ष के अन्य सहायकों को भी (पृत्सु) देवासुर संग्रामों में (साहन्) पराजित करे।

बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः।
अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े भारी राष्ट्र का पालक राजा (वसूनि) ऐश्वर्यों को (सम् अजयत्) विजय करता है और (गोमतः) गौ आदि पशुओं से सम्पन्न (महः व्रजान्) बड़े भारी समूहों को (एषः देवः) वह विजयी (सम् अजयत्) विजय करता है। वह स्वयं (अप्रतीतः) किसी से भी विरोध द्वारा रोका न जाकर (स्वः) सुखमय (अपः) समस्त राष्ट्र के कार्यों को (सिषासन्) विभक्त करने की इच्छा करता हुआ (अमित्रम्) प्रजा के शत्रुओं को (अर्कैः) अपने शासनों से (हन्ति) विनष्ट करता है। ऋ० ६ । ७३ । ३ ॥

अध्यात्म में—(एषः देवः) विजयी योगी, बड़ी शक्ति का पालक होकर बहुत से ऐश्वर्यों और इन्द्रियों से युक्त देहों पर वश करता है। (स्वः अपः) सुखोत्पादक मोक्षमयी बुद्धियों का सेवन करता हुआ, (अप्रतीतः) बे रोक-टोक होकर, (अर्कैः) ज्ञान किरणों से या स्तुतियों द्वारा (अमित्रम्) विरोधी, द्वेष भाव, या अज्ञान को नाश करता है।

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

[९१] विद्वान्, राजा, ईश्वर

अयास्य आङ्गिरस ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । त्रिष्टुभः । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१॥

भा०—(नः) हमारा (पिता) पालक परमेश्वर सत्य को प्रकट करने के लिये प्रकट हुई, तथा सात मुख्य छन्दों से युक्त, (बृहतीम्) बड़ी भारी (इमां धियम्) वेदरूपी ज्ञानशक्ति को (अविन्दत्) प्राप्त किये रहता है और वही परमेश्वर (विश्वजन्यः) समस्त जनों के हितकारी (तुरीयं चित्) तुरीय मोक्षपद को भी (जनयत्) उत्पन्न करता है और वही (अयास्यः) निश्चेष्ट एवं निष्क्रिय या कभी न थकने वाला परमेश्वर (इन्द्राय) साक्षात् द्रष्टा जीव को (उक्थम्) ज्ञानोपदेश (शंसन्) करता है।

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥

भा०—(असुरस्य) 'असु' अर्थात् संसार के प्रेरक बल में रमण करने वाले, (दिवः) तेजस्वी परमेश्वर के (पुत्रासः) मानो पुत्र के समान, (वीराः) वीर्यवान् विद्वान् लोग, (ऋतम्) उस सत्य ज्ञान का (शंसन्तः) उपदेश करते हुए, (ऋजु) कल्याणमय स्वरूप का (दीध्यानाः) ध्यान करते हुए और स्वयं (विप्रम्) विविध ज्ञानों से पूर्ण (पदम्) प्राप्तव्य परम रह

को (दधानाः) धारण करते हुए (अङ्गिरसः) अग्नि के अङ्गारों के समान तेजस्वी ज्ञानी विद्वान् पुरुष, (यज्ञस्य) सब में पूजनीय उपास्य परमेश्वर के (धाम) धारण सामर्थ्य एवं तेज को (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ रूप से (मनन्त) मानते हैं।

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३॥

भा०—(बृहस्पतिः) वह महती शक्ति का पालक परमेश्वर, (वावदद्भिः) निरन्तर आलाप करने वाले, (सखिभिः) मित्रों के समान उसी से नित्य भाषण करने वाले (हंसैः) परमहंसों के द्वारा, (अश्मन्मयानि) पत्थर के समान दृढ़ (नहना) आत्मा को बांधने वाले कर्म-बन्धनों को (वि अस्यन्) विविध प्रकार से तोड़ता फोड़ता है। (उत) वह (गाः) ज्ञानवाणियों का (अभि कनिक्रदत्) साक्षात् उच्चारण करता है। वह (विद्वान्) विद्वान् (प्र अस्तौत्) वेद द्वारा वस्तुओं की यथार्थ स्तुति करता है और (उत् अगायत् च) वेदवाणी का उत्तम गान करता है। अथवा—(बृहस्पतिः) बड़ी भारी आत्मशक्ति का पालक पुरुष (सखिभिः हंसैः इव) परमहंस मित्रों के समान (वावदद्भिः) संवाद द्वारा उपदेश करने वाले सद्गुरुओं द्वारा अपने (अश्मन्मयानि नहना) शिला से बने कठोर बन्धनों के समान भोगमय बन्धनों को (व्यस्यन्) विशेष रूप से काटता हुआ (गाः) ज्ञान-वाणियों को (अभि कनिक्रदत्) साक्षात् कराता है और (विद्वान्) स्वयं ज्ञानी होकर (प्र अस्तौत् उत् अगायत् च) उसकी स्तुति करता और गान करता है।

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥

भा०—(अवः द्वाभ्यां परः) नीचे के दो द्वारों या वाणी और मन से परे, (एकया) एकमात्र केवली चितिशक्ति रूप से (गुहा तिष्ठन्तीः) हृदय

गुहा या गुप्त आत्मा में स्थित, (गाः) ज्ञान-ज्योतियों को (अनृतस्य) मिथ्याज्ञान के (सेतौ) बांधने वाले (तमसि) तामस-आवरण में (ज्योतिः इच्छन्) ब्रह्मज्योति को चाहता हुआ योगी, (उस्राः) ऊर्ध्व मस्तक में रश्मियों को (उत् आवः) प्रकट करता है और (तिस्रः) तीनों द्वारों गुदा, हृदय और ब्रह्मरन्ध्र या अधिष्ठान, मणिपूर और ब्रह्मरन्ध्र तीनों को (वि आवः) खोल लेता है।

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बृहती आत्मशक्ति का पालक योगी, (ईम्) इस प्रकार से (शयथा) आत्मा में अप्यय या विलयन के द्वारा (अपाचीम्) अधोमुखी (पुरम्) देहगत चित्-पुरी को (विभि) भेदकर, (उदधेः) रससागर के समान धर्ममेध समाधि के बल से (त्रीणि) शेष तीन द्वारों को भी (नि अकृन्तत्) सर्वथा काट देता है और तब (उषसम्) अज्ञान, पाप और कर्मजाल के दहन करने वाली विशोका प्रज्ञा को और (गाम्) ज्ञानमयी वाणी को और (अर्कम्) अर्चनीय (सूर्यम्) विशुद्ध आत्मस्वरूप को (स्तनयन् द्यौः इव) गर्जते हुए आकाश के समान भीतरी नाद से गर्जता हुआ (विवेद) साक्षात् करता है।

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) योगज विभूतिमान् योगी, (दुघानां) ब्रह्मरस को दोहन करने वाली प्रकाशधाराओं को (रक्षितारम्) रोक रखने वाले (वलम्) तामस-आवरण को (करेण इव) मानो अपने हाथ से काट डाला जाता है और (रवेण) भीतरी नाद से (वि चकर्त) विनष्ट करता है और वह योगी ही पुनः (स्वेदाञ्जिभिः) स्वेदों को प्रकट करने वाले प्राणों के आवगमन रूप तपों द्वारा (आशिरम्) परमानन्द रस को (इच्छमानः)

प्राप्त करना चाहता हुआ, (पणिम्) देह में नाना व्यापार करने हारे प्राण को ही (आ रोदयत्) दमन करता है और तब (गाः) आत्मप्रकाश की ज्ञान-धाराओं या किरणों को (अमुष्णात्) प्राप्त करता है ।

स ईं स॒त्येभिः॒ सखि॑भिः शु॒चद्भि॒र्गोधा॑यसं॒ वि ध॑न॒सैर॑दर्दः ।
ब्रह्म॑ण॒स्पति॒र्वृष॑भिर्व॒राहै॑र्घ॒र्मस्वे॑देभि॒र्द्रवि॑णं॒ व्या॑नट् ॥ ७ ॥

भा०—वह योगी (सत्येभिः) सत्यवान्, (सखिभिः) मित्र के समान सदा अनुकूलगति वाले, तथा (शुचद्भिः) देह को शोधन करने वाले (धनसैः) बलप्रद और ज्ञानप्रद प्राणों के बल से, (ईम्) उस (गोधायसम्) प्रकाश के रोकने वाले अज्ञान-आवरण को (वि अदर्दः) विशेषरूप से नष्ट करता है और (घर्म-स्वेदेभिः) पसीना बहाने वाले, (वृषभिः) बलवान् या आनन्द वर्षक, (वराहैः) सु आहत अर्थात् उत्तम-रूप से वशीकृत अर्थात् प्रत्याहार द्वारा दमन किये गये प्रबल प्राणों द्वारा (द्रविणम्) अति द्रुतगति वाले मन को भी (वि आनट्) विशेष रूप से वश करता है ।

ते स॒त्येन॒ मन॑सा॒ गोप॑तिं॒ गा इ॑या॒नास॑ इषणयन्त धी॒भिः ।
बृह॒स्पति॑र्मि॒थोअ॑वद्यपेभि॒रुदु॒स्रिया॑ असृजत स्व॒युग्भिः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(ते) वे प्राणगण (सत्येन मनसा) सत्यज्ञान एवं सात्विक बल से युक्त मन के बल द्वारा प्रेरित होकर, (गो-पतिम्) इन्द्रियों के पति आत्मा को (इयानासः) प्राप्त होकर, उसके वश होकर, (धीभिः) अपने धारण और ध्यान के सामर्थ्यों द्वारा (गाः) ज्ञान-रश्मियों को (इषणयन्त) प्रकट और प्रेरित करते रहते हैं और (बृहस्पतिः) वह महती आत्मशक्ति का पालक योगी (अवद्यपेभिः) निन्दित विषयभोगों से रक्षा करने वाले और आत्मा में स्वयं समाहित हुए प्राणगणों द्वारा (उस्रियाः) ज्ञान-किरणों को (उत् असृजत) प्रकट करते हैं ।

तं व॒र्धय॑न्तो म॒तिभिः॑ शि॒वाभिः॑ सिं॒हमि॑व॒ नान॑दतं स॒धस्थे॑ ।
बृह॒स्पतिं॒ वृष॑णं॒ शूर॑सातौ॒ भरे॑भरे॒ अनु॑ मदेम जि॒ष्णुम् ॥ ९ ॥

भा०—(सिंहम् इव) वन में सिंह के समान (सधस्थे) इन्द्रियों के संघ में (नानदतम्) भीतरी प्राणरूप से नाद करने हारे, (वृषणं) आनन्दवर्षक, (शूरसातौ) वीर पुरुषों द्वारा प्राप्त (भरेभरे) प्रत्येक संग्राम में सेनापति के समान विजयी, (बृहस्पतिम्) बड़ी सेना के पति राजा के समान (जिष्णुम्) विजय रूप शत्रुओं पर वश करने हारे, उस योगी आत्मा को, (भरे-भरे) प्रत्येक यज्ञ में, (शिवाभिः) कल्याण-मय (मतिभिः) स्तुतियों से (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए हम (अनु-मदेम) स्वयं भी आनन्द प्रसन्न होकर रहें ।

यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१०॥

भा०—वह योगी जब (विश्वरूपम् वाजम्) परमेश्वरीय बल, ज्ञान या विभूति को प्राप्त कर लेता है और मोक्ष और उत्कृष्ट लोकों को प्राप्त कर लेता है, तब उसके (आसा ज्योतिः बिभ्रतः) मुख द्वारा या उपदेश द्वारा ज्ञानज्योति को धारण करने वाले सत्पुरुष नाना प्रकार से उसके गुणानुवाद करते हैं ।

सत्यमाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ११

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वयोधै) दीर्घ आयु के धारण करने के निमित्त (सत्यम्) यथार्थ (आशिषम्) आशीर्वाद (कृणुत) प्रदान करो । आप लोग (स्वेभिः) अपने (एवैः) ज्ञानों द्वारा (कीरिं चित् हि) अपने स्तुतिकर्त्ता की सदा (अवथ) रक्षा करते हो । (विश्वाः मृधः) हमारी समस्त दुःखदायिनी विपत्तियां (पश्चा) पीछे (अव भवन्तु) बहुत दूर हो जांय । हे (रोदसी) स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (विश्वम् इन्वे) समस्त संसार को तृप्त करने वाले होकर (तत्) हमारे हितकर वेद के वचन को (शृणुतम्) श्रवण करो, कराओ ।

इन्द्रो॑ म॒हा म॑ह॒तो अ॑र्ण॒वस्य॒ वि मू॒र्धान॑मभिनदर्बु॒दस्य॑ ।
अह॒न्नहि॒मरि॑णात् स॒प्त सिन्धू॑न् दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥१२॥

भा०—(इन्द्रः) ज्ञानैश्वर्यवान्, अज्ञान का नाशक आचार्य (महतः) बड़े भारी, (अर्बुदस्य) मेघ के समान आनन्दरस वर्षण करने में समर्थ, (अर्णवस्य) सागर के समान विशाल गम्भीर आत्मा के (मूर्धनम्) अधिष्ठित देह के मूर्धाभाग अर्थात् सूर्यचक्र को (अभिनत्) प्राणशक्ति द्वारा भेदन करता है, वा (महतः अर्णवस्य मूर्धानम्) महान् ज्ञान-सागर के प्रमुख अंश को (वि अभिनत्) विशेष प्रकार से व्याख्या कर उसका रहस्य खोलता है, (अहिम् अहन्) अज्ञान का नाश करता, (सप्त सिन्धून्) और सात शीर्षगत प्राणों को प्रेरित करता है। हे (द्यावा पृथिवी) स्त्री पुरुषो! आप लोग गतिशील प्राणों द्वारा (नः) हमारी (प्र अवतम्) रक्षा करो।

[९२] ईश्वर स्तुति

१–१२ प्रियमेधः, १६–२१ पुरुहन्मा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १–३ गायत्र्यः। ८, १३, १७, १९, २१ पंक्तयः। १४–१६, १८, २० बृहत्यः। शेषा अनुष्टुभः। एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒भि प्र गोप॑तिं गि॒रेन्द्र॑मर्च॒ यथा॑ वि॒दे ।
सू॒नुं स॒त्यस्य॒ सत्प॑तिम् ॥ १ ॥
आ हर॑यः ससृज्रि॒रेऽरु॑षी॒रधि॑ ब॒र्हिषि॑ ।
यत्रा॒भि सं॒नवा॑महे ॥ २ ॥
इन्द्रा॑य॒ गाव॑ आ॒शिरं॑ दुदु॒ह्रे व॒ज्रिणे॒ मधु॑ ।
यत् सी॑मुपह्व॒रे वि॒दत् ॥ ३ ॥

भा०—(१-३) तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो (अथर्व का० २० । २२ । ४—६)

उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥

भा०—(यत्) जब (इन्द्रः च) मैं और विभूतिमान् आत्मा हम दोनों (ब्रध्नस्य) महान् परमेश्वर के (वि-तपं गृहम्) दुःखों से रहित शरण को (उत् गन्वहि) प्राप्त होते हैं, तब वहां (त्रिः सप्त) इक्कीस तत्वों के स्वामी (सख्युः) उस मित्र परमेश्वर के (पदे) ज्ञानमय वेद्यरूप में स्थित होकर, (मध्वः) आनन्दरस का (पीत्वा) पान करके, हम उपास्य उपासक (सचेवहि) परस्पर संगत होते हैं ।

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥

भा०—हे (प्रियमेधासः) यज्ञ या पवित्र आत्मा को प्रिय रूप से प्राप्त करने वाले साधक पुरुषो ! आप लोग उस परमेश्वर की (अर्चत) अर्चना करो, (प्र अर्चत) खूब स्तुति प्रार्थना उपासना करो । (अर्चत) नित्य स्तुति प्रार्थना किया करो । हे (पुत्रकाः) पुत्रो ! (उत) तुम लोग (पुरं न) दुर्ग के समान (धृष्णु) शत्रु का धर्षण करने वाले, उस परमेश्वर के अखण्ड रूप की (अर्चन्तु) उपासना करो और (अर्चत) नित्य उपासना करो ।

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥

भा०—(गर्गरः) प्रवक्ता गुरु (इन्द्राय) परमेश्वर के (उद्यतम्) सर्वोत्कृष्ट (ब्रह्म) वेदवचन को (अव स्वराति) बोले, उपदेश करे । (गोधा) वाणी के धारण करने वाली स्त्री एवं इन्द्रियों को धारण करने वाली मनःशक्ति उसी को (परि सनिष्वणत) सर्वत्र वीणा के समान उपदेश करे, गुने । (पिङ्गा) मधुर ध्वनि करने वाली वाणी, उसी का सर्वत्र (परि चनिष्कदत्) उच्चारण करे ।

आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥

भा०—(सु-दुघाः) उत्तम जल से पूर्ण (अनपस्फुरः एन्यः) प्रशान्त जल धाराओं के समान (यत्) जब ब्रह्मरस की धाराएं (आ पतन्ति) प्राप्त हो जाती हैं, तब हे विद्वान् योगाभ्यासी पुरुषो ! तुम लोग (इन्द्राय) आत्मा के (सोमम्) प्रशान्त आनन्दरस को (पातवे) पान करने के लिये (गृभायत) उसको ग्रहण करो, उसका साक्षात् करो।

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥८॥

भा०—(संशिश्वरीः) गौएं (वत्सम् इव) बछड़े को देखकर जिस प्रकार हंभारती हैं उसी प्रकार (तत्) उस आत्मा को लक्ष्य करके (आपः) समस्त प्राण एवं समस्त 'आप्त' या ब्रह्मपद प्राप्त विद्वान् एवं समस्त ज्ञानवाणी और कर्मपद्धतियां भी (अभि अनूषत) उसी की साक्षात् स्तुति करते हैं। (इन्द्रः अपात्) जीवात्मा उसी के रस का पान करता है, (अग्निः अपात्) अग्रणी ज्ञानी पुरुष भी उसी का पान करता है। (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान्-गण (अमत्सत) उसी में तृप्त होते हैं। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ वरण योग्य आत्मा भी (इह क्षयत् इत्) इसी में स्थिर निवास करता है।

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ ९ ॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ आत्मन् ! तू (सुदेवः असि) सर्वश्रेष्ठ देव, एवं उत्तम सुख और कल्याण का देनेहारा (असि) है। (यस्य ते) जिस तेरे (सप्त सिन्धवः) सातों शिरोगत प्राण (सुषिराम् इव) एक धारा के समान होकर (काकुदम्) तालु के प्रति (अनुक्षरन्ति) प्रवाहित होते हैं। योगाभ्यासी के सातों प्राणों का रस तालु से अमृतरूप से द्रवित होता है। मानो सात धाराएं एक धारा होकर बहती हैं।

यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्को नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो योगाभ्यासी पुरुष (व्यतीन्) विविध विषयों में जाने वाले, (सु-युक्तान्) उत्तम रीति से सन्मार्ग में लगाये गये इन्द्रिय रूप प्राणों को, (दाशुषे) यज्ञशील आत्मा को प्राप्त करने के लिये (उप अफाणयत्) उसके प्रति पहुंचाता है, उनको वश कर भीतर की तरफ ही एकाग्र कर लेता है, वह (तक्कः) कृच्छ्र तपस्वी (नेता) नायक के समान होकर, (यः उपमा) जब उसका साक्षात् ज्ञान कर लेता है (तत् इत्) तब ही (वपुः अमुच्यत) वह इस शरीर-बन्धन से मुक्त हो जाता है ।

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ ११ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह आत्मा या योगाभ्यासी पुरुष (शक्रः) शक्तिमान् होकर (विश्वाः द्विषः अति) समस्त रागादि शत्रुओं को (अति ओहते इत् उ) अतिक्रमण करके समस्त दुःखों के पार पहुँच जाता है और वह (कनीनः) अति कमनीय (परः) तथा समस्त इन्द्रियगण और मन से भी परे विद्यमान रहकर, (पच्यमानम् ओदनम्) परिपक्व होने वाले भात के समान भोग्य ब्रह्मरूप को (गिरा) ओंकार-रूप नाद द्वारा (भिनत्) भेद लेता, उसे प्राप्त हो जाता है ।

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १२ ॥

भा०—(कुमारकः न) नौ जवान बच्चा जिस प्रकार नये रथ पर चढ़कर वीरता से जाता और मृग तथा महिष को पकड़ कर वश करता और मां बाप के हर्ष का हेतु होता है, उसी प्रकार वह योगाभ्यासी भी (अर्भकः) अति सूक्ष्म शरीर होकर, (नवं रथं अधि तिष्ठन्) नये रथरूप देह पर आरूढ होकर, (विभु-क्रतुम्) विभु तथा क्रियाशील सबके

खोजने योग्य, (महिषं) तथा महादानी परमेश्वर को (पित्रे मात्रे) पिता के पद पर (यक्षत) स्वीकार कर लेता है ।

पक्ष परिग्रहे । भ्वादिः ।

आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययंम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसंम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (सुशिप्र) उत्तम सुख वाले पति और पत्नी ! तुम दोनों हितकारी और रमणीय गृहस्थ-रथ पर आरूढ़ हो और संकल्प करो कि हम दोनों (सहस्रपादम्) सहस्रों पादों से युक्त, (अरुषम्) तेजोमय, (स्वस्तिगाम्) सुख तथा कल्याण प्राप्त कराने वाले, (अनेहसम्) पापरहित, (द्युक्षम्) तथा द्युलोक में निवास करने वाले ब्रह्म को (सचेवहि) प्राप्त करेंगे ।

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १४ ॥

भा०—(सु-धितम्) उत्तम रूप से सुरक्षित (अर्थम् चित) परम पुरुषार्थ की (एतवे) प्राप्ति के लिये, उपासक लोग, (दावने) आत्म समर्पण के निमित्त (यत्) जब (आवर्त्तयन्ति) पुनः २ ज्ञान और कर्म का अभ्यास करते हैं, तब ही (नमस्विनः) नमस्कार करने वाले उपासक जन, (तं घ ईम्) उस (स्वराजम्) स्वतःप्रकाशमान परमेश्वर की ही (इत्था) इस प्रकार सत्यरूप में (उप आसते) उपासना करते हैं ।

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १५ ॥

भा०—(प्रियमेधासः) ब्रह्मज्ञान के प्रिय, (हित-प्रयसः) ज्ञान को प्राप्त करने वाले, (पूर्वाम् प्रयतिम् अनु) अपने पूर्वजन्म के किये उत्कृष्ट यत्न के अनुकूल (वृक्तबर्हिषः) अध्यात्मयज्ञ में प्राणों का नियमन करने वाले साधकजन, (एषाम्) इनमें से सबसे (प्रत्नस्य ओकसः) पुरातन

आश्रय रूप परम ब्रह्म का ही (अनु आशत) निरन्तर उपभोग करते हैं, उसमें रमते हैं।

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो (चर्षणीनां राजा) मनुष्यों के बीच में राजा के समान (चर्षणीनां) दर्शनशील इन्द्रियों के बीच (राजा) ज्ञान से प्रकाशित एवं उनका प्रकाशक है, (अध्रिगुः) जो अस्थिर इन्द्रियों से युक्त होकर (रथेभिः याता) रमणकारी देहों से जीवनपथ पर यात्रा करने वाला है और (यः) जो (तरुता) समस्त आभ्यन्तर शत्रुरूप वासनाओं का नाशक और (ज्येष्ठ) स्वयं सबसे श्रेष्ठ और (वृत्रहा) आवरणकारी अज्ञान का नाशक है, उसका मैं (गृणे) उपदेश करता हूँ।

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ १७ ॥

भा०—(पुरुहन्म) हे बहुत कष्टों के नाशक विद्वन्! (यस्य) जिसके (विधर्तरि) विविध उपायों से धारण करने हारे स्वरूप में (अवसे) संसार के रक्षण के लिये (द्विता) निग्रह-अनुग्रह रूप दो प्रकार हैं, (तं) उस (इन्द्रं) परमेश्वर के (शुम्भ) गुणों को वर्णन कर। (यस्य वज्रः) जिसका कि वीर्य (हस्ताय) दुष्टों का हनन करने के लिये, (दिवे सूर्यः न) आकाश में सूर्य के समान (महः दर्शतः) बड़ा दर्शनीय है (प्रति धायि) वह प्रत्येक पदार्थ में स्थित है।

नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम्।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥ १८ ॥

भा०—(यः) जो (सदा वृधम्) सदा बढ़ने वाले, (विश्वगूर्तम्) सर्वस्तुत्य, (ऋभ्वसम्) महान्, (धृष्ण्वोजसम्) धर्षणशील पराक्रम वाले, (अधृष्टं) कभी न हारे हुए, ऐश्वर्यवान् आत्मा को (चकार) साधता

है, (तम्) उसके पद को (नकिः) कोई भी न (कर्मणा नशत्) कर्म से प्राप्त करता है और (न यज्ञैः) न यज्ञों से ही कोई उसके पद तक पहुँचता है।

अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ १९ ॥

भा०—(यस्मिन् जायमाने) जिनके प्रकट होने पर वेद वाणियां (अषाल्हम्) उस पराक्रमी, (उग्रम्) सदा बलवान्, (पृतनासु सासहिम्) अन्तः-शत्रु सेनाओं पर विजय करने वाले परमेश्वर की (सं अनोनवुः) मिलकर स्तुति करती हैं उसी परमेश्वर की स्तुतियां (महाः द्यावः) बड़े २ सूर्य भी कर रहे हैं, (महीः क्षामः) तथा बड़ी पृथिवियां (उरुज्रयः) भी कर रही हैं।

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ २० ॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २१ ॥

भा०—(२०, २१) दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व २० । ८१ । १ ॥

[९३] ईश्वर स्तुति

१–३ प्रगाथः ऋषिः। ४–८ देवजामय इन्द्रमातरः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। अष्टर्चं सूक्तम् ॥

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) अखण्ड बलवीर्यवन् ! (त्वा) तुझको (स्तोमाः) स्तुतिसमूह और स्तुतिकर्ता जन (उत् मदन्तु) उत्तम रीति से हर्षित

करें । तू (राधः कृणुष्व) अन्न और ज्ञान भक्ति आदि ऐश्वर्य प्रदान कर । (ब्रह्म-द्विषः) ब्रह्म, वेद और वेदज्ञ विद्वानों से द्वेष करने वाले पुरुषों का (अव जहि) नाश कर ।

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

भा०—(अराधसः) आराधना से रहित (पणीन्) केवल लोक व्यवहार में चतुर, लोभी पुरुष को तू (पदा) पैर से (नि बाधस्व) पीड़ित कर । तू (महान् असि) महान् है । (त्वा प्रति) तेरे मुकाबले पर (नहि कः चन) कोई भी नहीं है ।

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (सुतानाम्) उत्पन्न और (असुतानाम्) अनुत्पन्न सभी का (त्वम्) तू (ईशिषे) स्वामी है । (त्वम्) तू (जनानाम्) समस्त जनों का (राजा) राजा है ।

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
भेजानासः सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

भा०—(सुवीर्यम् भेजानासः) उत्तम वीर्यवान् , परम बलस्वरूप परमेश्वर का (भेजानासः) भजन करती हुईं, (अपस्युवः) ज्ञान और कर्म का लाभ चाहती हुई (ईङ्खयन्तीः) इस परमेश्वर की शरण में जाती हुईं प्रजाएं (जातम्) हृदय में प्रकट हुए (इन्द्रम्) परमेश्वर की (उपासते) उपासना करती हैं ।

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं वृषन् वृषेदसि ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर (अधि जातः) अधिक गुणवान्, वीर्यवान् और पराक्रमी रूप से प्रकट होता है । हे (वृषन्) सुखों के वर्षक ! (त्वं)

तू (वृषा इव असि) साक्षात् मेघ के समान आनन्द-घन होकर आनन्द की वर्षा करता है।

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यु१न्तरिक्षमतिरः।
उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (वृत्रहा) आवरणकारी शक्तियों का नाशक है। (अन्तरिक्षम्) तू हृदयाकाश को (वि अतिरः) विशेष रूप से व्याप लेता है और (ओजसा) अपके पराक्रम से समस्त (द्याम्) तेजोमय शक्ति को थामे हुए है।

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः।
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (स-जोषसम्) सेवनीय गुणों से युक्त (अर्कम्) अपने अर्चनीय स्वरूप को (बाह्वोः) बाहु सदृश अपने ज्ञान और कर्म के द्वारा (बिभर्षि) धारण करता है और (ओजसा) अपने वीर्य पराक्रम से (वज्रं शिशानः) ज्ञानरूप वज्र को और भी तीक्ष्ण करता है।

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा।
स विश्वा भुव आभवः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (ओजसा) अपने पराक्रम से (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न लोकों का (अभिभूः) अभिभावक, रक्षक (असि) है। (सः) वह तू (विश्वाः भुवः) समस्त भूमियों को (आ अभवः) सब प्रकार से प्राप्त है।

[९४] राजा, आत्मा और परमेश्वर

आंगिरसः कृष्ण ऋषिः। १-३, १०, ११ त्रिष्टुभः। ४-९ जगत्यः। एकादशर्चं सूक्तम्॥

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान्।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आत्मा ! राजा ! (धर्मणा) अपने धारण करने वाले सामर्थ्य से (तूतुजानः) सर्वत्र व्यापक, (तुविष्मान्) महान् सामर्थ्यवान् है, जो (अपारेण) अनन्त, (वृष्ण्येन) बल से (विश्वा सहांसि) समस्त बलों को (अति) पार करके उनको (प्र-त्वक्षाणः) उत्तम रीति से गढ़ता या बनाता है, वह (स्व-पतिः) समस्त धनों का स्वामी (मदाय) परमानन्द प्रदान करने के लिये (आ-यातु) हमें साक्षात् प्राप्त हो ।

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥

भा०—हे (नृपते) राजन् ! (ते रथः) तेरा रथ (सु-स्थामा) उत्तम रीति से युद्ध में स्थिर रहने वाला हो । (ते हरी सु-यमा) तेरे घोड़े उत्तम रीति से नियम में रहने वाले हों । (ते गभस्तौ) तेरे हाथ में (वज्रः) खड्ग (मिम्यक्ष) वर्तमान रहे । तू (सु-पथा) उत्तम मार्ग से (शीभम्) शीघ्र वेग से (अर्वाङ् याहि) सम्मुख प्रयाण कर । हे (राजन्) तेजस्विन् ! (पपुषः) राष्ट्र के नित्य पालन करने वाले (ते) तेरे (वृष्ण्यानि) बलों को हम (वर्धाम) बढ़ावें ।

अध्यात्म में—हे आत्मन् ! तेरा देहरूप रथ सदा सुख से स्थिर रहे । तेरे प्राण उदान रूप घोड़े उत्तम रूप से नियम में रहें । (गभस्तौ) हाथ में सदा ज्ञानरूप वज्र रहे । तू उत्तम मार्ग से आगे बढ़ । पालनकारी एवं आनन्दरस के पान कराने वाले तेरे बलों को हम बढ़ावें ।

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥

भा०—(वज्र-बाहुम्) खड्ग को हाथ में लिये, (उग्रम्) अति बलवान्, (प्र-त्वक्षसम्) शत्रुबलों के नाशक, (सत्य-शुष्मम्) सत्य बल वाले, (वृषभम्) सुखों के वर्षक, (नृ-पतिम्) मनुष्यों के पालक

राजा को, (उग्रासः) अति बलवान् (तविषासः) बड़े २ (सध-मादः) एक साथ आनन्द लाभ करने वाले (अस्मत्रा ईम्) हममें से (इन्द्र-वाहः) राजा के कार्य को वहन करने या सञ्चालन करने में समर्थ योग्य पुरुष, (आ वहन्तु) राज्यकार्य में संचालित करें।

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४॥

भा०—हे राजन् ! (एवा) इस प्रकार तू (पतिम्) अपने पालक, (द्रोण-साचम्) राष्ट्र में विद्यमान, (सचेतसम्) ज्ञानवान्, (ऊर्ज-स्कम्भम्) बलों के स्तम्भन करने वाले प्रजाजन को अपने (धरुणे) धारण पोषण करने वाले शासन में (आ वृषायसे) प्रेम से चाहता है । तू (ओजः) पराक्रम (कृण्व) सम्पादन कर । (त्वे अपि) अपने में ही तू (सं गृभाय) राष्ट्र के समस्त कार्यों को संग्रह कर (यथा) जिससे तू (केनिपानाम्) बड़े २ ज्ञानी पुरुषों की (वृधे) वृद्धि के लिये (इनः असः) उनका राजा बनकर रह ।

अध्यात्म में—(द्रोणसाचम्) देहरूप घर में व्यापक, (सचेतसम्) चेतनावान्, (ऊर्ज-स्कम्भम्) बल के धारक, (पतिम्) पालक प्राण को हे आत्मन् ! तू (धरुणे) अपने धारक प्रयत्न में (आ वृषायसे) रखता है । तू (ओजः कृष्व) बल सम्पादन कर, (त्वे अभि सं गृभाय) अपने में संचित कर, (यथा) जिससे (केनिपानाम्) सुखमय आत्मा के परम रस को पान करने वाले अथवा सुखमय परब्रह्म तक पहुँचने वाले अध्यात्म ज्ञानियों का भी (इनः असः) स्वामी हो ।

'केनिपानाम्' केनिप इति मेधाविनाम । के-नि शब्दयोरुपपदयोः पततेः पातेर्वा डः । के आत्मनि सुखमये परे ब्रह्मणि नि पतन्ति गच्छन्ति पान्ति या रसं इति केनिपाः ।

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५

भा०—(अस्मे) हमें (वसूनि) नाना ऐश्वर्य (आगमन्) प्राप्त हों। मैं (हि) तेरी ही (ईळिषे) स्तुति करता हूँ । तू (सोमिनः) सोम रस से यज्ञ करने वाले पुरुष के (सु आशिषं) उत्तम आशा जनक (भरम्) यज्ञ को (आ याहि) प्राप्त हो । (त्वम् ईशिषे) तू सबका स्वामी है । (सः) वह तू (अस्मिन् बर्हिषि) इस महान् यज्ञ में इस आसन पर (आ सत्सि) आ विराज ! (तव पात्राणि) धारण बल द्वारा तेरे पालन सामर्थ्य (अनाधृष्या) शत्रुओं से विजय किये नहीं जा सकते ।

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥

भा०—(प्रथमाः) श्रेष्ठ, (देव-हूतयः) परमेश्वर के उपासक अथवा इन्द्रियों को वश करने हारे पुरुष, जो (दुस्तरा) अपार (श्रवस्यानि) ज्ञानैश्वर्यों और यशों को (अकृण्वत) प्राप्त करते हैं, (ते) वे (पृथक्) सबसे अधिक (प्रायन्) उत्कृष्ट मार्ग पर गमन करते हैं और (ये) जो (नावम्) संसार से पार होने के साधनरूप (यज्ञियाम्) यज्ञ, आत्मा, परमात्मा सम्बन्धी नौका पर (आरुहम्) चढ़ने में (न शेकुः) समर्थ नहीं होते (ते) वे (केपयः) कुत्सित आचरण वाले, भ्रष्टाचर होकर (ईर्मा एव) मानो ऋणी से जैसे, (नि अविशन्त) नीचे ही नीचे डूबते जाते हैं ।

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥

भा०—(एव-एव) इसी प्रकार (अपरे) दूसरे लोग (येषां) जिनके (दुर्-युजः) कष्ट से योगमार्ग में एकाग्र होने वाले (अश्वाः) अजित इन्द्रिय (आ युयुज्रे) इधर उधर के विषयों में लग जाते हैं वे (अपाक्) नीचे की ओर जाने वाले (दूढ्या सन्तु) दुष्ट बुद्धि वाले हो जाते हैं । (इत्था) इस प्रकार (ये) जो (उ परे) उत्कृष्ट मार्ग में (प्राक्) उत्तम दिशा में (दावने) सर्व दुःखनाशक और समस्त सुखदायक परमेश्वर के निमित्त (सन्ति) हो

जाते हैं, (यत्र) जहां (पुरूणि) बहुत से (वयुनानि) ज्ञान और (भोजना) बहुत से नाना भोगफल प्राप्त होते हैं, वे कृतकृत्य होते हैं।

गिरीँरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत्।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ८

भा०—वह परमेश्वर (रेजमानान्) निरन्तर चलने वाले, (अज्रान्) कांपने वाले (गिरीन्) मेघों और पर्वतों को (अधारयत्) स्थिर करता, धारण करता है। (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य को चमकाता (क्रन्दत्) और (अन्तरिक्षाणि) अन्तरिक्षस्थ विद्युत्, मेघ आदि नाना पदार्थों को (कोपयत्) बड़े वेग से चला रहा है। (समीचीने) वह परस्पर संगत हुए (धिषणे) सब पदार्थों के आश्रय, द्यौ और पृथिवी दोनों को भी (वि ष्कभायति) विशेष रूप से थामे हुए है। वह (वृष्णः) आनन्द रसों के वर्षण करने वाले ज्ञानों, बलों और लोकों को (पीत्वा) अपने भीतर विलीन करके (मदे) अति आनन्द में (उक्थानि) ज्ञान-वचनों का भी (शंसति) उपदेश करता है।

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥९॥

भा०—हे परमेश्वर! मैं (ते) तेरे बनाये या दिये (सुकृतम्) पुण्याचरण रूप या उत्तम रीति से साधित (अंकुशम्) प्रेरक बल या ज्ञान को अपने ऊपर शासक के रूप में (बिभर्मि) धारण करता हूँ। (येन) जिससे हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (शफारुजः) निन्दा वचनों से हृदय को पीड़ा देने वाले दुष्ट पुरुषों को भी (आ रुजासि) पीड़ित करता है। (ते) तेरे (अस्मिन् सवने) तेरे इस महान् ऐश्वर्य या शासन में हमारा (ओक्यम्) निवास (सु अस्तु) उत्तम रीति से हो और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (आ-भगः) सब प्रकार से सेवन करने योग्य तू (सुते इष्टौ)

उपासनारूप यज्ञ के सम्पादन करने के अवसर में (बोधि) हमारे अभिप्राय और स्तुति को जान ।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥

भा०—(१०, ११) दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० २० । ८९ । १०, ११ ॥

[६०]

१ गृत्समद ऋषिः । २–४ सुदाः पैजवनः । १ अष्टिः । ३–४ शक्वर्यौ ।
इन्द्रो देवता । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् । स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

भा०—(महिषः) महान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आत्मा, (तृपत्) आनन्द रस से तृप्त होकर, (विष्णुना) व्यापक परमेश्वर के संग से (सुतं सोमम् अपिबत्) प्राप्त ब्रह्मानन्द रस का पान करता है । (सः) वह ब्रह्मरस (महाम् उरुम्) उस महान् (ईम्) योगी पुरुष को (महि कर्म कर्त्तवे ममाद) महान् २ कर्म करने के लिये समर्थ करता है । (सः देवः सत्यः इन्दुः) वह तेजस्वी सत्यस्वरूप परमेश्वर (देवं सत्यम् एवं इन्द्रः सश्चत्) प्रकाशमान तथा ऐश्वर्यवान् इस आत्मा को ही प्राप्त होता है ।

राजा के पक्ष में—(त्रि-कद्रुकेषु) तीनों लोकों में (महिषः तुविशुष्मः) सर्वश्रेष्ठ, बड़ा बलवान् राजा, (विष्णुना) अपने व्यापक बलसामर्थ्य से (यवाशिरं) शत्रुनाशक सेनापतियों पर आश्रित (सुतम्) ऐश्वर्यजनक

(सोमम्) राष्ट्र का (अपिबत्) भोग करता है । वह राष्ट्ररूप ऐश्वर्य (महाम् उरुम्) उस महान् विस्तृत बल वाले राजा को (महि कर्म कर्त्तवे ममाद) बड़े २ कार्य करने के लिये प्रेरित करता है। (सत्य देवः इन्दुः सः) सत्य न्याय के बल वाला, वह राष्ट्र (सत्यं देवं इन्द्रं) सत्य-कर्मा, न्यायी, विजयी, ऐश्वर्यवान् राजा को (सश्चत्) प्राप्त होता है।

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत। अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा के प्रति (पुरोरथम्) रथों के समेत (शूषम्) बल (प्रो सुअर्चत) प्रदान करो। (अभीके) भय रहित (संगे) परस्पर के मेल मिलाप में (लोककृत्) लोकों का उपकार करने वाला और (समत्सु वृत्रहा) संग्रामों के अवसरों में शत्रुओं का नाश करने वाला होकर, (अस्माकं चोदिता) हमें न्यायपथ में लेजाने हारा, तथा हमारा हित (बोधि) जानने वाला है। (अन्यकेषां) उसके होते हमारे शत्रुओं के (धन्वसु अधि) धनुषों पर (ज्याकाः) डोरियें (नभन्ताम्) टूट जायँ।

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभ० ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वं) तू (सिन्धून्) नदों नदों के (अधराचः) नीचे जाने वाला (अवासृजः) बनाता है और (अहिम्) कुटिलाचारी पुरुष का (अहन्) तू नाश करता है। तू (अशत्रुः) शत्रुरहित (जज्ञिषे) जाना जाता है। तू (विश्वं वार्यम्) समस्त वरने योग्य ऐश्वर्य को (पुष्यसि) पुष्ट करता है । (तं त्वा) उस तुझको हम (परि ष्वजामहे) सब प्रकार से अपनाते हैं। (नभन्ताम्० इत्यादि) पूर्ववत्।

राजा के पक्ष में—(सिन्धून्) अतिवेग से जाने वाले सेनादलों को अपने अधीन रखकर चलाता है। शत्रु का नाश करता है। तू शत्रुरहित

जाना जाता है। समस्त ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, हम प्रजाजन तेरा आश्रय लेते हैं।

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥

भा०—(विश्वाः) समस्त (अर्यः) चढ़ाई करने वाले, तथा (अरातयः) कर आदि न देने वाले शत्रुजन (सु वि नशन्त) अच्छी प्रकार नष्ट हों। (नः धियः) हमारी स्तुतियां तुझे प्राप्त हों। हे शत्रुनाशक ! (नः यः जिघांसति) हमें जो मारना चाहता है उस (शत्रवे) शत्रु को नाश करने के लिये तू (वधं अस्तासि) वधकारी शस्त्र का प्रयोग करता है और (या) जो (ते) तेरा (रातिः) दानशील हाथ है वह (वसु ददिः) ऐश्वर्य प्रदान करता है। (नभन्ताम्० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

[९६]

१–५ पूरणो वैश्वामित्रः। ६–१० यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः। ११–१६ रक्षोहा ब्राह्मः। १७–२३ विवृहा काश्यपः। २४ प्रचेताः॥ १–५ इन्द्रो देवता। ६–१० राजयक्ष्मघ्नम्। ११–१६ गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तम्। १७–२५ यक्ष्मघ्नम्। २४ दुःस्वप्नघ्नम्। ११–१० त्रिष्टुभः। ११–२४ अनुष्टुभः। चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च। इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशील जीवात्मन् ! (तीव्रस्य) तीव्र तथा (अभि वयसः) योग्य कर्म-फलों से युक्त (अस्य) इस आनन्द-रस को (पाहि) स्वीकार कर। (सर्वरथा) समस्त रमण योग्य देहों में विद्यमान (हरी) हरणशील अश्वों के समान प्राण और अपान दोनों को (इह) इस ज्ञान की दशा में (वि मुञ्च) त्याग दे। हे (इन्द्र) आत्मन् ! (त्वा) तुझको (अन्ये यजमानासः) दूसरे मार्ग पर लेजाने वाले, संगकारी विषयगण

(मा नि रीरमन्) प्रलोभन में न फांस लें, (इमे) ये (सुतासः) उत्पन्न आभ्यन्तर आनन्दरस (तुभ्यम्) तेरे ही लिये हैं।

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वांसुस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमुद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) जीवात्मन्! (सुताः) उत्पन्न पदार्थ (तुभ्यम् उ) तेरे उपभोग के लिये ही हैं। (सोत्वासः) उत्पन्न होने वाले पदार्थ भी (तुभ्यम्) तेरे लिये ही हैं। (श्वात्र्याः) अति शुभ्र, सुस्पष्ट (गिरः) वेद वाणियां भी (त्वां आह्वयन्ति) तुझे ही लक्ष्य करके पुकारती हैं। हे (इन्द्र) आत्मन्! (अद्य) आज (इदं) इस (सवनम्) उपासना को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ तू (विश्वस्य विद्वान्) संसार का ज्ञाता होकर (सोमम्) आत्मानन्द रस का (इह) इस लोक में (पाहि) पान कर।

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३॥

भा०—(यः) जो पुरुष (उशता) अभिलाषा वाले (मनसा) मन से (सर्व-हृदा) पूर्ण हृदय से (देव-कामः) उपास्यदेव की प्राप्ति की इच्छा करता हुआ (अस्मै) इसके साक्षात् के लिये (सोमम् सुनोति) ब्रह्मानन्द रस का निष्पादन करता है, (इन्द्रः) परमात्मा (तस्य) उस पुरुष के (गाः) प्राप्त होने योग्य ज्ञानेन्द्रियों और वाणियों या शक्तियों को (न परा ददाति) विनष्ट नहीं होने देता। प्रत्युत (अस्मै) उसके लिये (चारुम्) सर्वश्रेष्ठ (प्रशस्तम् इत्) उत्तम उत्तम फल ही (कृणोति) उत्पन्न करता है।

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४॥

भा०—(यः) जो पुरुष (रेवान्) विभूतिमान होकर (अस्मै) इस आत्मा के लिये (सोमम्) ब्रह्मरस का (सुनोति) सवन करता है, ब्रह्मध्यान का अभ्यास करता है, (अस्य) उसको (एषः) यह आत्मा

(अनुस्पष्टः भवति) साक्षात् हो जाता है । (मघवा) वह ऐश्वर्यवान् आत्मा (तम्) उस अभ्यासी पुरुष को (अरत्नौ) अपने हाथ में (निर् दधाति) स्थापित करता है और (अनानुदिष्टः) बिना प्रार्थना किये (ब्रह्मद्विषः) उस महान् ब्रह्म से प्रेम न करने वाले मानस दुर्व्यापारों का (हन्ति) विनाश कर देता है ।

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उं ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् आत्मन् ! (त्वा उपगन्तवा उ) तुझे प्राप्त होने के लिये (अश्वायन्तः) हम बलवान् प्राणों या कर्मेन्द्रियों को चाहते हुए, (गव्यन्तः) ज्ञान इन्द्रियों और ज्ञानवाणियों को चाहते हुए और (वाजयन्तः) अन्न या ऐश्वर्य, ज्ञान-समृद्धि चाहते हुए, (त्वा हवामहे) तेरा स्मरण करते हैं । (वयम्) हम (आभूषन्तः) तेरी स्तुति करते हुए (ते) तेरी (नवानां सुमतौ) स्तुतियोग्य शुभ मति में रहते हुए (शुनम्) अति सुखस्वरूप (त्वा) तुझे (हुवेम) स्मरण करें ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ ६ ॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥ ७ ॥

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥८॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ९ ॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ १० ॥

भा०—(६–९) इन चार मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० ३ । ११ । १—४ ॥ मन्त्र १० की व्याख्या देखो अथर्व० ८।१।२०॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥

भा०—(रक्षोहा अग्निः) राक्षसों अर्थात् रोगजनक जीवों का नाशक ज्ञानवान् पुरुष (ब्रह्मणा संविदानः) ब्रह्मवेद और वेदज्ञ विद्वान् के साथ सहमति करके, (यः दुर्णामा) उस दुष्ट स्वभाव वाले रोग को (ते) जो कि तेरे (गर्भम्) गर्भ (योनिम्) और योनि में (आ-शये) बैठा है, (इतः) यहां से (बाधताम्) दूर करे ॥ ११ ॥ (यः ते गर्भं इत्यादि) पूर्ववत् । वह (अग्निः) तेजस्वी (ब्रह्मणा सह) ज्ञानबल के साथ (तं क्रव्यादम्) उस कच्चा मांस खाने वाले पीड़ाकारी रोग या दुष्ट पुरुष को (निः अनीनशत्) सर्वथा नष्ट करे ।

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥

भा०—हे स्त्री ! (ते) तेरे गर्भाशय में (पतयन्तम्) वीर्यरूप से निषिक्त होते हुए और (निषत्स्नुम्) गर्भाशय में जमते हुए और (सरीसृपम्) उसी में गति करते हुए और (जातम्) उत्पन्न हुए बालक को (यः ३) जो २ दुष्ट कीटाणु या पुरुष (हन्ति) नाश करता है और (यः) जो (जातम्) उत्पन्न हुए शिशु को (जिघांसति) मार देना चाहता है, (तम्) उसको (इतः) इस राष्ट्र और देह से हम (नाशयामसि) नष्ट करदें ।

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेढि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥

भा०—हे स्त्री (यः) जो दुष्ट रोग या पुरुष (ते ऊरू) तेरे जांघों को (वि हरति) पृथक् करता है, उनका भोग करता है, (दम्पती अन्तरा) तथा पति पत्नि दोनों के बीच तीसरा होकर (शये) तेरे साथ सोता है, और (यः) जो (योनिम् अन्तः) गर्भाशय में प्रविष्ट होकर उसका (आरेह्लि) विनाश करता है, (तत्) उसको (इतः) यहां से (नाशयामसि) दूर भगावें।

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥

भा०—हे स्त्री (यः) जो दुष्ट पुरुष, (भ्राता) भाई या (पतिः) पति के समान होकर, या (जारः भूत्वा भूत्वा) व्यभिचारी पुष्ट होकर, (त्वा निपद्यते) तेरा भोग करता है और ऐसा करके (ते यः प्रजां) तेरी सन्तति का (जिघांसति) नाश करता है, (तम्) उसको (इतः) हम यहां से (नाशयामसि) मार भगावें।

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥

भा०—हे स्त्री ! (यः) जो (त्वा) तुझको (स्वप्नेन) निद्रा (तमसा) या अन्धकार में (मोहयित्वा) मोह करके (त्वा निपद्यते) तेरा भोग करे और इस प्रकार (यः) जो (ते प्रजां जिघांसति) तेरी सन्तति का नाश करना चाहे, (तम् इतः नाशयामसि) उसको यहां से दूर करें।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यं मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम्।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ १९ ॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ २० ॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं॑ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥२१॥

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं॑ ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥ २३ ॥

भा०—(१७–२३) इन मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० २ २३ । १७ ॥

अपेहि मनसस्पतेप काम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४ ॥

भा०—हे (मनसः पते) मन को नीचे गिराने वाले दुष्ट विचार ! एवं दुःस्वप्न ! तू (अपेहि) दूर हो । (अप क्राम) परे हट, (परः चर) परे चला जा । (निर्ऋत्यै) दुष्ट पापप्रवृत्ति को भी (परः) दूर (आ चक्ष्व) कर । क्योंकि (जीवनः) जीवनधारी पुरुष का (मनः) मन (बहुधा) बहुत प्रकार के विषयों में लग जाता है । इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

[९७] राजा आत्मा

कलिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहत्यः । तृचं सूक्तम् ॥

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (ह्यः) गये दिन और (इदा) इस दिन

(एनम् वज्रिणम्) इस वीर्यवान् पुरुष को (इह) इस राष्ट्र में (अपीपेम) पुष्ट करें और (अद्य) आज (तस्मै उ) उसको ही (समना) संग्राम के लिये (सुतं) ऐश्वर्य (भर) प्राप्त करा । (नूनं) निश्चय से वह (श्रुते) हमारी प्रार्थना सुनने पर (आ भूषत) आ जाता है ।

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥२॥

भा०—(उरामथिः) भेड़ों के नाश करने वाले (वृकः चित) भेड़िये के समान स्वभाव वाला दुष्ट पुरुष और (वारणः) हस्ति के समान मदमत्त बलवान् पुरुष भी, (अस्य वयुनेषु) इसके उत्कृष्ट ज्ञान और मार्गों में (आ भूषति) उसके अनुकूल हो जाता है । हे (इन्द्र) राजन् ! तू (नः) हमारे (इमं स्तोमं) इस स्तुतिसमूह को (जुजुषाणः) प्रेम से सुनता हुआ (चित्रया धिया) सबको चेताने वाली अपनी बुद्धि और कार्यशैली से (नः प्र आगहि) हमें भली प्रकार प्राप्त हो ।

कदु न्व१ स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य इन्द्रस्य) इस शत्रुहन्ता राजा का (कद् उ नु पौंस्यम्) कौनसा शौर्य का काम (अकृतम् अस्ति) नहीं किया गया है ? और (केन नु श्रोमतेन) किस श्रवण करने योग्य आश्चर्यजनक कार्य से (न शुश्रुवे कम्) उसकी ख्याति नहीं सुनी जाती ? वह तो (जनुषः परि) जन्म से ही (वृत्रहा) विघ्नकारी शत्रुओं का नाशक है ।

[९८] राजा के कर्तव्य

शंयुर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रगाथः द्व्यृचं सूक्तम् ॥

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! हम (कारवः) शिल्पी लोग (वाजस्य सातौ) अन्न और शक्ति के लाभ के लिये (त्वाम् इद् हि) तुझको ही (हवामहे) बुलाते हैं। (नरः) नेता लोग भी (वृत्रेषु) शत्रुओं के आ चढ़ने पर (सत्पतिम्) सज्जनों के प्रतिपालक (त्वाम्) तुझको ही स्मरण करते हैं। (अर्वतः) घोड़ों या वेगवान् यानों द्वारा जाने लायक (काष्ठाम्) दूर के देशों में भी लोग (त्वां) तुझे ही पुकारते हैं।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २॥

भा०—हे (वज्रहस्त) खड्ग को हाथ में धारण करने हारे। उग्र दण्ड ! हे (अद्रिवः) अमोघ बलवाले ! हे (चित) समस्त राष्ट्र का संचय करने एवं चित्र युद्ध करने में कुशल ! (त्वं) तू (धृष्णुया) शत्रुओं का धर्षण करने में समर्थ होकर (महः स्तवानः) खूब अधिक शक्तिशाली हो। (इन्द्र) हे राजन् ! (नः) हमारे (जिग्युषे) विजयशील पुरुष के प्रति (गाम्) गौ, (अश्वं) अश्व, (रथ्यम्) रथ और (सत्रा) बड़ा भारी (वाजं न) अन्न और ऐश्वर्य (सं किर) अच्छी प्रकार प्रदान कर।

[९९] राजा, सेनापति

मेध्यातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहत्यौ। प्रगाथः। द्व्यृचं सूक्तम् ॥

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (ऋभवः) सत्यज्ञान से प्रकाशित होने वाले विद्वान्गण, (रुद्राः) स्तुतिशील और (आयवः) दीर्घायु वाले, (समीचीनासः) सम्यग्दृष्टि वाले तत्वज्ञानी मनुष्यगण, (पूर्वपीतये) ज्ञान द्वारा तेरे आनन्द को पूर्ण रीति से प्राप्त करने के लिये, (स्तोमेभिः) स्तुति समूहों द्वारा (आ अभि) तुझे ही लक्ष्य करके (सम् अस्वरन्) एकत्र होकर

गाते हैं और (रुद्राः) सत्योपदेष्टा लोग (पूर्व्यम् गृणन्तः) सबसे पूर्व विद्यमान जो तू है उसका ही उपदेश करते हैं ।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥

भा०—(सुतस्य) प्रस्तुत किये अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य के (विष्णवि) व्यापक (मदे) हर्षाधिक्य से ही (इन्द्रः) शत्रुनाशक सेनापति (अस्य इत्) इस राजा के ही (शवः) महान् बल को (वावृधे) बढ़ा देता है । (अस्य) इसकी (तम्) उस (महिमानम्) महिमा को ही (आयवः) मनुष्यगण (पूर्वथा) पूर्व के समान (अद्य) आजतक भी (अनु स्तवन्ति) निरन्तर स्तुति करते हैं ।

[१००] बलवान् राजा और आत्मा

नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिहः । तृचं सूक्तम् ॥

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे ।
उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! (गिर्वणः) स्तुतियों द्वारा भजन करने योग्य ! (अध हि) अब (त्वा) तुझसे हम (महः) बड़े (कामान्) मनोरथों को (उप ससृज्महे) ऐसे प्राप्त हों, (उदा इव) जैसे जल के मार्ग से (यन्तः) जाते हुए पुरुष, (उदभिः) उन जलों से ही नाना काम्य सुखों को प्राप्त करते हैं ।

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (यव्याभिः वाः न) नदियों से जिस प्रकार समुद्र में जल बढ़ते हैं उसी प्रकार हे (अद्रिवः) अमोघ शक्तिमान् ! (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (वावृध्वासं चित्) स्वयं सदा वृद्धिशील होते हुए

श्री (ब्रह्माणि) वेद के मन्त्र (त्वा) तेरी महिमा की (वर्धन्ति) वृद्धि करते हैं।

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥

भा०—(इषिरस्य) आत्मसंकल्प में रमण करने वाले या सर्वप्रेरक आत्मा के (उरु-युगे) बड़े भारी योगबल से युक्त, (उरौ) बड़े भारी (रथे) रमण योग्य स्वरूप में (वचः-युजा) वाणी के द्वारा जुतने वाले, (इन्द्रवाहा) जीवात्मा द्वारा वहन किये जाने वाले (हरी) सदा गतिशील प्राण और अपान को, (गाथया) गुणस्तुति के साथ (युञ्जन्ति) योगीजन युक्त करते हैं, अर्थात् योगाभ्यास द्वारा प्राणों का आयमन करते हैं।

[१०१] विद्वान् राजा

मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्र्यः तृचं सूक्तम् ॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

भा०—हम लोग (अग्निम्) ज्ञानवान्, अग्रणी, (विश्व-वेदसम्) समस्त ऐश्वर्यों से युक्त, सब विद्याओं में पारंगत (होतारं) सब सुखों और ज्ञानों के दाता, (अस्य यज्ञस्य) इस राष्ट्र को (सु-क्रतुम्) उत्तम रीति से करने वाले पुरुष को (दूतम्) दूत या प्रतिनिधि रूप से (वृणीमहे) नियुक्त करते हैं।

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्।
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

भा०—हम (हवीमभिः) स्तुतियों और उत्तम उपायों से (विश्पतिम्) प्रजा के पालक (अग्निम् अग्निं) अग्नि के समान तेजस्वी और ज्ञानवान् (हव्य-वाहन) प्राप्तव्य उद्देश्य तक ले जाने वाले, (पुरु प्रियम्) तथा

सर्वप्रिय, लोकप्रिय पुरुष का (सदा हवन्त) सदा आदर करो, उसे भेंट में उत्तम पदार्थ प्रदान करो।

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे।
असि होता न ईड्यः॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् अग्रणी ! तु (वृक्त-बर्हिषे) बड़े भारी राष्ट्र के लिये (इह) इस सभाभवन में (जज्ञानः) प्रकट होता हुआ, (देवान्) विद्वान् पुरुषों और विजिगीषु पुरुषों को (आ वह) प्राप्त करा। तू (नः) हमारी (ईड्यः) स्तुति के योग्य है, (होता) यज्ञ में होता के समान योग्य पुरुषों को योग्य पदाधिकार देने और उनको स्वीकार करनेहारा है।

[१०२] परमेश्वर राजा

विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम्॥

ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः।
समग्निरिध्यते वृषा॥ १॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, सूर्य के समान (दर्शतः) दर्शनीय ज्ञानवान् पुरुष (तमांसि) अन्धकारों को (तिरः) दूर करता हुआ, (ईडेन्यः) स्तुति योग्य, (वृषा) सुखों का वर्षक और (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य है। वह नित्य (समिध्यते) खूब तेजस्वी होता है।

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः।
तं हविष्मन्त ईडते॥ २॥

भा०—(अश्वः न देव-वाहनः) आनन्दघन और अश्व जिस प्रकार विजिगीषु पुरुषों को युद्ध में ले जाता है उसी प्रकार (देव-वाहनः) विद्वानों को अपने में धारण करने वाला, (समिध्यते) अग्नि के समान तेजस्वी होकर चमकता है। (तं) उसकी (हविष्मन्तीः) साधनों से सम्पन्न पुरुष (ईडते) स्तुति करते हैं।

आत्मा के पक्ष में—देव-वाहनः = इन्द्रियों और उत्तम गुणों का धारक है।

वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि ।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥

भा०—हे (वृषन्) सुखों के वर्धक ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (वयं वृषणः) हम लोग स्वयं बलवान् होकर, (वृषणम्) बलवान् तथा (बृहत् दीद्यतम्) बहुत प्रकाशमान (त्वा) तुझको (सम् इधीमहि) प्रज्वलित करते हैं।

[१०३] परमेश्वर विद्वान् राजा

१, सुदीति पुरुमीह्लौ । १-२ भर्ग ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २ बृहत्यौ । ३ सतो बृहती । तृचं सूक्तम् ॥

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १ ॥

भा०—हे (पुरुमीह्ल) बहुतों को ज्ञान से सेचन करने हारे विद्वान् ! तू (अवसे) रक्षा के लिये (गाथाभिः) वाणियों द्वारा (शीरशोचिषं) व्यापक प्रकाश वाले (अग्निम्) प्रकाशयुक्त परमात्मा को (ईळिष्व) उपासना, स्तुति कर। (श्रुतम्) श्रवण करने योग्य उस (अग्निम्) परमेश्वर की (नरः) सभी पुरुष (राये) ऐश्वर्य के लिये स्तुति करते हैं। (छर्दिः) सबके शरणस्वरूप (अग्निम्) परमेश्वर की (सु-दीतये) उत्तम दीप्ति के प्राप्त करने के लिये तू (गाथाभिः ईळिष्व) वाणियों द्वारा स्तुति कर।

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे राजन् ! तू (अग्निभिः) अन्य विद्वानों और नेताओं के साथ (आयाहि) हमें प्राप्त हो। (होतारं त्वा वृणीमहे)

तुझे सर्वदातारूप से हम वरण करते हैं । (यजिष्ठं त्वाम्) सबसे अधिक दानशील तुझको (प्रयता) उत्तम नियम में (हविष्मती) अन्नादि से समृद्ध (बर्हिः) प्रजा (आसदे) विराजने के लिये (अनक्तु) प्राप्त हो ।

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३ ॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष में—हे (सहसः सूनो) बलों के प्रेरक, (अङ्गिरः) सूर्य के समान तेजस्विन् ! (अध्वरे) यज्ञ में (स्रुचः) घृत से भरे चमसे (त्वा अच्छ चरन्ति) तुझे लक्ष्य करके चलते हैं । हम (ऊर्जः नपातम्) बल के अक्षय भण्डार रूप, (घृत-केशम्) तेजःस्वरूप, (पूर्व्यम्) सबसे पूर्व विद्यमान तुझ (अग्निम्) ज्ञानवान् से (ईमहे) याचना करते हैं ।

[१०४] राजा परमेश्वर

१–२ मेध्यातिथिर्ऋषिः ३–४ नृमेधः । इन्द्रो देवता । प्रगाथौ । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥

भा०—हे (पुरु-वसो) प्रचुर ऐश्वर्य वाले परमेश्वर ! (याः मम इमाः गिरः) जो मेरी ये वाणियां हैं वे (वर्धन्तु) तेरी ही महिमा गावें । (पावकवर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी, (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, (विपश्चितः) मेधावी पुरुष (स्तोमैः) स्तुतिसमूहों से (त्वा अनूषत) तेरी ही स्तुति करते हैं ।

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥

भा०—(सहस्कृतः) बल के उत्पादक (समुद्र इव) तथा समुद्र के समान वर्तमान इस परमेश्वर और राजा को (सहस्रम्) हजारों (ऋषिभिः)

ऋषिगण (पप्रथे) विस्तृत या प्रसिद्ध करते हैं। (अस्य) इसकी (सः) वह विख्यात (महिमा) महिमा और (शवः) बल (यज्ञेषु) राष्ट्र, यज्ञों तथा उपासनाओं में और (विप्रराज्ये) विद्वानों के राज्य में (सत्यः) सत्य जाना गया है। उसकी ही (गृणे) स्तुति की जाती है।

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ ३ ॥

भा०—(हव्यः) स्तुतियोग्य (इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमारी (विश्वासु) समस्त (समत्सु) आनन्द प्रसन्नता की दशाओं में (आ भूषत) प्रकट होवे। वह (वृत्रहा) आवरणकारी अज्ञान का नाशक, (परमज्याः) प्रधान प्रधान बाधक कारणों और बंधनों का नाश करने वाला, (ऋचीषमः) स्तुतियों या वेदमन्त्रों में समान रूप से व्यापक परमेश्वर (ब्रह्माणि) वेदमन्त्रों और (सवमानि) स्तुतियों को (उप भूषत) प्राप्त करे।

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर! (त्वं) तू (राधसाम्) ऐश्वर्यों का (प्रथमः) सबसे प्रथम (दाता असि) दाता है। तू (सत्यः) सत्य कर्म वाला (ईशानकृत् असि) हमारा शासक है। (शवसः पुत्रस्य) अपने बल से सबकी विविध कष्टों से रक्षा करने में समर्थ और (तुवि-द्युम्नस्य) बहुत धनाढ्य जो तू है उससे (वृणीमहे) हम योग्य तेज प्राप्त करें।

[१०५] राजा, सेनापति

नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रगाथः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक! (त्वम्) तू (प्रतूर्तिषु) बड़े बड़े संग्रामों में सम्मुख आये (विश्वाः स्पृधः) समस्त स्पर्धा करने वालों को

(अभि असि) मुकाबले पर आकर पराजित करता है। (त्वं) तू (अशस्तिहा) निन्दकों का नाशक और (जनिता) सुखों का उत्पन्न करने हारा, (तरुष्यतः) हिंसाकारी दुष्ट पुरुषों का (विश्व-तूः) सब प्रकार से नाश करने वाला (असि) है।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक राजन् ! (मातरं शिशुं न) माता और पिता दोनों जिस प्रकार बालक के पीछे चलते हैं उसी प्रकार (तुरयन्तम्) शत्रुओं के नाशक (ते शुष्मम्) तेरे बल के (अनु) पीछे २ (क्षोणीः) शासकवर्ग और प्रजावर्ग (ईयतुः) चलते हैं। (यद्) जब तू (वृत्रं) विघ्नकारी का (तूर्वसि) विनाश करता है तब (विश्वाः स्पृधः) सब स्पर्धा करने वाले शत्रुगण (ते मन्यवे) तेरे क्रोध के आगे (श्नथयन्त) शिथिल हो जाते हैं।

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (अजरम्) कभी क्षीण या निर्बल न होकर विद्यमान, (प्र-हेतारम्) शत्रु को मार भगाने वाले, (अप्रहितम्) कभी पराधीन न हुए, (आशुम्) शीघ्रगामी, (जेतारम्) विजयशील, (हेतारम्) शत्रु का स्वयं नाश करने वाले, (रथीतमम्) रथियों में सर्वश्रेष्ठ, (अतूर्तम्) कभी नष्ट या ताड़ित न होने वाले, (तुग्र्यावृधम्) शत्रु नाशकारी वीर सेनाओं के हितकर बल को बढ़ाने वाले पुरुष को (वः) आप लोग (ऊती) अपनी रक्षा के लिये (इत) प्राप्त होवो, नियुक्त करो।

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ ४ ॥

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवंसे यस्यं द्विता विधर्तरिं ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ ५ ॥

भा०—[४–५] इन दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २० । ९२ । १६, १७ ॥

[१०६] परमेश्वर

गोषूक्त्यसूक्तिनावृषी । इन्द्रो देवता । उष्णिहः । तृचं सूक्तम् ॥

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

भा०—(तव) तेरे (त्यत्) उस (बृहत् इन्द्रियम्) बड़े भारी ऐश्वर्य को और (बृहत् शुष्मम्) बड़े भारी बल को, (बृहत् क्रतुम्) बड़े भारी विज्ञान को और (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ (वज्रः) शत्रुनिवारक और पापनिवारक वीर्य को, (धिषणा) बुद्धि और शुभमति और तेरी स्तुति (शिशाति) अति तीक्ष्ण कर देती है ।

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर (द्यौः) महान् आकाश और तारागण और (पृथिवी) पृथिवी (तव पौंस्यम्) तेरे पौरुष बल और (श्रवः) कीर्ति को (वर्धति) बढ़ाते हैं और (आपः) जल, मेघ, नदी, समुद्र आदि और (पर्वतासः च) पर्वत (त्वां हिन्विरे) तेरी महिमा गा रहे हैं ।

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे ईश्वर ! (बृहन्) बड़ा (विष्णुः) तथा व्यापक सूर्य, (क्षयः) सबका निवास स्थान पृथिवी, (मित्रः) मरण से बचाने वाला अन्न, वायु, जल और (वरुणः) सबको आवरण करने वाला मेघ, आकाश,

(त्वां गृणन्ति) तेरी स्तुति करते हैं और (मारुतं शर्धः) वायु का महान् बल भी (त्वाम् अनु मदति) तेरी ही इच्छानुकूल प्रसन्न होकर चलता है।

[१०७] परमेश्वर

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥

भा०—(समुद्राय सिन्धवः इव) समुद्र को प्राप्त होने के लिये जिस प्रकार नदियें झुकी चली जाती हैं उसी प्रकार (अस्य मन्यवे) इसके ज्ञान को प्राप्त करने के लिये या उसके 'मन्यु' अर्थात् संसार को स्तम्भन करने वाले महान् सामर्थ्य के आगे (विश्वा विशः) समस्त (कृष्टयः) मनुष्य (स नमन्त) आदर से स्वभावतः झुकते हैं।

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत्।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ २ ॥

भा०—(चर्म इव) जिस प्रकार चमड़े या मृगछाला को कोई जन चाहे बिछा देता और चाहे लपेट लेता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (उभे रोदसी) पृथ्वी और आकाश दोनों लोकों को (सम् अवर्तयत) चलाता है (तत्) वह (अस्य) इस परमेश्वर का (ओजः) महान् पराक्रम ही (तित्विषे) चमक रहा है।

वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा।
शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ३ ॥

भा०—(चित्) जिस प्रकार (दोधतः) भय से कंपा देने वाले दुष्ट पुरुष के (शिरः) शिर को राजा (शतपर्वणा) सैकड़ों पोरु वाले (वज्रेण) शस्त्रों से (वि बिभेद) तोड़ डालता है, उसी प्रकार जगत् को कंपाने वाले, (वृत्रस्य) सबको आवरण करने वाले अज्ञान के (शिरः) शिर को, (वृष्णिना) बलवान् (शत-पर्वणा) तथा सैकड़ों सामर्थ्यों वाली (वज्रेण) शक्ति से, (वि बिभेद) छिन्न भिन्न कर देता है।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥४॥
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ ५ ॥
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥६॥
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥७॥
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥८॥
नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥ ९ ॥
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥१०॥
इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥११॥
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥१२॥
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥१३॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१४॥

भा०—(४-१२) ये ९ मन्त्र देखो अथर्व० का० ५। २। १-९॥ और (१३, १४) दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० १३।२।३४,३५॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्॥१५॥

भा०—(सूर्यः) जिस प्रकार सूर्य (देवीम्) प्रकाशमान और (रोचमानाम्) कान्तिमयी, (उषसम्) उषा के (पश्चात्) पीछे २ (अभ्येति) चलता है, (यत्र) उसी प्रकार (नरः) जिस गृहस्थ में गृहस्थी लोग (देवयन्तः) उत्तम गुणों को धारण करते हुए, (भद्राय) भद्र के प्रति भद्रता का व्यवहार करते हैं और जिसमें (युगानि) पुत्र पुत्री रूपी जोड़ों का विस्तार होता है, (मर्यः) वहां मनुष्य भी (देवीम्) उत्तम गुणों से युक्त (रोचमानाम्) चित्त को हरने वाली (योषाम्) स्त्री के (पश्चात्) पीछे २ (अभि एति) चलता है।

[१०८] राजा, परमेश्वर

नुमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ गायत्री। २ ककुप्। ३ पुर उष्णिक्। तृचं सूक्तम्॥

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे।
आ वीरं पृतनाषहम्॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! परमेश्वर! (त्वं) तू (नः) हमें (ओजः) वीर्य, बल, पराक्रम (आ भर) प्रदान कर। हे (शत-क्रतो) सैकड़ों प्रजा वाले! हे (विचर्षणे) विशेष रूप से सबके द्रष्टा! तू हमें (नृम्णम्) धन और (पृतना-सहम्) शत्रुसेना को पराजित करने हारे (वीरम्) वीर्य, या वीरपुरुषों के सैन्य बल को (आ भर) प्रदान कर।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे॥२॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसने हारे! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रजाओं

और बलों से युक्त ! क्योंकि (त्वं हि) तू ही (नः) हमारे (पिता) पिता के समान और (माता) माता के समान (बभूविथ) है, (अधा) इसीसे (ते) तुझसे हम (सुम्नम्) सुख की (ईमहे) याचना करते हैं।

त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतसी प्रजाओं से नित्य पुकारे जाने योग्य! हे (शत-क्रतो) अनन्त प्रज्ञा वाले! हे (शुष्मिन्) बलवान्! (वाजयन्तम्) ऐश्वर्य प्रदान करने वाले (त्वाम्) तेरी मैं (उप ब्रुवे) स्तुति, प्रार्थना करता हूँ। (सः) वह तू (नः) हमें (सु-वीर्यम्) उत्तम वीर्य, बल (रास्व) प्रदान कर।

[१०९] राजा, आत्मा और परमात्मा

गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। ककुभः। तृचं सूक्तम् ॥

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् १

भा०—जिस प्रकार (विषूवतः) व्याप्त तेज वाले सूर्य की (गौर्यः) श्वेत किरणें (स्वाद्वः मध्वः पिबन्ति) सुखप्रद जल का पान करती हैं उसी प्रकार (गौर्यः) पृथ्वी पर रमण करने वाली प्रजाएं (विषूवः) विस्तृत राज्य वाले राजा के अधीन रहकर (स्वादोः) अति मधुर (मध्वः) अन्न और ऐश्वर्य का (पिबन्ति) रस के समान भोग करती हैं। (यः) जो प्रजाएं (वृष्णा इन्द्रेण) बलवान् राजा के साथ (सयावरीः) नित्य गमन करने वाली, (वस्वीः) धनैश्वर्य युक्त, (शोभसे) अपना अधिक ऐश्वर्य-शोभा के लिये (स्वराज्यम्) अपने स्वतन्त्र राज्यशासन के अनुकूल रह कर, (अनु मदन्ति) सदा आनन्द प्रसन्न रहती हैं।

अध्यात्म में—(गौर्यः) ज्ञानवाणियों में रमण करने वाली आत्म-साधक प्रजाएं, (विषूवतः) व्यापक (स्वादोः मध्वः पिबन्ति) सुस्वादु

ब्रह्मरस का आस्वादन करती हैं। वे (इन्द्रेण सयावरीः) आत्मा या परमेश्वर के अनुसार व्यवहार करने वाली होकर (शोभसे) अपनी विभूति के निमित्त (स्वराज्यम् अनु) आत्मा के प्रकाश के अनुसार ही (मदन्ति) आनन्द लाभ करती हैं।

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् २

भा०—(ताः) वे (पृश्नयः) नाना वर्णों की या हृष्ट पुष्ट, (पृशनायुवः इन्द्रस्य) परस्पर प्रेम को चाहती हुईं, (अस्य) इस ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य को (श्रीणन्ति) परिपक्व करती हैं, उसकी रक्षा और वृद्धि करती हैं। (धेनवः) रसपान करानेहारी गौवों के समान (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त राजा की (प्रियाः) अति प्रिय प्रजाएं (स्वराज्यम् अनु वस्वीः) स्वायत्त राज्य के कारण अति ऐश्वर्यवती होकर, (सायकम्) शत्रुओं के अन्त कर देने वाले (वज्रं) शत्रुनिवारक शस्त्रों को भी (हिन्वन्ति) शत्रु पर प्रहार करती हैं।

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३॥

भा०—(ताः) वे प्रजाएं (प्रचेतसः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर, (अस्य) इस राष्ट्रपति के (सहः) शत्रु-पराजयकारी बल का (नमसा) आदर से या अन्नादि पदार्थों से (सपर्यन्ति) सत्कार करती हैं। (अस्य) और इस राष्ट्रपति के (पुरूणि) बहुतसे प्रजापालन सम्बन्धी (व्रतानि) नियमों का, (स्वराज्यम् अनु वस्वीः) स्वायत्त राज्यशासन के द्वारा ऐश्वर्यवान् होकर, (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञानवान् या पूरी रीति से सचेत और उत्तरदायी होने के लिये, (सश्चिरे) पालन करती हैं।

[११०] परमात्मा, आत्मा

सुतकक्षः सुकक्षो वा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम् ॥

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥

भा०—(मद्वने) हर्ष और आनन्द का सेवन करने वाले (इन्द्राय) आत्मा के (सुतम्) ऐश्वर्य को लक्ष्य करके (नः गिरः) हमारी वाणियां (परि स्तोभन्तु) स्तुतियां करती हैं। (अर्कम्) उस अर्चना योग्य परमेश्वर की भी (कारवः) उत्तम विद्वान् पुरुष (अर्चन्तु) स्तुति करें।

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥

भा०—(यस्मिन् अधि) जिसके आश्रय पर (विश्वाः श्रियः) समस्त सेवन करने योग्य लक्ष्मियां और समस्त शोभाएं, तथा (सप्त संसदः) सात लोक या सात प्राण (रणन्ति) शोभा देते हैं, (इन्द्रम्) उस आत्मा की, (सुते) परम आनन्द रस प्राप्त होने पर, (हवामहे) हम स्तुति किया करते हैं।

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥

भा०—(देवासः) दिव्य महान् शक्तियां (त्रि-कद्रुकेषु) तीनों लोकों में (चेतनम्) एक चेतनस्वरूप, (यज्ञम्) तथा सबको परस्पर मिलाए रखने वाले परमेश्वर को (अत्नत) विस्तृत करती हैं, उसी के सामर्थ्य को प्रकट करते हैं। (नः गिरः) हमारी वाणियां भी (तम् इव) उस परमेश्वर के ही (वर्धन्तु) यश को फैलावें।

[१११] आत्मा

पर्वत ऋषिः । सोमो देवता । उष्णिहः । तृचं सूक्तम् ॥

यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (यत्) जब तू (विष्णवि) व्यापक परमेश्वर के ध्यान में मग्न होकर (सोमम् मन्दसे) परम ऐश्वर्य को प्राप्त करके आनन्दित होता है और (यद् वा घ) जब तू (आप्त्ये) प्राणों के परिपालक (त्रिते) सबसे उत्कृष्ट अपने ही स्वरूप में (सोमं मन्दसे) आनन्दरस या ऐश्वर्य को लाभ कर तृप्त होता है और (यद् वा) जब भी (मरुत्सु) प्राणों के बीच में (मन्दसे) आनन्द लाभ करता है, तब २ (इन्दुभिः सम् मन्दसे) ऐश्वर्यों और हृदय को द्रवित करने वाले रसों से ही तृप्त होता है।

यद्वा॑ शक्र परा॒वति॑ समु॒द्रे अधि॒ मन्द॑से ।
अ॒स्माक॒मित् सु॒ते र॑णा॒ समिन्दु॑भिः ॥ २ ॥

भा०—(यद्वा) और जब भी हे (शक्र) शक्तिशालिन् आत्मन् ! तू (परावति) दूर विद्यमान (समुद्रे) रसों के परम भण्डार, परमेश्वर-रूप परम रससागर में (अधि मन्दसे) आनन्दरस का लाभ करता है, तब भी (अस्माकम् इत् सुते) हमारे ही अपने सेवन किये योगादि-साधनों से प्राप्त आनन्द में, (इन्दुभिः सम् रणा) हृदय को द्रवित करने वाले परमानन्दों के साथ ही रमण करता है।

यद्वासि॑ सुन्व॒तो वृ॒धो यज॑मानस्य सत्पते ।
उ॒क्थे वा॒ यस्य॒ रण्य॑सि॒ समिन्दु॑भिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सत्पते) सज्जनों के प्रतिपालक ! आत्मन् ! (यद् वा) जो तू (सुन्वतः यजमानस्य) उपासना और योगसाधना करने वाले एवं (यजमानस्य) देवपूजन करने वाले पुरुष की (वृधः असि) वृद्धि करने हारा है, (वा) और (यस्य उक्थे) जिस किसी के भी कहे स्तुतिवचन में (रण्यसि) आनन्द अनुभव करता है, जो तू (इन्दुभिः शम्) हृदय को द्रवित करने वाले अपने ही आनन्दरसों से तृप्त होता है।

[११२] आत्मा और राजा

सुकक्ष ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिहः । तृचं सूक्तम् ॥

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) आवरणकारी अज्ञानपटलों के नाशक ! हे (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्विन् ! राजन् ! एवं (इन्द्रः) आत्मन् ! (यत् अद्य) नव आज के समान नित्य, (सम् अधि) जिस पदार्थ को भी लक्ष्य करके तू (उद् अगाः) उठता है, (तत् सर्वम्) वह सब भी (ते वशे) तेरे वश में हो जाता है ।

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे ।
उतो तत् सत्यमित् तव ॥ २ ॥

भा०—हे (सत्पते) सत्यस्वरूप ! (प्रवृद्ध) और अति शक्तिशालिन् ! (न मरा) मैं कभी नहीं मरता (इति) ऐसा (मन्यते) जो तू मानता वा जानता है, (उतो) तो वास्तव में (तत्) वह (तव) तेरा (सत्यम् इत्) स्वरूप सत्य ही है ।

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (सोमासः) आनन्दरस (परावति) परम पद परमेश्वर में और (ये) जो (अर्वावति) समीप में स्थित अपने आत्मा में (सुन्विरे) अनुभव किये जाते हैं, (तान् सर्वान् गच्छसि) तू उन सबको ही प्राप्त होता है ।

[११३] राजा, सूर्य और परमेश्वर

भर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रगाथः । द्व्यृचं सूक्तम् ॥

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (अर्वाक्) साक्षात् (नः) हमारे

(इदम्) इस (उभयम्) अपने अनुकूल और अपने प्रतिकूल दोनों प्रकार के (वचः) वचन को (श्रृणवत्) सुनो । वह (सोम-पीतये) राष्ट्र के पालन करने के लिये (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर, (सत्राच्या धिया) विवेकपूर्वक सत्यमात्र के ग्रहण करने वाली बुद्धि से (शविष्ठः) अति बलवान् होकर, (आ गमत्) प्राप्त हो ।

ईश्वर के पक्ष में—परमेश्वर हमारे ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के वचन सुन, वह सदा विद्यमान धारणशक्ति से युक्त, सर्वशक्तिमान् हमें आनन्दरस प्राप्त कराने के लिये प्राप्त हो ।

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

भा०—(स्वराजं) अपने बल और तेज से प्रकाशमान, (वृषभम्) श्रेष्ठ, (तम् हि) उस पुरुष को (धिषणे) धारण में समर्थ नर और नारीगण (ओजसे) बल पराक्रम की वृद्धि के लिये (नि ततक्षतुः) अपना राजा बनाते हैं । (उत) और हे राजन् ! तू भी (उपमानाम्) अपने समान अन्यों के बीच में (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ होकर (नि षीदसि) विराजता है । (ते मनः हि) तेरा मन अवश्य (सोमं-कामं) राष्ट्र ऐश्वर्य की कामना करता है ।

[११४] राजा और आत्मा

सौभरिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यौ । द्वयृचं सूक्तम् ।

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! आत्मन् ! तू (जनुषा) स्वभाव से ही (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित है । (अनाः) तेरा कोई नेता नहीं । (अनापिः) तेरा कोई बन्धु नहीं । तू (सनात् असि) चिरन्तन, पुराण पुरुष है । तू

(युधा इत्) युद्ध द्वारा (आपित्वम्) शत्रुपक्ष से बन्धुता, सन्धि द्वारा मेल (इच्छसे) चाहता है।

परमेश्वर के पक्ष में—उसका कोई न शत्रु है, न बन्धु, उसका कोई नायक नहीं, अतः (अनाः) विनायक है। वह सनातन है, (युधा) योग या कष्ट-अनुभव द्वारा ही वह आत्मा का बन्धु होना चाहता है।

नकीं रे॒वन्तं॑ स॒ख्याय॑ विन्दसे॒ पीय॑न्ति ते सु॒राश्वः॑।
य॒दा कृ॒णोषि॑ नद॒नुं सम्ू॑हस्यादित् पि॒तेव॑ हूयसे ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! तू (सख्याय) अपनी मित्रता के लिये (रेवन्तं) केवल धनवान् को (नकिः) कभी भी नहीं (विन्दसे) प्राप्त करता है, क्योंकि (ते सुराश्वः) वे मदकारी पदार्थों के सेवन से मदमत्त होकर (ते) तेरे उत्तम जनों का (पीयन्ति) विनाश किया करते हैं। (यदा) जब तू (नदनुम्) मेघ के समान गर्जन (कृणोषि) करता है तब (सम् ऊहसि) तू दुष्टों का संहार करता है और (आत् इत्) तभी प्रजाओं द्वारा (पिता इव) पिता के समान (हूयसे) पुकारा जाता है।

[११५] राजा, परमेश्वर

वत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम्॥

अ॒हमिद्धि पि॒तुष्परि॑ मे॒धामृ॒तस्य॑ ज॒ग्रभ॑।
अ॒हं सूर्य॑इवाजनि ॥ १ ॥

भा०—(अहम् इत् हि) मैं ही (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (पितुः) पालक प्रभु की (मेधाम्) पवित्र सत्संगकारी बुद्धि को (परि जग्रभ) सब प्रकार से ग्रहण करता हूँ, इसलिये (अहम्) मैं (सूर्य इव) सूर्य के समान (अजनि) हो जाता हूँ।

अ॒हं प्र॒त्नेन॒ मन्म॑ना॒ गिरः॑ शुम्भामि कण्व॒वत्।
येनेन्द्रः॒ शुष्म॒मिद् द॒धे ॥ २ ॥

भा०—(अहम्) मैं (प्रत्नेन) सनातन से चले आये (मन्मना) वेदमय ज्ञान से (कण्ववत्) मेधावी पुरुष के समान (गिरः) वाणियों को (शुम्भामि) प्रकट करता हूँ । (येन) जिससे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (शुष्मम्) बल को (दधे) धारण करता है । महामन्त्री वेदानुकूल आज्ञाओं को प्रकाशित करे, जिससे राजा का बल बढ़े ।

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वाम्) तुझे (ये) जो पुरुष (न तुष्टुवुः) उपदेश नहीं करते और (ये च) जो (ऋषयः) साक्षात् मन्त्रद्रष्टा या तर्कशील विद्वान् होकर (तुष्टुवुः) तुझे उपदेश करते हैं इन सबमें (मम इत्) मेरे उपदेश द्वारा (सुष्टुतः) उत्तम रीति से उपदेश किया जाकर तू (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो ।

[११६] आत्मा, परमेश्वर, राजा

मेध्यातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहत्यौ । द्वयृचं सूक्तम् ॥

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! राजन् ! हम (त्वत्) तेरी कृपा से कभी (निष्ट्याः इव) निःसहाय और (अरणाः इव) रमण के अयोग्य, दुःखी (मा भूम) न हो जावें और (प्र-जहितानि) छोड़ दिये गये या शाखा आदि से रहित (वनानि इव) वृक्षों के समान भी (मा भूम) न हों । हे (अद्रिवः) अभेद्य बल से युक्त ! हम (दुरोषासः) शत्रुओं से सन्ताप दिये जाने योग्य न होकर, अपने गृहों में सुख से रहते हुए सदा तेरा (अमन्महि) स्मरण करें ।

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सुकृत् सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ २ ॥

भा०—हे (वृत्र-हन्) विघ्ननाशक ! हम (अनाशवः) अति शीघ्रकारी न होकर और (अनुग्रासः च) उग्र न होकर (अमन्महि इव) ऐसा चाहते हैं कि (सकृत्) एक बार हे (शूर) शूरवीर ! (महता राधसा) तेरी बड़ी भारी आराधना से (अनु स्तुदीमहि) तेरी स्तुति करके अति आनन्द का लाभ करें।

[११७] राजा, आत्मा

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराजः । तृचं सूक्तम् ॥

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! तु (सोम पिब) राष्ट्र के ऐश्वर्य का भोग कर। तीव्रगति वाले घोड़ों से युक्त ! (यं) जिस राष्ट्रैश्वर्य को (अद्रिः) तेरा अभेद्य शासन (सुषाव) उत्पन्न करता है वह (त्वा) तुझे (मदन्तु) तृप्त करे। वह (सोतुः) प्रेरक महामात्य की (बाहुभ्याम्) बाहुओं द्वारा (सु-यतः) उत्तम रीति से सु-व्यवस्थित होकर (सुयतः अर्वा न) सुसंयत अश्व के समान सन्मार्ग पर चले।

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगवान् अश्वों वाले राजन् ! (यः) जो (ते) तेरा (युज्यः) सत्संग से प्राप्त होने वाला (चारुः) उत्तम (मदः) हर्ष या बल (अस्ति) है और (येन) जिससे तू (वृत्राणि) विघ्नकारी शत्रुओं का (हंसि) विनाश करता है, हे (प्रभूवसो) अधिक ऐश्वर्य वाले ! (सः) वह (त्वाम्) तुझको (ममत्तु) आनन्द प्रसन्न रक्खे।

अध्यात्म में—(यः ते युज्यः चारुः मदः) जो तेरा योगसमाधि से उत्पन्न आनन्द है, जिससे हे (हर्यश्व) दुःखहारी प्राणों वाले जीव ! तू

(वृत्राणि हंसि) तामस आवरणों को विनष्ट करता है। (प्रभूवसो) वह तुझे सदा आनन्दित रक्खे।

बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ २ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (यां) जिस (प्रशस्तिम्) उत्तम शासन सम्बन्धी वाणी या शिक्षा को (वसिष्ठः) सबसे श्रेष्ठ पुरोहित विद्वान् (ते अर्चति) तेरे लिये उपदेश करता है उसको और (इमां) इस (मे) मेरी (वाचम्) उत्तम वाणी को भी (सु बोध) उत्तम रीति से जान और (सध-मादे) एकत्र सुख अनुभव करने के स्थान इस सभा-भवन में (इमा ब्रह्म) इन ब्राह्मणों के बचनों को (जुषस्व) प्रेम से सुन।

[११८] राजा

१, २ भर्गं ऋषिः। ३, ४ मेधातिथिऋषिः। इन्द्रो देवता। प्रगाथः। चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥

भा०—हे (शचीपते) भक्ति के पालक ! हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! तू (विश्वाभि) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा-साधनों से (सु शग्धि उ) उत्तम सुखकारी पदार्थ प्रदान कर। (भगं न) ऐश्वर्यवान् के समान (यशसं) यशस्वी (त्वा) तुझको (वसुविदम्) ऐश्वर्यों का देने वाला जानकर ही, हे (शूर) शूरवीर ! हम (त्वा अनु चरामसि) तेरे पीछे अनुसरण करते हैं।

पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) दानशील ! तू (अश्वस्य पौरः) अश्वों को पूर्ण करने वाला और (गवाम् पुरुकृत्) गौ आदि पशु सम्पत्ति को बढ़ाने वाला

और (हिरण्ययः उत्सः) सुवर्ण आदि धन-ऐश्वर्य का अक्षय कोष (असि) है। (त्वे) तेरे दिये (दानम्) दान को (नकिः हि) कोई भी नहीं (परिमर्धिषत्) नाश कर सकता। हे राजन् (यत् यत्) जो जो पदार्थ भी मैं (यामि) याचना करूं। तू (तत् तत्) वह, नाना पदार्थ (आ भर) प्राप्त करा।

इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ३ ॥

भा०—(देवतातये) दिव्यगुणों के प्राप्त करने और विद्वान् पुरुषों के उपकार के लिये (इन्द्रम् इत्) इन्द्र को ही हम (हवामहे) बुलाते हैं। (प्रयति अध्वरे) यज्ञ के प्रारम्भ में (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का स्मरण करते हैं। (वनिनः) इन्द्र का भजन करते हुए हम (इन्द्रम्) इन्द्र को (समीके) युद्ध में (हवामहे) याद करते हैं और (धनस्य सातये) धन के प्राप्त करने के लिये (इन्द्रं हवामहे) इन्द्र का ही स्मरण करते हैं।

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर ही (मह्ना शवः) अपने बल के महान् सामर्थ्य से (रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों लोकों को (पप्रथत्) विस्तृत करता है। (इन्द्रः) वह ईश्वर ही (सूर्यम् अरोचयत्) सूर्य को प्रकाशित करता है। (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (इन्द्रे ह) महान् परमेश्वर के आश्रय पर ही (येमिरे) नियम में व्यवस्थित हैं। (इन्द्रे) परमेश्वर के आश्रय पर ही (सुवानासः) समस्त जीवों को उत्पन्न करते हुए (इन्दवः) ये तेजस्वी पदार्थ नियम से कार्य कर रहे हैं।

[११३] ईश्वर

१ आयुः श्रुष्टिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुभौ। द्व्यृचं सूक्तम् ॥

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥

भा०—(पूर्व्यम्) सबसे पूर्व विद्यमान, (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान का (अस्तावि) वर्णन किया जाता है। उसी (ब्रह्म) महान् ज्ञान का हे विद्वान् पुरुषो ! (इन्द्राय) परमेश्वर के निरूपण करने के लिये (वोचत) उच्चारण किया करो। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान से (पूर्वीः) पूर्ण (बृहतीः) वाणियों को (अनूषत) स्तुतिरूप से कहो। (स्तोतुः) क्योंकि सत्य वचन कहने वाले पुरुष की (मेधाः) उत्तम बुद्धियां आप से आप (असृक्षत) उत्पन्न होती हैं।

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ २ ॥

भा०—(तुरण्यवः) अप्रमादी, (विप्रासः) बुद्धिमान् पुरुष, (मधुमन्तम्) ज्ञानवान् (घृतश्चुतम्) तथा तेज के देने वाले (अर्कम्) स्तुति करने योग्य परमेश्वर की (आनृचुः) स्तुति करते हैं। वह (अस्मे) हमारे लिये (रयिः) समस्त ऐश्वर्य (पप्रथे) विस्तृत करता है। (सुवानासः) अभिषेक करने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्य और (वृष्ण्यं शवः) बलवान् पुरुषों का बल (अस्मे) हमें प्राप्त हो।

[१२०] परमेश्वर

देवातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रगाथः । द्व्यृचं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

भा०—(यत्) क्योंकि हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (प्राक्) पूर्व से, (अपाक्) पश्चिम से, (उदक्) उत्तर से और (न्यग् वा) नीचे अर्थात् दक्षिण से (हूयसे) बुलाया जाता है। हे (सिम)

सर्वश्रेष्ठ ! हे (प्र-शर्ध) उत्कृष्ट बलशालिन् ! तू (पुरु) बहुत अधिक (आनवे) प्राणधारी पुरुषों और (तुर्वशे) कामनावान् पुरुषों में उनके भले के लिये (नृ-सूतः) नेता पुरुषों द्वारा उपासित (असि) होता है ।

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

भा०—(यद् वा) और हे (इन्द्र) परमात्मन् ! तू (रुमे) उपदेश और अतिसम्पन्न ज्ञानी पुरुष में; (रुशमे) हिंसाकारी क्षत्रिय पुरुष में, (श्यावके) देश देशान्तर जाने वाले व्यापारी पुरुष में और (कृपे) शारीरिक शक्ति वाले श्रमी पुरुष में, इन चारों में (सचा) समान भाव से (मादयासे) स्वयं तृप्त होकर इनको आनन्दित करता है । (स्तोम-वाहसः) स्तुतियों को धारण करने वाले, (कण्वासः) मेधावी पुरुष (ब्रह्मभिः) वेदमन्त्रों से, हे (इन्द्र) ईश्वर ! (आ यच्छन्ति) तुझे संयम द्वारा प्राप्त करते, स्मरण करते हैं । तू (आ गहि) साक्षात् प्राप्त हो, दर्शन दे ।

[१२१]

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रगाथः । द्वयृचं सूक्तम् ॥

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥

भा०—(शूर) शूर ! (अदुग्धा धेनवः इव) दुधार गौवें जिनको अभी दुहा नहीं गया वे जिस प्रकार अपने बछड़े के प्रति स्नेह से नम्र जाती हैं उसी प्रकार हम (स्वर्दृशम्) सूर्य के समान सबके द्रष्टा, (अस्य जगतः ईशानम्) इस जंगम संसार के स्वामी और (तस्थुषः) स्थावर संसार के (ईशानम्) स्वामी तुझको (अभि नोनुमः) लक्ष्य करके झुकते हैं ।

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वावान्) तुझसा (अन्यः) दूसरा (न दिव्यः न पार्थिवः) न आकाश में और न पृथिवी में (न जातः न जनिष्यते) न पैदा हुआ है और न पैदा होगा। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हम (अश्वायन्तः) अश्वों की कामना करते हुए और (गव्यन्तः) गौओं की कामना करते हुए, (वाजिनः) अन्न और धनों के स्वामी होकर (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति करते हैं।

[१२२] ऐश्वर्यवान् राष्ट्र, गृहस्थ और राजा

शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । तृचं सूक्तम् ॥

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

भा०—(क्षुमन्तः) अन्न आदि से सम्पन्न होकर (याभिः) जिन स्त्रियों और प्रजाओं के साथ हम (मदेम) आनन्दयुक्त और प्रसन्न रहें, वे (तुविवाजाः) बहुत बलवान्, ज्ञानवान् और (रेवतीः) ऐश्वर्य और सौभाग्यवती होकर, (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र या गृहस्थ में, (नः) हमारे (सध-मादः) साथ आनन्द और हर्ष तृप्ति, तुष्टि लाभ करने वाली (सन्तु) हों।

आ घ त्वावान् त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥

भा०—हे (धृष्णो) विपक्ष के धर्षण करने हारे ! राजन् ! (चक्र्योः) रथ के चक्रों का (अक्षं न) धुरा जिस प्रकार अरों द्वारा चक्रों को अपने में धारण करके रथ को सम्भालता है और स्वयं अपने को भी सम्भाले रहता है, इसी प्रकार अपने आपको और परराष्ट्र के चक्रों को अपने नीतिबल से धारण करके, (त्वावान्) तू अपने जैसा ही अद्वितीय होकर, (त्मना आप्तः) स्वयं आत्म-सामर्थ्य से स्थिर होकर, (स्तोतृभ्यः) विद्वान् पुरुषों के लिये (इयानः) प्रार्थित होकर, उनको अभिमत पदार्थ (आ ऋणोः घ) अवश्य प्राप्त कराता है।

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥

भा०—(शचीभिः अक्षं न) शक्तियों से प्रेरित होकर 'अक्ष', धुरा जिस प्रकार दूर स्थान पर पहुँचाता और अभिमत फल को प्राप्त कराता है, उसी प्रकार हे (शत-क्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों में कुशल विद्वन् ! तू (जरितॄणाम्) यथार्थ गुणों के प्रवक्ता पुरुषों की (दुवः) सेवा को प्राप्त कर (कामम्) अभिलषित पदार्थ को (आ ऋणोः) प्राप्त करता है ।

[१२३] सूर्य और राजा

कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । त्रिष्टुभौ । द्वयृचं सूक्तम् ॥

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ १ ॥

भा०—(सूर्यस्य) सूर्य का (तत् देवत्वम्) वह देवत्व है और (तत् महित्वम्) वह महान् सामर्थ्य है, जो (कर्त्तोः) कि कार्य जगत् में, (मध्या) अन्तरिक्ष के बीच में से, (विततम्) अपने एकत्र होने के केन्द्र से (हरितः) रस हरण करने वाली किरणों को (अयुक्त) डालता है, (आत्) तभी (रात्री) रात्री को और (वासः) दिन को (सिमस्मै) समस्त जगत् के लिये वस्त्रवत् (तनुते) फैलाता है ।

राजा के पक्ष में—(सूर्यस्य तत् देवत्वम्) सूर्य के समान सर्व-प्रेरक राजा की वह दानशीलता और (तत् महित्वम्) वह महान् सामर्थ्य है कि (कर्त्तोः मध्या) कार्य के बीच में (विततं) विस्तृत शत्रुरूप विघ्न का भी (सं जभार) संहार करदे । (यत्) जब वह (सधस्थात् हरितः अयुक्त) राजसभा से आज्ञा ले जाने वाले अपने संदेशहरों और अधिकारियों को नियुक्त करता है तभी (रात्री) रात्री के समान सुखदायी राज्यव्यवस्था और (वासः) दिन के समान आच्छादक शरण (सिमस्मै) सबके लिये समान रूप से (तनुते) कर देता है ।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥२॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य (द्योः उपस्थे) द्युलोक के बीच में स्थित होकर, (मित्रस्य) 'मित्र' नाम प्राण वायु और (वरुणस्य) वरुण अर्थात् मेघ के भी (रूपम्) स्वरूप को (अभिचक्षे) साक्षात् स्वयं ही (कृणुते) करता है । और (अस्य) इसका (अनन्तम्) अनन्त (रुशत्) दीप्तिमान् (पाजः) बल (अन्यत्) अन्य है, (कृष्णम्) आकर्षण करने वाला बल (अन्यत्) अन्य है, जिसको कि (हरितः) हरी भरी दिशाएं (सं भरन्ति) धारण करती हैं ।

[१२४] परमेश्वर और आत्मा

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । ३ पादनिचृत् । षड्चं सूक्तम् ॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

भा०—(चित्रः) पूजनीय, (सदावृधः) सदा बढ़ाने हारा (सखा) मित्र (नः) हमें (कया ऊत्या) न जाने किस परिचर्या या रक्षासामर्थ्य से (आ भुवत्) साक्षात् हो और न जाने (शचिष्ठया) अति शक्तिशाली (कया) किस प्रज्ञा के (वृता) व्यवहार से वह हमें प्राप्त हो ?

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥

भा०—(अन्धसः) ऐश्वर्य के (मदानां) आनन्दों में (कः) कौनसा (सत्यः) सच्चा आनन्द (त्वा) तुझको (मत्सत्) प्रसन्न, तृप्त करे जिससे तू (मंहिष्ठः) महान् होकर (दृढा) दृढ़ से दृढ़ (वसु) ऐश्वर्य को (आरुजे) जाल को भी तोड़ फेंके ।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! (नः) हमारे (सखीनाम्) मित्र (जरितॄणाम्) और विद्वानों का तू (शतम् ऊतिभिः) सैकड़ों रक्षासाधनों से (सु अभि अविता भवासि) उत्तम रक्षक होता है। देखो यजु० अ० ३६। ४-६॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ ४॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम्।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ ५॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६॥

भा०—[४-६] तीनों मन्त्रों की व्याख्या देखो का० २०। ६३। १—३॥

[१२५] राज

कीर्त्ति ऋषिः। इन्द्रः, ४, ५ अश्विनौ च देवते। त्रिष्टुभः। ४ अनुष्टुप्।
सप्तर्चं सूक्तम्॥

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक! हे (मघवन्) धनों के स्वामिन्! तू (प्राचः) सन्मुख के, (अमित्रान्) शत्रुओं को (अप नुदस्व) दूर कर। हे (अभि-भूते) पराजय करने हारे! तू (अपाचः) पीठ पीछे लगे शत्रुओं को (अप नुदस्व) दूर कर। (उदीचः) हमारे उत्तर के शत्रुओं को (अप) दूर कर और (अधराचः) दक्षिण के शत्रुओं को भी (अप) दूर कर। (यथा) जिससे हे (शूर) शूरवीर! हम (तव) तेरे (उरौ) बड़े भारी (शर्मन्) शरण में (मदेम) सुख प्राप्त करें।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूयं ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥ २ ॥

भा०—(अङ्ग) हे राजन् ! (यवमन्तः) जौ आदि धान्यों के पैदा करने वाले लोग (यथा) जिस प्रकार (यवं चित्) जौ आदि धान्य को, (वियूय) मिलाकर क्रम से, (कुवित्) बहुतसा (दान्ति) काट लेते हैं, उस प्रकार तू भी (इह-इह) नाना प्रदेशों में (एषाम्) उन लोगों के यवादि धान्यों के (भोजनानि) भोजनों को (कृणुहि) उत्पन्न कर, (ये) जो कि (बर्हिषः) यज्ञमय राष्ट्र की (नमोवृक्तिं) नमनकारी दण्ड-व्यवस्था या शासन व्यवस्था के भंग के अपराध को (न जग्मुः) नहीं करते।

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ ३ ॥

भा०—(स्थूरि) क्योंकि एक बैल या एक घोड़े वाली गाड़ी या रथ से (ऋतुथा) ठीक २ अवसर पर (नहि यातम् अस्ति) नहीं पहुँचा जा सकता, (न उत) और न (संगमेषु) संग्रामों तथा सभासत्संगों में (श्रवः) यश ही (विविदे) प्राप्त किया जा सकता है, इसलिये (विप्राः) मेधावी विद्वान् पुरुष (गव्यन्तः) गौओं के इच्छुक, (अश्वायन्तः) अश्वों के इच्छुक (वाजयन्तः) और बल अन्न के इच्छुक होकर, (इन्द्रम् वृषणं) ऐश्वर्यवान् बलशाली राजा और परमेश्वर को ही (सख्याय) अपने मित्र होने के लिये वरण करते हैं।

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) व्यापक अधिकार वाले दो बड़े अधिकारी पुरुषो ! (नमुचौ) कभी भी न छोड़ने योग्य (असुरे) दुष्ट पुरुषों के हनन कार्य में (सचा) सदा साथ रहकर (युवम्) तुम दोनों (शुभस्पति) शुभ कार्यों के पालक होकर, (सुरामम्) राज्यलक्ष्मी के साथ वर्त्तमान राष्ट्र

की (विपिपाना) नाना कर्मों द्वारा रक्षा करते हुए (कर्मसु) समस्त कर्मों में (इन्द्रं) राजा की (आ अवतम्) रक्षा करो ।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५॥

भा०—हे राजन् ! (यत्) जब (शचीभिः) तू अपनी प्रज्ञाओं और शक्तियों से (सुरामं) उत्तम रमण योग्य राष्ट्र का (व्यपिबः) नाना प्रकार से भोग करता है, और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त विद्वत् सभा (त्वा) जब तुझको (अभिष्णक्) पीड़ारहित करती है, (पितरौ पुत्रम् इव) तब माता और पिता जिस प्रकार पुत्र की रक्षा करते हैं उसी प्रकार (अश्विना) व्यापक अधिकारी से युक्त दो बड़े अधिकारी, (काव्यैः) अपने ज्ञान-उपदेशों से और (दंसनाभिः) दर्शनीय एवं शत्रुनाशक बड़े बड़े कर्मों से (अवथुः) तेरी रक्षा करें ।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ७ ॥

भा०—[६, ७] इन दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व का० ७ । सू० ९१ और ९२ ॥

[१२६] जीव, प्रकृति और परमेश्वर

वृषाकपिरिन्द्र इन्द्राणी च ऋषयः । इन्द्रो देवता । पंक्तिः । त्रयोविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१॥

भा०—प्राणगण (सोतोः) रसग्रहण करने के लिये (वि असृक्षत) नाना प्रकार का यत्न करते हैं । परन्तु वे (हि इन्द्रं देवम्) शक्ति प्रदान

करने वाले आत्मा के स्वरूप को (न अमंसत) नहीं जानते। (यत्र) जिन प्राणों के ऊपर (वृषाकपिः) उनमें सुखों का वर्षण करने वाला और उनमें कम्पन या स्पन्द रूप से स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला आत्मा (पुष्टेषु) वेतनादि द्वारा पुष्ट भृत्य जनों में (अर्यः) स्वामी के समान (अमदत्) बड़ा हर्ष अनुभव करता है, वही (मत्सखा) वास्तव में मेरा मित्र भीतरी आत्मा है। (विश्वस्मात्) वह सबसे (उत्तरः) उत्कृष्ट (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सूर्य के समान तेजस्वी है।

जिस परमेश्वर के आश्रय में रहकर लोग नाना प्रकार का आध्यात्मिक आनन्द लेने का यत्न करते हैं पर उसको वे जानते नहीं हैं, जीवात्मा जिसमें नित्य आनन्द लेता है वही मुझ उपासक का मित्र है। वह सब जीवजगत् से बड़ा है।

अध्यात्म में—इन्द्र आत्मा है, वृषाकपि प्राण है। ब्रह्माण्ड में इन्द्र परमेश्वर है, वृषाकपि जीव है। राष्ट्र में—इन्द्र राजा है, वृषाकपि सेनापति है।

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू जब (वृषाकपेः) सुखों के वर्षण करने और दुःख कारणों के कंपा देने वाले जीवात्मा से (पराधावसि) परे चला जाता है तब तू (अति-व्यथिः) बड़ी व्यथा अर्थात् भीतरी चित्त के कष्ट का कारण हो जाता है। (अह) और (अन्यत्र) अन्य स्थानों अर्थात् संसार के दृश्यों या व्युत्थित दशाओं में (सोम-पीतये) परम आनन्द रसपान कराने के लिये (नो प्रविन्दसि) दूर तक भी ढूंढे नहीं मिलता, वह (इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वस्मात्) सब जगत् से अधिक (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।
यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३॥

भा०—हे परमेश्वर ! (अयं) यह (वृषाकपिः) आनन्दरस का वर्षण करनेहारा, (हरितः) तेरे द्वारा हरण किया गया, एवं (मृगः) अपने को शुद्ध करने और तुझको नित्य खोजने में लगा हुआ जीवात्मा (त्वा) तेरे प्रति (किम् चकार) क्या प्रिय कार्य या उपकार करता है कि (यस्मै) जिसको कि तू स्वामी (वसु) पुष्टिकारक ऐश्वर्य (इरस्यसि इत् उ) दिये ही चला जा रहा है ? ठीक है (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) वह तू परमेश्वर सब जीवजगत् से उत्कृष्ट है ।

यमि॒मं त्वं वृ॒षाक॑पिं प्रि॒यमि॑न्द्राभि॒रक्ष॑सि ।
श्वा न्व॑स्य जम्भिष॒दपि॒ कर्णे॑ वराह॒युर्विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (यम् इमम्) जिस इस (प्रियम्) अपने प्रिय जीव की तू (अभि रक्षसि) सब ओर से रक्षा करता है, उस जीव को (अस्य कर्णे) इसके कर्म के निमित्त (वराहयुः) वायु की कामना करने वाला (श्वा) आशु गतिशील प्राण (नु) ही (जम्भिषत्) पकड़ लेता, या बान्ध लेता है । (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) वह परमेश्वर सब जीवजगत् से ऊंचा है जो कभी देहबन्धन में नहीं आता ।

प्रि॒या त॒ष्टानि॑ मे क॒पिर्व्य॑क्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो॒ न्व॑स्य राविषं॒ न सु॒गं दु॒ष्कृते॑ भुवं॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥५॥

भा०—(कपिः) विषय वेगों से विचलित हो जाने वाला, या वानर के समान अति चञ्चल स्वभाव होकर यह आत्मा (मे) मेरे (तष्टानि) बनाये गये, (प्रिया) प्रिय लगने वाले, (व्यक्ता) तथा प्रकट हुए पदार्थों को (वि अदूदुषत्) विविध प्रकार से भोग करता है, (नु अस्य) तब इसके (शिरः) शिर अर्थात् मुख्य स्वरूप को मैं प्रकृति (राविषं) नष्ट कर देती हूँ, (दुष्कृते) दुष्ट आचरण करने वाले के लिये मैं (सुगं न भुवम्) सुखकारिणी कभी नहीं होती । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) वह ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ही सबसे उत्तम है ।

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥

भा०—(मत्) मुझसे बढ़ के (स्त्री) कोई स्त्री (सुभसत्-तरा न भुवत्) उत्तम कान्तिमती नहीं है और मुझसे बढ़कर कोई स्त्री (सुयाशुतरा) उत्तम क्रियाशील तथा शीघ्र कार्य करने वाली (न भुवत्) नहीं है । (मत्) मुझसे बढ़कर (प्रतिच्यवीयसी) पति के प्रति विनय से झुकने वाली भी कोई दूसरी नहीं है । मुझसे बढ़कर न कोई स्त्री टांगों से उद्यम करने वाली भी नहीं है । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् मुझ प्रकृति का पति परमेश्वर ही मुझसे भी ऊंचा है ।

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति । भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥

भा०—जीव कहता है कि (उवे) हे (अम्ब) व्यापक शक्तिमति ! हे (सुलाभिके) सुख का लाभ कराने हारी (अंग) हे व्यक्तरूप प्रकृते ! (यथेव) जिस प्रकार तू भूतकाल में रही उसी प्रकार (भविष्यति) आगे भी रहेगी । (भसत्) तेरे देदीप्यमान तेज (मे) मेरे हों । (सक्थि मे) यह तेरी क्रिया शक्ति (मे) मेरे उपयोग में आवे । (मे शिरः) मेरा शिर (वि हृष्यति इव) तेरे विविध रूपों से हर्ष को प्राप्त होता है । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा सबसे ऊंचा है ।

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८

भा०—हे (सु-बाहो) उत्तम रीति से जीवों को बांधने या संसार के जन्म मरण में पीड़ा देने वाली ! हे (स्वङ्गुरे) प्रत्येक अवयव में दीप्ति वाली ! हे (पृथु-जाघने) व्यापक शक्तिवाली ! हे (शूरपत्नि) जगत् के सञ्चालक परमेश्वर को अपना पति मानने वाली प्रकृति ! तू (किं किम्) क्यों, किस निमित्त (नः) हमारे (वृषाकपिम्) जीव आत्मा को (अभि

अमीषि) लक्ष्य कर उस पर क्रोध करती है। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ही सबसे उत्कृष्ट है।

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९

भा०—(अयं शरारुः) यह हिंसाकारी मृत्यु (माम्) मुझ चेतना को (अविराम् इव) वीर पति से रहित स्त्री के समान, अरक्षित सा जान कर (अभि मन्यते) मेरा विनाश करना चाहता है। परन्तु (उत अहम्) मैं तो वीर्यवान् प्राणरूप पुत्र वाली, (इन्द्र-पत्नी) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर रूप पति वाली, (मरुत्-सखा) शत्रुओं को मार देने वाले वीर पुरुषों के समान प्राणों को मित्र रूप से रखने हारी (अस्मि) हूं, (इन्द्रः) वह परमेश्वर (विश्वस्मात् उत्तरः) सबसे उत्कृष्ट है, मृत्यु से भी शक्तिशाली है।

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०

भा०—(पुरा) प्रकृति पहले (नारी) 'नर' अर्थात् सबके प्रवर्त्तक परमेश्वर की स्त्री के समान सम्मिलित होकर संसारयज्ञ के रचाने और (समनम्) समष्टि प्राणशक्ति के धारण की क्रिया को (अव गच्छति) प्राप्त करती है। वह (ऋतस्य) गतिशील जगत् की (वेधाः) विधात्री है। वही (वीरिणी) वीर्यवती, (इन्द्रपत्नी) परमेश्वर को अपना पति रखने वाली (महीयते) बड़ी भारी शक्ति के रूप में प्रकट होती है। (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) परमेश्वर सबसे उत्कृष्ट शक्ति वाला है।

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥

भा०—(आसु नारिषु) इन समस्त नारियों में से मैं (इन्द्राणीम्) परमेश्वर के सदा साथ रहने वाली परमेश्वर की ऐश्वर्यवती प्रकृति को (सुभगाम्) सबसे अधिक उत्तम, ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती (अश्रवम्)

गुरुपदेश द्वारा श्रवण करता हूँ, (अपरं चन) और जिस प्रकार अन्य स्त्रियों के पति बूढ़े होकर मर जाते हैं उस प्रकार (अस्याः पतिः) इसका पति (जरसा) बुढ़ापे के कारण (नहि मरते) नहीं मरता । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) परमेश्वर समस्त संसार से ऊंचा है ।

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १२

भा०—(अहम्) हे मेरी पत्नी प्रकृति ! मैं परमेश्वर (वृषाकपेः) आनन्द वर्षण करके रोमाञ्च उत्पन्न करने हारे अपने मित्र जीवात्मा के (ऋते) बिना (नः रारण) क्रीड़ा या विनोद नहीं करता, अर्थात् मैं जगत्-सर्जन रूप लीला का विस्तार नहीं करता । जिस जीवात्मा की दी हुई प्राणरूप प्रिय हवि इन्द्रियरूपी देवों को प्राप्त होती है । परमेश्वर सबसे उत्कृष्ट है ।

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

भा०—(वृषाकपायि) हे आनन्दरस के वर्षण से हृदय को रोमाञ्चित करने हारे साधक पुरुष की जननी सात्विक प्रकृति ! हे (रेवति) ऐश्वर्यवति ! हे (सुपुत्रे) सुखपूर्वक पुरुषों का त्राण करने हारी ! (आत् उ) और हे (सु-स्नुषे) सुख का प्रस्रवण करने हारी ! (ते इन्द्रः) तुझे ऐश्वर्य-का देने वाला तेरा पति अर्थात् परमेश्वर शरीर को शक्ति से सींचने वाले जीवात्मा द्वारा समर्पित हर प्रकार की दृष्टि को स्वीकार कर लेता है । परमेश्वर ही उस देह में प्रविष्ट जीव-जगत् से भी उत्कृष्ट है ।

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १४

भा०—परमेश्वर कहता है कि (मे) मेरे लिये १५ और २० (उक्षणः) सुखवर्षण में समर्थ प्राणों को, (साकम्) एक साथ (पचन्ति) योगी

लोग परिपक्व करते हैं, तपस्या द्वारा उनको दृढ़ करते हैं। (अहम्) मैं परमात्मा (अग्नि) उन भेंटों को स्वीकार करता हूँ। (पीव इत्) मैं अति बलवान् हूँ। वे समर्पक मानों (मे) मेरी (उभा कुक्षी) दोनों कोखों को भेंटों द्वारा भर देते हैं। (विश्वस्मात्) परमेश्वर समस्त जीव-जगत् से (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

पञ्चदश—दश इन्द्रियगत प्राण, तथा प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान ये पांच मिलकर १५ उक्षा हुए। ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ प्राण, ४ अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और पूर्ण देह ये बीस। अथवा उनके भीतर प्रविष्ट होकर रहने वाला आत्मा ये बीस उक्षा हैं।

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत्।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१५

भा०—(न) जिस प्रकार (तिग्मशृङ्गः) तीखे सींगों वाला (वृषभः) सांड (यूथेषु अन्तः) गौओं के रेवड़ के बीच में (रोरुवत्) बराबर गर्जना करा करता है, उसी प्रकार तू हृदयों में रसवर्षण करने द्वारा परमेश्वर, (तिग्म-शृङ्गः) अन्धकारों का नाश करने वाले तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त होकर, (यूथेषु अन्तः) हृदयों में (रोरुवत्) अन्तर्नाद कर रहा है। हे (इन्द्र) परमेश्वर! (यं) जिस आनन्द रस को (भावयुः) भक्ति भावों से युक्त उपासक (ते) तेरे निमित्त (सुनोति) उत्पन्न करता है, वह (मन्थः) सब दुःखों का मथन कर देने वाला (ते) तेरा आनन्दरस (हृदे) हृदय को (शं) शांति देने वाला होता है। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) परमेश्वर सब स्थावर-जंगम जगत् से उत्कृष्ट है।

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१६

भा०—(यस्य) जिसका (कपृत्) मस्तक विनय के कारण (सक्थ्या अन्तरा) जांघों के बीच तक झुकने के लिये (रम्बते = लम्बते) लटका ही

रहता है (न सः ईशे) वह स्वामी के समान शासन करने में समर्थ नहीं होता । (सः इत् ईशे) अपितु वह ही शासन करता है (नि-षेदुषः) राज्यासन पर विराजे हुए (यस्य) जिसका (रोमशं) मूछों वाला मुख (विजृम्भते) विशेष रूप से खुलता और आज्ञा भी देता है । (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) तब भी ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ही सबसे उत्कृष्ट है ।

न सेशे यस्य॑ रोम॒शं नि॑षे॒दुषो॑ वि॒जृम्भ॑ते । सेदी॑शे॒ यस्य॑ रम्ब॒तेऽन्त॒रा स॒क्थ्या॒३॒॑ कपृ॒द् विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥ १७ ॥

भा०—(सः) वह भी (न ईशे) सबका स्वामी नहीं बन सकता (यस्य) जिसका (निषेदुषः) राज्यसिंहासन पर बैठे (रोमशं विजृम्भते) मूंछों वाला मुख केवल आज्ञाएं ही देता रहता है । बल्कि (सः इत् ईशे) वह ही पुरुष शासन करने में समर्थ होता है (यस्य) जिसका मस्तक विनयभाव से दोनों जांघों के बीच तक भी झुक जाता है और (रम्बते) मध्याह्न के सूर्य के समान विद्यमान रहता है । (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) वस्तुतः परमेश्वर सबसे उत्कृष्ट है, वास्तव में वही शासन करने में समर्थ है ।

अ॒यमि॑न्द्र वृ॒षाक॑पिः॒ पर॑स्वन्तं ह॒तं वि॑दत् । अ॒सिं सू॒नां नवं॑ च॒रुमादेध॑स्या॒न आचि॑तं॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः॥१८

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (वृषाकपिः) सुखों की वर्षा करने और दुःख के कारणों को कंपा कर अपने से पृथक् कर देने में समर्थ यह आत्मा (परस्वन्तं) अपने भीतर बसे परमेश्वर से "मैं दूर हूँ" ऐसे भाव को अब (हतं विदत्) विनष्ट हुआ जाने और अब वह (असिं) दुःखों के काटने वाले ज्ञानवज्र को (सूनाम्) परब्रह्म की तरफ प्रेरणा करने वाली तीव्र बुद्धि को और (नव चरुम्) स्तुति योग्य आचरण को और (एधस्य) तीव्र तेज से (आचितम्) पूर्ण सञ्चित (अनः) जीवन को इन सबको, (विदत्) प्राप्त करे । (इन्द्रः) और जाने कि वह ईश्वर (विश्वस्मात् उत्तरः) सबसे उत्कृष्ट है ।

अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १९

भा०—(अयम्) मैं परमेश्वर (विचाकशत्) देखता हुआ और (दासम् आर्यम्) नाशक तथा पालक दोनों शक्तियों का (विचिन्वन्) विवेक कराता हुआ (एमि) भक्त के हृदय में आता हूँ और (पाकसुत्वन:) मैं आत्मज्ञान का परिपालक करने वाले (पिबामि) के भक्तिरस को साक्षात् स्वीकार करता हूँ और अपने (धीरम्) धीर स्वरूप का उसे दृश (अभि अचाकशम्) देखता हूँ और रूप में दर्शन कराता हूँ कि (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) परमेश्वर ही सबसे उत्कृष्ट है।

धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०॥

हे (वृषाकपे) आनन्दरस के वर्षणशील आत्मज्ञ ! (धन्व च) निर्जल देश और जल देने वाला कूप (कतिस्वित्) इन दोनों में कितने ही (योजना वि) योजनों का अन्तर है। (संसार तो निर्जन देश है और परमेश्वर जल का कूप है) तब हे जीव ! तू (नेदीयसः) अति निकट विद्यमान परमेश्वर रूपी गृह की शरण जा। इसे ही तू यह वासी बन्धुओं के समान जान। (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) क्योंकि परमेश्वर ही सबसे उत्कृष्ट है।

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१

भा०—(वृषाकपे) हे बलवान् होकर आनन्दरस का पान करने हारे मुमुक्षो ! (पुनः एहि) तू पुनः ईश्वररूप शरण को प्राप्त हो। हम दोनों ईश्वर और प्रकृति मिलकर, पुत्र रूप आत्मा के लिये (सुविता) उत्तम कर्मफल (कल्पयावहै) उत्पन्न करते हैं। (यः एषः) जो तू (स्वप्न-नंशनः) स्वप्न, प्रमाद और मृत्यु को दूर करता हुआ (पथा) इस मोक्षमार्ग से

(पुन-अस्तम् एषि) फिर गृह के समान शरणरूप परमेश्वर को प्राप्त होता है । (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) इस जीव-लोक व प्राकृत से कहीं उत्कृष्ट वह परम ऐश्वर्यवान् प्रभु है ।

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
कस्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२॥

भा०—हे (वृषाकपे) बलवान् तथा आनन्दरस को पान करनेहारे ! हे (इन्द्र) आत्मज्ञान के साक्षात् करने हारे मुमुक्षो ! (यत्) जब (उद्अञ्चः) ऊपर उठने वाले पुरुष (गृहम्) गृह के समान शरण योग्य परमेश्वर को प्राप्त हो जाते हैं तब बतला कि (पुल्वघ = पुरु-अघः) अति पापभोगी, (स्यः मृगः) विषयों को खोजने वाला, (जन-योपनः मृगः इव) तथा मनुष्यों को विध्वंस करने वाले भूखे सिंह के समान लोलुप जीव (क अगन् कम्) कहां चला जाता है ? परमेश्वर सबसे उत्कृष्ट है ।

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् । भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥

भा०—(पर्शुः ह नाम) शरीर के साथ स्पर्श करने वाली मननशील पुरुष की विचारशक्ति (साकम्) एक साथ ही (विंशतिम्) बीस को (ससूव) उत्पन्न करती है । १० इन्द्रियों के स्थूल साधन और १० भीतरी ग्राहक सूक्ष्म इन सबको मननशील आत्मा की विचारशक्ति ही उत्पन्न करती है । (भल) हे जीव ! (त्यस्याः) उस माता का (भद्रं) कल्याण (अभूत्) होता है (यस्याः उदरम्) जिसका कि पेट (आमयत्) ऐसे मननशील पुत्र के प्रसव से पीड़ित होता है । वह परमेश्वर समस्त संसार से उत्कृष्ट है ।

अथ कुन्तापसूक्तानि

(सूक्त १२७–१३६ तक)

[१२७ (१)] स्तुति योग्य पुरुष का वर्णन

तिस्रो नाराशंस्यः। १, २ न्यङ्कुसारिण्यौ निचृदनुष्टुप्। अतः परं त्रिंशद् ऋच इन्द्रगाथाः॥

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे॥ १॥

भा०—हे (जनाः) मनुष्यो ! (इदम् उपश्रुत) आप लोग इस बात का श्रवण करो कि (नराशंसः) प्रजाओं के नेता पुरुषों के गुणों का (स्तविष्यते) यहां वर्णन किया जाता है। (कौरम) पृथ्वी पर रमण या युद्धक्रीड़ा करनेहारे राजन्! सेनापते! हम लोग (षष्टिं सहस्रा) छः हज़ार (नवतिं च) नव्वे पुरुषों को (रुशमेषु) शत्रुओं के नाशकारी सेना के दलों में (आ दद्महे) नियुक्त करें।

६०९० पुरुषों द्वारा चक्रव्यूह का वर्णन पहले कर आये हैं।

नाराशंसीः शंसति। प्रजा वै नाराः, वाक् शंसः। तै० ब्रा० ५।६।३॥

'कौरम = कुरुषु भवः, साधुर्वा कौरवः। कुर्वन्ति इति कुरवः। अथवा कौ पृथिव्यां रमत इति वा। कुरून् युद्धकर्तॄन् माति, मन्यते वा यः सः कौरमः। कुरु = युद्धकर्ता, सैनिक (man of action)।

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः॥ २॥

भा०—(यस्य) जिस राजा के (द्विः दश) बीस, (वधूमन्तः) हिंसा करने वाली शत्रुनाशक शक्तियों से युक्त, (उष्ट्राः) शत्रु को दग्ध करने वाले, (प्रवाहणः) आगे बढ़ने वाले या उत्तम अश्व आदि सवारियों पर चढ़ कर चलने वाले हों और (रथस्य) जिसके रथ की (वर्ष्माः) ऊंची ध्वजाएं

(ईषमाणाः) चलती २ (उपस्पृशः) गगन को छूने वाली (दिवः नि जिहीडते) आकाश या सूर्य का भी तिरस्कार करती हैं ।

एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३ ॥ (१)

भा०—(एषः) वह प्रसिद्ध राजा (शतं निष्कान्) सौ स्वर्णमुद्राएं, (दश स्रजः) दस मालाएं और (अर्वतां) घोड़ों के (त्रिणी शतानि) तीन सौ, (गोनाम्) गौवों, बैलों के (दश सहस्रा) दस हजार (इषाम) इच्छा करने वाले जन को (मामहे) प्रदान करता है ।

(२) विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य

तिस्रो रैभ्य ऋचः । अनुष्टुभः । ५।६ निच्छत् । ६ विराट् ॥

वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः ।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥ ४ ॥

भा०—हे (रेभ) स्तुतिशील ! विद्वन् ! (वच्यस्व वच्यस्व) अच्छे प्रकार वचन बोल, उत्तम प्रवचन कर । (पक्वे) पक्के फलवाले (वृक्षे) वृक्ष पर (शकुनः न) जिस प्रकार पक्षी प्रसन्न होकर मनोहर ध्वनि करता है उसी प्रकार (वृक्षे पक्वे) काटने योग्य इस देह के पक जाने पर या परिपक्व ज्ञान हो जाने पर तू (वच्यस्व वच्यस्व) ईश्वर की खूब स्तुति किया कर और अपने से न्यून, अपरिपक्व ज्ञानवालों को प्रवचन द्वारा प्रसन्नता से उपदेश कर और (जिह्वा) जीभ (क्षुरः) छुरे के समान और (ओष्टे) दोनों होंठ (भुरिजोः इव) कैंची के फलकों के समान (चर्चरीति) निरन्तर चलें ।

प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते ।
अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥ ५ ॥

भा०—(रेभासः) विद्वान् जन और (मनीषाः) उनकी उत्तम मतियां (वृषा गावः इव) सांडों और गौओं के समान (प्र ईरते) सदा आगे बढ़ती

हैं। (उत) और (पुत्रकाः) उनके पुत्र व शिष्य (अमः) घर पर (गाः उप आसते) विद्या की उपासना किया करते हैं।

प्र रे॑भ धीं भ॑रस्व गोविदं॑ वसुविद॑म् ।
देवत्रेमां वाचं॑ श्रीणीहीषुर्नावी॑रस्तार॑म् ॥ ६ ॥ (२)

भा०—हे (रेभ) स्तुतिशील विद्वन्! तू (गोविदं) उत्तम ज्ञानमय परमेश्वर को प्राप्त कराने वाली और (वसुविदम्) समस्त ब्रह्माण्ड और देह में बसने वाले परमात्मा और आत्मा का ज्ञान कराने वाली (धियम्) बुद्धि को (भरस्व) धारण कर और (इषुं न) बाण को जिस प्रकार (अस्ता) धनुर्धर फेंकता है, (देवत्रा) उसी प्रकार तू उपास्य देव वा विद्वानों के निमित्त ही (इमां वाचं) इस वाणी को (श्रीणीहि) प्रेरित कर।

(३) उत्तम राजा का स्वरूप 'परिक्षित्'

अथ चतस्रः पारिक्षित्यः । अनुष्टुभः । ८ भुरिक् ॥

राज्ञो॑ विश्वजनी॒नस्य॒ यो दे॒वोऽमर्त्याँ॒ अति॑ ।
वैश्वान॒रस्य॑ सुष्टु॒तिमा सु॑नोता परि॒क्षितः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(विश्व-जनीनस्य) समस्त जनों के हितकारी, (परि-क्षितः) प्रजा की रक्षार्थ उनके चारों ओर रक्षकरूप से विद्यमान या अपने इर्द-गिर्द प्रजा को बसाने वाले, एवं शत्रु के नाश करने हारे, (वैश्वानरस्य) समस्त नेताओं और प्रजाजनों के स्वामी, (राज्ञः) उस राजा की आज्ञाओं का (आ शृणोत) श्रवण किया करो। (यः) जो कि (देवः) दान-शील एवं विजयशील होकर (मर्त्यान् अति) मनुष्यों से बढ़ा चढ़ा है।

'परिक्षित्'— अग्निर्वै परिक्षित् । अग्निर्हि इमाः प्रजा परि क्षेति अग्नि हि इमाः प्रजाः परि क्षियन्ति । ऐत, ६ । ५ । ६ ॥ अग्नि 'परिक्षित्' है। अग्नि इनके चारों ओर रक्षक है और अग्नि के चारों ओर समस्त प्रजा बसती है।

परिच्छिन्नः क्षेमंमकरोत् तम आसनमाचरन् ।
कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥ ८ ॥

भा०—(परिक्षित्) प्रजा को अपनी रक्षा में बसाने वाला, (कौरव्यः) समस्त कर्मकुशल पुरुषों में श्रेष्ठ राजा (पतिः) पालक होकर, (जायया) स्त्री के समान पृथ्वी की प्रथा के साथ (कुलायं कृण्वन्) कुटुम्बसा बनाता हुआ, (आसनम्) कृष्ण वर्ण के सिंहासन पर बैठकर (नः) हमारा (क्षेमम्) कल्याण (अकरोत्) करे ।

कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ९ ॥

भा०—(परिक्षितः राज्ञः) प्रजा को उत्तम रीति से बसाने हारे, उत्तम रक्षक राजा के (राष्ट्रे) राष्ट्र में (जाया) स्त्री (पतिम्) पति को (वि पृच्छति) विविध प्रकार के प्रश्न पूछती है कि (दधि) दही, ऐश्वर्य, (मन्थम्) मठा, (परि स्रुतम्) सब ओर से प्राप्त मखन इनमें से (ते) तेरे लिये (कतरत्) क्या पदार्थ (आहराणि) ला उपस्थित करूं ?

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधते राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ १० ॥ (३)

भा०—(स्वः अभि इव) सूर्य की धूप में (पक्व यवः) पका जौ आदि अन्न जिस प्रकार (बिलम् परः) खेत की हल से बनी रेखाओं पर (प्र जिहीते) खड़ा हो, उसी प्रकार (स जनः) वह प्रजाजन (परिक्षितः राज्ञः राष्ट्रे) प्रजाओं को सब प्रकार से बसाने और उसकी रक्षा करने वाले राजा के राष्ट्र में (भद्रम्) अत्यन्त सुख प्राप्त कर बढ़ता है ।

(४) राजा को विद्वान् का आदेश और समृद्ध प्रजाएं

अथ चतस्रः कारव्याः । ११–१३ अनुष्टुभः । १४ पथ्यापंक्तिः पंचपदा ।

इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥ ११ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (कारुम्) कर्मण्य पुरुष को (अबुबुधत्) जगाता और चेताता है कि (उत् तिष्ठ) उठ, (चरन्) सबको उपदेश करता हुआ तू (वि चर) विविध देशों में विचरण कर। (मम इव) हम (उग्रस्य) बलवान् की रक्षा में (चर्कृधि) रह कर काम करें। (सर्वः अरिः) समस्त शत्रु भी (ते पृणात्) तेरा पालन करें।

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥ १२ ॥

भा०—(इह गावः) इस राज्य में गौएं, घोड़े और पुरुष खूब पैदा हों। (इह) क्योंकि इस राज्य में (सहस्र दक्षिणः) हजारों का दान देने वाला (पूषा) प्रजा का पोषक पुरुष (निषीदति) विराजता है।

नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोपती रिषत्।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इमाः गावः) ये गौवें (मा रिषत्) पीड़ित न हों (आसां गोपतिः) इनका स्वामी भी (मा रिषत्) पीड़ित न हो। हे (इन्द्र) राजन्! (आसाम्) इन पर (अमित्रयुः) शत्रुरूप से वर्तने वाला (मा ईशत) इनका स्वामी न हो । (स्तेनः मा ईशत) चोर, डाकू स्वभाव का पुरुष भी इनका स्वामी न हो।

उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम्।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥ (४)

भा०—(वयम्) हम (सूक्तेन वचसा) उत्तम रीति से कहे गये वेद के सूक्तरूप वचन से (नरम्) सबके नेता, राजा और परमेश्वर की (उपनोनुमसि) उपासना पूर्वक प्रेम से स्तुति करें। वह (नः) हमारी (अधिध्वनः) उच्च ध्वनि वाली (गिरः) वाणियों का (वनात्) सेवन करे। हम (कदा चन) कभी (न रिष्येम) पीड़ित और दुःखी न हों।

[१२८ (५)] दिशाओं के नामभेद से पुरुषों के प्रकार भेद

अथ पञ्च क्लृप्तयः ॥ अनुष्टुभः । १, ३ निचृतौ ॥

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः ।
सूर्यं चामूं रिशादसस्तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (सभेयः) सभा के कार्य में कुशल, (विदथ्यः) ज्ञानपरिषत् और संग्राम में कुशल (सुत्वा) राष्ट्र को अपने शासन में रखने हारा, (यज्वा) दानशील, यज्ञकर्ता (पुरुषः) पुरुष हो, (तद् अमुम्) उस (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी, (रिशादसम्) हिंसक प्राणियों का नाशकारी पुरुष को ही (देवाः) विजयेच्छु पुरुष (प्राक्) सबसे आगे चलने हारे मुख्य पद पर (अकल्पयन्) नियुक्त करते हैं।

यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति ।
ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (जाम्या) अपनी बहिन से (अप्रथयत्) संग करे और (यत्) जो (सखायम्) मित्र को (दुधूर्षति) मारना चाहता है और जो (ज्येष्ठाय) अपने से बड़े भाई के लिये (अप्रचेताः) उत्तम रीति से आदर नहीं करता (तत्) उसको (अधराम्) नीचे गिरने वाला पतित (इति) ऐसा (आहुः) कहते हैं।

यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः ।
तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जो (भद्रस्य) सज्जन (पुरुषस्य) पुरुष का (पुत्रः) पुत्र (दाधृषिः) प्रतिपक्षियों को दबाने और पराजय करने में समर्थ (भवति) होता है (तत्) उसको, (विप्रः) विविध प्रकारों से प्रजा को सुखों से पूर्ण करने हारा (गन्धर्वः) तथा वाणी को धारण करने हारा विद्वान् (काम्यम्) मनोहर (वचः) वचन का (अब्रवीत्) उपदेश करता है। वह (उदग) उदय को प्राप्त होने वाला होता है।

यश्चं पणि रघुंजिष्ठ्यो यश्चं देवाँ अदाशुरिः ।
धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥

भा०—(यः च) जो (पणिः) व्यापारी होकर (अ-भुजिष्ठः) दूसरों का पालन नहीं करता या स्वयं भी धन का उत्तम रीति से भोग नहीं करता और (यः च) जो (देवान्) धनसम्पन्न होकर (अदाशुरिः) दूसरों को दान नहीं करता, (शश्वताम्) पूज्य (धीराणाम्) बुद्धिमान् पुरुषों के बीच में (अह) निश्चय से (तत्) वह (अपाग्) नीचा पद पाने योग्य अधम है (इति) ऐसा (शुश्रुम) सुनते हैं।

ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः ।
सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥ ५ ॥ (५)

भा०—(ये च) और जो (देवान्) विद्वान् पुरुषों का (अयजन्त) आदर सत्कार करते हैं, (अथो) और (ये च) जो (परा ददुः) खूब दान करते हैं, (दिवम् गत्वाय सूर्य इव) आकाश को प्राप्त हुए सूर्य के समान (मघवानः) वे ऐश्वर्यवान् पुरुष (वि: रप्शन्ते) विविध प्रकारों से शोभा को प्राप्त होते हैं।

(६) योग्य और अयोग्य पुरुषों का वर्णन

अथ षड् जनकल्पाः । अनुष्टुभः ॥

योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः ।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (ब्रह्मणः) ब्रह्म के जानने वाले पुरुष का (पुत्रः) पुत्र होकर (अब्रह्मा) वेद का विद्वान् नहीं है वह (अनाक्ताक्षः) बिना अँजी आंख के समान उत्तम रूप से देखने और विवेक करने में समर्थ नहीं है। वह (अनभ्यक्तः) शरीर पर तेल आदि न लगाये हुए के समान सुन्दर और चित्ताकर्षक या स्वस्थ भी नहीं है। वह (अमणिः) मणि भूषणादि को न पहनने वाले के समान गुणहीन रहता है। वह (अहिरण्यवान्)

सुवर्णादि धारण न करने वाले के समान निर्धन और ज्ञान और गुणों से दरिद्र रहता है। (ता उ ता) ये सब (कल्पेषु) क्रियासामर्थ्यों में (संमिता) समान जाने गये हैं।

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥

भा०—(यः ब्रह्मणः पुत्रः) जो वेदज्ञ का पुत्र, (सु-ब्रह्मा) स्वयं उत्तम वेद का ज्ञाता है वह (आक्ताक्षः) अँजी आंख वाले के समान उत्तम रीति से शास्त्र की चक्षु से युक्त हो जाता है। वह (सु-अभ्यक्तः) गात्र में तैल आदि लगाने वाले के समान सुन्दर और स्वस्थ रहता है। वह (सु-मणिः) उत्तम मणि को धारण करने वाले के समान सुशोभित और (सु-हिरण्यवान्) उत्तम सुवर्ण आदि के स्वामी के समान ज्ञान का धनी होता है। (ता उ ता) वे सब जन (कल्पेषु) कर्मसामर्थ्यों से (सं-मिता) समान हैं।

अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।
अयभ्या कन्याकल्याणी तोता कल्पेषु संमिताः ॥ ८ ॥

भा०—(वेशन्ता) तालाब (अप्रपाणा) जिसका जल पीने योग्य न हो, अथवा जिसमें घाट उत्तम न हो, (रेवान्) वह धनी पुरुष (यः च) जो (अप्रददिः) कभी दान नहीं करता है और (कन्या) जो कि (कल्याणी) रूपादि से सम्पन्न तथा कल्याण लक्षणों से युक्त होकर भी (अयभ्या) मैथुन के योग्य न हो। (ता उ ता) वे सब (कल्पेषु) कर्मसामर्थ्यों में (सं-मिता) समान हैं।

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः ।
सुयभ्या कन्याकल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ९ ॥

भा०—(सु-प्रपाणा च वेशन्ता) उत्तम पान करने योग्य जल व घाट वाला सरोवर, (रेवान्) धनाढ्य पुरुष (यः च) जो (सु-प्रददि) उत्तम सात्विक दान देने वाला और (कल्याणी कन्या) कल्याणकारी लक्षणों से

युक्त कन्या जो (सु-यभ्या) सुखपूर्वक मैथुन करने योग्य अर्थात् गृहस्थ धर्मपालन करने योग्य है (ता उ ता) वे सब (कल्पेषु) कर्मसामर्थ्यों में (सं-मिता) समान बतलाये गये हैं अर्थात् वे तीनों उत्तम और ग्रहण करने योग्य हैं।

परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः।
अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ १० ॥

भा०—(महिषी च) और रानी जो (परि-वृक्ता) पति द्वारा छोड़ दी गई है, (च) और (स्वस्त्या च) कुशलपूर्वक (अयुधिंगमः) युद्ध में न जाने वाला भीरु सैनिक, (अश्वः) घोड़ा, (अनाशुः) जो तेज़ न हो, (अयामी) और जो पुरुष किसी नियम में न रह सके (ता उ ता) वे सब (कल्पेषु संमिता) कर्मसामर्थ्यों में समान हैं। ये सब कार्य के अवसर पर त्यागने योग्य हैं।

वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः।
श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥ (६)

भा०—(महिषी च) और रानी जो (वावाता) पति की प्रेमपात्र हो और वह सैनिक जो (स्वस्त्या च) कुशलपूर्वक (युधिंगमः) युद्ध में गमन करे, (सु-आशुः अश्वः) वह अश्व जो उत्तम गति वाला हो और (सु-यामी) सुख से नियम में रहने वाला संयमी पुरुष (ता उ ता) ये सब (कल्पेषु) कर्म-सामर्थ्यों में (संमिता) समान हैं। ये काम के अवसर पर ग्रहण-योग्य हैं।

(७) वीर राजा का कर्त्तव्य

अथातः पञ्च इन्द्रगाथाः ॥

यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः।
विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यक्षाय कल्पते ॥ १२ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार हे ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (दाशराज्ञे) तू दशों दिशाओं के राजाओं के बीच (मानुषं) मनुष्य समूह में (विगाहथाः)

विचरता है। तू हो (सर्वरमा) सबको (वरूथः) घर के समान शरण देने वाला और आपत्ति विपत्तियों और शत्रु के आक्रमणों को रोकने वाला (आसीत्) होता है (सः इ) वह ऐसा पुरुष ही (यज्ञाय) प्रजापति पद के योग्य (कल्पते) होता है।

त्वं वृ॒षा॒क्षुं म॑घव॒न्नम्रं॑ म॒र्याक॑रो॒ रविः॑ ।
त्वं रौ॑हि॒णं व्या॑स्यो॒ वि वृ॒त्रस्या॒भिन॒च्छिरः॑ ॥ १३ ॥

भा०—हे (मघवन्) राजन् ! हे (मर्यः) नेताओं में कुशल ! (त्वं) तू (वृषा) बलवान् इन्द्रियों वाले (रविम्) राजस भाव में लिप्त (वृषाक्षुं) प्रबल शत्रु को भी (नम्रम्) नम्र (अकरः) करता है और (त्वं) तू (रौहिणं) वट के समान दृढ़ मूलों पर स्थित राजा को भी (वि आस्यः) विविध उपायों से उखाड़ डालता है और (वृत्रस्य) मेघ के समान फैलने और राष्ट्र के घेरने और शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने वाले शत्रु के भी (शिरः) शिर को (अभिनत्) तोड़ डालता है।

यः पर्व॑तान् व्यद॑धा॒द् यो अ॒पो व्य॑गाहथाः ।
इन्द्रो॒ यो वृ॑त्र॒हान्म॒हं तस्मा॑दिन्द्र॒ नमो॑ऽस्तु ते ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो तू (पर्वतान्) पर्वतों के समान दृढ़, अभेद्य शत्रुओं को भी (वि अदधाः) छिन्न भिन्न करता है और (यः) जो (अपः) जलों या नदियों के या समुद्र के समान अपार सेनाप्रवाह में भी (वि अगाहथाः) विविध रूपों से विचरता है, (यः) और जो तू (इन्द्रः) शत्रुविदारक होकर (महान्) बड़े भारी (वृत्रस्य) घेरने वाले शत्रु का नाश करने हारा है (तस्मात्) इस कारण से (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् (ते नमः अस्तु) तुझे हमारा आदर पूर्वक नमस्कार है।

पृ॒ष्ठं धाव॑न्तं ह॒र्योरौच्चैः॑ श्रव॒सम॑ब्रुवन् ।
स्व॒स्त्यश्व॒ जैत्रा॒येन्द्र॒मा व॑ह सु॒स्रज॑म् ॥ १५ ॥

भा०—(औच्चैः श्रवसम्) ऊंचे कानों वाले, (धावन्तं) वेग से दौड़ते हुए, (पृष्ठि) वेगवान् अश्व को (अब्रुवन्) लोग कहते हैं कि हे (अश्व)

वेगवान् अश्व ! तू (जैत्राय) विजय करने के लिये (सु-स्रजम्) उत्तम माला धारण करने वाले, या उत्तम सेनाव्यूह की रचना करने वाले (इन्द्रम्) सेनापति वीर पुरुषों को (स्वस्ति आ वह) कुशलपूर्वक लेजा, उसको सवारी दे।

ये त्वां श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम्।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥ १६ ॥ (७)

भा०—(हर्योः) वेगवान् अश्वों में से (दक्षिणम्) अति वेगवान् और बलवान् (औच्चैः श्रवसम्) ऊंचे कान के घोड़े को शुभ कीर्ति वाले राजा लोग (युञ्जन्ति) रथ में लगाते हैं। (सः) वह उत्तम अश्व (देवानां पूर्वतमम्) विजिगीषु पुरुषों में सबसे श्रेष्ठ (इन्द्रम्) बलवान् राजा को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (महीयते) पूजित होता है।

इति कुन्तापसूक्तम्

[१२९] अध्यात्म तत्त्व

अथ ऐतशप्रलापः ॥ एतश ऋषिः । अग्नेरायुर्निरूपणम् ॥ अग्नेरायुर्यज्ञस्यायात यामं वा षट्सप्ततिसंख्याकपदात्मकं सूक्तम् ॥

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥ १ ॥ प्रतीपं प्राति सुत्वनम् ॥ २ ॥
तासामेका हरिक्निका ॥ ३ ॥ हरिक्निके किमिच्छसि ॥ ४ ॥
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥ ५ ॥ क्वाहतं परास्यः ॥ ६ ॥
यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥ ७ ॥
परि त्रयः ॥ ८ ॥ पृदाकवः ॥ ९ ॥ शृङ्गं धमन्त आसते ॥ १० ॥
अयन्महा ते अर्वाहः ॥ ११ स इच्छकं सघाघते ॥ १२ ॥
सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति ॥ १३ ॥
पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥ १४ ॥ पल्प बद्ध वयो इति ॥ १५ ॥

बद्धं वो अघा इति ॥ १६ ॥ अजागार केविका ॥ १७ ॥
अश्वस्य वारो गोशपद्यके ॥ १८ ॥
श्येनीपती सा ॥ १९ ॥ अनामयोपजिह्विका ॥ २० ॥

१. ये भोग करने की वृत्तियें सब तरफ भाग रही हैं।

२. और उनके प्रेरक आत्मा से प्रतिकूल उससे विपरीत दिशा में जा रही हैं।

३. उनमें से एक 'हरिक्निका' सबसे हर्त्ता आत्मा की दीप्तिरूप चिति कला है।

४. हे 'हरिक्निके' आत्मा की चितिकले ! तू क्या चाहती है।

५. मैं श्रेष्ठ तथा त्रिविध दुःखों से बचाने वाले उस तेजोमय आत्मा को चाहती हूँ।

६. (क आह तं) उसका कौन तुझे उपदेश करे ? (परा स्यः) वह तो बहुत दूर अवाङ्-मनसगोचर है।

७. वह वहां है जहां तीन 'शिंशपा' उस परम सुख सत्ता के पालन करने वाली तीन अनादि शक्तियां विद्यमान हैं।

८. वे तीनों बहुत दूर हैं।

९. वे तीनों पूर्ण सामर्थ्य वाले हैं।

१०. सब (शृङ्गं) मूल कारण को प्राप्त हुए रहते हैं।

११. वे गति में महान् है और शरीर में जुते हुए हैं।

१२. वह इच्छाशील लालची व्यक्ति पर हंसता है।

१३. वह हंसता है जो कि इन्द्रियों की हिंसामय प्रवृत्तियां हैं उन पर, तथा इन्द्रियों की चञ्चलता पर।

१४. हे आत्मन् ! (पुंसाम्) इस शरीर में तू क्या नीच गति चाहता है ?

१५. क्या मांसभक्षी तथा पिंजरे में बन्धे पक्षी की न्याईं तू है ?

१६. हे बन्धे आत्मन् ! तू इस हालत में तो पाप ही पाप है ।

१७. अजा अर्थात् प्रकृति के हे आगार अर्थात् आश्रय बने आत्मन् ! प्रकृति तो (सांसारिक) सुख में बान्धने वाली है ।

१८. तू घुड़सवार अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी होकर इन्द्रियों के खुरों में कट-फट रहा है ।

१९. वह प्रकृति तो विविध वर्णों की स्वामिनी है ।

२०. वह प्रकृति तो राग द्वेष आदि रोगों से रहित को भी चाट जाने वाली है ।

[१३०] अध्यात्म तत्त्व

को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥ १ ॥ को असिद्याः पयः ॥ २ ॥
को अर्जुन्याः पयः ॥ ३ ॥ कः कार्ष्ण्याः पयः ॥ ४ ॥
एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥ ५ ॥ कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥ ६ ॥
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ॥ ७ ॥ अकुप्यन्तः कुपायकुः ॥ ८ ॥
आमणको मणत्सकः ॥ ९ ॥ देव त्वप्रतिसूर्य ॥ १० ॥
एनश्चिपङ्क्तिका हविः ॥ ११ ॥ प्रदुद्रुदो मघाप्रति ॥ १२ ॥
शृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥ मा त्वाभि सखा नो विदन् ॥ १४ ॥
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥ इरावेदुमयं दत ॥ १६ ॥
अथो इयन्नियन्निति ॥ १७ ॥ अथो इयन्निति ॥ १८ ॥
अथो श्वा अस्थिरो भवन् ॥ १९ ॥ उयं यकांशलोकका ॥ २० ॥

१. हे स्वामिन् कौन दुःखों के बहुत से बाण फेंकता है, चला रहा है ।

२-४. रजोमयी प्रकृति का फल क्या है ? सत्वमयी प्रकृति का फल क्या है ? तमोमयी प्रकृति का फल क्या है ?

५. इस प्रश्न को इस विद्वान् से पूछ ।

६. आश्चर्यमय और परिपक्व ज्ञानवान् पुरुष से यह प्रश्न पूछ ।

७. और उससे कह कि हमारे जितने भी कुत्सित कर्म हैं उनसे हमें पृथक् कर।

८. हम कोप नहीं करते, क्रोध करने वाला कुत्सित होता है।

९. तू मननशील है और मननशील को शक्ति देता है।

१०. हे देव! हे सूर्य के प्रतिरूपक!

११. पापों के ढेर की हम आहुति दे देते हैं।

१२. तू धनियों को खदेड़ने वाला है।

१३. हे उत्पन्न हुई काम वासना!

१४. (नः सखा) हमारे मित्र तुझे प्राप्त हों।

१५. सर्ववशकारिणी ब्रह्मशक्ति के पुत्र की शरण में सभी आते हैं।

१६. पृथ्वी में ज्ञानमय व्यक्ति के प्रति दान दिया करो।

१७-१८. और आ २ कर इसे दान दिया करो।

१९. और अस्थिर व्यक्ति कुत्ते की न्याईं हो जाता है।

२०. और देखो, जीवन के किस अंश में लोक लगा हुआ है।

[१३१] अध्यात्म तत्त्व

आमिनोनिति भद्यते ॥ १ ॥ तस्य अनु निभञ्जनम् ॥ २ ॥
वरुणो याति वस्वभिः ॥ ३ ॥ शतं वा भारती शवः ॥ ४ ॥
शतमाश्वा हिरण्ययाः शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ॥ ५ ॥
अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥ शफेन इव ओहते ॥ ७ ॥
आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥ वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥ ९ ॥
इदं मह्यं मदूरिति ॥ १० ॥ ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥ ११ ॥
पाक बलिः ॥ १२ ॥ शक बलिः ॥ १३ ॥
अश्वत्थ खदिरो धवः ॥ १४ ॥ अरदुपरम ॥ १५ ॥

अयो॑ ह॒त इ॑व ॥ १६ ॥ व्या॒प पूरु॑षः ॥ १७ ॥
अदू॑हमि॒त्यां पूष॑कम् ॥ १८ ॥ अत्य॑र्ध॒र्च॒ पर॑स्व॒तः ॥ १९ ॥
दौव॑ ह॒स्तिनो॑ दृ॒ती ॥ २० ॥

१. मैंने आत्मा को जान लिया है जो ऐसा कहता है।

२. उसका फिर दुःख कट जाता है।

३. परमात्मा ऐश्वर्यों के साथ उसके समीप जाता है।

४–५. और सैकड़ों स्तुतियां तथा बल उसे प्राप्त होते हैं। सुवर्ण से लदे सैंकड़ों घोड़े उसे प्राप्त होते हैं। सुवर्ण से भरे सैंकड़ों रथ उसे प्राप्त होते हैं। सैंकड़ों सुवर्णमय हौदे तथा झूले उसे प्राप्त होते हैं। तथा सैंकड़ों सुवर्णमय हार तथा सिक्के उसे प्राप्त होते हैं।

६. बिना हल जुते खेत की न्याईं वर्तमान, संसार में सोए पड़े हे व्यवहारी जीव !

७. वह परमात्मा तो अनायास उखेड़ देता है जैसे कि खुर के प्रहार से कोई वस्तु।

८. आ, भक्ति करने पर वह जगज्जननी नत हो जाती है, झुक जाती है।

९. भक्ति में निष्ठा वाले यह ख्याल नहीं करते कि

१०. संसार की अमुक २ वस्तु मुझे आनन्ददायक है।

११. वे वृक्षों के समान स्थिर समाहित विराजते हैं। क्योंकि उनके साथ परमात्मा सदा स्थित है।

१२. और वे कहते हैं कि हे परिपक्व ज्ञान वाले ! तेरे प्रति यह भेंट है।

१३. तथा हे शक्तिशाली ! तेरे प्रति यह भेंट है।

१४. वह 'अश्वत्थ' सनातन व्याप्त होकर विराजने वाला है, वह 'खदिर' सदा स्थिरता से विद्यमान नित्य है। वह 'धव' सब दुःखों और पाप मलों को नाश करने वाला, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव है।

१५. इसलिये हे, संसार के व्यवहारी ! तू उपराम वृत्ति वाला हो जा ।

१६. संसार के व्यवहारों में सोए हुए की न्याईं और मरे हुए की न्याईं हो जा ।

१७. और समझ कि वह पूर्ण परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है ।

१८. और यह समझ कि मैं उस पोषक शक्ति से अपने सामर्थ्य का दोहन कर रहा हूँ ।

१९. वह परमस्वरूपवान्, महान् समृद्ध है, उसी की तू अर्चना कर।

२०. (हस्तिनः) हाथी के दोनों दांतों के समान आत्मा के दोनों ज्ञान और कर्म बन्धन काटने वाले हैं ।

[१३२] अध्यात्म व्याख्या

आदलाबुकमेकंकम् ॥ १ ॥ अलाबुकं निखातकम् ॥ २ ॥

कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥ तद् वात उन्मथायति ॥ ४ ॥

कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥ उग्रं वनिषदाततम् ॥ ६ ॥

न वनिषदनाततम् ॥ ७ ॥ क एषां कर्करी लिखत् ॥ ८ ॥

क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥ ९ ॥ यदीयं हनत् कथं हनत् ॥ १० ॥

देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥ पर्यागारं पुनः पुनः ॥ १२ ॥

त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥ १३ ॥ हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥ १४ ॥

द्वौ वा ये शिशवः ॥ १५ ॥ नीलशिखण्डवाहनः ॥ १६ ॥

१. तदनन्तर वह एक आत्मा तूम्बे के समान संसारसागर पर तैरता है ।

२. वह तूम्बे के समान आत्मा तदनन्तर प्रकृति में गड़ जाता है ।

३. वह क्रियाशील आत्मा प्रकृति में गड़ जाता है ।

४. उसको 'वात' प्राण हिलाता डुलाता है।

५. वह अपना उसे आश्रय बना लेता है।

६. वह उग्र होकर व्यापक ऐश्वर्य का भोग करता है।

७. स्वल्प का भोग नहीं करता।

८. इन प्राणगण में से उस कर्त्ता को कौन उखाड़ता है, मुक्त करता है ?

९. इनमें से कौन दुन्दुभि अर्थात् भीतरी नाद को बजाता है।

१०. जो बजाता है वह कैसे बजाता है ?

११. आत्मा की चितिशक्ति बजाती है, तो वह कहां बजाती है ?

१२. वह आत्मा पुनः अपने आश्रय में आता है अर्थात् पुनः २ देह में आता है।

१३. सर्व दुःखदाहक के तीन नाम हैं।

१४. एक 'हिरण्य' अर्थात् वह हित और रमणीय सत्वगुण स्वामी है, ऐसा एक नाम कहा जाता है।

१५. दो और नाम हैं—यह शिशु बुद्धि के लोग कहते हैं।

१६. नीलवाहन और शिखण्डवाहन। अर्थात् वह तमोगुणमयी और रजोगुणमयी प्रकृति का वाहन है।

इस प्रकार ऐतश मुनि दृष्ट 'प्रलाप' अर्थात् उत्कृटसूक्तों की आध्यात्मिक योजना है। वस्तुतः यह सूक्त बड़े रहस्यमय हैं इन पर और भी अधिक विचार की आवश्यकता है।

[१३३] ब्रह्म प्रकृति विषयक ६ पहेलियां

अथ प्रवल्हिकाः षट्।

वित॑तौ कि॒रणौ॒ द्वौ तावा॑ पिनष्टि॒ पूरु॑षः।
न वै कु॑मारि॒ तत् त॒था यथा॑ कुमारि॒ मन्य॑से ॥ १ ॥

भा०—(किरणौ) पीस २ कर फेंकने वाले चक्की के दो पाटों के समान आकाश और पृथिवी (विवतौ) अति विस्तृत हैं। (तौ) उन दोनों

को (पुरुषः) पुरुष अकेला ही (आ पिनष्टि) निरन्तर चक्की के समान पीसता चलाता है। हे (कुमारिः) नवयौवन वाली कन्ये! (तत्) वह ब्रह्मतत्व (तथा-न) वैसा सरल नहीं है (यथा) जैसा कि तू मानती है।

मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते। न० वै० ॥ २ ॥

भा०—हे शरीरपुरी में बसने वाले जीव! तेरी (मातुः) मातारूप ब्रह्मशक्ति से अनृत रूप दो विक्षेपक वृत्तियां निवृत हुई हैं।

निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे। न वै० ॥ ३ ॥

भा०—हे (मध्यमे) बीच में स्थित ब्रह्मशक्ते! तू (कर्णकौ) क्रियाशील दोनों को अर्थात् जीव और प्रकृति को वश करके (निः आयच्छसि) ऐसे बांध देती है जैसे रस्सियों के दो छोर पकड़ कर बीच में गांठ लगादी जाती है। (न वै० इत्यादि पूर्ववत्)

उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि। न वै० ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर! जिस प्रकार (उत्तनायै शयनायै) उतान लेटी हुई स्त्री को पुरुष भोग करता है उस प्रकार तू प्रकृतिरूप स्त्री को भोग नहीं करता और न प्रलभ में सोई हुई प्रकृति का तू भोग करता है। (अवगूहसि) तो भी तू प्रकृति के सर्वाङ्गों में व्याप रहा है, उसके कण २ में रम रहा है। (न वै० इत्यादि पूर्ववत्)

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि। न वै० ॥ ५ ॥

भा०—(श्लक्ष्णायाम्) स्नेह वाली प्रकृति में तू छिपा हुआ सा विद्यमान रहता है।

अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥

भा०—(श्लक्ष्णम्) चिक्कण पदार्थ (लोमवति ह्रदे अन्तः) केशों के समान शैवाल वाले तालाब में जिस प्रकार (अव भ्रंशत्) नीचे फिसल सा

जाता है, उसी प्रकार (श्लक्ष्णम्) ब्रह्म भी (ह्रदे) जलाशय के समान इस सलिलमय प्रकृतितत्त्व में (अवभ्रंशत्) नीचे उतर कर उसमें प्रविष्ट या व्याप्त हो जाता है। (न वै० कुमारि० इत्यादि पूर्ववत्)

[१३४] जीव, ब्रह्म, प्रकृति

अथ षट् आजिज्ञासेन्याः ॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् । अरांलागुदभर्त्सथ ॥ १ ॥

भा०—(इह) इस जगत् में (इत्था) इस प्रकार (प्राग्) पूर्व (अपाग्) पश्चिम (उदग्) उत्तर और (अगराग्) दक्षिण में तथा अन्तरालय में सबका भरण पोषण करो।

० वत्साः पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥

भा०—बच्चे जब पुरुष बन जावें तो उन्हें ऐसी शिक्षा दो।

० स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥

भा०—नहीं तो गृहस्थी की रसोई भी (वि लियते) विलीन हो जाती है।

० स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥

भा०—वह बिल्कुल ही (लीयते) विलीन हो जाती है।

० आष्टे लाहणि लीशाथी ॥ ५ ॥

भा०—हे प्राप्त वस्तु की हत्या करने वाली! तेरी रसोई विलीन हो गई थी, और सो गई थी। अर्थात् दूसरों को न देकर स्वयमेव रसोई का भोग करने से प्राप्त वस्तु भी छीन ली जाती है और पकी पकाई रसोई भी पड़ी रहती है।

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् । अश्लिली पुच्छिलीयते ॥ ६ ॥

भा०—इस प्रकार इस जगत् में सब दिशाओं में तुम सबका भरण पोषण किया करो। अपनी ही इन्द्रियों में लीन व्यक्ति तो पूंछ वाले पशु के समान है।

[१३५] जीव, ब्रह्म, प्रकृति

भुगित्यभिगतः । शलित्यपक्रान्तः । फलित्यभिष्ठितः ।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो दैव ॥ १ ॥

भा०—(भुक्) यह जीवात्मा भोक्ता है (इति) इस रूप से वह (अभिगतः) इस देह में आ गया है (शल् इति) जब शरीर जीर्ण हो जाता है तब वह 'शल्' शरीरान्तरगामी आत्मा होने से आप से आप शरीर से (अपक्रान्तः) निकल भागता है । कर्मफल भोगने के लिये जीव इस शरीर में स्थित होता है। हे वेदोपदेष्टः ! हे देवाधिदेव ! हम उठते हैं और इस सिद्धान्त की डौंडी पीटते हैं ।

कोशबिले रजनि ग्रन्थोर्धानमुपानहि पादम् ।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् ॥ २ ॥

भा०—कोश के बिल में जैसे ख़ज़ाना रख दिया जाता है, रस्सी में जैसे गांठ लगा दी जाती है, जूते में जैसे पैर रख दिया जाता है इसी प्रकार जीव शरीर में स्थित हो जाता है । वह उत्तम जन्म, उत्तम बन्धुओं और उत्तम माता को प्राप्त होकर सदाचार के मार्ग में चलता है ।

अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् । पिपीलिका वटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोथामो दैव ॥ ३ ॥

भा०—जैसे तुम्बा, घृतबिन्दु, पीपल का पत्ता, कीडी, वट की कौंपल जल पर तैरते रहते हैं, या विद्युत् मेघ में रहती है, या किरणें (सुपर्ण) आकाश में पग रखती हैं, या गौ का खुर जैसे पृथिवी पर ऊपर ही ऊपर रह जाता है इसी प्रकार जीव शरीर में रहता है । हे वेदोपदेष्टः ! हे देवाधिदेव ! हम उठते हैं और इस सिद्धान्त की डौंडी पीटते हैं ।

वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्र चर ।
सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ॥ ४ ॥

भा०—(इमे देवाः) ये विषयों में क्रीड़ा करने वाले प्राण, चक्षु आदि इन्द्रियगण (वि अक्रंसत) विविध विषयों में दौड़ते हैं। हे (अध्वर्यो) अहिंसक अथवा अविनाशिन् आत्मन्! तू (क्षिप्रं प्रचर) अति शीघ्र इन सबका प्रमुख होकर चल। तू (गवाम्) समस्त इन्द्रियों का (सुपदम् इद्) सच्चा आश्रय स्थान (असि) है और तू (प्र-खुदअसि) सबसे बढ़कर आनन्द लेने वाला है। तू आनन्द का अनुभव कर।

पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोथामो दैव।
होता विष्टीमेन जरितरोथामो दैव॥ ५॥

भा०—(पत्नी) संसार का पालन करने वाली प्रकृति (यक्ष्यमाणाः) परमेश्वर से संगत होती हुई (पत्नी इव दृश्यते) पालिका के समान दिखाई देती है और (एनाम् विष्टः) इसके भीतर प्रविष्ट परमेश्वर इसमें बल आधान करने वाला होकर (होता) उसका वशकर्त्ता है। हे (जरितः दैव) स्तुतिशील विद्वन्! हम (आवदामः) इसी प्रकार जानते हैं, अन्यों को प्रवचन करते हैं।

दक्षिणा और विद्वानों का सत्कार

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन्॥ ६॥

भा०—(जरितः अङ्गिरोभ्यः) हे विद्यादि के उपदेष्टा! (आदित्या ह) प्रजा से कर आदि लेने वाले राजा और लेनदेन करने वाले वैश्यगण, विद्वान् पुरुषों को (दक्षिणाम्) दक्षिणा (अनयन्) प्रदान करें। (ताम् ह) उसको (प्रति आयन्) विद्वान् जन स्वीकार कर लेते हैं।

तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः।
अहानेतरसं न विचेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः॥७॥

भा०—(तां) उस दक्षिणा को (जरितः) विद्वान् लोग (न प्रति अगृभ्णन्) स्वीकार नहीं भी करते। दिन के बिना जैसे विविध प्रकार की चेतना

काम नहीं करती इसी प्रकार यज्ञों के बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते इसलिये दक्षिणा तो स्वीकार करनी ही चाहिये ।

उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्जविष्ठः ।
उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥ ८ ॥

भा०—(उत) और वह (श्वेतः) आदित्य के समान तेजस्वी विद्वान् (आशुपत्वा) वेग से मार्ग पर जाने में कुशल है । (उतो) और (पद्याभिः) गमन करने की नाना क्रियाओं और मार्गों से (जविष्ठः) अतिवेग से जाने में कुशल है । (उत) और (ईम्) इसको (आशु) बहुत ही शीघ्र (मानम्) सत्कार पालता है ।

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥

भा०—हे (अङ्गिरः) ज्ञानवन् ! (आदित्याः रुद्राः वसवः) विद्वान्, वीरगण और सामान्य प्रजा सभी तेरी (ईलते) स्तुति करते हैं । तू (इदं राधः) यह धनैश्वर्य (प्रति गृभ्णीहि) स्वीकार कर । (इदं राधः) यह हमारा दिया धन (विभु) विविध सुखों का उत्पादक और विविध कार्यों से प्राप्त है और (प्रभु) उत्तम फलजनक और उत्तम कार्यों से प्राप्त है (इदं राधः) यह धन (बृहत्) बहुत बड़ा और (पृथु) विस्तृत है ।

देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।
युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥

भा०—(देवाः) दानशील पुरुष (आ) सब तरफ से (पुरं) धनशाली (ददतु) दान प्रदान करें । (तत्) वह धन, हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) तुम लोगों को (सु-चेतनम्) उत्तम ज्ञान कराने वाला (अस्तु) हो और (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (युष्मान्) तुमको (अस्तु) प्राप्त हो और आप लोग उसको (प्रति गृभायत एव) स्वीकार कर लिया करो ।

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।
विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (पारावतेभ्यः) परब्रह्म में शरण प्राप्त करने वाले ब्रह्मज्ञानियों को (शर्म) सुखकर (हव्यं) अन्न और धन (रिणाः-ऋणः) प्रदान कर और (दूरश्रवसे) दूर तक परमपद तक श्रवण करने वाले बहुश्रुत, अतिविख्यात, यशस्वी, अथवा उच्चारण से वेद पाठ करने वाले या उत्तम व्याख्याता, (स्तुवते) स्तुति करने हारे उपदेष्टा (विप्राय) मेधावी विद्वान् को भी (वसु) धन (नि-वह) प्रदान कर।

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् पुरुष ! (त्वम्) तू (छिन्नपक्षाय) कटे पंख वाले (कपोताय) कबूतर के समान (च्छिन्नपक्षाय) आश्रय से रहित, (वञ्चते) तथा भ्रमण करने वाले (कपोताय) नाना प्रकार के ज्ञान से युक्त विद्वान् अतिथि को (श्यामाकम्) सांवा चावल, (पक्वं) पक्व अन्न और (पीलु च) आश्रय और (वाः) जल और (बहुः) बहुत से पदार्थ (अस्मै) आदरार्थ (अकृणोः) दिया कर ।

अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया ।
इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥ १३ ॥

भा०—(अरंगरः) अति उत्तम उपदेष्टा पुरुष (वरत्रया) वरण योग्य दक्षिणा द्वारा (वरत्रया बद्धः) मानो रस्सी से बंधकर, (वावदीति) निरन्तर उपदेश ही करता है । वह (इराम्) अन्न आदि देने वाले की (प्रशंसति) प्रशंसा करता है और (अनिराम्) न देने वाले निर्धन को (अप सेधति) छोड़कर चला जाता है ।

[१३६] राजा, राजसभा के कर्त्तव्य

अथ षोडश आहनस्या ऋचः ।

यद॑स्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपात॑सत् ।
मुष्काविद॑स्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १ ॥

भा०—(यद्) जब (बहुभेद्याः) पाप को नाश करने वाली (अस्याः) इस प्रजा या पृथ्वी का (कृधु) छोटा या (स्थूलम्) बड़ा भाग भी (उप अतसत्) विनष्ट होता है, (अस्याः) तब इसके (मुष्कौ इव) चोर-वत् पापी स्त्री-पुरुष (गोशफे शकुलौ इव) छोटे से स्थान में फंसी मछलियों के समान (एजतः) कांपा करते हैं ।

यदा॑ स्थूलेन॒ पस॑साणौ॒ मुष्का॒ उपा॑वधीत् ।
विष्व॑ञ्चा॒वस्या॑ वर्ध॑तः॒ सिक॑तास्वेव॒ गर्द॑भौ ॥ २ ॥

भा०—(यदा) जब राजा (स्थूलेन) अधिक बड़े (पससा) राज्य-बन्धन द्वारा (अणौ) छोटे २ अपराध पर भी (मुष्कौ) चोर स्त्री-पुरुषों को (उप अवधीत्) दण्ड देता है, तब (अस्याः) इस प्रजा के (गर्दभौ) अति आकांक्षा वाले (विश्वञ्चौ) तथा सर्वत्र फैले हुए प्रजा के नरनारी (सिकतासु इव) बालुकामय देशों में अश्वी के समान (वर्धत) बढ़ते हैं।

यद॑ल्पिकास्व॑ल्पिका क॒र्क॑न्धूकेव॒ पद्य॑ते ।
वा॒स॒न्ति॒कमि॑व॒ तेज॑नं॒ यन्त्य॒वाता॑य वित्पति॑म् ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जब (अल्पिका) थोड़ी और (स्वल्पिका) बहुत ही छोटी प्रजा हो तो वह (कर्कन्धूका इव) झरबैरी के समान (पद्यते) समझी जाती है। तब वह वित्तपति राजा को अपनी रक्षा के लिये प्राप्त होती है। जैसे कि शीतार्त लोग वसन्त के सूर्य को सेवन करते हैं।

यद् दे॒वासो॑ ल॒लाम॑गुं॒ प्रवि॑ष्टीमि॒नमावि॑षुः ।
स॒क्थ॒ना दे॑दिश्यते॒ नारी॑ स॒त्यस्या॑क्षि॒भुवो॒ यथा॑ ॥ ४ ॥

भा०—(यद्) जब (देवासः) विजयशील पुरुष (ललामगुम्) सुन्दर गति वाले (प्रविष्टीम् इनम्) उत्तम प्रजा के स्वामी को (आ-विषुः) प्राप्त होते हैं तब (यथा) जिस प्रकार (अक्षि भुवः सत्यस्य) आंख से देखे सत्य को विशेष प्रमाण योग्य माना जाता है, उसी प्रकार (नारी) मनुष्यों की बनी सभा में (सक्थना) संघशक्ति से जो (देदीश्यते) बात निर्धारित हो जाती है वह भी प्रमाण मानने योग्य हो जाती है।

महानग्न्यंतृप्नद्विमोक्रदस्थां नासरन्।
शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥ ५ ॥

भा०—(महानग्नी) वह सभा (अतृपद्) प्रजा को तृप्त करती है, (विमुक्तः) किसी को विमुक्त करती है और किसी को रौंदती है, आराम न करती हुई काम करती है। यह मानों शक्ति की खान है। इस सभा के होते प्रजा अपने २ भोजन को प्राप्त कर सकती है। सत्तु आदि प्राप्त कर सकती है।

महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत्।
यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवेति ॥ ६ ॥

भा०—(महानग्नी) महासभा (उलूखलम् अतिक्रामन्ता) ओखली को दृष्टान्तरूप से प्राप्त करती हुई कहती है कि (वनस्पते) जिस प्रकार काष्ठ के बने ओखल के बीच में धान डालकर कूटते हैं उसी प्रकार हे राजन्! सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये सभा के बीच में हम तत्व को (निघ्नन्ति) खूब कूटते पीसते हैं, विचारते हैं। इसलिये (तथैव इति) उसी को वैसा ही निश्चित जानकर स्वीकार करते हैं।

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोथाप्यभूभुवः।
यथैव ते वनस्पते पिप्यति तथैवेति ॥ ७ ॥

भा०—(महानग्नी) राजसभा (उपब्रूते) यह कहती है कि हे (वनस्पते) प्रजाओं के पालक! (अथापि) जब (भ्रष्टः) अपने न्यायमार्ग से या सत्याचरण और विवेक से तू (भ्रष्टः अभूभुवः) भ्रष्ट हो जाय तो भी ओखल में (यथैव) जिस प्रकार धान्यों को (पिषन्ति) पीसते कूटते हैं और दाना निकालते हैं (तथैव) उसी प्रकार (ते) तेरे उपादेय तत्व को भी हम (पिंषयति) पीसते हैं तेरे किये पर पुनः २ विचार करते और सत्य को स्वीकार करते हैं।

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥ ८ ॥

भा०—(महानग्नी) बड़ी राजसभा (उपब्रूते) कहती है कि (अथापि) हे राजन् ! हम तुझे इतना परिपक्क कर देते हैं कि (यथा) जिस प्रकार सूर्य पृथिवी वासियों को दग्ध कर स्वयं आकाश में दग्ध नहीं होता इसी प्रकार तू भी हो।

महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः।
इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पं शूर्पं भजेमहि ॥ ९ ॥

भा०—(महानग्नी) बहिन की न्याईं हितकारिणी महासभा (उपब्रूते) कहती है कि (पसः) जब प्रजाजन में (स्वसित) राष्ट्र भाव का प्रवेश हो जाता है तब वृक्ष का अपना २ भाग सब प्राप्त करते हैं। एक शूर्प के बाद दूसरा अपना २ शूर्प भर कर ले जाते हैं।

महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥ १० ॥

भा०—(महनग्नी) बड़ी राजसभा (कृकवाकम्) कण्ठ से उत्तम वचन बोलने वाले का (शम्यया) शान्तियुक्त वाणी से (परि धावति) अनुगमन करती है। सभी कहते हैं (वयं न विद्मः) हम नहीं जानते कौन है कि (यः मृगः) जो व्याघ्र के समान शूरवीर होकर (शीर्ष्णा) अपने शिर पर (धाणिकाम्) प्रजा के भरण पोषण के (हरति) भार को धारण करता है।

महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ ११ ॥

भा०—(महानग्नी) बड़ी सभा (धावन्तं) वेग से आगे बढ़ते हुए (महानग्नम्) बड़े विद्वान् नेता के (अनु धावति) पीछे जाती है। (तत्) वह तू हे राजन् ! (अस्य) इस प्रजाजन की (गाः) भूमियों और वाणियों की (रक्ष) रक्षा कर। (माम् यभ) पुरुष जिस प्रकार स्त्री से संगत होकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार तू मुझसे युक्त होकर हे राजन् ! (ओदनम् अद्धि) वीर्य, बल और प्रजापतिपद का भोग कर।

सुदेवस्त्वा महानग्नीर्ब बांधते महतः साधु खोदनम् ।
कुशं पीवरो नवत् यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (महानग्नि) महासभे ! (सु-देवः) उत्तम तेजस्वी राजा (त्वा) तुझे (वि बाधते) विविध प्रकार से मथता है, दूध से मक्खन के समान तुझसे सार पदार्थ प्राप्त करता है । (महतः) बड़े भारी राष्ट्र से (साधु) उत्तम (खोदनम्) सुख-ऐश्वर्य प्राप्त होता है । (पीवरः) उस समय बलवान् पुरुष भी (कृशं नवत्) कृश पुरुष की स्तुति करता है । इसलिये हे राजन् ! (यभ माम्) जिस प्रकार स्त्री अपने कृशपति को प्राप्त करके भी उससे संग लाभ करती है और पति को सुख प्राप्त होता है उसी प्रकार तू भी मेरे साथ सुसंगत होकर रह और (ओदनम्) राज्यपद के अधिकार का भोग कर ।

वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्र सृजतोग्रतं परे ।
महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १३ ॥

भा०—जैसे कोई जली अंगुली को काट डालता है वैसे ही वश में रहने वाली प्रजा अत्युग्र राजा को भी परे फेंक देती है । हे राष्ट्रपते ! तू (माम् यभ) मुझसे पति के समान सुसंगत होकर रह और (ओदनम् अद्धि) भोग्य परिपक्व अन्न के समान राज्याधिकार का भोग कर ।

विदेवस्त्वा महानग्नीर्वि बाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्दं भस्मा कु धावति ॥ १४ ॥

भा०—विविध देशों को विजय करने हारा एवं विविध गुणों का प्रकाशक राजा हे (महानग्नि) महासभे ! (महतः) बड़े राष्ट्र के (साधु) उत्तम (खोदनम्) सुखकारी ऐश्वर्य को (वि बाधते) विविध उपायों से दूध से मक्खन के समान मथकर प्राप्त करता है । (पिङ्गलिका कुमारिका) सुन्दर रूपवती कुमारी के समान (पिङ्गलिका) तेजस्विनी सेना (कार्यंकृत्वा) अपने आवश्यक कार्य को समाप्त करके (भस्मा प्र धावति) आगे बढ़ती है ।

महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥

भा०—(बिल्वः) शत्रु को भेदने में समर्थ (महान्) बड़ा पुरुष ही (भद्रः) प्रजा को कल्याण-सुख का देने वाला होता है । इसी प्रकार (उदुम्बरः) भारी बलवान् पुरुष भी (भद्रः) प्रजा को सुखकारी है । (महान्) बड़ा पुरुष ही (महत्) बड़े राष्ट्र के (साधु) उत्तम (खोद-नम्) ऐश्वर्य को (अभितः) सब प्रकार से (बाधते) श्रम से लेता है और उसको भोगता है ।

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।
तैलंकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुद मद्धरेत् ॥ १६ ॥

भा०—(पिङ्गलिका) गौर वर्ण की सुन्दर कुमारी (पीवरी) स्वयं हृष्ट पुष्ट होकर भी जिस प्रकार (यं) जिस किसी (कृशितं) कृष पुरुष को (लभेत) प्राप्त कर ले, उसी प्रकार बलवती राजसभा जब (कृशितं लभेत्) निर्बल राजा को प्राप्त करती है तब जिस प्रकार (तैलकुण्डात्) तपे तेल के कड़ाह में से (अंगुष्ठम् इव) जैसे कोई अपने अंगुली को झट अलग कर लेता है उसी प्रकार (रोदन्तम्) प्रजा को पीड़ा देने वाले उस (शुदम्=क्षुद्रम्) अल्प बल के पुरुष को (उद्धरेत्) वह उखाड़ फेंकती है ।

[१३७] राजपद

१. शिरिम्बिठिः, बुधः, ३, ४, ६, ययातिः । ७-११, तिरश्चीराङ्गिरसो द्युतानो वा मारुत ऋषयः । १, लक्ष्मीनाशनी, २ वैश्वीदेवी, ३, ४-६ सोमः पवपान इन्द्रश्च देवताः । १, ३, ४-६ अनुष्टुभो, ५-१२ अनुष्टुभः १२-१४ गायत्र्यः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ १ ॥

भा०—(यत् ह) और जब (हरः) बड़ी २ (मण्डूरधाणिकीः) लोहे की धाना, दानें छर्रेवाली तोपें (प्राचीः) आगे बढ़ी हुई (अजगन्त) चलती हैं तब (इन्द्रस्य) सेनापति के (सर्वे) समस्त शत्रु (बुद्बुदयाशवः) जल के बुलबुले के समान (हताः) शीघ्र विनष्ट हो जाते हैं।

'मण्डूर' लोहविशेष फ़ौलाद् कहाता है। इसके आयुर्वेद में भस्म और धनुर्वेद में शस्त्र बनाने का विधान है। 'धाणिका' = गोली, धाना, दाना।

कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (नरः) नेता लोगो! राजा (कृपत्) प्रजापालक पद को निभाने में समर्थ है। उस (कपृथम्) सुख के पालक को (उत् दधातन) ऊंचे पद पर स्थापित करो। उसको (वाज-सातये) युद्ध करने और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (चोदयत) प्रेरित करो और (खुदत) उसको प्रसन्न एवं सुखी रक्खो। हे (सबाधः) शत्रुओं को एक साथ मिलकर विनाश करने वाले वीर पुरुषो! आप लोग (इह) इस राष्ट्र (सोमपीतये) सर्वप्रेरक राजा के परमपद या राष्ट्र के भोग के लिये (निष्टिग्र्यः पुत्रम्) गुप्त रूप से सबको वश करने का उपदेश करने वाली राजसभा के पुत्र के समान (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (ऊतये) राष्ट्र की रक्षा के लिये (आ च्यावय) अधिकार प्रदान करो।

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३ ॥

भा०—(अश्वस्य) अश्व के समान (वाजिनः) बलवान्, (दधिक्राव्णः) अपनी जीवनयात्रा के साथ २ दूसरे के भरण पोषण के भार को उठा लेने वाले, (जिष्णोः) विजयशील पुरुष को मैं (अकारिषम्) उच्च पदाधिकार प्रदान करता हूँ। वह (नः) हमारे (मुखा) मुख्य २ अंगों और पदाधि-

कारियों को (सुरभिः) उत्तम, कार्य करने में समर्थ, सुदृढ़, बलवान् (करतु) करे, (नः) हमारे (आयूंषि) आयुओं की (प्र तारिषत्) वृद्धि करे।

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥

भा०—(सुतासः) उत्पन्न किये, (मधुमत्-तमाः) अत्यन्त मधुर (सोमाः) समस्त ऐश्वर्य (इन्द्राय) शत्रुनाशकारी राजा को ही (मन्दिनः) आनन्द देने वाले हैं। वे (पवित्रवन्तः) पवित्र करने हारे सदाचारी पुरुषों के निमित्त (अक्षरन्) पात्रों में जल के समान प्राप्त हों। हे पुरुषो ! (वः) तुम लोगों के (मदाः) समस्त हर्षदायी, तृप्तिकारी सुखजनक पदार्थ (देवान्) ज्ञानवान् पुरुषों को प्राप्त हों।

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥

भा०—(इन्दुः) यह द्रुतगति से जाने वाला, ज्ञानवान्, दयार्द्र पुरुष (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (पवते) कार्य करता है। (इति) इस प्रकार (देवासः) विद्वान् पुरुष (अब्रुवन्) कहा करते हैं। (वाचस्पतिः) वाणी का पालक स्वामी, (मखस्यते) सब प्रकार की पूजा के योग्य है। वही (ओजसा) अपने बलपराक्रम से (विश्वस्य) समस्त विश्व का (ईशानः) स्वामी है।

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा का (दिवेःदिवे) प्रतिदिन वा (सखा) मित्र, (रयीणां पतिः) समस्त ऐश्वर्यों का पालक, (सोमः) सोम, सबका प्रेरक, (वाचमीङ्खयः) आज्ञाओं और उत्तम ज्ञानवाणियों का उपदेष्टा, (सहस्रधारः) सहस्रों विद्याओं को धारण करने वाला और मेघ

के समान हजारों ज्ञानधाराओं की वर्षा करने वाला, (समुद्रः) समुद्र के समान ज्ञानरत्नों और आप्तविद्याओं का सागर होकर, (पवते) राष्ट्र में स्थित हो और सबको प्रेरित करे।

अव॑ द्र॒प्सो अं॑शु॒मती॑मतिष्ठदिया॒नः कृ॒ष्णो द॒शभिः॑ स॒हस्रैः॑।
आव॒त् तमिन्द्रः॒ शच्या॒ धम॑न्त॒मप॒ स्नेहि॑ति॒र्नृम॒णा अ॑धत्त ॥७॥

भा०—(द्रप्सः) दर्पवान्, (कृष्णः) प्रजाओं का पीड़न करने वाला अत्याचारी राजा, (दशभिः सहस्रैः) दशों हज़ारों सैनिकों के साथ आक्रमण करता २ (अंशुमतीम्) परस्पर विभाग या फूट वाली प्रजा पर (अतिष्ठत्) अधिकार कर लेता है। परन्तु (नृमणाः) मनुष्यों के मन को हरने वाला, प्रजा का अभिमत प्रिय (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (धमन्तम्) गर्जते हुए उस गर्वीले दुष्ट राजा पर (शच्या) अपनी शक्तिशाली सेना से (आवत्) चढ़ाई करे और उसकी (स्नेहितीः) हिंसाकारी दुष्ट सेनाओं व कुटिल नीतियों को (आ अधत्त) दूर करे, पराजित करे।

द्र॒प्सम॑पश्यं॒ विषु॑णे॒ चर॑न्तमुपह्व॒रे न॒द्यो॑ अंशु॒मत्याः॑।
नभो॒ न कृ॒ष्णम॑वतस्थि॒वांस॒मिष्या॑मि वो वृषणो॒ युध्य॑ता॒जौ ॥८॥

भा०—(द्रप्सम्) कुत्सित आचरण करने वाले और प्रजा का माल खा जाने वाले, (कृष्णम्) प्रजा के पीड़क, (नद्यः) नदियों के समान जलवत् धन से भरी हुई या धन को पानी के समान बहाने वाली (अंशुमत्याः) और फूट वाली प्रजा के (उपह्वरे) समीप (विषुणे) सब ओर फैले अति विषम व्यवहार में (चरन्तम्) विचरते हुए और (अवतस्थिवांसम्) मेघ के समान फैल कर बैठे को (अपश्यम्) देखता हूँ। हे (वृषणः) बलवान् पुरुषो! आप लोग (आजौ) युद्ध में (युध्यत) जूझ जाओ। (इष्यामि) मैं यही चाहता हूँ।

अध॑ द्र॒प्सो अ॒ंशुम॑त्या उ॒पस्थेऽधारयत् त॒न्व॑ तित्विषा॒णः ।
विशो॒ अदे॑वीर॒भ्याऽचर॑न्ती॒र्बृह॒स्पति॑ना यु॒जेन्द्रः॑ ससाहे ॥ ९ ॥

भा०—(अध) और (द्रप्सः) कुत्सित चाल से प्रजा को खाजाने वाला पुरुष, (अंशुमत्याः उपस्थे) फूट वाली प्रजा के बीच में रहकर, (तित्विषाणः) अति तेजस्वी होकर, अपने (तन्वं) विस्तृत राज्य को (अधारयत्) धारण किये रहता है। (बृहस्पतिना) बड़ी भारी सेना के सेनापति अथवा ज्ञान के स्वामी विद्वान् पुरुष को (युजा) साथ लेकर (इन्द्र) शत्रु विनाशक राजा (अभि-आचरन्ती) सम्मुख मुकाबले पर आती हुई या प्रतिकूल आचरण करती हुई (अदेवीः विशः) उत्तम गुणों से रहित तामस प्रजाओं को (ससाहे) पराजित करता है।

त्वं ह॒ त्यत् स॒प्तभ्यो॒ जाय॑मानोऽश॒त्रुभ्यो॑ अभवः॒ शत्रु॑रिन्द्र ।
गू॒ल्हे द्यावा॑पृथि॒वी अन्व॑विन्दो विभु॒मद्भ्यो॒ भुव॑नेभ्यो॒ रणं॑ धाः ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (जायमानः) प्रकट होता हुआ, (अशत्रुभ्यः) प्रजा का विनाश न करने वाले सत् पुरुषों के हित के लिये, (शत्रुः अभवः) दुष्टों का नाश करने वाला हो और (सप्तभ्यः) सातों (विभुमद्भ्यः) प्रचुर धन सामर्थ्य वाले (भुवनेभ्यः) लोकों या प्रजाजनों के हित के लिये (रणं धाः) संग्राम कर और (गूल्हे) अति सुरक्षित (द्यावा-पृथिवी) आकाश और पृथ्वी के समान राजा और प्रजा को (अनु अविन्दः) प्राप्त कर और अपने वश कर।

त्वं ह॒ त्यद॑प्रतिमा॒नमोजो॒ वज्रे॑ण वज्रिन् धृषि॒तो ज॑घन्थ ।
त्वं शुष्ण॒स्याव॑ाति॒रो वध॑त्रै॒स्त्वं गा इ॑न्द्र॒ शच्येद॑विन्दः ॥ ११ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) वज्रधारिन् ! (त्वं) तू (वज्रेण) वज्र द्वारा (धृषितः) शत्रुओं का धर्षण करने हारा होकर, (त्यत्) उस (अप्रतिमानम्) असीम (ओजः) पराक्रम को (जघन्थ) प्राप्त होता है और (त्वं) तू (वधत्रैः) हिंसाकारी साधनों से (शुष्णस्य) प्रजाशोषक दुष्ट पुरुष का

(अव अतिरः) विनाश करता है और (त्वं) तू (शच्या इत्) शक्ति, सेना, प्रज्ञा, या कर्मसामर्थ्य से ही (गाः अविन्दः) भूमियों को अपने वश करता है।

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १२ ॥

भा०—हम (तम्) उस (इन्द्रं) शत्रुनाशकारी सेनापति को, (महे वृत्राय) बड़े भारी विघ्नकारी शत्रु के (हन्तवे) नाश करने के लिये, (वाजयामसि) बलवान् बनावें। (सः वृषा) वह मेघ के समान सुख-ऐश्वर्यों का वर्षक (वृषभः) अति श्रेष्ठ (भुवद्) सामर्थ्यवान् हो।

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ १३ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् सेनापति (दामने) दान देने के लिये ही (कृतः) बनाया गया है। (सः) वह (मदे) तृप्त करने वाले हर्ष के हेतु राज्यैश्वर्य के निमित्त ही (ओजिष्ठः) अति पराक्रमी होकर (हितः) स्थापित किया जाता है। (सः) वह (श्लोकी) स्तुति योग्य (सोम्यः) और सर्वप्रेरक पद के योग्य है।

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ १४ ॥

भा०—(गिरा) वाणी द्वारा (संभृतः) अच्छी प्रकार स्तुति किया जाकर, (वज्रः न) शस्त्र के समान अति तीक्ष्ण, (सबलः) बलवान्, (अनपच्युतः) शत्रुओं से कभी पदच्युत न होने वाला, (ऋष्वः) महान् और (अस्तृतः) अहिंसित होकर (ववक्ष) राष्ट्र के भार को उठाता है।

[१३८] परमेश्वर और राजा

वत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। तृचं सूक्तम् ॥

म॒हाँ इन्द्रो॒ य ओज॑सा प॒र्जन्यो॑ वृष्टि॒माँ इ॑व
स्तोमै॑र्व॒त्सस्य॑ वावृधे ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष या परमेश्वर (ओजसा महान्) बल पराक्रम में बड़ा है और (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वर्षण करने वाले मेघ के समान समस्त प्रजाओं पर सुख-सामग्री प्रदान करता है, वह (वत्सस्य) स्तुति करने हारे या राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजन को (स्तोमैः) स्तुति समूहों से (ववृधे) नित्यप्रति बढ़ता हैं।

प्र॒जामृ॒तस्य॒ पिप्र॑तः॒ प्र यद् भर॑न्त॒ वह्न॑यः ।
विप्रा॑ ऋ॒तस्य॒ वाह॑सा ॥ २ ॥

भा०—(यद्) जब (वन्हयः) राज्यकार्य को वहन करने वाले नेतागण, विवाहित गृहस्थों के समान, (ऋतस्य) सत्य व्यवहार का पालन करते हुए, (प्रजाम्) प्रजा का (प्र भरन्त) अच्छी प्रकार भरण पोषण करते हैं, तब (विप्राः) विद्वान् पुरुष (ऋतस्य) सत्य के (वाहसा) प्राप्त कराने वाले ज्ञान से युक्त होते हैं।

कण्वा॒ इन्द्रं॒ यदक्र॑त॒ स्तोमै॑र्य॒ज्ञस्य॒ साध॑नम् ।
जा॒मि ब्रु॑वत॒ आयु॑धम् ॥ ३ ॥

भा०—(कण्वाः) मेधावी पुरुष (यत्) जब (स्तोमैः) उत्तम ज्ञान-युक्त स्तुति-वचनों और पदाधिकारों से ही (यज्ञस्य) परस्पर सुसंगत राष्ट्र पालन के कार्य के (साधनम्) साधने वाले राजा को (अक्रत) समर्थ कर देते हैं, तब वे (आयुधम्) हथियार आदि को (जामि) निष्प्रयोजन (ब्रुवते) कहा करते हैं।

सुव्यवस्थित राज्य-शासन में चोर आदि का भय न होने से स्वयं जीवन सुरक्षित रहता है। फिर हथियार रखने की आवश्यकता नहीं है।

[१३९] माता, पिता, विद्वान्

शशकर्ण ऋषिः । अश्विनौ देवते । १, ४ बृहत्यौ, २, ३ गायत्र्यौ, शेषा अनुष्टुभः । ५ ककुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथुच्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) राज्य के संचालक दो मुख्य पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों, बच्चे को माता पिता के समान, (वत्सस्य) स्तुतिशील, एवं राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजन को पुत्र जानकर उसकी (अवसे) रक्षा करने के लिये (आ गन्तम्) आओ और (अस्मै) उसको (अवृकं) चोर आदि दुष्ट पुरुष और भेड़िये आदि हिंसक जीवों से रहित, (पृथु) तथा विस्तृत, पालनकारी, (छर्दिः) शरण (यच्छतम्) प्रदान करो और (याः अरातयः) जो शत्रु हैं इनको (युयुतम्) पृथक् करो ।

यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु ।
नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या में व्याप्त ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ विद्वान् पुरुषो ! (यत् नृम्णं) जो मनुष्यों के अभिमत पदार्थ (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में, (यत् दिवि) जो द्यौलोक में और (यत् पञ्च मानुषाम् अनु) जो पांच प्रकार के मनुष्यों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इनमें निहित हैं (तत्) उसे (धत्तम्) प्रदान करो ।

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः ।
एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (विप्रासः) विद्वान् लोग (वाम्) तुम दोनों के (दंसासि) कर्मों का (परि मामृशुः) विचार करते हैं (एवा इत्) उसी प्रकार तुम दोनों भी (कण्वस्य) विद्वान् पुरुषों के हित का (बोधतम्) ज्ञान रखो, उनके हित पर भी विचार करो ।

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (वां) तुम दोनों का (घर्मः) अभिषेक (स्तोमेन) उत्तम गुणस्तुति और सत्योपदेश द्वारा (परि षिच्यते) सम्पादन किया जाता है। (अयं) यह (मधुमान्) मधुर गुणों से युक्त (सोमः) राष्ट्र अथवा (मधुमान्) ज्ञानवान् सौम्य विद्वान् पुरुष है (येन) जिसके द्वारा तुम दोनों (वाजिनी-वसू) संग्राम करने हारी सेना को बसाकर, (वृत्रं) राष्ट्र के कार्य में विघ्न करने वाले शत्रु को (चिकेतथः) रोग के समान दूर करते हो।

यद॒प्सु यद् वन॒स्पतौ॒ यदोष॑धीषु पुरुदंससा कृ॒तम्।
तेन॑ माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

भा०—हे (पुरु-दंससा) बहुत कर्मों में कुशल एवं पालन कर्म में सिद्धहस्त पुरुषो ! हे (अश्विनौ) विद्याओं में व्यापकज्ञान वाले विद्वान् पुरुषो ! तुम दोनों (यद्) जो रस या बल (अप्सु) जलों और आप्त प्रजाजनों में, (यद् वनस्पतौ) जो वनस्पति अर्थात् बड़े वृक्षों एवं प्रजापालक पुरुषों में, (यद् ओषधीषु) और जो तीव्र रस वाली ओषधियों और तीव्र तेजस्वी सैनिक पुरुषों में (कृतम्) उत्पन्न करते हो, (तेन) उससे (मा) मुझ राष्ट्र की और पुरुष की (अविष्टम्) रक्षा करो।

[१४०] सत्यपालक दो अधिकारी

अश्विनौ देवते। शशकर्ण ऋषिः। अनुष्टुभः। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

यन्ना॑सत्या भुर॒ण्यथो॒ यद् वा॑ देव भिषज्यथः।
अ॒यं वां॑ व॒त्सो म॒तिभि॒र्न वि॑न्धते ह॒विष्म॑न्तं॒ हि गच्छ॑थः ॥१॥

भा०—हे (नासत्यौ) कभी भी असत्य व्यवहार न करने वाले, सदा सत्यपरायण पुरुषो ! (यत्) क्योंकि तुम दोनों (भुरण्यथः) पालन पोषण करते हो, (भिषज्यथः) और शरीरों की चिकित्सा करते हो, इसलिये (वत्सः) यह स्तुतिशील विद्वान् ही (वां) तुम दोनों को (मतिभिः) मनन करने योग्य स्तुतियों द्वारा केवल (न विन्धते) नहीं प्राप्त करता, प्रत्युत

तुम दोनों (हविष्मन्तं) अन्न और साधन सम्पन्न पुरुष के पास स्वयं भी (गच्छथः) प्राप्त होते हो ।

आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ २ ॥

भा०—(ऋषिः) विज्ञानद्रष्टा पुरुष (नूनं) निश्चय से (वामया) ज्ञानमयी बुद्धि से (अश्विनोः) अग्नि और जल तत्वों के (स्तोमं) यथार्थ गुणज्ञान को (आ चिकेत) जान ले । वह (अथर्वाण) हिंसा रहित जनों के पालक पुरुष में (मधुमत् तमम्) अति मधुर (घर्मम्) तथा तेज से युक्त (सोमम्) बल को (सिञ्चात्) प्रदान करता है ।

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) व्याप्त शक्ति वालो ! तुम दोनों (नूनं) निश्चय से (रघु-वर्तनिम्) शीघ्रता से जाने वाले (रथम्) रथ में (आ तिष्ठथः) स्थित होते हो । (वां स्तोमाः) तुम दोनों के ये स्तुति योग्य गुण (मम) मुझ द्वारा प्रकट किये गये हैं (नभः न) सूर्य के समान (चुच्युवीरत) हमें भी प्राप्त हों ।

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वां वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्यौ) सदा सत्य व्यवहारवान् ! हे (अश्विनौ) विद्वान् एवं पदाधिकार पर स्थित पुरुषो ! (वां) तुम दोनों के (उक्थैः) प्रशंसनीय वचनों द्वारा हम विद्वान् पुरुष (आचुच्यवीमहि) बलों को बढ़ावें और (यद्) जब हम (वाणीभिः) उत्तम वाणियों द्वारा (वां आचुच्यवीमहि) तुम दोनों को ज्ञानोपदेश करें उस समय तुम दोनों (काण्वस्य) विद्वान् पुरुष के दिये उपदेश का बोध प्राप्त करो ।

यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) व्यापक अधिकार वाले जनो ! (वां) तुम दोनों को (कक्षीवान्) शासनशक्ति का स्वामी और (यत्) जो (व्यश्वः) विविध अश्वसेना का स्वामी, (ऋषिः) और तत्वज्ञानी (दीर्घ-तमाः) तथा प्रजापीड़ा का नाश करने वाला और (वैन्यः) विद्वानों का हित-कारी स्वयं बुद्धिमान्, (पृथी) और विस्तृत भूमि का रक्षक, ये पुरुष (वां३) जो तुम दोनों को (आजुहाव) बुलाते हैं, पदाधिकारी रूप से नियुक्त करते हैं, (अतः) इसलिये (सादेषु एव) सब गृहों में और पदा-धिकारियों में (चेतयेथाः) चेतना प्रदान करो ।

[१४१] दो अधिकारी

शशकर्ण ऋषिः । अश्विनौ देवता । अनुष्टुभः । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिं स्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥

भा०—हे प्राण और अपान के समान राष्ट्र के दो अधिकारियो ! तुम दोनों (छर्दिष्पा) गृहों की रक्षा करने वाले, (उत) और (नः) हमारे (परस्पा) परम पालक होकर (यातम्) प्राप्त होवो । (उत) और (जगत्पा) जगत् के पालक, और (नः तनूपा) हमारे शरीरों के पालक (भूतम्) होवो । (तोकाय) हमारे पुत्रों और (तनयाय) सन्तति के हित के लिए (वर्तिः) हमारे गृहों तक को भी (यातम्) प्राप्त होवो ।

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वां वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद वां विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) व्यापक अधिकार वाले दो शासको ! तुम

दोनों (यत्) जो कि (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् मुख्य सम्राट् के साथ (सरथम्) समान रथ पर चढ़ कर (याथः) जाते हो, (यद्वा) और (समोकसा) समान पदाधिकार वाले, तीव्र गति से आक्रमणकारी सेनापति के साथ भी (भवथः) रहते हो और (आदित्येभिः) अखण्ड शासन के प्रणेता १२ मासों के समान १२ मुख्य मन्त्रीगण के साथ और (ऋतुभिः) ऋतुओं के समान ६ प्रधान राजसभा के अधिकारियों के साथ भी (स-जोषसा) समान प्रेम व्यवहार वाले हो और (यद्वा) क्योंकि तुम दोनों (विष्णोः) प्रजा के व्यापक शासन वाले राजा के (विक्रमणेषु) विविध कार्यों में भी (तिष्ठथः) रहा करते हो। और—

यद्द्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः॥ ३॥

भा०—और क्योंकि (अश्विनौ) उक्त दोनों व्यापक अधिकारवान् पुरुषों को (अहम्) मैं (वाज-सातये) ऐश्वर्य के लाभ और संग्राम के करने के लिये भी (हुवेय) बुलाता हूँ और क्योंकि उनका (सहः) शत्रु-पराजय करने का सामर्थ्य (पृत्सु) संग्रामों के बीच में (तुर्वणे) शत्रु के नाश करने में समर्थ होता है, (तत्) इसलिए (अश्विनोः) उन दोनों का (अवः) रक्षणसामर्थ्य भी (श्रेष्ठम्) सबसे श्रेष्ठ है।

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ॥ ४॥

भा०—हे (अश्विना) व्यापक अधिकारवान् पुरुषो! आप दोनों (नूनम् आ यातम्) अवश्य प्राप्त होवो। (वां) तुम दोनों के लिये (इमा हव्यानि) ये ग्रहण करने योग्य अन्न आदि भोग्य पदार्थ (हिता) रखे हैं। (इमे) ये (सोमासः) ऐश्वर्य वाले पदार्थ जो (तुर्वशे) चारों पुरुषार्थों की कामना करने वाले और (यदौ अधि) यत्नशील प्रजाजन के अधिकार में हैं और (इमे) ये समस्त ऐश्वर्य जो (कण्वेषु) विशेष मेधावी विद्वान् पुरुषों में हैं वे सब (अथ वाम्) तुम दोनों के लिये ही हैं।

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (नासत्यौ) सदा सत्य व्यवहार वाले तुम दोनों (पराके) दूर देश में और (अर्वाके) समीप देश में भी (यत्) जो (भेषजम् अस्ति) रोगादि निवारक ओषधि और उपद्रवों के निवारक उपाय हैं हे (प्रचेतसौ) उत्कृष्ट ज्ञान वाले पुरुषो ! (तेन) उस उपाय से (वत्साय) राज्य में सुख से बसने वाले (वि-मदाय) विशेष हर्षवान् प्रजाजन को (छर्दिः) शरण या सुख (यच्छतम्) प्रदान करो ।

[१४२] वेदवाणी

शशकर्ण ऋषिः । अश्विनौ देवते । १–४ अनुष्टुभः । ५,६, गायत्र्यौ । षड्ऋचं सूक्तम् ॥

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥

भा०—(देव्या) उपदेशक और अध्यापकों की (दिव्या वाचा) दैवी वाणी से (अहम् अभुत्सि उ) मैं बोध प्राप्त करूं । (देवी) वह प्रकाशज्ञानवाली वाणी (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों को (मतिम्) मनन योग्य ज्ञान और (रातिम्) शिष्यों को प्रदान करने योग्य प्रवचन भी (वि आवः) विविध प्रकार से प्रकट करती है ।

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

भा०—हे (उषः) पापों को दग्ध करनेहारी ! हे (महि) पूजनीय ! हे (सुनृते) उत्तम सत्य ज्ञान को धारण करने वाली ! हे (देवि) ज्ञान प्रकाश देने वाली वेदवाणी ! तू (अश्विना) नर नारी दोनों को (प्र बोधय) भली प्रकार उन्नति के लिये जगा दे, प्रबुद्ध कर । हे (यज्ञ-होतः) परस्पर सुसंगत व्यवहारों के प्रवर्तक राजन् ! तू भी (प्र) नर नारी दोनों को

उत्तम ज्ञानवान् बना । (मदाय) हर्ष प्राप्त करने के लिये (बृहद् श्रवः) जो बड़ा भारी यज्ञ, ज्ञान और अन्न है, उसका (प्र) प्रदान कर।

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (उषः) पाप दग्ध करनेहारी ज्ञानवाणी ! तू (भानुना) अर्थप्रकाश रूप ज्ञान के साथ (यासि) हमें प्राप्त होती है और (सूर्येण) सूर्य के समान ज्ञान के अगाध सागर विद्वान् के साथ उसको प्राप्त होकर (सं रोचसे) बड़े उत्तम रूप से प्रकाशित होती है । तब ही (अश्विनोः) नर नारी दोनों का (अयम् रथः) यह रमण योग्य, सुख-जनक व्यवहार (नृ-पाय्यम्) नरों के पालन करने वाले (वर्तिः) देह और गृह को (याति) प्राप्त होता है ।

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(यद्) जब (आपीतासः) कुछ २ पीले २ रंग के (अंशवः) किरण (ऊधभिः) थनों से (गावः न) दूधों के समान (दुह्रे) उत्पन्न होते हैं और (यत्) जब (देवयन्तः) देवोपासना करनेहारे उपासक जन (वाणीः) वाणियों द्वारा (अनूषत) स्तुति करते हैं, तब (अश्विना) विद्या में पारंगत गुरु और ज्ञानी पुरुष हमें (प्र बोधयतम्) उत्तम रीति से प्रबुद्ध, ज्ञानवान् करें ।

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे ।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥

भा०—(प्र-चेतसा) उत्कृष्ट ज्ञान वाले आचार्य और अध्यापक दोनों, (द्युम्नाय) यश, उत्कृष्ट धन, (शवसे) बल, (नृ-षाह्याय) शत्रु दमनकारी बल एवं (दक्षाय) ज्ञान और कर्मसामर्थ्य के लिए (प्र बोध-यतम्) हमें नित्य उत्तम शिक्षा से ज्ञानवान् करें ।

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) विद्या और कर्म में पारंगत आचार्य और अध्यापक एवं विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यत्) क्योंकि आप दोनों (धीभिः) कर्मों और ज्ञानों से (पितुः) पालक पिता के (योनौ) स्थान पर (निषीदथः) विराजते हो, (यद् वा) और क्योंकि तुम दोनों (सुम्नेभिः) सुखकारी उपायों और ज्ञानों से भी पिता के पद पर बैठने योग्य हो इसलिये तुम दोनों (उक्थ्या) प्रशंसा के योग्य हो ।

[१४३] विद्वानों के कर्त्तव्य

पुरुमीढाजमीढावृषी । वामदेव ऋषिः । ९ मेधातिथिर्मध्यातिथी ऋषी ।
त्रिष्टुभः । ८ मधुमती ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) आचार्य और गुरो ! (अद्य) आज (वयम्) हम (वां) तुम्हारे, (गोः संगतिम्) ज्ञान-वाणी को प्राप्त करने वाले (पृथुज्रयम्) अति विस्तृत शक्ति वाले (गिर्वाहसम्) वाणियों को धारण करने वाले, (वसूयुम्) विद्वान् ब्रह्मचारी छात्रों अन्तेवासी वसुओं की कामना करने वाले, (रथम्) सबको प्रसन्नकारी रमणीय स्वरूप को (आ हुवेम) प्राप्त करें (यः) जो कि (वन्धुरायुः) सबके आधारभूत (सूर्याम्) विद्वानों के हित की वाणी को (वहति) धारण करता है ।

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥२॥

भा०—हे (अश्विना) अश्विगण ! दोनों तुम (देवता) देवरूप हो । तुम (दिवः नपाता) ज्ञानशक्ति को कभी नष्ट नहीं होने देते और

(शचीभिः) अपनी प्रज्ञाओं, बुद्धियों के कारण (श्रयं यनथः) परम शोभा को प्राप्त हो। (यत्) जब (वाम्) तुम दोनों को (ककुहासः) उत्तम बैल और अश्व (रथ वहन्ति) रथ में ले जाया करें (युवोः) तब तुम दोनों के (वपुः) शरीरों को (पृक्षः) नाना प्रकार के अन्न आदि पुष्टिजनक पदार्थ (अभि सचन्ते) प्राप्त होते हैं।

को वांमुद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः।
ऋतस्यं वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्याओं में पारंगत आचार्य और गुरु जनो! या विद्वान् स्त्री पुरुषो! (अद्य) आज (कः) कौन (रातहव्यः) अन्नादि का दानशील पुरुष (वाम्) तुम दोनों की (ऊतये) जीवनरक्षा के लिये, (वा) और (अर्कैः) आदर सत्कार के कर्मों द्वारा (सुत-पेयाय) उत्पन्न सोमरस आदि पान योग्य पदार्थों के पान के लिये (करते) प्रबन्ध करता है। और (कः) कौन उत्साही शिष्य (ऋतस्य) सत्यज्ञान वेद के (पूर्व्याय) सबसे पूर्व विद्यमान (वनुषे) सेवनीय ज्ञान के लिये, तुम्हारे पास (नमः) नमस्कार और आज्ञा पालन के व्रत को प्राप्त होकर (ववर्तत्) रह रहा है।

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम्।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने हारे विद्वान् पुरुषो! (पुरुभू) शिष्यों द्वारा बहुत अधिक संख्या में हो जाने वाले आप दोनों (हिरण्ययेन) सुवर्ण या लोहे के बने दृढ़ रथ से (इमं यज्ञम्) इस यज्ञ को (उप यातम्) प्राप्त होओ। (सोम्यस्य) सोम से युक्त (मधुनः) तथा मधु के समान उत्तम ओषधिरस से युक्त अन्न का (पिबाथः इत्) आप दोनों पान करो और (विधते जनाय) परिचर्या करने वाले पुरुष को (रत्नं दधथः) उत्तम ज्ञानरत्न प्रदान करो।

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) एक रथ में संयुक्त अश्वों के समान एक कार्य में एकत्र नियुक्त हे विद्वान् पुरुषो ! तुम दोनों (दिवः) आकाशमार्ग से और (पृथिव्याः) पृथिवीमार्ग से भी (सुवृता) अच्छी प्रकार चलने वाले (रथेन) रथ से (नः आयातम्) हमें प्राप्त होओ । (यत्) जब कि (पूर्व्याः नाभिः) पूर्व का कोई बांधने वाला कारण (संददे) बांधता हो तो (अन्ये) दूसरे लोग (देवयन्तः) आप विद्वानों की परिचर्या करने के इच्छुक होकर (वाम्) तुम दोनों को (मा नियमन्) न बांधे । जब दूसरे से कोई वचन हो जाय तो वे उसको निभाने के लिये औरों से उसी समय न बंधे, प्रत्युत पूर्व स्वीकृत कार्य को यथासमय करने के लिये शीघ्र यान द्वारा समय पर पहुँचे ।

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे । नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीलहासो अग्मन् ॥ ६ ॥

भा०—हे (दस्रा) दर्शनीय तथा दुःखों का क्षय करने हारे आप दोनों (नः) हमारे (उभयेषु) स्त्रीवर्ग और पुरुष-वर्गों में (पुरुवीरम्) बहुत से वीर पुरुषों और पुत्रों से युक्त (बृहन्तं रयिम्) बड़े भारी ऐश्वर्य को (मिमाथाम्) उत्पन्न करो । (यत्) जब (वाम्) तुम्हारे (स्तोमम्) स्तुति समूहों को (नरः) समस्त पुरुष (आवन्) प्राप्त होते हैं तब (आजमीलहासः) धनाढ्य पुरुष भी (सधस्तुतिम्) तुम्हारी स्तुति उनके साथ ही (अग्मन्) करते हैं ।

इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥

भा०—हे (समना) समान चित वालो ! और हे (वाजरत्ना) ऐश्वर्य, बल, वीर्य रूप रत्न को धारण करने वालो ! (यत्) जो उत्तम बुद्धि (इह इह) इन २ नाना कर्मों में (पपृक्षे) तुम दोनों को प्राप्त है, (सा सुमतिः) वह उत्तम बुद्धि (अस्मे) हमें भी प्राप्त हो । (युवं) तुम दोनों ही

(जरितारम्) गुण स्तवन करने वाले विद्वान् की (उरुष्यतम्) रक्षा करो। हे (नासत्या) सत्याचरण करने हारे विद्वानो ! (कामः) अभिलाषा (युवद्रिक् श्रितः) तुम्हारे आश्रय पर स्थित है।

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ८ ॥

भा०—(नः) हमारे लिये (ओषधीः) ओषधियां (मधुमतीः) मधुर गुण वाली हों और (द्यावः) सूर्य की किरणें और प्रकाशमान अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ सुखकारी हों। (नः अन्तरिक्षम् मधुमद् भवतु) हमें अन्तरिक्ष सुखकर, उत्तम जल वायु के देने वाला हो। (नः) हमारा (क्षेत्रस्य) क्षेत्र का (पतिः) पालक किसान वर्ग भी (मधुमान् अस्तु) मधुर अन्नादि पदार्थों से समृद्ध हो। हम (अरिष्यन्तः) किसी प्रकार की हिंसा न करते हुए (एनम् अनु) कृषक वर्ग या क्षेत्र के स्वामी के हित और आज्ञा के अनुकूल होकर (चरेम) वर्ताव करें।

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥९॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् पुरुषो ! (वां) तुम दोनों का (तत्) वह नाना प्रकार का (कृतम्) किया हुआ कार्य (पनाय्यं) स्तुति करने योग्य है। (दिवः) द्यौलोक से (वृषभः) वर्षण करने वाला सूर्य, (रजसः वृषभः) अन्तरिक्ष से वर्षण करने वाला मेघ और उसके समान (पृथिव्या वृषभः) पृथिवीलोक का भी सर्वश्रेष्ठ सुखों का वर्षक नरपति, (उत) और (गविष्टौ) वाणी, पृथिवी और इन्द्रियों के प्राप्तिकार्य में (सहस्रं शंसाः) हज़ारों स्तुतिकर्त्ता ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुष हैं (तान् सर्वान् इत्) उन सबको, (पिबध्यै) पान करने के लिये तथा ज्ञान-रस ग्रहण करने के लिये तुम सब लोग (उप यात) प्राप्त होवो ! इति नवमोऽनुवाकः ॥

शस्त्रकाण्डं नाम विंशं काण्डं समाप्तम्

॥ अथर्ववेदसंहिता च संपूर्णा ॥

रसवस्वङ्कचन्द्राब्दे पौषे शुक्ले बुधेऽहनि ।
चतुर्दश्यां पूर्त्तिमागाद्विंशं काण्डमथर्वणः ॥

ज्ञानविज्ञानसंपूर्णो नानाधर्मपरिष्कृतः ।
कुर्याच्छिवमधीतो नो वेदज्ञानमयः प्रभुः ॥
मानुषोऽहं स्वल्पमतिः स्वभावेन स्खलद्-गतिः ।
इति ज्ञानवतां क्षम्योऽनुग्राह्यस्तद्-दयादृशा ॥
आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्-वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥
गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥
का खलेन सह स्पर्द्धा सज्जनस्याभिमानिनः ।
भाषणं भीषणं साधुदूषणं यस्य भूषणम् ॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकार—मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित—श्रीमत्पण्डित
जयदेवशर्मणा विरचितेऽथर्वणो ब्रह्मवेदस्यालोकभाष्ये
विंशं काण्डं समाप्तम् ।
समाप्तश्चाथर्ववेदालोकभाष्यम् ॥ शिवम् ॥ ओ३म् खं ब्रह्म ॥